अब इन्साफ़ होने वाला है

उर्दू की प्रगतिशील कहानियों का एक प्रतिनिधि चयन

सम्पादक : शकील सिद्दीक़ी

शकील सिद्दीक़ी द्वारा अनूदित अन्य पुस्तकें

1. उमरावजान अदा	मिर्ज़ा हादी रूस्वा
2. दाग़े फ़िराक़	जमीला हाशमी
3. आतिशेरफ़ता	जमीला हाशमी
4. पाकिस्तान में कम्युनिस्टों का दमन	मेजर इसहाक़
5. अंगारे	सज्जाद ज़हीर
6. पिघला नीलम	सज्जाद ज़हीर
7. परीख़ाना	वाजिद अली शाह
8. चुनिन्दा कहानियाँ	रामलाल
9. गोदावरी	फ़हमीदा रियाज़
10. अँधेरा पग	सरवत् ख़ान
11. रशीद जहाँ की कहानियाँ	रशीद जहाँ
12. रशीद जहाँ के नाटक	रशीद जहाँ
13. स्त्री-जीवन का कारावास	ज़ाहिदा हिना
14. जंग—यह आत्महत्या का रास्ता है	ज़ाहिदा हिना

सम्पादन

1. आदमी और अदीब	सज्जाद ज़हीर
2. सज्जाद ज़हीर और तरक़्क़ी पसन्द तहरीक	संकलन
3. सज्जाद ज़हीर विशेषांक	वसुधा
4. पाकिस्तान में उर्दू क़लम	पहल
5. फ़ैज़ विशेषांक	वसुधा
6. सवर्ण जयन्ती विशेषांक	प्रयोजन

पुस्तिकाएँ

1. मकड़ा और मक्खी
2. शोषण, महँगाई और मेहनतकश
3. मई दिवस के संघर्षो का संक्षिप्त इतिहास
4. सज्जाद ज़हीर—व्यक्ति और आन्दोलन
5. डा. रशीद जहाँ—प्रतिबद्ध लेखिका : जुझारू व्यक्तित्व
6. सामाजिक विघटन और पाठ्य पुस्तकें
7. लोक संस्कृति और उर्दू

टी.वी सीरियल

1. भंवर
2. चिंगारी

फ़िल्म

1. सज्जाद ज़हीर—सबके प्यारे बन्ने भाई
2. आज़मगढ़—वर्तमान और अतीत

सम्प्रति : संगठन मंत्री, हिन्दुस्तान एरोनाटिक्स इम्पलाइज़ एसोसिएशन;
सदस्य, राष्ट्रीय परिषद, अ.भा. प्रगतिशील लेखक संघ
सम्पर्क : एम.आई.जी. 317, फेज दो, टिकैतराय एल.डी.ए. कालोनी, मोहान रोड, लखनऊ-17

उर्दू की प्रगतिशील कहानियों का यह संकलन लम्बे अरसे से महसूस की जा रही ज़रूरत को पूरा करने का एक प्रयास है। उर्दू में प्रगतिशील कहानियों की अत्यन्त समृद्ध परम्परा रही है। लेकिन जहाँ उर्दू की प्रगतिशील शायरी से हिन्दी के पाठक काफ़ी हद तक परिचित हैं, वहीं उर्दू की तरक़्क़ीपसन्द धारा का कथा साहित्य उन तक बहुत कम पहुँच पाया है।

एक ही संग्रह में एक साथ पाँच कथापीढ़ियों की प्रतिनिधि कहानियों को प्रस्तुत करना गागर से सागर भरने जैसा है। ख़ासकर पाकिस्तान के तेरह अहम कथाकारों की कहानियों के शामिल होने से इसका महत्व और बढ़ गया है।

अब इन्साफ होने वाला है

उर्दू की प्रगतिशील कहानियों का एक प्रतिनिधि चयन

यह संग्रह परिकल्पना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित किया गया है व प्रगतिशील साहित्य के वितरक जनचेतना द्वारा कम से कम दामों में जनता तक पहुँचाया जा रहा है। हालांकि अभी ये स्टॉक में नहीं है पर आप जनचेतना द्वारा वितरित किया जा रहा अन्य प्रगतिशील, मानवतावादी साहित्य दिये गये अमेजन लिंक से खरीद सकते हैं।

इस पीडीएफ फाइल के अंत में जनचेतना द्वारा वितरित किये जा रहे प्रगतिशील, मानवतावादी व क्रान्तिकारी साहित्य की सूची भी दी गयी है।

हर दिन प्रगतिशील, मानवतावादी साहित्य पाने के लिए

- देश-दुनिया की हर महत्वपूर्ण घटना पर मजदूर वर्गीय दृष्टिकोण से लेख
- सुबह-सुबह प्रगतिशील कविता, कहानियां, उपन्यास, गीत-संगीत, हर रविवार पुस्तकों की पीडीएफ
- देश के महान क्रान्तिकारियों भगतसिंह, राहुल, गणेश शंकर विद्यार्थी आदि का साहित्य पीडीएफ व यूनिकोड फॉर्मेट में

अब इन्साफ़ होने वाला है

उर्दू की प्रगतिशील कहानियों का एक प्रतिनिधि चयन

अब इन्साफ़ होने वाला है

उर्दू की प्रगतिशील कहानियों का एक प्रतिनिधि चयन

सम्पादन व अनुवाद

शकील सिद्दीक़ी

परिकल्पना प्रकाशन

लखनऊ

मूल्य : रु. 125.00 (पेपरबैक)
रु. 250.00 (सजिल्द)

प्रथम संस्करण : अगस्त, 1999
दूसरा संस्करण (परिवर्द्धित एवं संशोधित) : जनवरी, 2008

परिकल्पना प्रकाशन
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226 006 द्वारा प्रकाशित

कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फ़ाउण्डेशन द्वारा टाइपसेटिंग

क्रिएटिव प्रिण्टर्स, 628/एस-28, शक्तिनगर, लखनऊ द्वारा मुद्रित

आवरण : **रामबाबू**

AB INSAF HONE WALA HAI
Urdu ki Pragatisheel Kahaniyon ka ek Pratinidhi Chayan
Edited and translated from Urdu by ***Shakeel Siddiqui***

ISBN 978-81-89760-20-5 (PB)
978-81-89760-21-2 (HB)

हिन्दी में
उर्दू कहानियों का यह संकलन
उर्दू प्रेमी हिन्दी पाठकों के नाम

अनुक्रम

भाग दो – पाकिस्तान

दूसरे संस्करण की भूमिका

उर्दू कहानी के हिन्दी पाठकों के लिए, 'परिकल्पना' के उत्साही साथियों तथा अनुवादक–संकलनकर्ता के रूप में स्वयं मेरे लिए इस संग्रह के दूसरे संस्करण का प्रकाशन अत्यन्त हर्ष का विषय है। इसे हम हिन्दी पाठकों के बीच उर्दू कहानी की लोकप्रियता का प्रमाण मान सकते हैं। मुझे यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं कि समयाभाव के कारण संग्रह के पहले संस्करण में कुछ महत्त्वपूर्ण कहानियाँ शामिल होने से रह गयीं थीं, दूसरे संस्करण में इन कहानियों को सम्मिलित कर लेने से संग्रह अधिक समृद्ध व बहुआयामी बन गया है। यह स्वीकार कर लेने में भी कोई हर्ज़ नहीं कि इन ज़रूरी इज़ाफ़ों के बावजूद संग्रह सम्पूर्ण नहीं है। वह हो भी नहीं सकता। क्योंकि उर्दू में शाहकार कहानियों की सूची ख़ासी लम्बी है, कारणवश सामान्य पाठकों के लिए तैयार किये गये किसी संग्रह में इन सबको सम्मिलित कर पाना सम्भव नहीं। प्रत्येक संग्रह की अपनी सीमाएँ होती हैं, सीमाओं ने हमारे हाथ बाँधे हैं। अतः उर्दू की कुछ प्रसिद्ध कहानियाँ आपको अनुपस्थित महसूस हों तो इसे संग्रह की सीमा की विवशता समझियेगा। दूसरे संस्करण में हमने जो कहानियाँ शामिल की हैं, ये सभी उर्दू में प्रगतिशील जनवादी रचना दृष्टि की बेहतरीन कहानियाँ हैं और व्यापक रूप से चर्चा में रही हैं। इनसे पाकिस्तान का कथा परिदृश्य भी अधिक स्पष्ट हुआ है, इनके बहाने वहाँ के समाज का चेहरा भी ज़्यादा साफ़ हुआ है।

इनके रचनाकारों में ज़्यादातर आरम्भिक दौर से ही प्रगतिशील–जनवादी रचनाभियान से जुड़े रहे हैं। विशेष रूप से अहमद नदीम क़ासमी जो, मण्टो, बेदी, और कृश्न चन्दर के समकालीन थे। शौक़त सिद्दीक़ी और हाजरा मसरूर जो कथा साहित्य को लखनऊ की देन हैं।

विपरीत परिस्थितियों में भी पाकिस्तान में प्रगतिशीलता और आधुनिकता की अलख जगाये रखने वाले हसन मंज़र भी ऐसा ही सृजनात्मक व्यक्तित्व हैं। जैसे कि भारत में इक़बाल मजीद, साजिद रशीद, मुशर्रफ़ आलम ज़ौक़ी तथा ग़ज़नफ़र!

आशा है पाठकों को यह संस्करण अधिक प्रिय अनुभव होगा।

– शकील सिद्दीक़ी

पहले संस्करण की भूमिका

उर्दू कहानियों का प्रस्तुत संग्रह अपनेआप में विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण संग्रह है। इसे हिन्दी में उर्दू कहानियों का पहला प्रतिनिधि संकलन कह सकते हैं। एक ही संग्रह में एक साथ पाँच कथा पीढ़ियों को संगृहीत करना गागर में सागर भरना है। और वह भरा गया है। इसमें पाकिस्तान के अनेक चर्चित कथाकार भी शामिल हैं जिससे संग्रह का महत्त्व अतिरिक्त रूप से बढ़ गया है। उर्दू और हिन्दी बहुत निकट की भाषाएँ हैं, दोनों में कहानी की विकासयात्रा लगभग साथ चली है; बस उर्दू में कहानी थोड़ा पहले लिखी जाने लगी थी, विदेशी भाषाओं के अनुवाद भी कुछ पहले होने लगे थे। लेकिन बाद के सालों में कहानी की जो शक्ल बनी थी आज जिसके नाक-नक़्श अधिक साफ़ और तीखे हो गये हैं, और जिसका विकास सामाजिक यथार्थ के धरातल पर हुआ, उस कहानी की उम्र उर्दू और हिन्दी दोनों में तक़रीबन समान है। यानी कि हमउम्र हैं दोनों भाषाओं की कहानियाँ। फिर भी दोनों भाषाओं के समूचे कथा साहित्य के बीच अपरिचय और अजनबीपन की स्थितियाँ अब भी काफ़ी सघन हैं। समग्र साहित्य की बात तो छोड़ दीजिये – अच्छे ख़ासे पढ़े-लिखे समझदार लोग कहते मिल जायेंगे कि उर्दू में बहुत ख़राब, अपठनीय कहानियाँ लिखी जा रही हैं और उसका सामाजिक यथार्थ से तो रिश्ता तक़रीबन टूट ही चुका है। यह संकलन जबरन बनायी गयी इस धारणा को खण्डित करता है।

काल विशेष में सामाजिक यथार्थ के प्रतिपादन की रिवायत तथा उसके परम्परागत स्वरूप को लेकर असहमति व विरक्ति के भाव हिन्दी-उर्दू दोनों कहानियों में प्रकट हुए थे। पुराने से अलग, कुछ नया करने के आग्रह दोनों भाषाओं में सक्रिय होते दिखायी पड़े थे – इतना अवश्य है कि दोनों भाषाओं में इन आग्रहों के रूप और आकार एक जैसे नहीं हो सकते थे, क्योंकि दोनों भाषाओं की स्थितियाँ अलग-अलग थीं, दोनों के इस्तेमाल करने वालों के सामाजिक हालात भिन्न थे, यह कमोबेश अब भी शेष है।

हिन्दी को सरकारी संरक्षण मिल रहा था और उर्दू शिक्षा संस्थानों, सरकारी कार्यालयों तथा घरों से बाहर निकाली जा रही थी। उर्दू को अपनी मातृभाषा कहने

वाले ग़द्दार-विभाजक कहे जा रहे थे, सन्देह के घेरे में थे तथा जब-तब साम्प्रदायिक हिंसा का शिकार भी हो रहे थे, ऐसे में आत्मकेन्द्रीयता, व्यक्तिवाद और प्रयोगवाद की प्रवृत्तियाँ कहाँ अधिक तीव्र व व्यापक हो सकती हैं, बताने की आवश्यकता नहीं।

इसके साथ ही उर्दू के विस्थापित, गुरुमुखी लिपि में लिखने वाले कथाकारों के सम्मुख अपनी पहचान को बचाये व बनाये रखने की गम्भीर चुनौती थी, हिन्दी में जाना उनके लिए सहज नहीं था और उर्दू में वह अपेक्षित आत्मीयता की कमी अनुभव कर रहे थे। वे हिन्दी कहानी के सम्पर्क में थे पर उसके प्रति उनका कोई सम्मोहन नहीं था। उनकी स्थिति कुछ जहाज़ के पंछी जैसी थी। यह भी एक कारण है कि हिन्दी कहानी के समान उर्दू कहानी वृहत्तर भारतीय यथार्थ की प्रतिनिधि विधा बनने की होड़ में वाजिब सामर्थ्य से शामिल नहीं हो पायी, जबकि उसका फलक अधिक विस्तृत था। फिर पाकिस्तान की समूची साहित्यिक गतिविधियों से, मुख्य रूप से वहाँ जो प्रवृत्तियाँ और धाराएँ जन्म ले रही थीं, उससे भारत के उर्दू साहित्यकार प्रभावित हो रहे थे। वहाँ परम्परा से विद्रोह अथवा उसके समग्र निषेध की विशिष्ट प्रासंगिकता हो सकती है, परन्तु भारत में यह उसी तरह सम्भव नहीं था। कारणवश कहानी के परम्परागत स्वरूप अर्थात प्रेमचन्द और 'अंगारे' के संयुक्त प्रभाव में विकसित हुए कथा रूप को बहुत नहीं बदला जा सका। उस समय भी, जब परम्परा के निषेध और प्रयोग के नाम पर कहानी में अमूर्तन का प्रचलन चल पड़ा था तथा भाषा व शिल्प ने सहसा अधिक महत्त्व प्राप्त कर लिया था तब भी सामाजिक यथार्थ को उद्घाटित करने वाली कहानियाँ पहले जैसे परिमाण में भले न सही पर निरन्तर लिखी जा रही थीं। याद रह जाने वाली कुछ अच्छी कहानियाँ उस दौर में लिखी गयीं।

यह हम सबका साझा अनुभव है कि कला विधाओं पर अस्वाभाविक-अयाचित दबाव सदैव बोदे साबित होते हैं, यही कारण है कि हिन्दी कहानी हो या उर्दू कहानी, आधुनिकतावाद व कलावाद के दबाव अधिक देर तक क़ायम नहीं रह सके। वे दबाव जो रचना की भीतरी ज़रूरत से प्रेरित नहीं होते अन्ततः फुसफुसा जाते हैं।

अस्वाभाविक परिवर्तन पाठकों में विरक्ति भरते हैं। इससे साहित्य की जो क्षति होती है, उसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। कहानी से पाठकों के दूर होते चले जाने ने लेखकों और आलोचकों, दोनों के कान खड़े कर दिये। कहानी पुराने ढर्रे पर वापस आ गयी।

सुरेन्द्र प्रकाश को इस वापसी का सिपहसालार कहा जा सकता है और कहानी 'बिजूका' इस ऐतिहासिक प्रस्थान का विजय चिह्न। चन्द हज़रात इक़बाल मजीद को इसका श्रेय देना चाहते हैं, जिनकी कहानी इस संग्रह में शामिल नहीं है।

प्रस्तुत संकलन उर्दू कहानी में सामाजिक यथार्थ के अनवरत प्रवाह का

मूल्यवान दस्तावेज़ है। जिसकी अनेक कहानियाँ यथास्थिति से असहमति और प्रतिरोध की तीखी आँच भी समेटे हुए हैं, जो सआदत हसन मण्टो की 'नया क़ानून' से लेकर जोगेन्द्र पाल की 'निर्धन' तथा सैयद मोहम्मद अशरफ की 'लकड़बग्घा रोया' तक फैली हुई है।

पाकिस्तानी कथाकारों की कहानियों में यह आँच अधिक तीखी और तेज़ है। दमन के ख़िलाफ़ क़लमकारों की सार्थक उपस्थिति का ये कहानियाँ उत्कृष्ट उदाहरण भले न हों पर महत्त्वपूर्ण उदाहरण अवश्य हैं। इन कहानियों ने संकलन के वज़न को बढ़ाया है और उसकी गरिमा को भी। इस बिन्दु पर यह स्पष्ट करना अनुचित नहीं होगा कि प्रस्तुत संकलन ख़ास उद्देश्य के तहत तैयार किया गया है। कारणवश चन्द बहुत ज़रूरी लगने वाले कथाकार इसमें शामिल नहीं हो पाये हैं तथा चन्द ग़ैर ज़रूरी प्रतीत होने वाले कथाकार जगह पा गये हैं।

संकलन के पहले कथाकार अली अब्बास हुसैनी न केवल प्रेमचन्द काल के कथाकार हैं बल्कि प्रेमचन्द से उनकी निकटता भी थी। दूसरे कहानीकार हयातुल्लाह अंसारी प्रेमचन्द के तुरन्त बाद उभरने वाली पीढ़ी के अति महत्त्वपूर्ण कथाकार हैं। संग्रह में सम्मिलित इनकी कहानियाँ न केवल उर्दू बल्कि भारतीय कथा साहित्य की मूल्यवान निधि हैं। बावजूद इसके ये दोनों कथाकार हिन्दी पाठकों के लिए अब भी अपरिचित हैं।

इसी प्रकार प्रेमचन्द से निकटता का सुख हासिल करने वाले विवादास्पद कहानी संग्रह 'अंगारे' के अति चर्चित कहानीकार सज्ज़ाद ज़हीर, अहमद अली और रशीद जहाँ से, जिन्होंने भारत में प्रगतिशील आन्दोलन की सुसंगत शुरुआत में ऐतिहासिक महत्त्व की भूमिका निभायी, हिन्दी पाठकों का वैसा आत्मीय परिचय नहीं है, जैसा कृश्न चन्दर, सआदत हसन मण्टो, राजिन्दर सिंह बेदी और इस्मत चुगताई वग़ैरा से है। इन कथाकारों की कहानियों ने एक नये, अधिक रचनात्मक आवेग वाले कथा संस्कार के निर्माण को गति दी। सामाजिक यथार्थ के उद्घाटन तथा प्रतिरोध की ज़रूरत को समूचे कलात्मक आग्रह के साथ स्वीकार करने वाले गयास अहमद गद्दी की अनेक कहानियाँ हिन्दी में छप चुकी हैं।

अनवर अज़ीम साठ के दशक में उभरने वाली पीढ़ी के महत्त्वपूर्ण कथाकार हैं। सोवियत दूतावास की व्यस्तताओं ने उन्हें अधिक कहानियाँ लिखने का अवसर नहीं दिया। एक कथाकार के रूप में उनकी पहचान शनैः-शनैः धुँधलाती जा रही है। उनकी कहानी 'मछली' यथार्थ का एक नया धरातल उद्घाटित करती है।

रामलाल, सुरेन्द्र प्रकाश, आबिद सुहैल, साज़िद रशीद, सलाम बिन रज़्ज़ाक़ तथा पाकिस्तानी कथाकार अनवर सज्जाद, ज़ाहिदा हिना और मोहम्मद मंशा याद की कहानियाँ हिन्दी में छपती रही हैं।

एजाज़ राही, फ़रीदा हफ़ीज़ और नईम आरवी की कहानियाँ अस्सी के दशक

में कराची से प्रकाशित कथा संकलन 'गवाही' से ली गयी हैं। किस बात की गवाही हैं ये कहानियाँ – सैनिक शासन के ज़ुल्म की मुख़ालिफ़त में दमित अवाम के पक्ष में युवा क़लमकारों की बेबाक गवाही। ऐसी ही निर्भीक गवाही है, अहमद जावेद की कहानी। युवा कथाकार मोहसिन ख़ान की कहानी 'ज़हरा' ने उर्दू व हिन्दी दोनों भाषाओं में प्रतिष्ठा अर्जित की। यह कहानी तथा अली इमाम नकवी व मुशर्रफ़ आलम ज़ौक़ी की कहानियाँ उर्दू के युवा कथाकारों में अपने समय की सच्चाइयों से रूबरू होने, उन्हें बदलने की सघन होती छटपटाहट का स्पष्ट संकेत है। साथ ही इस बात का भी कि उर्दू के युवा कथाकार यथार्थ के रूबरू होते हुए कला के ज़रूरी आग्रहों से विमुख नहीं है। क्योंकि कारगर प्रतिरोध उत्कृष्ट संरचनात्मकता में ही सम्भव है।

साम्प्रदायिक स्थिति और इस स्थिति से उपजी हिंसा के प्रति उर्दू कथाकारों का विचलित होना अति स्वाभाविक है।

सवा नैजे पे सूरज, निर्धन और डोंगड़बाड़ी के गिद्ध ऐसी ही कहानियाँ हैं लेकिन ये कहानियाँ इस हिंसा के तीन भिन्न चित्र प्रस्तुत करती हैं। जिनकी मूल प्रेरणा नफ़रत नहीं बल्कि प्रेम है। कुछ नया रच सकने की सामर्थ्य वाला प्रेम।

अन्त में मैं इस संकलन में शामिल कथाकारों, जो कालातीत हो गये, उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि देता हूँ तथा जो हमारे बीच हैं, उनके प्रति सादर आभार व्यक्त करता हूँ। और बधाई देता हूँ 'परिकल्पना' के साथियों को जिन्होंने इस संकलन को छापना स्वीकार किया।

– शकील सिद्दीक़ी

एम.आई.जी. 317, फ़ेज़ दो
टिकैत राय तालाब (एल.डी.ए.)
मोहान रोड, लखनऊ–226017

भाग एक

(भारत)

मेला घुमनी

अली अब्बास हुसैनी

कानों की सुनी नहीं कहता, आँखों की देखी कहता हूँ। किसी विदेशी घटना का बयान नहीं। अपने देश की दास्तान है। गाँव-घर की बात है। झूठ-सच का दोष जिसके सिर पर जी चाहे रखिये। मुझे कहानी कहना है और आपको सुनना।

दो भाई थे – चुन्नू-मुन्नू नाम के। कहलाते थे पठान। मगर ननिहाल जुलाहा टोली में थी तो ददिहाल सैयद बाड़े में। माँ परजा की तरह मीर साहब के घर काम करने आयी थी। उनके छोटे भाई साहब ने उससे कुछ और काम भी लिए और नतीजे में हाथ आये चुन्नू-मुन्नू। वह तो यादगारें छोड़कर जन्नत सिधारे और दण्ड भुगतना पड़ा बड़े मीर साहब को। उन्होंने बी जुलाहन को एक कच्चा मकान बख़्शा और चुन्नू-मुन्नू के पालन-पोषण के लिए कुछ रुपये दिये। वे दोनों पले और बढ़े। अच्छे हाथ-पाँव निकले। चुन्नू ज़रा गम्भीर था। होश सँभालते ही मीर साहब के कारिन्दों में नौकर हो गया और हमउम्र मीर साहब का मुसाहिब बना। मुन्ना लाउबाली था। अहीरों के साथ अखाड़ों में कुश्ती लड़ता और नाम के लिए खेती-बाड़ी करने लगा।

लेकिन दोनों जवान होते ही वासनाओं के शिकार हुए। ख़ून की गर्मियाँ विरासत और वातावरण से मिली थीं। दोनों वासना के मैदान में बड़े-बड़े मार्के सिर करने लगे। अन्ततः मीर साहब के कानों तक उनके कारनामों की दास्तानें पहुँचीं। उन्होंने चुन्नू को उसी तरह की एक लड़की से ब्याह कर बाँध दिया। मगर मुन्नू आवारा साँड़ की तरह विभिन्न खेत चरता रहा। उसकी करतूतों का शोर दूर-दूर तक पहुँचा। अन्ततः मीर साहब के पास अहीर टोली, चमार टोली, जुलाहा टोली हर दिशा और हर मुहल्ले से फ़रियाद की आवाज़ें पहुँचने लगीं। उन्होंने लाचार होकर एक दिन उसकी माँ को बुलवा भेजा। वह जब घूँघट लगाये, लजाती-सहमती उनकी बीवी के पलंग के पास ज़मीन पर आकर बैठी तो मीर साहब ने मुन्नू की शिकायत की और कहा, "इस लौंडे को रोको वरना हाथ-पाँव टूटेंगे।"

उसने आहिस्ता से कहा, "तो मैं क्या कर सकती हूँ। आप ही चुन्नू की तरह

इसे किसी नाँद से लगा दीजिये।"

मीर साहब बड़ी सोच में पड़ गये। यह नयी क़ौम का क़लमी पौधा किसी मुनासिब ही ज़मीन में लगाया जा सकता था। हर ज़मीन तो उसको क़ुबूल नहीं कर सकती। और वहाँ उसके कारनामों की शोहरत ने हर ओर शोरियत पैदा कर दी थी। वह जनानख़ाने से सोचते हुए बाहर चले आये और बराबर सोचते ही रहे।

संयोग से उन्हीं दिनों दूर के मेले से वापस होने वालों के साथ एक अनजाने क़बीले की औरत गाँव में आयी और एक दिन मीर साहब के घर नौकरी की तलाश के बहाने पहुँची। सैयदानी बी ने शक्ल-सूरत देखते ही समझ लिया कि वह उनके घर में नौकरानी की हैसियत से रहने वाली औरत नहीं। पूछने-पाछने से यह भी मालूम कर लिया कि वह गाँव के दर्ज़ी के साथ मेले से आयी है और उसके घर रुकी भी है। सैयदानी बी उस दर्ज़ी की हरकतें सुन चुकी थीं। जब से उसकी दर्ज़िन परलोक सिधारी थी उसने मेलों से नयी-नयी औरतों को लाना और गाँव की औरतों की आबादी में बढ़ोत्तरी करना अपना शगल बना लिया था। फिर सैयदानी बी के रईसाना मिज़ाज ने साफ़-साफ़ इन्कार की इजाज़त न दी। उन्होंने कहा, "अच्छा घर में रहो और काम करो। दो चार दिन में तुम्हारे लिए कोई बन्दोबस्त करूँगी।"

उधर मर्दाने में मीर साहब को उनके दोस्तों ने नवागन्तुक के बारे में ख़बर दी। एक साहब ने जो ज़रा मसखरे भी थे। उसकी तारीफ़ यूँ बयान की...

"असलियत जानने वालों का कहना है कि असल जात उसकी बनजारिन है, वह बनजारिन से ठकुराइन बनी, ठकुराइन से पठानी, पठानी से कुबड़न, फिर दर्ज़िन और अब दर्ज़िन से सैयदानी बनने के इरादे रखती है।"

एक साहब ने पूछा, "और इसके बाद?"

वह दोनों कन्धे उठाकर और दोनों हाथ फैलाकर बोले, "ख़ुदा ही जाने। शायद इसके बाद फरिश्तों से आँखें लड़ायेगी।"

मीर साहब जब घर आये और बीवी ने उस औरत के आने की ख़बर दी तो बहुत बौखलाये। वह नेकक़दम ख़ुद भी किसी काम के सिलसिले में सामने आयी। मीर साहब बल खाने लगे। नौकरी करने आयी थी, अगर इन्कार करते हैं और घर से निकाल देते हैं तो उसे गुनाह की तरफ़ धकेल देते हैं। पेट के लिए इन्सान क्या कुछ नहीं करते हैं। अगर अपने घर पनाह देते हैं तो घर ही में माशा-अल्लाह कई छोटे मीर साहब हैं। कहीं चुन्नू-मुन्नू की नस्ल और न बढ़े। उन नामों की याद से ज़ेहन में एक ख़याल पैदा हुआ और वह मुस्कुरा-मुस्कुराकर बीवी से कानाफूसी करने लगे। फिर मुन्नू की माँ को बुलवाकर उन्होंने उसे नादिरशाही हुक्म दे दिया कि "हमने मुन्नू का रिश्ता तय कर दिया। उससे कह दो कल उसका रिश्ता होगा।"

बेचारी जुलाहन की चूँ-चरा की मजाल न थी। वह "बहुत अच्छा" कहकर होने वाली बहू पर एक नज़र डालने चली गयी। वह भी रिश्ते से बिलकुल बेख़बर थी

इसीलिए बहुत खुलकर बातें हुईं। जुलाहन उसके तौर-तरीक़े से ज़्यादा सन्तुष्ट तो न हुई लेकिन वह जानती थी कि मीर साहब की ख़ुशी इसी में है। विरोध की गुंजाइश नहीं। रहने का ठिकाना उन्हीं का दिया है। चुन्नू की नौकरी उन्हीं की बख़्शी हुई है और मुन्नू की जोत में हाथ भी उन्हीं का है। फिर लालच भी था। अपनी ख़ुशी से शादी करेंगे तो सारा ख़र्च भी ख़ुद ही उठायेंगे। मतलब यह कि घर आयी और उसने रात को मुन्नू को मीर साहब का फ़ैसला सुना दिया। वह उसे दर्ज़ी के ही घर भावज की हैसियत से देखकर पसन्द कर चुका था। जल्दी से राज़ी हो गया।

दूसरे दिन मौलवी साहब बुलवाये गये। मुन्नू को नयी धोती, नया कुर्ता मीर साहब ने पहनवाया। दुल्हन को शाहाना जोड़ा और कुछ चाँदी के जेवर उनकी बीवी ने पहनाये और निकाह हो गया। फिर मीर साहब और उनकी बीवी ने मुँह दिखायी के नाम से दस रुपये मुन्नू की माँ को दिये और दुल्हन को उसके घर विदा कर दिया। दिन बीतते गये, दिन बीतते गये, महीने हुए। एक साल बीतने को आया मगर मुन्नू और उसकी दुल्हन की कोई शिकायत सुनने में न आयी। मीर साहब को तसल्ली-सी हो चली कि नुस्ख़ा कारगर हुआ और वासना के दो बीमार एक ही नुस्ख़े में ठीक हो गये – कि तभी एक दिन बी जुलाहन रोती-बिसूरती पहुँची। मालूम हुआ मुन्नू ने मारा है। पूछताछ से पता चला कि छह महीने से उसे नशे का शौक़ है और जिस तरह वह नशा बीवी पर उतारता है उसी तरह ग़ुस्सा माँ पर। कल रात में तो उसने मारा ही नहीं बल्कि उसे कोठरी में बिना अन्न-पानी के बन्द रखा। अब छूटी है तो फ़रियाद लेकर आयी है। मीर साहब के इस सवाल पर कि पहले ही क्यों न बताया कि कोई रोकथाम करने से शायद बुरी आदत न पड़ने पाती। जुलाहन सिवाय ममता के और क्या जवाब दे सकती थी। उन्होंने हुक्म दिया, "आज से यहीं रहो, घर जाने की ज़रूरत नहीं।"

मगर मीर साहब को मुन्नू की फ़िक्र हो गयी। ख़ून गन्दी नाली में बहकर न तो बदल जाता है और न फटकर सफ़ेद हो जाता है इसीलिए उसे बुला भेजा और हद से ज़्यादा नाराज़ हुए और यहाँ तक कह दिया कि "अगर फिर सुना कि तूने ताड़ी पी है तो पेड़ से बँधवाकर इतना पिटवाऊँगा कि चमड़ी उधड़ जायेगी।" साथ ही पासी के पास ख़ास कारिन्दा भेजकर कहला भेजा कि "अब अगर मुन्नू को एक क़तरा भी पीने को मिला तो ताड़ीख़ाना फिंकवा दूँगा।" अर्थात् मुन्नू को पूरी तौर पर बन्दिश कर दी गयी – और ताड़ी बन्द हो गयी – नशे का इंजेक्शन प्रतिबन्धित क़रार दे दिया गया।

मगर जोंक अपना काम करती रही – और ताड़ी बन्द होने के छह माह बाद वह आँखें माँगने लगा, बिल्कुल जर्द सूखा हुआ आम बन गया और खाँसी-बुखार का शिकार हुआ। जब मीर साहब को ख़बर मिली कि मिज़ाजपुर्सी के बहाने यारों की बैठकें होने लगीं – और मुन्नू की बहू ने नयनों के बाण चलाने शुरू कर दिये

तो उन्होंने बी जुलाहन को कुछ रुपए देकर घर भेजा और बेटे के इलाज और बहू की निगरानी की ताकीद कर दी।

लेकिन वह निगरानी वहाँ इस प्रकार बुरी लगी जिस तरह चोरों को पुलिस की निगरानी खटकती है। दो-चार ही दिन चुप रहने के बाद ज़ुबान की छुरी तेज़ होने लगी। सास भला किससे कम थी, उसने बात-दर-बात जवाब देना शुरू कर दिया। एक दिन तो नौबत हाथापाई तक पहुँची। जवानी और बुढ़ापे का मुक़ाबला क्या था। बहू सास के सीने पर सवार हो गयी। मुन्नू पलंग से झपटकर उठा और लड़खड़ाता हुआ माँ को बचाने पहुँचा। बीवी ने सीने पर वह लात मारी कि वहीं हाय करके ढेर हो गया। दोनों लड़ना भूलकर उसकी तीमारदारी में लगी रहीं लेकिन बलगम के साथ थोड़ा-थोड़ा ख़ून भी आने लगा और वह एक सप्ताह के बाद घर से उठकर क़ब्र में चला गया।

अब रोना-धोना शुरू हुआ। बैन होने लगा और सास-बहू में इसी पर मुक़ाबला ठना कि देखें शोक कौन ज़्यादा मनाता है? पाँच रोज़ तो उस तूफ़ान में वह बाढ़ आयी कि मीर साहब को ख़ुद आकर समझाना पड़ा। लेकिन धीरे-धीरे ग़म का सैलाब घटना शुरू हुआ और सास-बहू को एक-दूसरे से छुटकारा पाने और रिश्ता टूट जाने की अवचेतन तौर पर ख़ुशी होने लगी कि उसी समय मुन्नू की बीवी समय से पूर्व मरा हुआ बच्चा जनकर देवर के पास चली गयी। बी जुलाहन को चार छोटे-छोटे पोतियों को सँभालना पड़ा और मुन्नू की बेवा को निकाह के हुक्म भूल जाने के मौक़े मिलने लगे।

ऐसे ही एक मौक़े से चुन्नू ग़म भुलाने और जी बहलाने देवरानी के पास आ बैठा। खान-पान हुआ और बातों का सिलसिला छिड़ गया। दर्द-ए-दिल बयान हुए। तन्हाइयों का ज़िक्र छिड़ा और उसको दूर करने के उपायों पर ग़ौर हुआ। अन्त में एक रात इम्तहान की तय हुई। जब उसकी सुबह सुर्ख़रूई से हुई तो चुन्नू ने माँ से इसरार किया कि उस रिश्ते को निकाह के जरिये पक्का बना दें।

वह बेटे को लेकर मौलवी साहब के पास पहुँची। वह देहात में रहने की वजह से "शराअ" की किताबें अब तक न भूले थे। उन्होंने इम्तहान और उसके नतीजों का पता चलते ही कान पर हाथ रखा और निकाह के नामंज़ूर होने का फ़तवा फ़ौरन दे दिया। बड़ी बी देर तक एक वकील की तरह बहस करती रहीं पर जब मौलवी साहब अपने फ़ैसले से न टले तो जलकर बेटे से बोलीं – "चल, घर चल! माँग में मेरे सामने सिन्दूर भर देना। वह अब तेरी बीवी है। मैं ख़ुश, मेरा ख़ुदा ख़ुश।" – चून्नु ने माँ का कहना किया। माँग में सिन्दूर कई चुटकी डाल दिया। वह अपने चारों बच्चों समेत उसी घर में चला आया।

एक महीना बीता, दो महीने, तीन महीने बीते, मगर चौथे महीने चुन्नू की कमर में एक उचक आ गयी। अकड़ना, बोलना, तनकर चलना छूट गया। वह अब ज़रा

झुककर चलने लगा। हमसिन मीर साहब में से एक साहब हकीम थे। उनको दिखाया। उन्होंने माजून और गोलियाँ खिलानी शुरू की। दवाओं के ज़ोर पर कुछ दिन और चला। बदक़िस्मती से हकीम साहब एक रियासत में नौकर होकर चले गये। बस चुन्नू की कमर कच्ची लकड़ी की तरह बोझ पड़ने से झुक गयी। साथियों ने अफ़ीम की सलाह दी। शुरू में तो काफ़ी सुरूर आया मगर अफ़ीम की ख़ुश्की ने दबोचा और बी चिनियाँ बेग (अफ़ीम) माँगती है – दूध, मक्खन, घी, मलाई। और ये चीज़ें चार रुपये की मिलाई में कहाँ नसीब हों। वह लगा खीसें निकालकर हाथ फैलाने और डपटें खाने। मगर इस पर भी जो कुछ मिलता मन को न भाता और अफ़ीम की लत पड़ चुकी थी वह छूटी नहीं। उसने आहिस्ता-आहिस्ता दिल-ओ-जिगर को छलनी किया और चुन्नू ख़ाँ को दिल के दौरे पड़ने लगे और सूखी खाँसी आने लगी।

एक दिन जनवरी के महीने में जब बूँदा-बाँदी हो रही थी और ओले पड़ने ही वाले थे कि चुन्नु को मिर्गी आ गयी। ड्योढ़ी पर किसी काम के सिलसिले में हाज़िर था। दुलिया बरतन छोड़-छोड़कर घर की तरफ़ भागा। रास्ते में ही कौंदा लपका और जान पड़ा उसी पर बिजली गिरी। मुँह के बल ज़मीन पर आ रहा। सँभलकर उठा मगर दिल का यह हाल था कि मुँह से निकला पड़ता था। लगातार "ओ माँ, ओ माँ" चीख़ता हुआ दौड़ा। रास्ता सुझाई न देता था। दम घुटता जा रहा था। मगर पाँव पहिये की तरह लुढ़क रहे थे। घर की दहलीज़ में क़दम रखा ही था कि दूसरा कड़का हुआ। वह ठोकर खाता, सँभलता, फिसलता, लड़खड़ाता दालान वाले पलंग पर जाकर बाज़ के पंजे से छूटे हुए कबूतर की तरह भद से गिर पड़ा और इसी तरह उसका हर अंग फड़कने लगा। बीवी "अरे क्या हो गया लोगो" कहती हुई दौड़ी। चुन्नू ने बायाँ पल्लू दोनों हाथों से दबाते हुए कहा, "मेरे बाद तुमको कौन ख़ुश रखेगा?" और हमेशा के लिए ख़ामोश हो गया।

चून्नु के फ़ातिहा के तीसरे दिन उसकी ख़ुश न होने वाली विधवा गाँव के एक जवान किसान के साथ कुम्भ का मेला घूमने इलाहाबाद चली गयी।

आख़िरी कोशिश

हयातउल्लाह अंसारी

टिकट बाबू ने गेट पर घसीटे को रोककर कहा – 'टिकट'

घसीटे ने घिघियाकर बाबू की तरफ़ देखा। उन्होंने माँ की गाली देकर उसे फाटक से बाहर धकेल दिया। ऐसे भिखमंगों के साथ और किया ही क्या जा सकता है।

घसीटे ने स्टेशन से बाहर निकलकर इत्मीनान से साँस ली कि ख़ुदा–ख़ुदा करके सफ़र ख़त्म हो गया। रास्ते भर बाबुओं की गालियाँ सुनी, ठोकरें सहीं, बीसों बार रेल से उतारा गया। एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन तक पैदल भी चलना पड़ा। एक दिन के सफ़र में बाइस दिन लगे, मगर इन बातों से क्या? आख़िर अपने वतन तो पहुँच ही गये।

वतन...? पचीस बरस के बाद वतन। हाँ पचीस ही बरस तो हुए। जब कलकत्ता पहुँचा था तो काली मिल खुली थी और अब लोग कहते हैं इसको खुले पचीस बरस से ज़्यादा हो गये। आ गये वतन – हाँ अब फ़ासला ही क्या है, अगर याद ग़लती नहीं कर रही है तो दो कोस का कच्चा रास्ता है और दो घण्टे की बात।

अपना घर...? अपने लोग। वो नेमतें जिनका पचीस साल से मज़ा नहीं चखा। कलकत्ता में घर के नाम पर सड़क थी या दुकानों के तख़्ते या फिर शहर से मीलों दूर ठेकेदारों की झोंपड़ियाँ। जिसकी ज़मीन पर इतने आदमी होते थे कि करवट लेने भर की भी जगह नहीं मिलती... रहे अपने लोग, सो वहाँ अपना कौन था।

सब गरज के बन्दे...बेईमान, हरामज़ादे...एक वह स्साला था भोंदा और दूसरा था भूरा और वह डाइन मंगती तो खोंचे की सारी आमदनी खा गयी। वो मिलों के मज़दूर...भाई है, भाई है, मगर जब मज़दूरी का मौक़ा आया तो हर एक को अपनी–अपनी पड़ गयी। जहाँ जाओ, कोई दूसरा मज़दूर सिफ़ारिश के लिए मौजूद। यहाँ सिफ़ारिश करने वाला कौन था?

जब जेलर ने आकर मुझे हुक्म सुनाया है कि "तेरी मियाद ख़त्म" तो आँखों से न जाने क्यों आँसू निकल आये। बस एक दम से घर की याद आ गयी... घर –

क्या चीज़ है।

घसीटे को यक़ीन था कि पचीस साल की थकी-माँदी आत्मा को घर पहुँचते ही सुख मिल जायेगा और घर अब क़रीब था। स्टेशन से कुछ दूर आकर घसीटे भौचक्का रह गया... यहाँ की दुनिया ही अब और थी। खेतों और बाग़ों की जगह एक शक्कर मिल खड़ी धुआँ उड़ा रही थी, जिसकी इमारतें यहाँ से वहाँ तक खड़ी नज़र आ रही हैं। कच्ची सड़क की जगह अब पक्की सड़क है और इसके बराबर-बराबर मिल तक रेल की पटरियाँ बिछी हुई थीं। सड़क ख़ूब आबाद थी। मज़दूरों के बहुत से छोटे-छोटे समूह आ जा रहे थे। इतने में कई मोटरें फर्राटे भरती निकल गयीं। अब तो मालगाड़ी छुक-छुक करती जा रही थी। गरज कि सारा हुलिया इतना बदल गया था कि रास्ता पहचानना बस से बाहर था। लेकिन फिर भी घसीटे का मन इस बात के लिए राज़ी नहीं हुआ कि मैं अपने ही स्टेशन पर उतरकर अपने घर का रास्ता पूछूँ। वह आप ही एक तरफ़ मुड़ गया। थोड़ी दूर चलने के बाद जब शक्कर मिल की हदें ख़त्म होने लगीं और ऊख के खेतों व बाग़ों का सिलसिला आ गया, तब उसके दिल ने धड़ककर कहा, मेरा रास्ता ठीक है।

डेढ़ कोस चलने के बाद अपने क़स्बे के तार दिखायी देने लगे – ज़रा और चलकर शाही ज़माने की एक टूटी हुई मस्जिद मिली जिसका एक मीनारा तो नाचती हुए बेलों से मढ़ा और जंगली कबूतरों से आबाद था और दूसरा लगभग पूरा का पूरा ज़मीन पर काई की मख़मली चादर ओढ़े था। उस पर नज़र पड़ना था कि बचपन की बहुत-सी छोटी-छोटी बहारें, जो कब की भूल चुकी थीं, पचीस बरसों के भारी बोझ के नीचे से एकदम फड़फड़ाकर तड़पकर निकल आयीं और कमसिन देहाती छोकरियों की तरह सामने नाचने कूदने लगीं। वो ज़माने आँखों के सामने फिर गये, जब इसी मस्जिद के गिर्द बरसाती पानी भर जाता था और गाँव भर के लौंडे नंगे-नंगे नहाते थे, उस वक़्त भी यह मीनारा खड़ा था और लेटा मीनारा यों ही लेटा था।

आगे चलकर बरगद का दरख़्त मिला। यह वह जगह थी जहाँ हीरा-बफाती, पुत्तू, न्योला, सूरज, बिल्ली और वह कनुवा स्साला (क्या नाम था उसका और कौन-कौन) सारी की सारी टोली जमा होती थी और दिन भर सियारमार डण्डा उड़ा करता था। वह गढ़ैया के उस पार अमरूद का बाग़ था। उस पर कभी-कभी लौंडों का डाका पड़ा करता था। लौंडे घुस गये और चुपके-चुपके कच्चे-पक्के अमरूद नोचकर जेबों में भरने लगे और रखवाला माँ-बहन की सुनाता दौड़ा और इधर आनन-फानन में सब हवा हो गये। एक बार ऐसा हुआ कि लौंडे अमरूद खसोट रहे थे तभी उधर से एक फ़कीरनी आ निकली जो मिनमिनाकर गा रही थी – कुछ लौंडों को सूझी शरारत। वह चुड़ैल-चुड़ैल चिल्लाकर भागे। फिर क्या था, उनको देखकर सब सिर पर पाँव रखकर भागे। बुलाकी रह गया... अरे डर के मारे उसकी जो घिग्घी बँधी है और वह जो लगा है फ़कीरनी के सामने हाथ जोड़ने!

घसीटे ये सब याद करके बेइख़्तियार हँस पड़ा।

सूरज दिन भर का सफ़र पूरा करके क्षितिज के क़रीब पहुँच चुका था। धूप में नरमी आ गयी थी और हवा में ख़ुशगवार खुन्की। रास्ते के एक तरफ़ हरे-भरे पतावर के झुण्ड थे, जिनके बीच-बीच से बूढ़ी सरकिया। सिर निकाले जवानों की तरह खड़े होने की कोशिश कर रही थीं। दूसरी तरफ़ आसमान के किनारों तक खेतों और अमरूद के बाग़ों का सिलसिला चला गया था। बसेरा लेने वाली मैनाओं और कौवों का शोर, खेतों से वापस आने वाले बैलों की घण्टिया, हलवाहों की हट-हट, बाग़ों के रखवालों की हूँ-हूँ। इन सबसे हवा इस तरह बसी हुई थी, जैसे पतावरों की मीठी-मीठी भीनी-भीनी ख़ुशबू से। मालूम होता था कि सारी दुनिया एक बहुत बड़ा घर है, जिसके रहने वाले यानी खेत, दरख़्त, हवा, आने वाली सदाएँ और ख़ुशबू क़रीबी रिश्तेदार हैं और ख़ुशी से मिलजुलकर रहते हैं।

किसानों का एक जत्था खेतों से वापस आता हुआ मिला – आगे-आगे एक लड़की फटी ओढ़नी सिर से लपेटे गाती चली जा रही थी। उसके पीछे हलों को कन्धे पर रखे... बैलों को हँकाते छह-सात मर्द थे। इन लोगों ने फटेहाल घसीटे की तरफ़ कोई ध्यान नहीं दिया मगर जैसे ही घसीटे की उनमें से एक आदमी से निगाह मिली, घसीटे बेइख़्तियार मुस्कुरा दिया। जैसे कोई दूर-दराज सफ़र से आने वाला अपने किसी जानने वाले को देखकर मुस्कुरा देता है।

उधर सूरज क्षितिज के उस पार छिपा, इधर क़स्बा आ गया। इसका निशान एक अकेला खड़ा ताड़ था... जिससे कुछ दूर हटकर आम के दो-चार बूढ़े दरख़्त शाम का धुँधलका ओढ़े किसी याद में खोये हुए खड़े थे। इस मुकाम से एक बहुत रूमानी भरी याद अँगड़ाई लेकर उठी और घसीटे के पाँव थाम लिये। वह बिला इरादा खड़ा हो गया... वह है सामने, वह झाड़ी और वह गढ़ैयाँ यहीं दुलारी से छिप-छिपकर मिलते थे। वह भरे जिस्म की हिना जैसी दुलारी, जिसके न रूठने का ठीक, न मनाने का। जब वहाँ बैठकर दुलारी का इन्तज़ार किया करता था तो दिल में क्या-क्या नक़्शे बनते थे। शहर जाऊँगा – नौकरी करूँगा। दोनों वक़्त चने चबाऊँगा मगर रुपए जोड़-जोड़कर रखूँगा। फिर जब ढाई सौ रुपये हो जायेंगे तो वापस आऊँगा और हीरा लाल की तरह एक दम से एक गोई (जोड़ी) बैल लेकर खेती शुरू कर दूँगा। उस वक़्त दुलारी मेरी कितनी ख़ुशामदें करेगी – मैं तो कम से कम दो महीने तक उससे बात भी नहीं करूँगा। बस इस जगह नहाने आ जाया करूँगा। वह आयेगी ज़रूर और वहाँ दरख़्त की जड़ पर बैठकर गढ़ैया में ढेले फेंकती गुनगुनायेगी। मेरी तरफ़ कनखियों से देख-देखकर हँसेगी... बड़ी चुड़ैल थी। न जाने अब कहाँ होगी। घसीटे दरख़्तों के अन्दर घुसकर देखने लगा कि पुरानी गढ़ैया अब तक है... हाँ है तो... अब वह सामने जमुनी का दरख़्त भी है जिसकी जड़ों पर वह बैठा करती थी... क्या ज़माना था? घसीटे दरख़्तों से निकलकर सड़क पर आ गया... और क़स्बे के अन्दर

की तरफ़ चला... मगर अब उसकी चाल धीमी थी। वह उन यादों में ऐसा डूबा था कि आँखें देखना और कान सुनना भूल गये थे। एकाएकी एक मोड़ पर चौंका। जैसे कोई भूली-बिसरी बात एकदम याद आ गयी हो... यही जगह तो है। हाँ यहीं तो अब्बा ने दो चाँटे मारकर मेरे गले से शब्बन मियाँ की कमीज़ का बटन नोच लिया था... इधर शब्बन मियाँ घर में आये, उन्होंने डाँट लगायी –

घसीटे-घसीटे – किधर मर गया?

टाँगें उठाकर दोनों बूट मेरी तरफ़ बढ़ा दिये। इनको उतारो, फिर जुराबें उतारो, फिर उँगलियों को तौलिये से पोछो, फिर जूती लाकर पाँव के नीचे धरो – शब्बन मियाँ की चीज़ें देखकर कितना जी चाहता था कि इनमें से दो-एक तो हमारे पास भी होतीं। हमारे पास क्या था। एक फटा कुर्ता या पाजामा पहने रहते थे। जब वह बिल्कुल चीथड़े हो जाता तो बेगम साहिबा फिर किसी का पुराना-धुराना जोड़ा दे देतीं।

"फिर फाड़ लाया... इसके बदन पर तो काँटे हैं – यह खरोंच कहाँ से लगायी, कमीने को कभी तमीज़ नहीं आयेगी।"

एक बार शब्बन मियाँ के यहाँ गया हूँ तो देखता क्या हूँ कि कमीज़ की कफ़ के दो बटन पलंग पर पड़े चम-चम कर रहे हैं। उस वक़्त कुछ ऐसे प्यारे मालूम हुए कि मैंने चुपके से एक को मुट्ठी में दबा लिया। थोड़ी देर में शिब्बन मियाँ चिल्लाने लगे –

"एक बटन क्या हुआ? कौन ले गया?"

मैंने जी में कहा, मैं लाया हूँ – कहो क्या कहते हो?" बटन तो न दूँगा चाहे कुछ करो – बल्कि अब तो तुम्हारे घर का काम भी नहीं करूँगा – सबकी आँख बचाकर बाहर चला आया।

मेरी कमीज़ में आस्तीन कहाँ थी। मैंने वह बटन गले में इस तरह लगा लिया कि बटन और ज़ंजीर दोनों बाहर चम-चम करें और फिर दिन भर भूखा-प्यासा खेतों-खेतों घूमने लगा। शाम गये तक घूमता रहा – जब रात आ गयी तब फ़िक्र हुई कि अब कहाँ जाऊँ – गाँव में इधर-उधर देखता फिरता था कि अब्बा ने जो मेरी खोज में थे, मुझे देख लिया।

"तू शब्बन मियाँ का बटन लाया है – सोने का बटन?"

दो थप्पड़ पड़े थे कि मैं भागा – सोने का बटन!

कलकत्ते में चार-चार पैसे पत्ता मिलता है, जितने चाहो उतने ले लो।

छप्परों और नीची-नीची कच्ची दीवारों पर शाम की साँवली रंगत छा गयी। फ़िज़ा में हल्की-हल्की खुन्की थी, जिससे दिल को अजीब सुकून मिलता था। घरों में चूल्हे जल गये थे। जिसका धुआँ और सुर्ख़ी छप्परों से निकल-निकलकर बिला किसी घबड़ाहट के ऊपर चढ़ रहे थे – पुकारने और ज़ोर-ज़ोर से बातें करने की

आवाज़ें आ रही थीं, जो अपने साथ दिन भर की थकान को लिये भागे जा रही थी – दरवाज़े पर लड़के-लड़कियाँ ऊँचा-नीचा खेल रहे थे और बेहद शोर मचा रहे थे जैसे बसेरा लेते वक़्त जंगली मैनाएँ। एक घोड़ा दिन भर दौड़-धूप करके अभी-अभी थान पर आया था और ख़ुशी से हिनहिना रहा था। आख़िर मस्जिद आ गयी – उसके बग़ल से घसीटे का रास्ता जाता था। पहली तारीख़ों का चाँद मस्जिद के एक मीनारे से लगा हुआ चमक रहा था। उसे देखकर घसीटे को एक बारात याद आ गयी जो बाजे-गाजे लिये मशालें जलाये एक कमज़ोर-सी नाव पर चढ़ी गंगा की ख़ूनी लहरों को पार करके किनारे उतरी थी।

बगिया भी आ गयी – इसके पार आबादी से ज़रा निकलकर घर था, घसीटे का दिल उम्मीद और डर से धड़कने लगा और साथ-साथ ख़ुशी के मारे आँसू निकल पड़े। आँखों के सामने घर की तस्वीर फिर गयी। बड़ा साफ़ लीपा-पोता छप्पर दो बड़ी-बड़ी अनाज की कठियाँ, रात को जाने कब से माँ का उठना और घड़-घड़ चक्की पीसना, दिन का कामकाज करके घर को आओ और लाख चिल्लाओ – अम्माँ रोटी दे – अम्माँ रोटी दे और चिल्लाते-चिल्लाते थक जाओ। रो-धोकर कुछ करो। अम्माँ उसी तरह पीसे चली जाती, जब उसका जी चाहता तो उठकर चूल्हा जलाती। जुमिया और शबरातन – उफ़... दोनों को अम्माँ कितना मारती थी। थीं भी दोनों बड़ी हरामज़ादन। कभी जो काम करतीं – इधर अब्बा कुल्हाड़ी कन्धे पर रखे बकरियाँ हाँकता घर में घुसता और उधर चिल्लाने लगता, फिर अम्माँ पर ग़ुस्सा आता और झोंटे पकड़कर धाँय-धमाक – वाह री अम्माँ।

एक जो ज़रा किसी को जो ताप-जूरी आयी कि उसके जी को लग गयी, फिर तो यह कि "अरे इधर आ, तेरा सिर दाब दूँ।"

"इधर आ नज़र-गजर उतार दूँ।"

"चाँदनी में बैठकर न खा।"

"दोनों बखत मिले को है चिल्ला मत।"

हर वक़्त टोटका उतार रही है। आने-जाने वाले से पूछ-पूछकर दवा पिला रही है। खाने की कितनी शौक़ीन थी। कच्चे-पक्के, पके-गले-सड़े-खट्टे-मीठे जैसे भी आम मिल जायें, बड़े मज़े से बैठकर सब खा जाती, कच्चे-पके अमरूद, झरबेरियाँ और जाने क्या-क्या, सब शौक़ से खाती थी मगर बच्चों का खाना उसे बुरा नहीं लगता था। वह क़िस्सा जो हुआ था, माँ को कहीं से गुड़ की भेली मिल गयी। उसने ताक पर रख दी। मैं उधर से आऊँ, चुराकर एक टुकड़ा मुँह में रख लूँ, इधर से आऊँ, और एक टुकड़ा चुराकर मुँह में रख लूँ। शाम को अब्बा ने जो देखा, ज़रा-सा गुड़ था, वह लगे डकारने।

"कौन खा गया?"

अम्माँ समझ गयी, सहूलियत से बोली,

"चूहा खा गया होगा...?"

"तू खा गयी है तू... क्या चूहे-बिल्ली गुड़ खाते हैं?"

मैंने जी में कहा कि देखो जब शहर से कमाकर लौटूँगा तो गुड़ का एक पूरा चक्का भी लाऊँगा, तब अब्बा चटखारे मारेंगे –

"वाह क्या मज़ा है?"

जुमिया और शबरातन आँखें फैलाकर-फैलाकर तकेंगी। मुँह से पानी छूटेगा।

घर में अब कौन होगा, अब्बा-अम्माँ भला अब क्या ज़िन्दा होंगे। सत्तर-अस्सी बरस कौन जीता है। जुमिया और शबरातन कहीं ब्याह दी गयी होंगी और बकरियाँ – कल्लू पता नहीं, है या मर-खप गयी, ज़िन्दा होगी तो पहचानेगी। जब भूखी होती थी तो मेरी तरफ़ देखकर कैसा में-में करती थी।

सामने घर है कि नहीं, बगिया से बाहर आते ही घसीटे के दिल ने बड़ी बेक़रारी से पूछा – वह जगह थी – वह-हाँ, वहाँ कुछ है तो...

शुरू तारीख़ों की ओस भरी चाँदनी में अँधेरे-उजाले का एक ढेर-सा नज़र आया। एक दीवार थी, जिसका आधा हिस्सा तो टीले की तरह ढेर था। आधा जो खड़ा था उस पर एक टूटा-फूटा छप्पर था। जिसका भूसा धुआँ खाये हुए मकड़ी के जाले की तरह हर तरफ़ झूल रहा था – छप्पर के सामने की तरफ़ चौहद्दी की जगह, झाँकड़ों-ताड़ के पत्तों और किसी सूखी बेल का मिला जुला एक अड़म था, जिसके पतले-पतले, टेढ़े-मेढ़े साये केचुओं और कनखजूरों की तरह ज़मीन पर बजबजा रहे थे। घर अपने सन्नाटे में क़ब्रिस्तान था। अन्दर न चूल्हा जल रहा था, न चिराग़। घर की एक-एक चीज़ पुकार-पुकारकर कह रही थी कि हम ख़ुद टुकड़े-टुकड़े को मोहताज हैं – तुमको क्या खिलायेंगे। यही घर था, जहाँ मुसाफ़िर की थकी-माँदी आत्मा को चैन की तलाश थी, घसीटे की उम्मीदों का चमन, जिसे वह बाईस रोज़ से पचीस बरसों के कुचले हुए अरमानों के ख़ून से सींच रहा था, एकबारगी मुरझा गया – उसका दिल बार-बार शक दिलाता कि यह घर ख़ाली होगा, वो लोग कहीं और उठ गये होंगे और बार-बार बकरियों के मूत की खराइन्द और नाबदान की सड़ाँध जो बोझल हवा से दबी हुई घर के गिर्द मुकीद (क़ैद) थी, इन बालू के घरौंदों को ढा देती। घसीटे आधे घण्टे तक जहाँ का तहाँ खड़ा रहा, उसमें इतनी हिम्मत न हुई कि अन्दर जाता, किसी को आवाज़ देता।

कहीं दूर एक पिल्ला रो रहा था। रफ़्ता-रफ़्ता उसकी आवाज़ से एक ढाँढ़स बँधा और वह खखारा। जवाब न मिलने पर वह फिर खखारा। बार-बार खखारने पर कोई दबे पाँव बाहर आया और राजदारी के अन्दाज़ में बोला – "अन्दर चले आओ न।"

इस धोखे से घसीटे की हिम्मत और सिकुड़ गयी। अब के वह सहारा लेने के

लिए सचमुच खखारा, फिर कहने लगा।

"कौन फ़कीरा?"

"हाँ" – फ़कीरा कुछ चिढ़कर बोला।

"तुम कौन हो?"

"ज़रा इधर आओ।"

फ़कीरा निकलकर क़रीब आया और बोला –

"तुम कौन हो, यहाँ क्या कर रहे हो?"

"ज़रा सुनो तो भाई। तुम फ़कीरा ही हो न।"

"हाँ... कह तो दिया।"

"तुम यहीं रहते हो?"

घसीटे की आवाज़ में इतना प्यार था कि फ़कीरा का गुस्सा तो ग़ायब हो गया मगर उसकी समझ में न आया कि यह कौन शख़्स है और क्या चाहता है। दूसरी तरफ़ घसीटे की समझ में यह नहीं आ रहा था कि अपने घर पहुँचकर उसे यह काम भी करना होगा, आख़िर दिल कड़ा करके बोला –

"मैं बाइस रोज़ का सफ़र करके आ रहा हूँ... तुम्हारे पास।"

अब भी फ़कीरा कुछ न समझा, मगर बिला इरादा उसकी ज़बान से निकल गया –

"तो अन्दर आओ न।"

अन्दर आकर घसीटे की हिम्मत बँधी और साथ ही राहत पाने की उम्मीद भी बिला वजह हरियाने लगी। फ़कीरा ने दियासलाई खींचकर चिराग़ जलाया। छप्पर के नीचे छह-सात बकरियाँ और बकरियों के बच्चे बँधे हुए थे। इन्हीं से शायद घराने की रोटी चलती थी। ज़रा इधर हटकर ज़मीन पर एक छिदा टाट बिछा था, जिस पर एक मैली-सी चीज़, जो शायद कभी रजाई रही होगी, मगर अब चीथड़ा होकर गुमनाम हो गयी थी, ओढ़ने के लिए पड़ी थी, घसीटे ने टाट पर बैठकर कँपकँपाते चिराग़ की धुँधली रोशनी में फ़कीरा को ग़ौर से देखा। दुबली-पतली आँखें अन्दर को धँसी हुई और बेनूर चेहरे की खाल चमरौधे पुराने देहाती जूते की तरह खुदरी और उस पर दोनों तरफ़ दो लम्बी-लम्बी झुर्रियाँ, जैसे कच्ची दीवार पर बरखा में पानी बहने की लकीरें। बाल खिचड़ी जिनमें सफ़ेदी। ज़्यादा यह था घसीटे का जवान भाई फ़कीरा – मुसीबतजदा घसीटे देखने में उससे ज़्यादा जवान था। घसीटे उसकी तरफ़ प्यार भरी नज़रों से देखकर बोला –

"भय्या तुम जवानी ही में बुढ़ा गये।"

फ़कीरा ने ठण्डी साँस भरते हुए जवाब दिया –

"जवानी तो खिलायी-पिलायी से ठहरती है।"

"सच है भय्या, भूरा, जुमिया और शबरातन कहाँ हैं," अब फ़कीरा खटका –

"पहले तुम बताओ – कौन हो तुम – घसीटे तो नहीं हो।"

"हम घसीटे हैं और कौन? बाईस दिन ठोकरें खाकर आ रहा हूँ।" – भय्या कहकर फ़कीरा उससे लिपट गया। घसीटे ने भी भींचकर लिपटा लिया। जैसे कोई सोता फूट जाये। उसके आँसू धल-धल बहने लगे। फ़कीरा भी रोया। थोड़ी देर तक दोनों रोते रहे फिर फ़कीरा ने अपने आँसू पोंछे और घसीटे को ढाँढ़स दिलायी।

"अब न रो... यह तो ख़ुशी की बात है कि तुम घर आ गये... अम्माँ को देखोगे?"

घसीटे की आँसुओं से भरी आँखें फैल गयीं।

"अम्माँ – अम्माँ है क्या?"

"हाँ।"

छप्पर के कोने में चीथड़ों का ढेर लगा था उसकी तरफ़ उँगली उठाकर बोला –

"वह पड़ी है।"

घसीटे मोहब्बत और कौतूहल के जोश में उधर भागा। वहाँ चीथड़ों के अम्बार में दफ़न एक इन्सानी पंजर पड़ा था जिस पर मुरझाई हुई बदरंग गन्दी खाल ढीले कपड़ों की तरह झूल रही थी। सिर के बाल बकरी की दुम के नीचे के बालों की तरह, मैले-कुचैले लिथड़े हुए नमदे की तरह बेरंग आँखें वीरान हल्क़ों में डगर-डगर कर रही थीं। उनके डले कीचड़ और आँसुओं से लथपथ थे – गाल की जगह पतली खाल रह गयी थी, जो दाँतों के ग़ायब होने से कई तहों में होकर जबड़ों के नीचे आ गयी थी।

गाल के ऊपर की हड्डियों पर कुछ फूलापन-सा था – वह गोश्त हो या वर्म – जैसे रोते-रोते सूजन आ गयी हो – गरदन इतनी सूखी हुई थी कि एक-एक हड्डी नज़र आ रही थी – नंगे सीने पर छातियाँ लटक रही थीं, जैसे पहनी हुई उल्टी बण्डी की ख़ाली जेबें। चेहरे की एक-एक झुर्री सख़्त मुसीबतों की मोहर थी। जिसे देखकर बेइख़्तियार दहाड़ें मार-मारकर रोने को जी चाहता था।

फ़कीरा चिराग़ लेकर आया, रोशनी देखते ही बुढ़िया कुछ बकने लगी और दाहिने हाथ से झूठ-मूठ का निवाला बनाकर अपने मुँह की तरफ़ बार-बार ले जा रही थी। जैसे गूँगा खाना माँगे – बुढ़िया ना मालूम क्या कह रही थी – बस इतना समझ में आ रहा था –

"बाब...बाब...बाब..."

उसकी आवाज़ें वीरानी के मारे ऐसे गाँव की याद दिला रही थीं, जहाँ के रहने वाले आग से जल मरे हों और अब उसके खण्डहरों में दिन को बन्दर चीख़ते और रात को सियार रोते हों। फ़कीरा ने घसीटे की तरफ़ देखकर कहा –

"जब भी इसके पास आओ, यह इसी तरह खाना माँगने लगती है – चाहे

जितना खिलाओ इसका जी नहीं भरता, मुँह से निकल-निकल पड़ता है... फिर भी माँगे चली जाती है!"

आख़िर घसीटे बड़ी कोशिश से बोला –

"अम्माँ..."

आवाज़ बता रही थी, उसका दिल अन्दर ही अन्दर कराह रहा है।

"फ़कीरा!"

"वह सुनती है, न समझती है, बस खाना माँगती रहती है।"

बुढ़िया का पोपला मुँह धौंकनी की तरह चल रहा था –

"बाब-बाब" की आवाज़ें निकल रही थीं और उँगलियों का बना हुआ निवाला बार-बार मुँह की तरफ़ जा रहा था। मगर इन हरकतों के बावजूद यक़ीन न आता था कि यह बंजर ज़िन्दा है।

यह वही चौड़ी-चकली तन्दुरुस्त अम्माँ थी जो मुँह अँधेरे से दोपहर तक मुसलसल चक्की पीसा करती थी – जिसे दिन-रात यही धुन सवार रहती थी कि किसी तरह घर की हालत सँभल जाये, उसने कैसा-कैसा अपना जी मारा। ज़रा-ज़रा-सी चीज़ के लिए कैसा-कैसा तरसती थी।

घसीटे के दिल में माँ के लिए तरस भरा प्यार उबल पड़ा जो हाथ फैला-फैलाकर दुआ माँगने लगा कि ऐ ख़ुदा इसकी मुश्किल आसान कर और अब तो इसे नापाक दुनिया से उठा ले – अगर इस वक़्त घसीटे की आँखें रो देतीं तो उसे सुकून मिल जाता। मगर अफ़सोस आँसुओं जैसी नेमत से उसकी आँखें कोसों दूर थीं।

फ़कीरा के लिए इस नज़ारे में कोई ख़ास बात नहीं थी, उसने कहा,

"भय्या! तुम ज़रा हाथ-मुँह धो लो – मैं खाने-पीने की कुछ सुबीता करूँ।"

फ़कीरा भागता हुआ बगिया के उस पार जोगियों से आधा सेर ज्वार का आटा उधार माँग लाया और फिर चूल्हा जलाकर रोटियाँ पकाने बैठ गया – घसीटे भी चूल्हे के पास आकर बैठ गया और बोला –

"इतना आटा – क्या तुमने अभी नहीं खाया है।"

"नहीं, आज आटा ख़त्म हो गया था तो मैंने कहा एक रात यों ही सही!"

"अब खेती नहीं होती!"

"वह कब की बन्द हो गयी – अब्बा के मरने के बाद भूरे को जेल हो गयी – मैं अकेला रह गया – दो बरस तक तरकारियाँ-वरकारियाँ बोयीं। मगर वो बिकी-बिकाई नहीं, लगान तक अदा नहीं हुआ।"

"भूरे काहे में पकड़ा गया?"

"धूनीचन्द की एक बकरी बेच ली थी, फिर जब जेल से छूटकर यहाँ आया तो उसकी बीवी दूसरे के घर बैठ चुकी थी। वह फ़ौजदारी करने पर उतारू हो गया,

मगर उसकी तरफ़ से कोई काहे को खड़ा होता। दो महीने सबको गालियाँ देता रहा फिर एक रात कहने लगा –

"फ़कीरा, मुझसे तो अब तेरी तरह भूखों नहीं मरा जायेगा और न इस गाँव में रहा जायेगा – बला से जेल हो जाये पर चार दिन ऐश तो कर लेंगे। दूसरे दिन मुँह अँधेरे से कहीं निकल गया – बाँके कहता था, अब फिर जेल में पहुँच गया है।"

"जुमिया और शबरातन कहाँ हैं?"

"जुमिया हरामज़ादी किसी के साथ भाग गयी। शबरातन का दस कोस पर तकि़या वालों से ब्याह हो गया है – एक अमरूद का बाग़ है, किसी तरह गुज़र हो जाती है, मगर माँ को कभी नहीं पूछती।"

ज़रा देर ख़ामोशी रही – फिर फ़कीरा रोटी के किनारों को अंगारों पर सेंकते हुए बोला – "तुम्हारे जाने के बाद भय्या वह आफ़तें आयीं – सब घर मिट गया। वह भी क्या ज़माना था, अब्बा कहा करते थे,

"ये सब पिल्ले पेट भरे हैं – पेट भरे!"

"सच कहते थे अब्बा, उस ज़माने में कोई ऐसी रात नहीं गुज़री जब घर में चूल्हा न जला हो।"

घसीटे लम्बी-सी ठण्डी साँस भरकर चुप हो गया और लपकते हुए कोयलों की तरफ़ इस तरह तकने लगा, जैसे उनमें पुराने दिनों को ढूँढ़ रहा हो। फ़कीरा ने इस सन्नाटे को तोड़ा :

"कहाँ-कहाँ रहे घसीटे!"

"हम कलकत्ते जाकर ऐसे फँसे कि ख़त-पत्तर को भी चार पैसे नहीं बचे। घर याद कर-करके कितनी बार रोना आया – बड़ी कठिन गुज़री वहाँ। मिलों की ख़ाक छानी – उमीदवारों में काम किया।

"भूतघर में रोटी ढोई। हफ़्तों क़ब्ज़ रहता था। चार साल रिक्शा चलायी, फिर खोंचा लगाया – अरे फ़कीरा बड़ा मुश्किल है कलकत्ता में रहना – जिसके दो चार जानने वाले हों और जिसके पास लेने-देने को पैसा हो, उसके लिए तो वहाँ सबकुछ है लेकिन ऐसे वैसों को तो वहाँ कोई पूछता भी नहीं। वहाँ रोये रुलाई नहीं आती थी, मरने की दुआएँ माँगा करते थे।"

फ़कीरा ने लाल-लाल रोटी कपड़े पर रख दी और फिर दोनों टुकड़े तोड़-तोड़कर खाने लगे – फ़कीरा बोला,

"भय्या ज़रा चुपके-चुपके खाओ – अम्माँ सुन लेगी तो चिल्ला-चिल्लाकर रात भर सोने नहीं देगी..."

घसीटे ने शक और हैरत से घसीटे की तरफ़ देखा,

"तुम तो कहते थे, वो बिल्कुल नहीं सुनती।"

"हाँ मगर न जाने क्या बात है कि खाना खाने की आवाज़ फ़ौरन सुन लेती है

– और खाने की बू भी पा लेती है और फिर 'बाब-बाब' करने लगती है।"

घसीटे बुझते अंगारों की तरफ़ देखने लगा – उसका हलक़ इतना सूख गया था कि मुँह का निवाला बिना पानी के घूँट के न उतार सका।

घसीटे घर के द्वारे होंठों पर बकरी का दूध मले – धूप में नंगे बदन बैठा अपने मैले कुर्ते से चुन-चुनकर चिलवे मार रहा था – कई रोज़ से हाथों-पैरों और होंठों को चटखा देने वाली सर्द हवा के तेज़ झक्कड़ चल रहे थे, जिनमें सैकड़ों मील का गर्दो-गुबार भरा हुआ था, जो नाक और हलक़ में घुस रहा था : खेतों के पौधे और दरख़्त हवा की चोट खाकर झुक-झुक जाते थे और बेकसी से अपने पत्ते फड़फड़ाते थे – जैसे हवा से फ़रियाद कर रहे हों कि अब तो लिल्लाह जान छोड़ दो। खेतों में किसान अपनी चद्दरों को बदन पर समेटे, कन्धों को आगे झुकाये सूँ-सूँ कर रहे थे – हर जगह इतनी उजाड़-उजाड़ और हर चीज़ इतनी दुखभरी थी कि बेइख़्तियार जी घबरा-घबराकर कहता था कि चलो कहीं भाग चलें।

घसीटे धूप में बैठा काँप रहा था और कलकत्ता को याद कर रहा था। आने के दूसरे ही दिन से वह टूटे-फूटे वीरान छप्पर बकरियों के मूत की खराइन्द और अपनी माँ की बाब-बाब से घबरा गया था। दिन भर भूख बहलाना और बकरियाँ चराना और रात को बर्रे की रूखी-सूखी रोटी और कभी-कभी तो रात को भी फ़ाक़ा। फिर यहाँ की सर्दी – उफ़...बदन है कि कटा जाता है।

ओढ़ने को कहो या पहनने को, दो जनों के बीच एक कथरी, बड़ी कोफ़्त की बात यह थी कि जवानी के पचीस साल कलकत्ता में गँवाने के बाद घसीटे को अब यहाँ की किसी चीज़ में लुत्फ़ नहीं आता था। चौपाल की बातें रूखी-फीकी। गाँव की औरतों में शर्म और खिंचाव। जिस सफ़ेदपोश को देखो थानेदार की तरह अकड़ दिखाता – और फ़कीरा वह तो बात-बात में बाप बनता है। सब मुसीबतों से बड़ी मुसीबत यह है कि पैसा कमाने का कोई रास्ता नहीं – दमड़ी-दमड़ी के लिए फ़कीरा की मोहताजी। हर बात में उसका ना नुकुर करना। घसीटे चिलवे मार रहा था और कलकत्ते से आने पर पछता रहा था। वह दुकानों के तख़्तों पर रात काटता। वह सड़कों पर जो जाड़ों में बर्फ़ की सिल और गर्मियों में दहकता हुआ तवा होती थीं – खच्चर की तरह रिक्शा लेकर दौड़ता। कभी-कभी वह तीन-तीन चार-चार फ़ाक़े कर लेता। अपने घर की ज़िन्दगी से लाख दर्जे बेहतर था। वह कलकत्ता की एक पैसे वाली सिंगल चाय, धेले में पान का बीड़ा, दो पैसे की पचीस बीड़ियाँ – ये वो नेमतें थीं, जिनके लिए वह यहाँ तरस गया था। घसीटे ने एक ठण्डी साँस भरी और दूर तक फैले हुए मटर के खेतों की तरफ़ देखा – मेरी ज़िन्दगी भी क्या ज़िन्दगी है।

"पन्द्रह सोलह-बरस के सिन तक बाप की और चचाओं की मार खायी – बाक़ी खाने-पीने को तरसते रहे – फिर हिम्मत करके खाने-कमाने के लिए शहर

भागे, वहाँ महीनों ठोकरें खायीं – कहा, चलो कलकत्ता चलो, वहाँ पहुँचते ही अच्छी-सी नौकरी मिल जायेगी और सब पाप कट जायेगा। कलकत्ते के बाइस-बरस – उफ़्फ़...कोई कोशिश उठा नहीं रखी – रिक्शा तक चलाया। सेठ जी ने कहा, "गाड़ी लेना हो तो ज़मानती लाओ मैं किसे लाता। जो वहाँ के रहने वाले थे एक दूसरे को जानते थे – घराने के घराने रहते थे – वो ज़मानती ले आते थे। लछमन बोला दो आने रोज़ दो तो कलूटा महाजन ज़मानती हो जायेगा – दो आने रोज़ उसे दिये फिर भी सेठ स्साले ने टूटी-फूटी गाड़ी दी – उसे दूर से देखकर लोग हट जाते थे, जब सेठ से ख़ुशामद करो कि एक अच्छी-सी गाड़ी दे दो तो वह अकड़कर कहता कि रुपये जमा कराओ। रुपया बचता तो कैसे बचता – आमदनी भर तो कलूटा खा जाता था। चार साल दौड़े मगर वही मोची के मोची – बुखार जो आया तो किसी तरह गया ही नहीं। अस्पताल में पड़े-पड़े महीनों बीत गये। अच्छे हुए तो डॉक्टर साहब ने कहा, "ख़बरदार अब रिक्शा बिल्कुल नहीं चलाना और न ज़्यादा मेहनत का काम करना। फिर दो रुपया उधार करके पान-बीड़ी सिगरेट का खोचा लगाया। अब जो आता कहता "सीजर दो, नेवी कट लाओ – यह लाओ, वह लाओ – यहाँ क्या था। कहता –

"नहीं है साहब!"

"नहीं है हुज़ूर!"

वह भी तमाशा कुछ दिनों तक रहा – न तो बैठने की अच्छी जगह थी और न ही अच्छा सामान। उस पर भी जो कुछ आया उसे हरामज़ादी मँगनी खा गयी। न जाने मुझ साले को औरत रखने की क्या पड़ी थी – लंगोटी में फाग...

घसीटे को अपने ऊपर बहुत ग़ुस्सा आया और अपने को ख़ूब गालियाँ दी। इतने में फ़कीरा सामने आ गया और आते ही कड़ेपन से पूछा।

"फिर तुमने चुराकर दूध बेच लिया? अब हमारा-तुम्हारा गुज़ारा नहीं हो सकता। जहाँ जाना है चले जाओ।"

घसीटे ने जवाब दिया "कैसी चोरी, कुछ पागल हो गया है तू। रोज़ का यही क़िस्सा – बड़ा आया है घर से निकालने वाला। जैसे घर में मेरा हिस्सा ही नहीं और बकरियाँ तो सब जैसे तेरी ही हैं।"

"घर में हिस्सा – बकरियों में हिस्सा? तू हिस्सा बटायेगा – न काम का न काज का दुश्मन अनाज का – पचीस साल कलकत्ते में गुज़ारकर हमारी जान को आया है। गया था रुपया कमाने?"

घसीटे को भी ग़ुस्सा आ गया –

"कलकत्ता में कमाना कुछ आसान है, तू ख़ुद तो कभी क़स्बे से बाहर नहीं गया और चला है कलकत्ते की कमाई की बातें करने। वहाँ वह कमाता है, जिसके दस जानने वाले हों – जो उसके लिए तिकड़म लगाये वह कमाता है, जिसके पास कुछ

माल–मत्ता हो, कुछ खोकर सीखे – काम कुछ दिनों सीखने के बाद ही आता है, न कि आप ही आप।"

फ़कीरा ने ताना मारने जैसे अन्दाज़ में कहा –

"हाँ, यहीं से जो जाते हैं, रुपये का ढेर ही तो लेकर जाते हैं – अली जो इतना कमाकर लाया है, कैसे लाया है?"

अब तो घसीटे तिलमिला गया – वह सबकुछ सुन सकता था – मगर यह कि उसने कलकत्ता में रहकर कुछ नहीं कमाया बिल्कुल नहीं सुन सकता था – वह चिल्लाकर बोला –

"और तूने क्या कर लिया है – चोट्टा कहीं का। इन बकरियों में, इस घर में क्या मेरा हिस्सा नहीं। सब का सब बेचकर खा गया। ला मेरा हिस्सा दे – मैं आज ही इस मनहूस गाँव से जाता हूँ। बेईमान कहीं का...।"

घसीटे से बन नहीं पड़ रहा था कि अपना सिर फोड़ दे या अपनी जान निकालकर रख दे – क्या करे जो फ़कीरा को यक़ीन दिला दे कि कलकत्ता में उसने कोई कोशिश उठा नहीं रखी।

कुछ देर यूँ ही तू–तू–मैं–मैं होती रही, फिर फ़कीरा यों ही बड़बड़ाता हुआ अन्दर चला गया – देर तक वह अन्दर से और यह बाहर से बड़बड़ाता रहा।

यह क़िस्सा आज कुछ नया नहीं था – बल्कि पूरे चार महीने से यही हो रहा था – रोज़ यही झगड़ा उठता – रोज़ यही बातें होती और रोज़ ही दोनों बड़बड़ाकर चुप हो जाते।

रात जब रूखी–सूखी खाकर घसीटे बिस्तर पर बैठकर हुक्का गुड़गुड़ाने लगा तो फिर एक ठण्डी साँस के साथ कलकत्ते की याद आ गयी। और सोचने लगा कि शायद अब मैं हमेशा के लिए इस उजाड़ गाँव में दफ़न हो गया हूँ। अब बाक़ी ज़िन्दगी इसी तरह बिताना है। काश अब एक बार, सिर्फ़ एक बार मेरे पास पैसा आ जाता। मैं एक बार तो अपनी थकी–माँदी आत्मा को सुख दे लेता, चालीस बरस की थकी–माँदी आत्मा।

मैं यह नहीं कहता कि बड़ा–सा घर हो, द्वारे भैंस बँधी हो – कठियों में अनाज भरा हो – घर वाली हो, जो साड़ी के पल्लू से थाली साफ़ करके उसमें दाल–भात लाकर सामने रखे। उसके पाँव में मोटे–मोटे कड़े पड़े हों जो बद्धी की तरह आड़े–आड़े एक तरफ़ झुके हों, जैसे शर्माई साली का सिर – बस मुझे इतना तो मिल जाये कि अपना अलग छप्पर हो सके।

दोनों टैम अपनी रूखी–सूखी हो – बस। अरे हाँ, अपने पास कुछ तो हो – ऐसे में कहाँ घरवाली की ख़्वाहिश और कहाँ बच्चों का अरमान – चालीस का सिन होने को आया। सिन का ख़याल आते ही दिल में एक तेज़ हूक उठी कि बस अब दो चार बरस जवानी और है, फिर अँधेरा पाख। जाने कब मौत आ जाये...

एक ज़बरदस्त उमंग उठी कि जैसे बने एक बार और हाथ पाँव मार लो – थोड़ी देर तक सोचता रहा – फिर उसने फ़कीरा को पुकारा –

"भय्या फ़कीरा!"

फ़कीरा प्यार की पुकार सुनकर फ़ौरन पास आ गया। जब वह आराम से बैठ गया और हुक्का का एक दम ले चुका तो घसीटे बोला –

"मैं कब कहता हूँ कि मैं कुछ करूँगा नहीं... मगर कोई काम भी तो ऐसा हो जिससे कुछ मिले... अरे भय्या तुम कहते हो कि कलकत्ते में मैंने बाइस बरस भाड़ झोंका – मगर मैं कहता हूँ कि मैं कम से कम इतना तो सीख ही गया हूँ कि कौन काम चल सकता है, कौन नहीं।

तुम कहते हो फेरी लगायें – यह करें – वह करें। सच कहता हूँ ऐसे कामों में कुछ नहीं धरा है। पैसे वालों के सामने कौन अपना रोज़गार जमा सकता है।"

घसीटे यह कहकर ख़ामोश हो गया – जैसे बात अभी पूरी नहीं हुई है। फिर फ़कीरा की तरफ़ देखकर बोला –

अगर कुछ मिल सकता है तो उसी तरह जैसा मैं बताता हूँ। मगर जो हम कहते हैं वह तुम मानते नहीं। इसमें तुम्हारा भी भला, हमारा भी भला – कौन जानेगा, हम कैसे कमाते हैं और कोई जान भी गया तो क्या? जब हमारे पास पैसे होंगे तो सब बुराई को भी अच्छाई कहेंगे। जोगियों को देखो – उनके घर हुन बरस रहा है हुन – कहने को हम शरीफ़ और वो गिरे हुए! मगर कौन किसकी ख़ुशामद करता है –

हम ही हैं जो आये दिन दौड़े जाते हैं कि अच्छे मंगू सेर भर उधार आटा दे दो... दो कंकड़ियाँ नमक दे दो...ज़रा-सी तम्बाकू दे दो – वो टालमटोल भी करते हैं, धित्कार भी देते हैं – मगर हम फिर जाते हैं और फिर जाते हैं, न जायें तो क्या करें...?

फ़कीरा चुपचाप बैठा सुनता रहा। घसीटे दम लेकर फिर बोला... और हम तो कहते हैं कि सब हमको छोड़ भी दें, तो क्या है। क्या कोई लड़का-लड़की ब्याहने को बैठे हैं हम? हम दोनों चैन से अलग ही रह लेंगे?

घसीटे ने एक दम से कुछ याद करके फ़कीरा की तरफ़ अर्थभरी नज़रों से देखा और फिर कहा,

"हाँ, तुम्हारा शादी ब्याह करना है – रुपया देखकर सब ही लड़की देने को राज़ी हो जाते हैं। फिर अपनी बिरादरी में न सही, किसी और में सही। अरे हाँ – इस तरह कुछ भी नहीं कर सकते और फिर यह अम्माँ के लिए भी अच्छा होगा। जब पैसे होंगे तो उसको ख़ूब खाने को मिलेगा।"

फ़कीरा अब भी कुछ नहीं बोला – इससे पहले भी घसीटे यही बातें कई बार कर चुका था। मगर तब इन्हें सुनकर फ़कीरा को ग़ुस्सा आ गया था! रुपयों के लिए

कहीं शराफ़त बेची जाती है। रुपया है क्या? हाथ का मैल – आज आया तो कल गया!

और शराफ़त वह धन है जो पीढ़ियों चलता है और ख़र्च नहीं होता है – शरीफ़ फूल का बरतन होता है। जितना भी कीचड़ में सौन्द जाये, जब भी मांजो चम-चम करने लगता है और फिर जहाँ शराफ़त गयी, आदमी मिट्टी का हो जाता है – मिट्टी!

माना कि जोगियों के पास रुपया है पैसा है। घर गृहस्थी है – हम ही उसकी ख़ुशामद करते हैं, वो नहीं करते। हम ही उनसे रोटी उधार माँग लेते हैं, वो नहीं। मगर इससे क्या? हाथी मरकर भी सवा लाख टके का – अभी हम और वो मुखिया के घर जायें तो हम तो चबूतरे पर बैठेंगे और वो दूर ज़मीन पर –

फ़कीरा पाँच बरस का था जब घसीटे रुपया कमाने के लिए शहर भाग गया था। तब से उसके दिल में भी कमाने की तमन्ना पैदा हो गयी थी, लेकिन जैसे-जैसे दिन बीतते गये और घसीटे रुपयों का गट्ठर लेकर नहीं लौटा तो उसकी ख़्वाहिश मरती गयी – ग़रीबों को कहाँ पैसा मिलता है – पैसा मिल जाता तो कोई ग़रीब ही क्यों रहता! इस जीवन में बस यही है कि अपना दोजख पाट लो, मौक़ा मिले तो किसी से हँसी ठिठोली कर लो – और इधर क्या धरा है? भूरे का हशर देखा तो रही-सही आस भी गहरी नींद सो गयी। लेकिन अब जो घसीटे रोज़ाना शाम को, जब ये दोनों काम काज से फारिग होकर बैठते, आस जगाने का यह मोहनी मंज़र इसी तरह दोहराता रहा तो फ़कीरा की सोई हुई आस चौंकी और अंगड़ाई लेकर उठी और पर पुर्जे निकालने लगी – वही फ़कीरा जिसे कल तक कोई फ़िक्र नहीं थी, आज माया के मन्दिर की राह सुझाई दी तो लगा कुछ और ही सपने देखने – ज़रा वह छप्पर बदल जाता – थोड़ी-सी बकरियाँ और हो जातीं और ज़रा चार-पाँच रुपये इकट्ठे हो जाते तो फिर हमारा घर बस जाता – अरे हाँ! अब घर नहीं बसा तो कब बसेगा – वह रमजानी की बेवा – आँखें मिलाओ तो कैसा हँसती है – उससे आज कहो तो आज ही घर बैठ जाये – कैसा गदराया-गदराया बदन है। जैसे पका आम – कैसा ठुमुक-ठुमुक चलती है और कितनी मेहनती है वह। दूध वह दूहे, उपले वह पाथे, दही वह मथे, अकेली छब्बो पानी उठा-उठाकर खेतों में डाले – क्या औरत है। मैंने देर की तो और कोई अपने घर बिठा लेगा और फिर मैं मुँह ताकता रह जाऊँगा –

जिस दिन से फ़कीरा के दिल में ये ख़्यालात गूँजने लगे वह रमजानी की बेवा से किनाई काटने लगा। इधर वह सामने दिखायी देती और उधर वह राह क़तराकर निकल जाता। पन्द्रह बीस रोज़ यों ही कट गये – एक दिन यह लकड़ी चीर रहा था कि वह एकबारगी पीछे से आ गयी। फ़कीरा से भागते न बना – कुछ बातें हुई – कुछ हँसी दिल्लगी हुई। फिर वही हुआ जिसका फ़कीरा को धड़का था – यानी

उसी दिन उसने घसीटे की बात मान ली।

अभी फिर रात बाक़ी थी कि घसीटे ने फ़कीरा को जगा दिया। दोनों तारों की मद्धम रोशनी में उठे और एक टोकरे को बाँस से लटकाकर – एक डोली-सी बना ली और उसमें ख़ूब-सा पुआल भर दिया और फिर बुढ़िया के पास गये। घसीटे ने एक हाथ कमर में और एक गले में डालकर उसे छिपकली की तरह उठा लिया – आँख का खुलना था कि लगी वह बाब-बाब करने और इशारे से खाना माँगने – घसीटे ने उसे पहली बार छुआ था उसे अजीब-सी यातना महसूस हुई। जिससे ख़ुद उसका चेहरा हौनक बन गया – एक तरफ़ तो आँखों में आँसू आ रहे थे और दूसरी तरफ़ बदन के रोयें खड़े हो रहे थे। घसीटे ने उसे ले जाकर आहिस्ता से जैसे कोई शीशे का बरतन हो टोकरे में धर दिया और फिर उसे चीथड़ों से छिपा दिया।

एक तरफ़ का बाँस फ़कीरा ने थामा और दूसरी तरफ़ का घसीटे ने। दोनों घर के बाहर चले – बकरियाँ उन लोगों को इस तरह जाता देखकर बेकसी से में-में करने लगीं, जैसे ये लोग उनको हमेशा के लिए ब-यारो मददगार छोड़कर जा रहे हों।

जब ये दोनों रात के काले पर्दों की ओट में मुँह छिपाये हुए गाँव के नुक्कड़ पर आ गये तो पौ फटी और नसीम (सुबह की ठण्डी हवा) इठला-इठलाकर चलने लगी। ये ख़ुश थे कि चलो हम नज़रों से बचकर निकल आये कि अचानक एक तरफ़ से एक किसान कन्धे पर हल रखे किसी तरफ़ से निकल पड़ा और फ़कीरा को पहचानकर पूछने लगा –

"कहाँ चले फ़कीरा?"

हवा का ठण्डा झोंका फ़कीरा के कलेजे को छेदता निकल गया, उसके कन्धे का बाँस काँपा।

किसी वजह से घसीटे घबड़ाकर फ़कीरा की जगह बोल उठा –

"शबरातन का हाल ख़राब है – अम्माँ को वहाँ लिये जा रहे हैं!"

"अम्माँ को लेकर जा रहे हो?" किसान इतना मुताअस्सिर हुआ कि बेइख़्तियार कह उठा –

"शाबाश तुम लोगों का – अपनी महतारी की इतनी सेवा करते हो।"

शहर की जामा मस्जिद में जुमा की नमाज़ का खुतबा शुरू हो चुका था, उस वक़्त फ़कीरा और घसीटे ने बुढ़िया को, जो टोकरे में कुण्डली मारे सो रही थी, उठाकर टेक लगाकर बिठा दिया और फिर उसके काँपते हुए हाथ को टोकड़े में दो चीथड़ों में बाँधकर उस पर रख दिया। यह एहतियात थी – इस बात की कि कहीं ऐसा न हो कि बाब-बाब करते वक़्त उसका हाथ मुँह की तरफ़ नज़र न आये बल्कि काँपकर किसी और तरफ़ निकल जाये। मगर यह एहतियात ग़ैर ज़रूरी थी क्योंकि

दस–बारह बरसों से उसका हाथ यही करता था कि मुँह की तरफ़ जा–जाकर खाना माँगता – अब सिवाय उधर के, किसी और तरफ़ जाने की हाथ में सकत ही न थी!

बुढ़िया जाग पड़ी... मगर वह टोकरे में झकोले खाते–खाते और रात गये से इस वक़्त बिला चिल्लाये, जैसे बिठाई गयी थी, बैठी रही।... यह तो बुरी रही – सारे किये कराये पर पानी फिरा जा रहा था।

ज़रूरत ईज़ाद की माँ होती है – फ़ौरन घसीटे ने लपककर सामने से हलवाई की दुकान से एक पैसे का जलेबियों का शीरा माँगा। उसने थाल पर चिमटी हुई भेड़ा और भिनकती हुई मक्खियों को उड़ाकर थाल एक तरफ़ झुका दिया और जितना शीरा बह गया उसे उँगली से पोंछ–पोंछकर एक पत्ते पर टपकाकर घसीटे को थमा दिया। उसने लाकर शीरे की एक उँगली बुढ़िया को चटा दी – उसका चाटना था कि वह फ़ौरन बाब–बाब करके खाना माँगने लगी।

चलो अमल कामयाब रहा – बुढ़िया की कूक हाथ आ गयी। घसीटे ने पत्ता फ़कीरे को पकड़ाकर हिदायत दी कि मौक़े पर बुढ़िया को एक उँगली चटा देना। फ़कीरा ज़िन्दगी में तीसरी बार शहर आया था। यहाँ की गहमा–गहमी, भीड़–भाड़ और दुकानों से वह भौचक्का हो चुका था। अक़्ल चुँधिया गयी थी – इसके बरख़िलाफ़ शहर की हवा लगते ही घसीटे का आत्मविश्वास जाग पड़ा था। घसीटे माहिर तैराक की तरह था, जो दरिया में उतरते ही चुहलें करने लगता है और फ़कीरा तैराकी से अनजान आदमी की तरह था जो पानी में उतरते ही सहम जाता है। घसीटे फ़कीरा को हुक्म दे रहा था और वह मशीन की मानिन्द उसके इशारों पर चल रहा था।

दोनों डोली लेकर मस्जिद के सामने आ गये। ख़ुदा के घर के सामने इन्सानी कूड़े का ढेर लगा हुआ था – कटी उँगलियों और चिपटी नाक वाले कोढ़ी, मिनमिनाकर डरावनी आवाज़ में बोलने वाली घावों भरी बुढ़ियाएँ, चुँधे–चुपड़े बच्चे, जिनके हाथ–पाँव सूखे और पेट बढ़े हुए थे और जो न जाने क्यों मुसलसल रें–रें कर रहे थे। बेहया दीदों वाली जवान औरतें, जिनके सिर पर जुओं का जंगल और बदन पर मैल की कसगल थी – चीथड़े–ठीकरे, मैल, आखोर, बलगम, नाक, पीब, मक्खियाँ, जरासीम, फ़रेब, झूठ और इन सबको ढाँक देने वाली लोरियाँ दे–देकर, थपक–थपक सुला देने वाली महापापिन बेहिसी।

इस समन्दर में घसीटे और फ़कीरा ने भी माँ की डोली लेकर गोता मारा।

मैल कुचैल हो, चाहे जिल्लत हो, हैवानियत हो चाहे इंसानियत हो... माया के मन्दिर को यही रास्ता जाता है। इस वक़्त जबकि सब दरवाज़े बन्द हो चुके हैं। अकेला यह खुला हुआ है, साफ़ और सीधा रास्ता – फूटी आँख का दीदा –

डोली रखी ही थी कि पास के एक बुड्ढे फ़कीर ने माँ की गाली देकर कहा – "अबे इधर – कहाँ आया? भाग यहाँ से!"

फिर तो आस-पास के सब ही फ़क़ीर गालियाँ देने और गुल मचाने लगे। उनकी डोली देखकर सबको अपनी रोज़ी की पड़ गयी थी। फ़कीरा की तो यह हंगामा देखकर जान ही निकल गयी – उसने झट डोली का डण्डा काँधे पर रखकर वहाँ से टलना चाहा मगर घसीटे ने देखा कि इन गीदड़ भभकियों से अगर डरा तो फिर इस बिरादरी में घुस चुका। उसने दो चार माँ-बहन की सुनाकर कहा –

"तुम्हारे बाप की ज़मीन है, चुप रहो वरना सबका सिर फोड़ दूँगा।"

डाँट सुनते ही फ़कीर तो ज़रा-ज़रा बड़बड़ाकर चुप हो रहे मगर बुढ़ियाएँ उसी तरह काँय-काँय करती रहीं – आख़िर एक नमाज़ी ने जो 'जमात' की लालच में दौड़ा जा रहा था उनको डाँटा –

"चुप रहो बदनसीबों – नमाज़ हो रही है।"

नमाज़ के ख़याल से या डाँट के डर से, किसी न किसी वजह से ख़ामोशी छा गयी।

अगर ऐसी बात न होती तो भी ख़ामोशी हो जाती – क्योंकि इससे ज़्यादा प्रतिरोध करने का बूता उनमें था ही नहीं, दूसरे यह कि घसीटे भी अपनी जगह पर क़ब्ज़ा जमा चुका था।

अभी नमाज़ी निकलना शुरू नहीं हुए थे – लेकिन वहाँ की फ़िज़ा से फ़कीरा इतना मुताअस्सिर हुआ कि उसने बेसमझे-बूझे बुढ़िया को एक उँगली शीरा चटा दिया – शीरा लगते ही ग्रामोफ़ोन के रिकार्ड की तरह वह बजने लगी और मशीन की तरह उसके जबड़े और हाथ चलने लगे, उसे देखकर दो बरस के एक बच्चे ने, जिसे एक शख़्स फूँक डलवाने के लिए लाया था, गोद में सहमकर ज़ोर की चीख़ मारी और बिसूरने लगा – एक जवान ऐंग्लो इण्डियन लड़की जो हाथ में बटुआ लिये उधर से गुज़र रही थी, उसने जो बुढ़िया को देखा तो सिर से पैर तक काँप गयी – जैसे कि ऐसा ही भयानक बुढ़ापा उसका पीछा कर रहा हो। उसने बेतहाशा दो पैसे निकालकर बुढ़िया की तरफ़ फेंक दिये – बिल्कुल उसी तरह जैसे कोई बूढ़े कुत्ते के सामने निवाला फेंकता है ताकि वह सबकुछ भूलकर उसमें जुट जाये... पैसे बुढ़िया के सामने लगे हुए चिथड़ों के अम्बार में डूबकर ग़ायब हो गये। अब घसीटे को अपनी ग़लती का अहसास हुआ – भीख कोई उसके हाथ में थोड़े ही देगा – देगा बुढ़िया को। उसके सामने कोई बरतन या कपड़ा होना चाहिए तो जिस पर आकर पैसे गिरें। घसीटे ने जल्दी से अपना फटा हुआ अंगोछा बुढ़िया की गोद में फैला दिया।

नमाज़ ख़त्म हुई और नमाज़ी गोल के गोल बाहर आने लगे – फ़कीरों ने शोर मचाना शुरू कर दिया।

"भूखा हूँ बाबा – भूखा हूँ..."

एक फ़कीरनी घिघियाने लगी जैसे कोई नयी नवेली बेवा सिसकियाँ भरती है

– एक तगड़ा फ़कीर हलक़ फाड़-फाड़कर आवाज़ें लगाने लगा – 'जब देगा अल्लाह ही देगा।'

फ़कीरा भीड़-भाड़ धक्कम-धक्का और शोर हंगामे से फिर भौचक। घसीटे ने चिल्ला-चिल्लाकर उसे कई बार हुक्म दिया, मगर जब देखा कि उसके हवास बिलकुल ही ग़ायब हैं तो झपटकर पत्ता छीनकर ख़ुद ही चटा दिया। शीरे का लगना था कि मशीन फिर तेज़ी से चलने लगी, मगर फिर भी लोग उधर आकृष्ट नहीं हुए। घसीटे ने फ़ौरन महसूस किया कि कोई कमी है – पहले से तो उसने कोई सदा सोची नहीं थी, जल्दी में उसके मुँह से निकला –

"अल्लाह हर आफ़त से बचाये!"

फिर वह यह इस तरह देने लगा जैसे कोई वालण्टियर 'इन्कलाब ज़िन्दाबाद' कहे क्योंकि कोई और लय उसे याद ही नहीं आयी, उसकी सदा में अगर तासीर थी तो सिर्फ़ इतनी कि लोग उधर देख लेते थे, देखते ही बुढ़िया पर निगाह पड़ती थी और दर्द-अंगेज नज़ारा दिल को वहशत और वीरानी से भर देता था। जिसकी दवा सिर्फ़ भीख के चन्द पैसे थे। बुढ़िया के सामने पैसों की बारिश होने लगी। आस-पास के फ़कीर या तो ख़ाली हाथ थे या एक-एक दो-दो पैसे लिए हसरत से इन दोनों ख़ुशनसीबों को तक रहे थे कि हमारे पास भी कोई ऐसी ही बुढ़िया-सी चीज़ क्यों नहीं है। घसीटे अपनी ऐसी कामयाबी देखकर ख़ुशी और गुरूर से मतवाला हो गया और ख़ूब कड़क-कड़ककर सदा लगाने लगा। आज उसकी ज़िन्दगी का पहला दिन था कि जिस पेशे में वह घुसा था, उसमें चोटी पर जगह मिली थी। अब तक तो यही हसरत थी कि कभी ऐसा भी होता कि जिस पेशे में घुसूँ उसका आधा सामान हो – उसका सब ऊँच-नीच मालूम हो। आख़िर आज दोनों नेमतें मयस्सर आ ही गयीं। मेरे पास जो सामान है, किसी के पास नहीं और मैं सदा भी ख़ूब लगा रहा हूँ, सब ख़ुदा की देन है। आख़िर वह कब तक अपने बन्दे का इम्तिहान लेता। देखो पैसे कैसे बरस रहे हैं – तू ही दाता है, तू ही जीवन का खेवनहार है – हे मालिक!

अम्माँ ज़िन्दगी भर कोशिश करती रहीं कि कुछ पैसा जोड़कर घर की हालत सुधारे। एक-एक बात के पीछे जान दे मरी, मगर कुछ न हुआ – और अब हुआ भी कैसी आसानी से। ये ख़ुदा के कारख़ाने हैं – हीले रोज़ी, बहाने मौत।

तीसरे पहर की सुनहरी धूप में फ़कीरा और घसीटे डोली लिए शहर के बाहर एक बादशाही के पास आये। दोनों सारा दिन डोली लादे फेरी लगाते रहे थे। थकान से चूर-चूर हो रहे थे फिर भी आँखों में इत्मीनान और ख़ुशी मौजें मार रही थीं। दोनों मस्त थे, गा रहे थे और ज़ोर-ज़ोर से हँस-हँसकर बातें कर रहे थे।

एक खण्डहर के साये में डोली उतार दी गयी, घसीटे ने भीख की झोली खोली – उसमें पाँच-छह आदमियों के खाने भर की रोटियों के टुकड़े, दाल-भात और

तरह-तरह की तरकारियाँ और भी बहुत-सी चीज़ें भरी हुई थीं। उन पर एक नज़र डालकर माँ की गाली देकर एक तरफ़ फेंक दिया।

फिर ज़रा इत्मीनान से बैठकर एक पोटली खोली, जिसमें थीं बहुत-सी तेल की पूरियाँ, कई क़िस्म की तरकारियाँ, सेर भर पंचमेल मिठाई। चटपटे कबाब, मूलियाँ और बीड़ी का बण्डल, आज के फेरे में पौने दो रुपये मिले थे। जिसमें से डेढ़ की ये सब ख़रीदारी थी और चार आने अभी घसीटे की जेब में टपक रहे थे। घसीटे ने सब नेमतें निकालकर यहाँ से वहाँ तक चुन दीं। सब मिलाकर चार आदमियों भर खाना था। दोनों की ज़िन्दगी में पहला मौक़ा था कि सामने इतनी नेमतों का ढेर था और जो था अपना था। जिस तरह चाहे खाओ और जो चाहे फेंको। पहले दोनों ने मिठाई की एक-एक डली मुँह में डाली और बदहवासी से उसे निगल गये। फिर मर भुख्खे कुत्तों की तरह मिठाई पर टूट पड़े – गोया ज़िन्दगी भर की भूख इसी एक आन में बुझा देंगे – पूरियों की बारी आयी। एक-एक पूरी का एक-एक निवाला। कस-कसकर दो चार दाँत मारते और फिर गब से दोजख में उतार लेते। इस शोर से बुढ़िया जो सो रही थी जाग पड़ी और जागते ही बाब-बाब करके खाना माँगने लगी। अब दोनों को वह भी याद आयी। घसीटे ने कुछ नुक्तियाँ (बूँदी) उसके मुँह में दे दी। वह उनको जल्दी से निगल गयी और निगलते ही बदहवासी से बाब-बाब करने लगी। हैरत की बात यह कि वह किसी न किसी तरह हाथ-पैरों को हिला-डुलाकर आगे सरक आयी – गोया कि चाहती थी कि एक झपट्टा मारकर सबकुछ एक ही दफ़ा में अपने मुँह में भर ले। फ़कीरा और घसीटे के लिए मुश्किल यह थी कि ख़ुद खायें या उसे खिलायें। इधर उसके मुँह में कुछ देते और उधर वह उसको निगलकर और माँगने लगती। घसीटे झल्लाकर बोला – "लो तुम भी क्या याद करोगी अम्माँ!"

दाँत से काटकर मूली का एक टुकड़ा उसके मुँह में दे दिया। बुढ़िया चट-पट ख़ुश-ख़ुश चबाने लगी। मगर चबाता क्या वह बार-बार मुँह से बाहर निकल आता और फिर यही किसी न किसी तरह काँपते हाथों से उसे अन्दर ठेल लेती।

दोनों फिर अपना पेट पाटने में जुट गये। ज़रा देर में बुढ़िया खाँसी – उसके हलक़ में टुकड़ा फँस गया था। आँखें चढ़ गयीं और आगे-पीछे झूम-झूमकर सूँ-सूँ करने लगी। मालूम होता था कि अब दम निकला – तब दम निकला। घसीटे उसे मरते देखकर खाना भूल गया और जल्दी से उँगली डालकर टुकड़ा बाहर निकाल लिया। टुकड़ा निकलते ही बुढ़िया ने चीख़ मारी, जैसे किसी ने उसका ख़ज़ाना लूट लिया हो और हलक़ फाड़-फाड़कर उसे माँगने लगी। अब घसीटे ने उसे मशगूल रखने को उसके हाथ में एक रसगुल्ला पकड़ा दिया। बुढ़िया ने उसे ज़ोर से अपनी मुट्ठी में दबा लिया और मुँह की तरफ़ ले चली, मगर एक तो हाथ काँप रहा था, दूसरे रसगुल्ले की पकड़ बेतुकी थी। वह किसी तरह मुँह के अन्दर नहीं जा सका।

रसगुल्ला दब रहा था। उसका शीरा ठण्डी बाँछों से होता हुआ गले पर और गले से छातियों पर बह रहा था। बुढ़िया सारी की सारी मीठी हो गयी थी। माँ और बेटे खाते चले जाते थे, न यह छकती थी और न वह। रफ़्ता-रफ़्ता बेटों का हाथ तो सुस्त होता गया। मगर माँ का बाब-बाब तेज़ ही होता गया।

आख़िर जब घसीटे और फ़कीरा में निगलने की बिल्कुल सकत नहीं रही तो उन दोनों ने बचा-खुचा खाना अपने आगे से सरका दिया और वहीं पड़कर बीड़ियाँ पीने लगे। बुढ़िया चिल्लाती रही – चिल्लाती रही आख़िर थककर वह भी टोकरे में गिर पड़ी। फ़कीरा बहुत ख़ुश था – उसके दिल में अब यह ख़याल तक नहीं था कि अगर किसी को मालूम हो गया तो क्या होगा... अब उसके सामने एक दूसरी दुनिया थी – जिसमें छप्पर नया हो गया था, उसमें एक तरफ़ लिपा पुता चूल्हा था, जिसको रमजानी की बेवा झुकी हुई फूँक रही थी। जब चिराग़ जले वह बकरियों का एक बड़ा-सा गल्ला लिए घर वापस आता है तो रमजानी की बेवा जल्दी-जल्दी गर्मा-गरम, सुर्ख़-सुर्ख़ रोटियाँ पकाकर सामने रख देती है... थाली में (घर में एक फूल की थाली भी आ गयी है) एक तरफ़ बकरी का मस्का भी है... फ़कीरा ख़ुश था – बहुत ख़ुश।

घसीटे की तबियत भी ज़ोरों पर थी – ज़िन्दगी में पहली बार कामयाबी हुई थी। कामयाबी-सी कामयाबी – पौने दो रुपये? और सिर्फ़ एक दिन में – पचास रुपया महीना – उफ़ अगर कहीं हम आज कलकत्ते की किसी मस्जिद के सामने यह काम करते तो कितनी कामयाबी होती। फिर जब रुपया हो तो कलकत्ता की ज़िन्दगी – सिंगल चाय, बीड़ियाँ, ताड़ीख़ाना, भुना गोश्त और वो स्साली नखरीली रण्डियाँ, वह उनका मटक-मटककर चलना, गोद में बल खा-खा जाना – घसीटे मुस्कुराने लगा – कुछ देर तक इन्हीं ख़यालों में डूबा रहा फिर ज़रा संजीदा हो गया। सोचने की बात ही थी – फ़कीरा ने सारे घर पर क़ब्ज़ा कर लिया। सब बकरियाँ अपनी कर ली है। हिस्सा माँगा तो साला बिगड़ता है। जी चाहता है, सिर फोड़ दूँ स्साले का। अब अम्माँ में भी हिस्सा बटायेगा। नहीं-नहीं ऐसा नहीं हो सकता है। मैं घर दे दूँगा – बकरियाँ दे दूँगा। मगर अम्माँ को नहीं दे सकता। आख़िर मैं भी तो उसका बेटा हूँ। और अब फ़कीरा का हक़ ही क्या है? वह सबकुछ तो ले चुका है – इतने दिनों तक अम्माँ भी उसी की रही। आख़िर मुझे भी तो कुछ मिले। अम्माँ को मैं नहीं दे सकता, अगर वह तकरार करेगा तो मारूँगा – सिर फोड़ दूँगा, हरामी स्साला फ़कीरा!

घसीटे सोच-सोचकर खौलने लगा। फ़कीरा इतनी देर में ऊँघ गया था। घसीटे ने उसे झिंझोरकर उठाया और कहा, "फ़कीरा सोना बाद को, पहले हिस्सा बाँट लो – आज यह झगड़ा चुक जाना चाहिए!"

"काहे का हिस्सा बाँट?"

"हाँ, अब तो कहोगे ही, काहे का हिस्सा बाँट? अरे घर का। बकरियों का और जो कमाया है, उसका।"

फ़कीरा तिलमिलाकर उठ बैठा!

"फिर वही घर...? ...फिर वहीं बकरियाँ – हज़ार बार कहा कि अब्बा का बनाया हुआ छप्पर पन्द्रह बरस हुए जब सड़ गल चुका था – यह मैंने बनवाया है–और वो बकरियाँ भी मर–खप गयीं!

ये सब मेरी पाली हुई हैं। चला है हिस्सा बाँट करने – और इतने दिनों तक जो हमारी रोटियाँ तोड़ता रहा है?" फ़कीरा अब शहर वाला फ़कीरा नहीं था – शहर से निकलते ही वह अपने असल रंग में वापस आ गया था। घसीटे गुस्से में मगर समझाने वाले अन्दाज़ में कहने लगा।

"अच्छा चलो – घर तुम ले जाओ लेकिन लाओ हमारी अम्माँ को हमें दे दो। इतने दिनों अगर तुमने इनको खिलाया पिलाया है तो अब हम खिलायें–पिलायेंगे!"

"हाँ, अब तो तू खिलायेगा ही – पन्द्रह बरस मैं पालता रहा – गू–मूत करता रहा। तब अम्माँ की याद न आयी। अब जब वह कमाई के क़ाबिल हो गयी है तो अम्माँ तेरी है – तुझे दे दूँ। मजाल है तेरी कि तू ले जाये।"

घसीटे पर भूत सवार हो गया और वह गुस्से में माँ की तरफ़ लपका – जैसे उसको जेब ही में तो रख लेगा। मगर फ़कीरा झट कूदकर सामने आ गया और लगा घसीटे को गालियाँ देने। घसीटे का पारा हद से ऊँचा हो गया और उसने बढ़कर फ़कीरा को कसकर धक्का दिया और दौड़कर बुढ़िया को हाथों में इस तरह दबोच लिया गोया वह कोई गठरी हो।

जिस तरह बिल्ली चूहे पर झपटती है, उस तरह फ़कीरा बुढ़िया पर झपटा और उसके सिर और कमर में हाथ देकर अपनी तरफ़ खींचने लगा। बुढ़िया उस बिल्ली की तरह जिसका बच्चा मर गया हो, गो–गो करके हलक़ फाड़कर रोने लगी। मगर इन दोनों की गालियों और गुल–गपोड़ के नीचे उसकी आवाज़ दब गयी। थोड़ी देर छीना–झपटी हुई थी कि बुढ़िया फ़कीरा के हाथों में आ गयी। न जाने फ़कीरा ने ज़ोर करके छीन लिया या घसीटे ने खुद ही छोड़ दिया। मगर फ़कीरा जैसे ही उसको लेकर गालियाँ देता पीछे हटा है घसीटे भूखे भेड़िये की तरह उस पर फाँद पड़ा। वह तड़ से खड़े कद नीचे गिरा और बुढ़िया चीख़ती कलाबाज़ी खाती एक तरफ़ जा पड़ी। घसीटे फ़कीरे पर चढ़ बैठा और दोनों हाथों से उसका गला घोंटने लगा। घसीटे जैसे–जैसे घूँसे खाता, वैसे–वैसे ज़ोर से गला दबाता – आख़िर फ़कीरा के हाथ–पाँव ढीले पड़ गये। घसीटे ने कस–कसकर दो झटके दिये – फ़कीरा की आँखों के ढेले बाहर निकल आये, मुँह भयानक हो गया और हाथ–पाँव ढीले पड़ गये। अब घसीटे का गुस्सा उतरा और पता चला कि मैंने क्या किया है? वह काँपकर खड़ा हो गया और सकते के से आलम में फ़कीरा को घूरने लगा। उसका चेहरा रामभूत के बेचा

की तरह हौनक हो गया।

थोड़ी ही देर में घसीटे ने अपने हवास दुरुस्त कर लिए कलकत्ते में ऐसे कई क़िस्से देख चुका था। कई बार ऐसा हुआ कि उसके साथियों में आपस में लड़ाई हुई और एक ने दूसरे को मार डाला। डर किस बात का, फ़कीरों के मरने जीने की किसको परवाह होती है। मर गया, मर गया। हाय फ़कीरा – नाहक मरा – मान लेता मेरी बात। मैंने कहा था, कि इतने दिनों तक अम्माँ तुमने रखी, अब मुझे दे दो – अरे हाँ मैं भी तो कुछ दिनों ज़िन्दगी की बहार देख लूँ। मेरे भी तो जान है। मुझे ईंट पत्थर समझा था – जैसा किया वैसा भुगता।"

हाँ, अब जल्दी से अम्माँ को लो और भागो। प्यारी अम्माँ – कलकत्ता, वहाँ की भीख का क्या कहना। अब मज़ा मिलेगा कलकत्ते का!

घसीटे जल्दी से बुढ़िया की तरफ़ मुड़ा और देखा तो वह आधी चित–आधी पटमिट्टी के छोत की तरह ढेर है – आँखें चढ़ गयी हैं – मुँह कुल्हिया की तरह खुला हुआ है – और उसमें से रह–रहकर बलगम और थूक में लिथड़ी आधी चबी आधी समूची गिजा निकल रही है।

– नुक्तियाँ, गुलाब जामुन, पूरी के भीगे हुए टुकड़े – लोंदे के लोंदे – पीला–पीला फेन – घसीटे ने बढ़कर हाथ लगाया – बुढ़िया में कुछ नहीं था। सूरज डूब गया था। खण्डहर का हर कोना–भूतप्रेत का भट मालूम होता था। पतझड़ हवा के अक्कड़ सैकड़ों मील से करोड़ों दरख़्तों को ताराज करते मुर्दा पत्तों को उठा–उठाकर पटकते, वहशतनाक सुरों में सायँ–सायँ करते एक तरफ़ से आ रहे थे और दूसरी तरफ़ भागे जा रहे थे। मालूम होता था कि हर चीज़ को उड़ा ले जायेंगे। घसीटे हक्का–बक्का खड़ा था। उसके एक तरफ़ भाई की लाश थी और दूसरी तरफ़ माँ की। दोनों के पहलू में उसकी आख़िरी कोशिश की भी लाश पड़ी थी। जब तक माँ ज़िन्दा थी, भीख का ठीकरा थी – मगर मरकर वह उसके दिल में सचमुच माँ बन गयी थी – यह वही माँ थी, जो उसके हर दुख पर बेताब हो जाती थी – उसकी हर ख़ुशी पर अपनी हर ख़ुशी क़ुर्बानकर देती थी। फ़कीरा भी आख़िर भाई ही था। ज़िन्दगी का सहारा – उसकी याद कलकत्ते की बेकसी में भटकते मुसाफ़िर का दीया थी। इन दोनों के मरते ही दुनिया से जो रहा–सहा रिश्ता था, वह भी टूट गया – समझता था कि अब तो कश्ती किनारे लग चली है – पैसा भी मिल गया है और उसका बेहतर से बेहतर सामान हाथ आ गया है। सबकुछ मिल गया था मगर अभी ख़ुद उसके क़ाबिल नहीं बना था – उम्मीद की आख़िरी किरन भी डूब गयी। अब ज़िन्दगी की अथाह मुसीबतें तूफ़ानी समुद्र की तरह आगे–पीछे, दायें–बायें और नीचे हर तरफ़ थीं। उसके भयानक भँवर मुँह फाड़े बढ़ रहे थे – और पास तिनके तक का सहारा न था।

घसीटे सिर झुकाये उफक (क्षितिज) की तरफ़ चल खड़ा हुआ।

कालू भंगी

कृश्न चन्दर

मैंने इससे पहले हज़ार बार कालू भंगी के बारे में लिखना चाहा है लेकिन मेरा क़लम हर बार यह सोचकर रुक गया है कि कालू भंगी के बारे में लिखा ही क्या जा सकता है। विभिन्न कोणों से मैंने उसकी ज़िन्दगी को देखने–परखने–समझने की कोशिश की है लेकिन कहीं वह टेढ़ी लकीर दिखायी नहीं देती जिससे दिलचस्प कहानी लिखी जा सके। दिलचस्प होना तो दूर कोई सीधी–सादी कहानी, बेक़ैफ़ो–बेरंग, बेजान शब्दचित्र भी तो नहीं लिखा जा सकता। कालू भंगी के बारे में फिर भी न जाने क्या बात है, हर कहानी के आरम्भ में मेरे ज़ेहन में कालू भंगी आन खड़ा होता है और मुझसे मुस्कुराकर पूछता है –

"छोटे साब, मुझ पर कहानी नहीं लिखोगे...। कितने साल हो गये तुम्हें लिखते हुए?"

"आठ साल...।"

"कितनी कहानियाँ लिखीं तुमने?"

"साठ और दो बासठ!"

"मुझमें क्या बुराई है छोटे साब, तुम मेरे बारे में क्यों नहीं लिखते? देखो मैं कब से उस कहानी के इन्तज़ार में खड़ा हूँ। तुम्हारे ज़ेहन के एक कोने में एक मुद्दत से हाथ बाँधे खड़ा हूँ। छोटे साब मैं तो तुम्हारा पुराना हलालख़ोर हूँ, कालू भंगी! आख़िर तुम मुझपर कहानी क्यों नहीं लिखते?"

और मैं कुछ जवाब नहीं दे सकता। इस क़दर सीधी–सपाट ज़िन्दगी रही है कालू भंगी की कि मैं कुछ भी तो नहीं लिख सकता उसके बारे में। यह नहीं कि मैं उसके बारे में कुछ लिखना ही नहीं चाहता। दरअसल मैं कालू भंगी के बारे में लिखने का इरादा एक मुद्दत से कर रहा हूँ लेकिन कभी लिख नहीं सका, हज़ार कोशिश के बावजूद नहीं लिख सका। इसलिए आज तक कालू भंगी अपनी पुरानी झाड़ू लिये, अपने बड़े–बड़े नंगे घुटने लिये, अपने फटे–फटे खुरदुरे भद्दे पाँव लिये, अपनी सूखी

टाँगों पर उभरी दरीदें लिये, अपने कूल्हों की उभरी-उभरी हड्डियाँ लिए, अपने भूखे पेट और उसकी सूखी जिल्द (त्वचा) की स्याह सिलवटें लिये, अपनी मुर्झाई हुई छाती पर गर्द भरे बालों की झाड़ियाँ लिये, अपने सिकुड़े-सिकुड़े होंठों, फैले-फैले नथुनों, झुर्रियों वाले गाल और अपनी आँखों के धुन्धभरे गड्ढ़ों के ऊपर नंगी चँदिया उभारे मेरे ज़ेहन के कोने में खड़ा है अब तक। कई चरित्र आये और अपनी ज़िन्दगी बिताकर, अपनी अहमियत जताकर, अपनी नाटकीयता की छाप छोड़कर चले गये। हसीन औरतें, सुन्दर काल्पनिक आकृतियाँ, शैतान चेहरे हमारे ज़ेहन के रंग-रोगन से आशना हुए, इसकी चहारदीवारी में अपने दीप जलाकर चले गये। लेकिन कालू भंगी बदस्तूर अपनी झाड़ू सँभाले उसी तरह खड़ा है। उसने इस घर के अन्दर आने वाले हर चरित्र को देखा है, उसे रोते हुए, गिड़गिड़ाते हुए, मोहब्बत करते हुए, नफ़रत करते हुए, सोते हुए, जागते हुए, कहकहे लगाते हुए, तक़रीर करते हुए, ज़िन्दगी के हर रंग में, हर-हर कोण से, हर मंज़िल में देखा है, बचपन से बुढ़ापे से मौत तक उसने हर अजनबी को इस घर के दरवाज़े के अन्दर झाँकते हुए देखा है, और उसे अन्दर आते हुए देखकर उसके लिए रास्ता साफ़ कर दिया है। वह ख़ुद परे हट गया है। एक भंगी की तरह हटकर खड़ा हो गया है। हालाँकि दास्तान शुरू होकर ख़त्म भी हो गयी है, पात्र और दर्शक दोनों चले गये हैं, लेकिन कालू भंगी इसके बाद भी वहीं खड़ा है। अब सिर्फ़ एक क़दम उसने आगे बढ़ा लिया है और ज़ेहन के केन्द्र में आ गया है, ताकि मैं उसे अच्छी तरह देख लूँ। उसकी नंगी चँदिया चमक रही है और होंठों पर एक ख़ामोश सवाल है। एक अर्से से मैं उसे देख रहा हूँ, समझ में नहीं आता क्या लिखूँगा उसके बारे में, लेकिन आज यह भूत ऐसे मानेगा नहीं, उसे कई सालों तक टाला है आज उसे भी अलविदा कह दें!

मैं सात साल का था, जब मैंने कालू भंगी को पहली बार देखा, उसके बीस बरस बाद जब वह मरा, मैंने उसे उसी हालत में देखा। कोई अन्तर नहीं था। वही घुटने, वही पाँव, वही रंगत, वही चेहरा, वही चँदिया, वही टूटे हुए दाँत, वही झाड़ू, जो ऐसा मालूम होता था, माँ के पेट से उठाये चला आ रहा है। कालू भंगी की झाड़ू उसके जिस्म का हिस्सा मालूम होती थी। वह रोज़ मरीज़ों के तसले-बरतन साफ़ करता था, डिस्पेंसरी में फ़िनायल छिड़कता था फिर डॉक्टर साहब और कम्पाउण्डर साहब के बँगले-क्वार्टर की सफ़ाई का काम करता था। कम्पाउण्डर की बकरी और डॉक्टर साहब की गाय चराने ले जाता और दिन ढलते ही उन्हें वापस अस्पताल में ले आता और मवेशीख़ाने में बाँधकर अपना खाना तैयार करता और उसे खाकर सो जाता। बीस साल से मैं उसे यही काम करते देख रहा था। हर रोज़ – बिला नागा! इस अर्से में वह कभी एक दिन के लिए भी बीमार नहीं हुआ। यह बात आश्चर्य में डालने वाली थी लेकिन इतनी भी नहीं कि इसे विषय बनाकर कहानी लिखी जाये।

ख़ैर यह कहानी तो ज़बरदस्ती लिखवायी जा रही है। आठ साल से मैं उसे टालता आया हूँ लेकिन यह शख़्स नहीं माना। ज़बरदस्ती से काम ले रहा है। यह जुल्म मुझ पर भी और आप पर भी। मुझ पर इसलिए कि मुझे लिखना पड़ रहा है और आप पर इसलिए कि आपको पढ़ना पड़ रहा है। हालाँकि उसमें ऐसी कोई बात नहीं कि उसके बारे में इस तरह का कोई दर्द सर मोल लिया जाये। मगर क्या किया जाये – कालू भंगी की ख़ामोश निगाहों के अन्दर एक ऐसी खिंची-खिंची-सी इल्तजा है, एक ऐसी विवश निःस्वरता है कि मुझे उसके बारे में लिखना पड़ रहा है! और लिखते-लिखते यह भी सोचता हूँ कि उसपर क्या लिखूँगा मैं। कोई पहलू भी तो ऐसा नहीं जो दिलचस्प हो। कोई कोना ऐसा नहीं जो तारीक हो, कोई भंगिमा ऐसी नहीं, जिसमें आकर्षण हो, हाँ आठ साल से मुतवातिर मेरे ज़ेहन में खड़ा है, जाने क्यों। उसमें उसकी हठधर्मी के अलावा मुझे और कुछ तो नज़र नहीं आता। जब मैंने रूमानियत से आगे सफ़र बढ़ाया और हुस्न व हैवान की रंगारंग कैफ़ियतें देखता हुआ टूटे हुए तारों को छूने लगा, उस वक़्त भी वह वहीं था। जब मैंने बालकनी से झाँककर अन्नदाताओं की गुरबतें देखी और पंजाब की सरज़मीन पर ख़ून की नदियाँ बहती देखकर, अपने वहशी होने का इल्म हासिल किया, उस वक़्त यह वहीं मेरे ज़ेहन की देहरी पर खड़ा था, गुमसुम। मगर अब यह जायेगा ज़रूर। अबके उसे जाना ही पड़ेगा। अब मैं उसके बारे में लिख रहा हूँ। ख़ुदा के वास्ते उसकी बेमज़ा, बेरंग, फीकी-मीठी कहानी भी सुन लीजिये, ताकि यह यहाँ से दूर कहीं दफ़न हो जाये और मुझे उसकी गलीज कुरबत से निजात मिलें और अगर आज भी मैंने उसके बारे में नहीं लिखा और आपने उसे नहीं पढ़ा तो यह आठ साल बाद भी यहीं जमा रहेगा, यह मुमकिन है ज़िन्दगी भर यहीं खड़ा रहे!

लेकिन परेशानी तो यह है कि उसके बारे में क्या लिखा जाये। कालू भंगी के माँ-बाप भंगी थे और जहाँ तक मेरा ख़याल है उसके सभी पूर्वज भंगी थे और सैकड़ों बरस से यहीं रहते चले आये थे, इसी तरह इसी हालत में। फिर कालू भंगी ने शादी न की थी, उसने कभी इश्क़ नहीं किया था, उसने कभी दूर-दराज का सफ़र नहीं किया। हद तो यह है कि वह कभी अपने गाँव के बाहर नहीं गया था। वह दिन भर अपना काम करता और रात को सो जाता और सुबह उठ के फिर अपने काम में व्यस्त हो जाता। बचपन ही से वह यही करता चला आया था।

हाँ कालू भंगी में एक बात ज़रूर दिलचस्प थी, वह यह कि उसे अपनी नंगी चँदिया पर किसी जानवर, मसलन गाय या भैंस के ज़बान फिराने से बड़ा लुत्फ़ हासिल होता था। अक्सर दोपहर के वक़्त मैंने उसे देखा है कि नीले आसमान तले, सब्ज़ घास के मख़मली फ़र्श पर खुली धूप में वह अस्पताल के क़रीब एक खेत की मेंड़ पर उकड़ूँ बैठा है और एक गाय उसका सिर चाट रही है, बार-बार, और वह वहीं अपना सिर चटवाता ऊँघ-ऊँघकर सो गया है। उसे इस तरह सोते देखकर

मेरे दिल में सुख का एक अजीब अहसास उजागर होने लगता था और सृष्टि के थके-थके अर्द्धनिद्रा में डूबे शाश्वत सौन्दर्य का अहसास होने लगता था। मैंने अपनी छोटी-सी ज़िन्दगी में दुनिया की हसीनतरीन औरतें, फूलों की ताज़ातरीन कलियाँ, कायनात के अति सुन्दर दृश्य देखे हैं लेकिन न जाने क्यों ऐसी मासूमियत, ऐसा हुस्न, ऐसा सुकून किसी मंज़र में नहीं देखा जितना इस दृश्य में कि जब मैं सात बरस का था और वह खेत बहुत बड़ा व विराट दिखायी देता था और आसमान बहुत नीला व साफ़ और कालू भंगी की चँदिया शीशे की तरह चमकती थी और गाय की ज़बान आहिस्ता-आहिस्ता उसकी चँदिया चाटते हुए, उसे गोया सहलाती हुई खुसुर-खुसुर की स्वप्निल आवाज़ पैदा करती जाती थी, जी चाहता था मैं भी उसी तरह अपना सिर घुटाकर उस गाय के नीचे बैठ जाऊँ और ऊँघता-ऊँघता सो जाऊँ। एक बार मैंने ऐसा करने की कोशिश भी की तो पिताजी ने मुझे इतना पीटा, इतना पीटा और मुझसे भी ज़्यादा उस ग़रीब कालू भंगी को इतना पीटा कि मैं ख़ुद डर के मारे चीख़ने लगा कि कालू भंगी कहीं उनकी ठोकरों से मर न जाये। लेकिन कालू भंगी को इतनी मार खा के भी कुछ न हुआ। दूसरे दिन वह बदस्तूर झाड़ू देने के लिए हमारे बँगले पर मौजूद था।

कालू भंगी को जानवरों से बड़ा लगाव था। हमारी गाय तो उस पर जान छिड़कती थी और कम्पाउण्डर साहब की बकरी भी, हालाँकि बकरी बड़ी बेवफ़ा होती है। औरत से भी बढ़कर, लेकिन कालू भंगी की बात अलग थी। इन दोनों जानवरों को पानी पिलाये तो कालू भंगी, चारा खिलाये तो कालू भंगी, जंगल में चराये तो कालू भंगी – और रात में मवेशीख़ाने में बाँधे तो कालू भंगी – वो उसके एक-एक इशारे को इस तरह समझ जातीं जैसे कोई इन्सान किसी इन्सान के बच्चे की बातें समझता है। मैं कई बार कालू भंगी के पीछे गया हूँ। जंगल में, रास्ते में वह उन्हें बिलकुल खुला छोड़ देता था लेकिन फिर भी गाय और बकरी दोनों उसके साथ क़दम से क़दम मिलाते चले आते थे, गोया तीन दोस्त सैर करने निकले हों। रास्ते में गाय ने सब्ज़ घास देखकर मुँह मारा तो बकरी भी झाड़ी से पत्तियाँ खाने लगती और कालू भंगी है कि फल तोड़-तोड़कर खा रहा है और बकरी के मुँह में डाल रहा है और ख़ुद भी खा रहा है और आप ही आप बातें कर रहा है और इनसे भी बराबर बातें किये जा रहा है और वो दोनों जानवर भी कभी गुर्राकर कभी कान फटफटाकर, कभी पाँव हिलाकर, कभी दुम दबाकर, कभी नाचकर, कभी गाकर हर तरह से उसकी गुफ्तगू में शरीक़ हो रहे हैं। अपनी समझ में तो कुछ नहीं आता था कि ये लोग क्या बातें करते थे। फिर चन्द लम्हों के बाद कालू भंगी आगे चलने लगता तो गाय भी चरना छोड़ देती और बकरी भी झाड़ी से परे हट जाती और कालू भंगी के साथ-साथ चलने लगती। आगे कहीं छोटी-सी नदी आती या कोई नन्हा-सा चश्मा तो कालू भंगी वहीं बैठ जाता बल्कि लेटकर वहीं ताल की सतह से अपने

होंठ मिला देता और जानवरों की तरह पानी पीने लगता और इसी तरह वे दोनों जानवर भी पानी पीने लगते। क्योंकि बेचारे इन्सान तो नहीं थे कि चुल्लू से पी सकते। इसके बाद कालू भंगी अगर हरी घास पर लेट जाता तो बकरी भी उसकी टाँगों के पास अपनी टाँगें सिकोड़कर प्रार्थना करने जैसी अन्दाज़ में बैठ जाती और गाय तो इस अन्दाज़ से उसके पास आ बैठती कि मुझे गुमान होता कि वह उसकी पत्नी है और अभी-अभी खाना पकाकर फ़ुरसत पायी है। उसकी हर निगाह में और चेहरे के हर उतार-चढ़ाव में एक सुकून भरा गृहस्थ अन्दाज़ झलकने लगता और जब वह जुगाली करने लगती तो मुझे मालूम होता जैसे कोई बहुत सुघड़ गृहणी क्रोशिया लिये बिनाई में मसरूफ़ है या कालू भंगी का स्वेटर बुन रही हो।

इन गाय और बकरी के अलावा एक लँगड़ा कुत्ता था जो कालू भंगी का बड़ा दोस्त था। वह लँगड़ा था इसलिए दूसरे कुत्तों के साथ ज़्यादा चल-फिर न सकता था और अक्सर अपने लँगड़े होने की वजह से दूसरे कुत्तों से पिटता, भूखा और ज़ख़्मी रहता। कालू भंगी अक्सर उसकी देखभाल और ख़ातिर में लगा रहता। कभी तो उसे नहलाता, कभी उसकी चिचुड़ियाँ दूर करता, उसके घावों पर मरहम लगाता, उसे मक्के की रोटी का सूखा टुकड़ा देता। लेकिन यह कुत्ता बड़ा स्वार्थी जानवर था, दिन में केवल दो बार कालू भंगी से मिलता, दोपहर और शाम को। खाना खाके और ज़ख़्मों पर मरहम लगवाकर फिर घूमने चला जाता। कालू भंगी और उस लँगड़े कुत्ते की भेंट बहुत संक्षिप्त होती थी; बड़ी दिलचस्प भी। मुझे तो वह कुत्ता एक आँख न भाता था लेकिन कालू भंगी उससे बड़े तपाक से मिलता था।

इसके अलावा कालू भंगी की जंगल के हर जानवर, चरिन्दे-परिन्दे से शनासाई थी। रास्ते में उसके पाँव के सामने कोई कीड़ा आ जाता तो वह उसे उठाकर झाड़ी पर रख देता। कहीं कोई नेवला, बोलने लगता तो यह उसकी बोली में जवाब देता। तीतर, बटेर, गटारी, लाल चिड़ा, तोता, मुर्गाबी, हर परिन्दे की भाषा वह जानता था। इस हिसाब से वह राहुल सांकृत्यायन से भी बड़ा पण्डित था, कम से कम मेरे जैसे सात बरस के बच्चे की नज़रों में तो वह अपने माँ-बाप से भी अच्छा मालूम होता था, और फिर मक्की का भुट्टा ऐसे मज़े का तैयार करता था और आग पर इतने अपनेपन से मद्धम आँच पर भूनता था कि मक्की का दाना कुन्दन बन जाता और जायके में शहद का स्वाद देता और ख़ुशबू भी ऐसी सोंधी-सोंधी, मीठी-मीठी जैसे धरती की साँस। निहायत आहिस्ता-आहिस्ता बड़े सुकून और महारत से वह भुट्टे को हर तरफ़ से देख-देखकर भूनता था, जैसे वह काफ़ी समय से भुट्टे को अच्छी तरह जानता हो। एक दोस्त की तरह वह भुट्टे से बातें करता, इतनी नरमी, आत्मीयता और स्नेह से उससे पेश आता, जैसे वह भुट्टा उसका अपना रिश्तेदार या सगा भाई हो। और लोग भी भुट्टा भूनते थे, मगर वह बात कहाँ। इस क़दर कच्चे, बेस्वाद होते थे कि उन्हें बस मक्की का भुट्टा ही कहा जा सकता था। लेकिन कालू

भंगी के हाथों में पहुँचकर वही भुट्टा कुछ का कुछ हो जाता और जब वह आग पर सिंककर पूरी तरह तैयार हो जाता तो बिल्कुल एक नयी नवेली दुल्हन की तरह सुहाग का जोड़ा पहने सुनहरा-सुनहरा चमकता नज़र आता। मेरे ख़याल में भुट्टे को ख़ुद यह आभास हो जाता था कि कालू भंगी उससे कितनी मोहब्बत करता है। वरना मोहब्बत के बग़ैर इस बेजान शय में इतना सौन्दर्य कैसे पैदा हो सकता था। मुझे कालू भंगी के हाथों भुने भुट्टे खाने में बड़ा मज़ा आता था और मैं उन्हें बड़े मज़े से छिप-छिपकर खाता था। एक बार पकड़ा गया तो बड़ी ठुकाई हुई, बुरी तरह। बेचारा कालू भंगी भी पिटा मगर दूसरे दिन झाड़ू लिये वह फिर बँगले पर हाज़िर था।

और अब कालू भंगी के बारे में और कोई दिलचस्प बात याद नहीं आ रही। मैं बचपन से जवानी में आया लेकिन कालू भंगी उसी तरह रहा। मेरे लिए अब वह कम रोचक हो गया था। बल्कि यूँ कहिये कि मुझे उसमें किसी तरह की दिलचस्पी नहीं रही थी। हाँ कभी-कभी उसका चरित्र मुझे खींचता। यह उन दिनों की बात है, जब मैंने नया-नया लिखना शुरू किया था।

मैं स्टडी के लिए उससे सवाल पूछता और नोट लेने के लिए फाउण्टेन पेन और पैड साथ रख लेता।

"कालू भंगी, तुम्हारी ज़िन्दगी में कोई ख़ास बात?"

"कैसी बात साहब?"

"कोई ख़ास बात, अजीब, अनोखी या नयी!"

"नहीं छोटे साहब!" (यहाँ तक तो स्टडी का नतीजा सिफ़र रहा, अब आगे चलिये...)।

"अच्छा यह बताओ तुम तनख़्वाह (वेतन) लेकर क्या करते हो?" मैंने दूसरा सवाल पूछा।

"तनख़्वाह लेकर क्या करता हूँ...?" वह सोचने लगता है।

"...आठ रुपये मिलते हैं मुझे," फिर वह उँगलियों पर गिनने लगता है – " चार रुपयों का आटा लाता हूँ... एक रुपये का नमक, एक का तम्बाकू, आठ आने की चाय, चार आने का गुड़, चार आने का मसाला, कितने रुपये हो गये छोटे साहब?"

"सात रुपये – "

"हाँ, सात रुपये, हर महीने एक रुपया बनिया को देता हूँ उससे कपड़े सिलवाने के लिए कर्ज़ लेता हूँ न। साल में दो जोड़े तो चाहिए और छोटे साहब, कहीं बड़े साहब पगार में एक रुपया बढ़ा दें तो मज़ा आ जाये।"

"वह कैसे – "

"घी लाऊँगा एक रुपये का और मक्की के पराठे खाऊँगा, कभी पराठे नहीं खाये। मालिक बड़ा जी चाहता है।"

अब बताइये इन आठ रुपयों पर कोई क्या कहानी लिखे?

फिर मेरी शादी हो गयी। जब रातें जवान और चमकदार होने लगतीं और क़रीब के जंगल से शहद और कस्तूरी और जंगली गुलाब की ख़ुशबुएँ आने लगतीं और हिरन चौकड़ियाँ भरते हुए दिखायी देते और सितारे झुकते-झुकते कानों में सरगोशियाँ करने लगते और किसी के रसीले होंठ आने वाले चुम्बनों की कल्पना करके काँपने लगते, उस वक़्त भी कहीं कालू भंगी के बारे में कुछ लिखना चाहता और काग़ज़ ले के उसके पास आ जाता।

"कालू भंगी तुमने ब्याह नहीं किया।"

"नहीं छोटे साब – ।"

"क्यों?"

"इस इलाक़े में एक ही भंगी हूँ और दूर-दूर तक कोई भंगी नहीं है छोटे साहब, फिर मेरी शादी कैसे हो सकती है?" (लीजिये यह रास्ता भी बन्द हुआ)

"तुम्हारा जी नहीं चाहता कालू भंगी?" मैंने दोबारा कोशिश करके कुछ कुरेदना चाहा।

"क्या साहब?"

"इश्क़ करने का मन होता है तुम्हारा?" किसी से मोहब्बत तो नहीं की, अभी तक तुमने शादी नहीं की।"

"इश्क़ क्या होता है, छोटे साब!"

"औरत से इश्क़ करते हैं लोग।"

"इश्क़ कैसे करते है साब? शादी तो ज़रूर करते हैं, सब लोग। बड़े लोग इश्क़ भी करते होंगे। मगर साहब, हमने नहीं सुना जो आप कह रहे हैं। रही शादी की बात वह मैंने आपको बता दी, शादी क्यों नहीं की मैंने। कैसे होती मेरी शादी, आप बताइये?... (हम क्या बताते, ख़ाक!)

"तुम्हें अफ़सोस नहीं है कालू भंगी?"

"किस बात का अफ़सोस, छोटे साब?"

मैंने हारकर उस पर लिखने का विचार छोड़ दिया।

आठ साल हुये कालू भंगी मर गया। वह जो कभी बीमार नहीं हुआ था अचानक ऐसा बीमार पड़ा कि फिर कभी रोग शय्या से न उठा। उसे अस्पताल में भर्ती करवा दिया गया था। वह अलग वार्ड में रहता था। कम्पाउण्डर दूर से उसके हलक़ में दवा उड़ेल देता और एक चपरासी उसके लिए खाना रख आता। वह अपने बरतन ख़ुद साफ़ करता, अपना बिस्तर ख़ुद करता, अपना पाख़ाना भी ख़ुद साफ़ करता और जब वह मर गया तो उसकी लाश को पुलिस वालों ने ठिकाने लगा दिया। क्योंकि उसका कोई वारिस न था। वह हमारे यहाँ बीस साल से रहा था। लेकिन हम कोई उसके रिश्तेदार थोड़े ही थे। इसीलिए उसकी आख़िरी पगार भी सरकारी ख़ज़ाने

में जमा हो गयी। क्योंकि उसका कोई वारिस न था और जिस दिन वह मरा उस रोज़ भी कोई ख़ास बात नहीं हुई। रोज़ की तरह उस दिन भी अस्पताल खुला, डॉक्टर साहब ने नुस्ख़े लिखे, कम्पाउण्डर ने तैयार किये, मरीज़ों ने दवा ली और घर लौट गये। फिर रोज़ की तरह अस्पताल भी बन्द हुआ। घर आकर हम सबने आराम से खाना खाया। रेडियो सुना और लिहाफ़ ओढ़कर सो गये। सुबह उठे तो पता चला कि पुलिस वालों ने दया करके उसकी लाश ठिकाने लगवा दी। इस पर डॉक्टर साहब की गाय और कम्पाउण्डर साहब की बकरी ने दो रोज़ तक न कुछ खाया न पिया और वार्ड के बाहर खड़े-खड़े चिल्लाती रहीं। जानवर की नस्ल है न आख़िर।

"अरे तू फिर झाड़ू लेकर आ पहुँचा, आख़िर चाहता क्या है बता दे!"

कालू भंगी अभी तक वहीं खड़ा है।

"भई अब तो मैंने सबकुछ लिख दिया, वो सबकुछ जो मैं तुम्हारे बारे में जानता था। अब भी यहीं खड़े हो परेशान कर रहे हो, लिल्लाह चले जाओ, क्या मुझसे कुछ छूट गया है? कोई भूल हो गयी है? तुम्हारा नाम कालू भंगी, काम भंगी इस इलाक़े से कभी बाहर नहीं गये, शादी नहीं की, इश्क़ नहीं लड़ाया, ज़िन्दगी में कोई हंगामी बात नहीं हुई, कोई आश्चर्य-चमत्कार नहीं हुआ। जैसे महबूबा के होंठों में, अपने बच्चे के प्यार में होता है, ग़ालिब के क़लाम में होता है, कुछ भी तो नहीं हुआ तुम्हारी ज़िन्दगी में। फिर मैं क्या लिखूँ? और क्या लिखूँ? तुम्हारी पगार आठ रुपये, चार रुपये का आटा, एक रुपए का नमक, एक रुपये की तम्बाकू, आठ आने की चाय, चार आने का गुड़, चार आने का मसाला, कुल सात रुपये और एक बचा हुआ रुपया बनिया का। आठ रुपये हो गये मगर आठ रुपये में कहानी नहीं होती। आजकल तो पच्चीस, पचास, सौ में नहीं होती। मगर आठ रुपये में शर्तिया कोई कहानी नहीं हो सकती। फिर मैं क्या लिख सकता हूँ तुम्हारे बारे में। अब खिलजी ही को लो, अस्पताल में कम्पाउण्डर है। बत्तीस रुपये पगार पाता है। विरासत से निम्न मध्यवर्ग के माँ-बाप मिले थे, उन्होंने मिडिल तक पढ़ा दिया। फिर खिलजी ने कम्पाउण्डरी का इम्तहान पास कर लिया। वह जवान है। उसके चेहरे पर रंगत है। यह जवानी, यह रंगत कुछ चाहते हैं। वह सफ़ेद लट्ठे की शलवार पहन सकता है। कमीज़ पर कलफ लगा सकता है। बालों में सुगन्ध वाला तेल डालकर कंघी कर सकता है। सरकार ने उसे रहने के लिए बँगलानुमा क्वार्टर भी दे रखा है। डॉक्टर चूक जाये तो फ़ीस भी झाड़ लेता है और सुन्दर स्त्री रोगियों से इश्क़ भी लड़ा लेता है। वह नूरां वाला क़िस्सा तुम्हें याद है। नूरां थैया से आयी थी, सोलह-सत्रह बरस की अल्हड़ जवानी। चार कोस से सिनेमा के इश्तहार की तरह नज़र आ जाती। बड़ी बेवक़ूफ़ थी। वह अपने गाँव के दो नौजवानों का इश्क़ क़बूल किये बैठी थी। जब नम्बरदार का लड़का सामने आ जाता तो उसकी हो जाती और जब पटवारी का लड़का उसे दिखायी देता तो वह उसकी तरफ़ झुकने लगती। वह अजीब कशमकश

में रहती। आम तौर पर इश्क़ को लोग पुख़्ता इरादे वाला काम समझते हैं, हालाँकि इश्क़ बड़ा ग़ैर-यक़ीनी और असमंजस भरी हालत का प्रतीक होता है। यानी इश्क़ इससे भी है, उससे भी है और फिर शायद कहीं नहीं है, अगर है भी इस क़दर वक़्ती, गिरगिटी हंगामी कि इधर नज़र चूकी उधर इश्क़ ग़ायब। सच्चाई ज़रूर होती है लेकिन ठहराव ग़ायब रहता है। इसी वजह से तो नूरां फ़ैसला नहीं कर पाती थी। उसका दिल नम्बरदार के बेटे के लिए भी धड़कता था और पटवारी के पूत के लिए भी। उसके होंठ नम्बरदार के बेटे के होंठों से मिल जाने के लिए बेताब हो उठते और पटवारी के पूत की आँखों से आँखें टकराते ही उसका दिल यूँ काँपने लगता जैसे चारों तरफ़ समन्दर हो, चारों तरफ़ लहरें हों और एक अकेली कश्ती हो, नाज़ुक-सी पतवार हो और उसके चारों तरफ़ कोई न हो और कश्ती डोलने लगे, हौले-हौले डोलती जाये और नाज़ुक-सी पतवार नाज़ुक से हाथों चलती-चलती थम जाये और साँस रुकते-रुकते रुक-सी जाये और आँखें झुकती-झुकती झुक-सी जायें और जुल्फें बिखरती-बिखरती बिखर-सी जायें और लहरें घूमती हुई मालूम दें और बड़े-बड़े दायरे फैलते-फैलते फैल जायें और फिर चारों तरफ़ सन्नाटा फैल जाये, और दिल एकदम धक से रह जाये और कोई अपनी बाँहों में भींच ले। हाय – पटवारी के बेटे को देखने से ऐसी हालत होती थी नूरां की और वह कोई फ़ैसला न कर सकती थी – नम्बरदार का बेटा-पटवारी का बेटा। पटवारी का बेटा, नम्बरदार का बेटा। वह दोनों को ज़बान दे चुकी थी, दोनों से शादी करने का इक़रार कर चुकी थी, दोनों पर मर मिटी थी, नतीजा यह हुआ वे आपस में लड़ते-लड़ते लहूलुहान हो गये। और जब जवानी का बहुत-सा लहू नसों से निकल गया तो उन्हें अपनी बेवक़ूफ़ी पर बड़ा ग़ुस्सा आया। पहले नम्बरदार का बेटा नूरां के पास पहुँचा और अपनी छुरी से उसे हलाक करना चाहा और नूरां की बाँह पर ज़ख़्म आ गये, मगर वह बच गयी क्योंकि वह फ़ौरन अस्पताल लायी गयी थी और यहाँ उसका इलाज शुरू हो गया। आख़िर अस्पताल वाले भी इन्सान होते हैं ख़ूबसूरती दिलों पर असर करती है, इंजेक्शन की तरह। थोड़ा बहुत उसका असर ज़रूर होता है। किसी पर कम किसी पर ज़्यादा। डॉक्टर साहब पर कम था, कम्पाउण्डर पर ज़्यादा। नूरां की देखभाल में खिलजी दिलोजान से लगा रहा। नूरां से पहले बेगमाँ, बेगमाँ से पहले रेशमा और रेशमा से पहले जानकी के साथ भी यही हुआ था, मगर वह खिलजी के नाकाम इश्क़ थे क्योंकि वे औरतें ब्याही हुई थीं। रेशमा का तो एक बच्चा भी था! बच्चों के अलावा माँ-बाप थे और पति थे, पतियों की कातर दृष्टियाँ थीं जो गोया खिलजी के सीनों में घुसकर उसकी कामनाओं के आख़िरी कोने तक पहुँच जाना चाहती थीं। खिलजी क्या कर सकता था, मजबूर होके रह जाता। उसने बेगमाँ से इश्क़ किया, रेशमा और जानकी से भी। वह हर रोज़ बेगमाँ के भाई को मिठाई खिलाता था, रेशमा के नन्हे बेटे को दिन भर उठाये फिरता था। जानकी को फूलों

से बड़ी मोहब्बत थी। वह हर रोज़ सुबह उठ के मुँह अँधेरे जंगल की तरफ़ चला जाता और ख़ूबसूरत लाला (एक फूल) के गुच्छे तोड़कर उसके लिये लाता। बेहतरीन दवाएँ, बेहतरीन गिजाएँ, बेहतरीन तीमारदारी लेकिन वक़्त आने पर जब बेगमाँ अच्छी हुई तो रोते-रोते अपने खाविन्द के साथ चली गयी। और जब रेशमा अच्छी हुई तो अपने बेटे को लेके चली गयी। जानकी अच्छी हुई तो उसने खिलजी के दिये हुए फूल अपने सीने से लगाये। उसकी आँखें डबडबा आयीं और उसने अपने पति का हाथ थाम लिया और चलते-चलते घाटी की ओट में खो गयी। घाटी के आख़िरी किनारे पर पहुँचकर उसने मुड़कर खिलजी की तरफ़ देखा और खिलजी मुँह फेरकर वार्ड की दीवार से लगकर रोने लगा। रेशमा के रुख़सत होते वक़्त भी वह इसी तरह रोया था। बेगमाँ के जाते वक़्त भी इसी शिद्दत, इसी खुलूस, इसी तकलीफ़ के दर्द भरे अहसास से मजबूर होकर रोया था। लेकिन खिलजी के लिये न रेशमा रुकी, न बेगमाँ, न जानकी और फिर अब कितने सालों के बाद नूरां आयी थी और उसका दिल इसी तरह धड़कने लगा था और यह धड़कन रोज़-ब-रोज़ बढ़ती चली जाती थी। शुरू-शुरू में नूरां की हालत ख़राब थी। उसका बचना मुश्किल था, मगर खिलजी की अथक कोशिशों से ज़ख़्म भरते चले गये। पीप कम होती गयी, सड़ांध दूर होती गयी, सूजन ग़ायब होती गयी, नूरां की आँखों में चमक और उसके सफ़ेद चेहरे पर सेहत की सुर्ख़ी आती गयी और जिस दिन खिलजी ने उसकी बाँहों की पट्टी उतारी तो नूरां कृतज्ञता से शरीर आवेग के साथ उसकी छाती से लिपटकर रोने लगी और और जब उसके पाँव की पट्टी उतरी तो उसने पाँव में मेंहदी रचाई और हाथों पर, आँखों में काजल लगाया और बालों की जुल्फें सँवारी तो खिलजी का दिल ख़ुशी से चौकड़ियाँ भरने लगा। नूरां खिलजी को दिल दे बैठी थी। उसने खिलजी से शादी का वायदा कर लिया था। नम्बरदार का बेटा और पटवारी का बेटा दोनों बारी-बारी कई दफ़ा उसे देखने के लिए, उससे माफ़ी माँगने के लिए, उससे शादी का पैग़ाम करने के लिए अस्पताल आये थे और नूरां उन्हें देखकर हर बार घबड़ा जाती, काँपने लगती, मुड़-मुड़कर देखने लगती और उस वक़्त तक उसे चैन न आता जब तलक वो लोग चले न जाते। खिलजी उसके हाथ को अपने हाथ में ले लेता और जब वो बिल्कुल अच्छी हो गयी तो सारा गाँव, उसका अपना गाँव उसे देखने के लिए उमड़ पड़ा। गाँव की छोरी अच्छी हो गयी थी, डॉक्टर साहब और कम्पाउण्डर साहब की मेहरबानी से। नूरां के माँ-बाप बिछे जाते थे और आज तो नम्बरदार भी आया था और पटवारी भी और दोनों कम दिमाग़ लड़के भी जो अब नूरां को देख-देखकर अपने किये पर पशेमाँ हो रहे थे और फिर नूरां ने अपनी माँ का सहारा लिया और काजल में तैरती हुई डबडबाई आँखों से खिलजी की तरफ़ देखा और चुपचाप अपने गाँव चली गयी। सारा गाँव उसे लेने के लिए आया था और उसके क़दमों के पीछे-पीछे नम्बरदार के बेटे और पटवारी के

बेटे के क़दम थे, ये क़दम और दूसरे क़दम और सैकड़ों क़दम जो नूरां के साथ चल रहे थे, खिलजी के सीने की घाटी पर से गुज़रते गये और पीछे एक धुँधली गर्दोगुबार से अटी रहगुज़र छोड़ गये! और कोई वार्ड की दीवार के साथ लगकर रोने और सिसकियाँ लेने लगा।

बड़ी ख़ूबसूरत रूमानी ज़िन्दगी थी खिलजी की, खिलजी जो मिडिल पास था, बत्तीस रुपये तनख़्वाह पाता था। पन्द्रह–बीस ऊपर से कमा लेता था। खिलजी जो जवान था, जो मोहब्बत करता था, जो छोटे–से बँगले में रहता था, जो अच्छे कहानीकारों की कहानियाँ पढ़ता था और इश्क़ में रोता था। किस क़दर दिलचस्प, रूमानी और पुरकैफ़ ज़िन्दगी थी खिलजी की, लेकिन कालू भंगी के बारे में मैं क्या कह सकता हूँ – सिवाय इसके कि –

1. कालू भंगी ने बेगमाँ की लहू और पीप से भरी हुई पट्टियाँ धोयीं।

2. कालू भंगी ने बेगमाँ का पाख़ाना, पेशाब साफ़ किया।

3. कालू भंगी ने रेशमाँ की गलीज पट्टियाँ साफ़ कीं।

4. कालू भंगी रेशमाँ के बेटे को मक्की के भुट्टे खिलाता था।

5. कालू भंगी ने जानकी की गन्दी पेटियाँ धोयीं और हर रोज़ उसके कमरे में फ़िनायल छिड़कता रहा और शाम से पहले वार्ड की खिड़की बन्द करता रहा और आतिशदान में लकड़ियाँ जलाता रहा ताकि जानकी को सर्दी न लगे।

6. कालू भंगी नूरां का पाख़ाना उठाता रहा, दिन, माह, दस रोज़ तक।

कालू भंगी ने रेशमाँ को जाते हुए देखा, उसने नूरां को जाते हुए देखा था, लेकिन वह कभी दीवार से लगकर नहीं रोया, वह पहले तो दो–एक लम्हों के लिए हैरान हो जाता, फिर उसी हैरत से अपना सिर खुजाने लगता और जब कोई बात उसकी समझ में नहीं आती तो वह अस्पताल के नीचे खेतों में चला जाता और गाय से अपनी चँदिया चटवाने लगता। लेकिन उसका ज़िक्र तो मैं पहले कर चुका हूँ फिर और क्या लिखूँ तुम्हारे बारे में कालू भंगी। सबकुछ तो कह दिया। जो कुछ कहना था, जो कुछ तुम कह रहे हो, तुम्हारी पगार बत्तीस रुपये होती, तुम मिडिल पास या फेल होते, तुम्हें विरासत में कुछ कल्चर, तहज़ीब, कुछ थोड़ी–सी इन्सानी ख़ुशी और इस ख़ुशी की बुलन्दी मिली होती तो मैं तुम्हें विषय बनाकर कोई कहानी लिखता। अब तुम्हारे आठ रुपये पर क्या कहानी लिखूँ? हर बार इन आठ रुपयों को उलटफेर के देखता हूँ। चार रुपये का आटा, एक रुपये का नमक, एक रुपये का तम्बाकू, आठ आने की चाय, चार आने का गुड़, चार आने का मसाला। कुल सात रुपये और एक बचा हुआ रुपया बनिये का। आठ रुपये हो गये। कैसे कहानी बनेगी तुम्हारी कालू भंगी? तुम्हारी कहानी मुझसे नहीं लिखी जायेगी। चले जाओ – देखो मैं तुम्हारे सामने हाथ जोड़ता हूँ। मगर यह मनहूस अभी तक यहीं खड़ा है। अपने टूटे पीले–पीले गन्दे दाँत निकाले अपनी फूटी हँसी हँस रहा है।

तू ऐसे नहीं जायेगा। अच्छा भई मैं फिर अपनी यादों की राख कुरेदता हूँ। शायद अब तेरे लिये मुझे बत्तीस रुपयों से नीचे उतरना पड़ेगा और बख़्तयार चपरासी का आसरा लेना पड़ेगा। बख़्तयार चपरासी को पन्द्रह रुपये तनख़्वाह मिलती है और जब कभी वह डॉक्टर या कम्पाउण्डर या वैक्सीनेटर के हमराह दौरे पर जाता है तो उसे डबल भत्ता और सफ़र का ख़र्च भी मिलता है। फिर गाँव में उसकी अपनी ज़मीन भी है और एक छोटा-सा मकान भी है जिसके तीन तरफ़ चीड़ के ऊँचे दरख़्त हैं और चौथी तरफ़ एक ख़ूबसूरत बाग़ीचा है। जो उसकी बीवी ने लगाया है, उसमें उसने कर्मे का साग बोया है। और पालक, मूलियाँ और शलजम और सब्ज़ मिर्चें, बड़ी लौकी और कद्दू जो गर्मियों की धूप में सुखाये जाते हैं और सर्दियों में जब बर्फ़ पड़ती है और हरियाली मर जाती है तो खाये जाते हैं। बख़्तयार की बीवी ये सबकुछ जानती है। बख़्तयार के तीन बच्चे हैं। उसकी बूढ़ी माँ है जो हमेशा अपनी बहू से झगड़ा करती रहती है, एक दफ़ा बख़्तयार की माँ अपनी बहू से झगड़ा करके घर से चली गयी थी। उस रोज़ काले बादल आसमान पर छाये हुए थे और पाले के मारे दाँत बज रहे थे और घर से बख़्तयार का बड़ा लड़का अम्माँ के चले जाने की ख़बर लेकर दौड़ता-दौड़ता अस्पताल आया था और बख़्तयार उसी क्षण अपनी माँ को वापस लाने के लिए कालू भंगी को साथ लेकर चल दिया था। वो दिनभर उसे जंगल में ढूँढ़ते रहे। वह, कालू भंगी और बख़्तयार की बीवी जो अब अपने किये पर शर्मिन्दा थी, अपनी सास को ऊँची आवाज़ दे-देकर रोती जाती थी। आसमान अब्रआलूद था और सर्दी से हाथ-पाँव ठण्डे पड़ते जाते थे और पाँव तले चैल के सूखे झूमर फिसले जाते थे। फिर बारिश शुरू हो गयी, फिर करैड़ी पड़ने लगी और चारों तरफ़ गहरी ख़ामोशी छा गयी। जैसे एक गहरी मौत ने अपने दरवाज़े खोल दिये हों और बर्फ़ की परियों को अन्दर क़तार बाहर ज़मीन पर भेज दिया हो, बर्फ़ के गाले ज़मीन पर गिरते गये – स्थिर, मौन, निःस्वर सफ़ेद मख़मल घाटियों, वादियों, चोटियों पर फैल गयी।

"अम्माँ..." बख़्तयार की बीवी ज़ोर से चिल्लायी।

"अम्माँ..." बख़्तयार चिल्लाया।

"अम्माँ..." कालू भंगी ने आवाज़ दी।

जंगल गूँजकर ख़ामोश हो गया।

फिर कालू भंगी ने कहा – "मेरा ख़याल है वह नक्कर गयी होगी तुम्हारे मामू के पास।"

नक्कर के दो कोस इधर बख़्तयार की अम्माँ मिली। बर्फ़ गिर रही थी और वह चली जा रही थी। गिरती, पड़ती, लुढ़कती, थमती, हाँफती-काँपती बढ़ती चली जा रही थी और जब बख़्तयार ने उसे पकड़ा तो उसने एक क्षण को प्रतिरोध किया, फिर वह उसकी भुजाओं में गिरकर बेहोश हो गयी और बख़्तयार की बीवी ने उसे थाम

लिया और रास्ते भर वह उसे बारी–बारी से उठाते चले आये। बख़्तयार और कालू भंगी। जब वो लोग वापस घर पहुँचे तो बिल्कुल अँधेरा हो चला था और उन्हें वापस आते देखकर बच्चे रोने लगे और कालू भंगी एक तरफ़ होके खड़ा हो गया और अपना सिर खुजाने लगा और इधर–उधर देखने लगा। फिर उसने धीरे से दरवाज़ा खोला और बाहर चला आया। हाँ बख़्तयार की ज़िन्दगी में भी कहानियाँ हैं। छोटी–छोटी सुन्दर–सुन्दर कथाएँ–उपकथाएँ। मगर कालू भंगी तुम्हें विषय बनाकर मैं अधिक क्या लिख सकता हूँ। मैं अस्पताल के हर व्यक्ति के बारे में कुछ न कुछ ज़रूर लिख सकता हूँ लेकिन तुम्हारे बारे में इतना कुछ कुरेदने के बाद भी समझ में नहीं आता कि तुम्हारा क्या किया जाये। ख़ुदा के लिए चले जाओ बहुत सता लिया तुमने।

लेकिन मुझे मालूम है, यह नहीं जायेगा। इसी तरह ज़ेहन पर सवार रहेगा और मेरी कहानियों में अपनी गलीज झाड़ू लिये खड़ा है। अब कुछ मेरी समझ में आ रहा है कि तू क्या चाहता है। तू वह कहानी सुनना चाहता है जो हुई नहीं लेकिन हो सकती थी। मैं तेरे पाँव से शुरू करता हूँ। सुन, तू चाहता है कि कोई तेरे गन्दे–खुरदुरे पाँव धो डाले। धो–धोकर उनसे गिलाजत दूर करे, उनकी बिवाइयों पर मरहम लगाये। तू चाहता है तेरे घुटनों की उभरी हुई हड्डियाँ गोश्त में छिप जायें। तेरी जाँघों में सख़्ती और ताक़त आ जाये। तेरे पेट की मुरझाई हुई सिलवटें ग़ायब हो जायें। तेरी कमज़ोर छाती के गर्द से अटे हुए बाल काली चमक से भर जायें। तू चाहता है कोई तेरे होंठों में रस डाल दे, उनमें बोलने की शक्ति भर दे। तेरी आँखों में चमक डाल दे, तेरे गालों में लहू भर दे। तेरी चँदिया को काले घने बालों से भर दे, तुझे साफ़ लिबास दे दे, तेरे इर्द–गिर्द एक छोटी से चहारदीवारी खड़ी कर दे। हसीन, उजली और पवित्रता से भरी हुई। उसमें तेरी बीवी राज करे, तेरे बच्चे कहकहे लगाते फिरें। जो कुछ तू चाहता है वह मैं नहीं कर सकता। मैं तेरे टूटे–फूटे दाँतों की रोती हुए हँसी पहचानता हूँ। जब तू गाय से अपना सिर चटवाता है, मुझे मालूम है तू अपनी कल्पना में अपनी बीवी को देखता है जो तेरे बालों में उँगलियाँ फेरकर तेरा सिर सहला रही है। यहाँ तक कि तेरी आँखें बन्द हो जाती हैं, तेरा सिर झुक जाता है और तू उसकी मेहरबान आगोश में सो जाता है। और जब तू धीमे–धीमे मद्धम आग पर मेरे लिए मक्की का भुट्टा सेंकता है और मुझे जिस मोहब्बत व प्यार से वह भुट्टा खिलाता है तो अपनी सोच के आँगन में उस नन्हे बच्चे को देख रहा होता है, जो तेरा बेटा नहीं है। जो अभी नहीं आया, जो तेरी ज़िन्दगी में कभी नहीं आयेगा, लेकिन जिससे तूने स्नेहमयी पिता की तरह प्यार किया है। तूने उसे गोदियों में खिलाया है, उसका मुँह चूमा है, उसे अपने कन्धे पर बिठाकर जहान में घुमाया है, देख लो यह है मेरा बेटा, यह है मेरा बेटा – और जब ये सबकुछ तुझे नहीं मिला तो सबसे अलग खड़ा हो गया और हैरत

से अपना सिर खुजाने लगा और तेरी उँगलियाँ अचेतन रूप से गिनने लगीं, एक-दो, तीन-चार, पाँच, छह, सात, आठ – आठ रुपये!

मैं तेरी वह कहानी जानता हूँ जो हो सकती थी लेकिन हो न सकी, क्योंकि मैं कहानीकार हूँ, मैं एक नयी कहानी गढ़ सकता हूँ। इसलिए मैं अकेला काफ़ी नहीं हूँ। इसके लिए कहानीकार और उसका पढ़ने वाला, और डॉक्टर और कम्पाउण्डर और बख़्तयार, गाँव के पटवारी और नम्बरदार और दुकानदार, हाकिम और सियासतदाँ, मज़दूर और खेतों पर काम करने वाले किसान – हर शख़्स की, लाखों-करोड़ों-अरबों लोगों की इकट्ठी मदद चाहिए। मैं अकेला मजबूर हूँ। कुछ नहीं कर सकूँगा। जब तक हम सब मिलकर एक दूसरे की मदद नहीं करेंगे, यह काम न होगा और तू इसी तरह अपनी झाड़ू लिये मेरे ज़ेहन के दरवाज़े पर खड़ा रहेगा और मैं कोई बड़ी कहानी नहीं लिख सकूँगा, जिसमें इन्सानी आत्मा की पूरी ख़ुशी झलक उठे और कोई मकान बनाने वाला अजीम इमारत न बना सकेगा जिसमें हमारी क़ौम की महानता अपनी ऊँचाइयाँ छू ले और कोई ऐसा गीत न गा सकेगा जिसकी अँगनाई में सृष्टि की शाश्वतता झलक जाये।

यह भरपूर ज़िन्दगी मुमकिन नहीं जब तक तू झाड़ू लिये यहाँ खड़ा है। अच्छा है खड़ा रह। फिर शायद वह दिन कभी आ जाये कि कोई तुझसे तेरी झाड़ू छुड़ा दे और तेरे हाथों को नर्मी से थामकर तुझे आकाशगंगा के उस पार ले जाये।

नया क़ानून

सआदत हसन मण्टो

मंगू कोचवान अपने अड्डे में बहुत अक़लमन्द आदमी समझा जाता था, हालाँकि उसकी तालीमी हैसियत सिफ़र के बराबर थी और उसने कभी स्कूल का मुँह भी नहीं देखा था। लेकिन इसके बावजूद उसे दुनिया भर की चीज़ों का इल्म था। अड्डे के वे तमाम कोचवान जिनको यह जानने की ख़्वाहिश होती थी कि दुनिया के अन्दर क्या हो रहा है, उस्ताद मंगू के व्यापक ज्ञान से अच्छी तरह परिचित थे।

पिछले दिनों उस्ताद मंगू ने अपनी एक सवारी से स्पेन में ज़ंग छिड़ जाने की अफ़वाह सुनी थी तो उसने गामा चौधरी के चौड़े कन्धे पर थपकी देकर गम्भीर लहज़े से भविष्यवाणी की थी –

"देख लेना चौधरी, थोड़े ही दिनों में स्पेन के अन्दर ज़ंग छिड़ जायेगी।"

और जब गामा चौधरी ने उससे यह पूछा था कि स्पेन कहाँ पड़ता है तो उस्ताद मंगू ने बड़ी संजीदगी से जवाब दिया था,

"विलायत में और कहाँ?"

स्पेन में ज़ंग छिड़ी और जब हर शख़्स को इसका पता चल गया तो स्टेशन के अड्डे में जितने कोचवान घेरा बनाकर हुक्का पी रहे थे, दिल ही दिल में उस्ताद मंगू का लोहा मान रहे थे और उस्ताद मंगू उस वक़्त माल रोड की चमकीली सतह पर ताँगा चलाते हुए अपनी सवारी से ताज़ा हिन्दू-मुस्लिम दंगे पर विचार विमर्श कर रहे थे!

उस रोज़ शाम के क़रीब जब वह अड्डे में आया तो उसका चेहरा असाधारण तौर पर तमतमा रहा था। हुक्के का दौर चलते-चलते जब हिन्दू-मुस्लिम दंगे की बात छिड़ी तो उस्ताद मंगू ने सिर पर से ख़ाकी पगड़ी उतारी और बग़ल में दाबकर बड़े चिन्तित स्वर में कहा –

"यह किसी पीर की बद्दुआओं का नतीजा है कि आये दिन हिन्दुओं और मुसलमानों में चाकू-छुरियाँ चलते रहते हैं और मैंने अपने बड़ों से सुना है कि

अकबर बादशाह ने किसी पीर का दिल दुखाया था, उस पीर ने जलकर बद्दुआ दी थी –

"जा तेरे हिन्दुस्तान में हमेशा फसाद ही होते रहेंगे" – और देख लो जब से अकबर बादशाह का राज ख़त्म हुआ है – हिन्दुस्तान में फसाद पर फसाद होते रहते हैं"। यह कहकर उसने ठण्डी साँस भरी और फिर हुक्के का दम लगाकर अपनी बात शुरू की,

"ये कांग्रेसी हिन्दुस्तान को आज़ाद करना चाहते हैं। मैं कहता हूँ कि अगर ये लोग हज़ार साल भी सिर पटकते रहें तो कुछ न होगा। बड़ी से बड़ी बात यह होगी कि अंग्रेज़ चला जायेगा और कोई इटली वाला आ जायेगा। या वह रूस वाला जिसके बारे में मैंने सुना है कि बहुत तगड़ा आदमी है, लेकिन हिन्दुस्तान सदा ग़ुलाम रहेगा। हाँ, मैं यह कहना भूल ही गया कि पीर ने यह बद्दुआ भी दी थी कि हिन्दुस्तान पर हमेशा बाहर के आदमी राज करते रहेंगे।"

उस्ताद मंगू को अंग्रेज़ों से बड़ी नफ़रत थी, इस नफ़रत का सबब तो वह यह बतलाया करता था कि वो उसके हिन्दुस्तान पर अपना सिक्का चलाते हैं और तरह-तरह के ज़ुल्म ढाते हैं। मगर उसकी घृणा की सबसे बड़ी वजह यह थी कि छावनी के गोरे उसे बहुत सताया करते थे। वो उसके साथ कुछ ऐसा सुलूक करते थे गोया वह जलील कुत्ता हो। इसके अलावा उसे उनका रंग भी बिल्कुल पसन्द नहीं था। जब किसी गोरे के सुर्ख़ व सफ़ेद चेहरे को देखता तो उसे मतली-सी आ जाती। न मालूम क्यों वह कहा करता था कि उनके लाल झुर्रियों भरे चेहरे देखकर मुझे वह लाश याद आ जाती है, जिसके जिस्म पर से ऊपर की झिल्ली गल-गलकर सड़ रही हो।

जब किसी शराबी गोरे से उसका झगड़ा हो जाता तो सारा दिन उसका जी ख़राब रहता और शाम को अड्डे में आकर वह हल मार्का सिगरेट पीता या हुक्के के कश लगाते हुए उस गोरे को जी भरकर सुनाया करता।

"..." यह मोटी गाली देने के बाद वह अपने सिर को ढीली पगड़ी समेत झटका देकर कहा करता था,

"आग लेने आये थे, अब घर के मालिक ही बन गये हैं। नाक में दम कर रखा है इन बन्दरों की औलादों ने, यूँ रोब गाँठते हैं, जैसे हम उनके बाबा के नौकर हैं...।"

इस पर भी उसका ग़ुस्सा ठण्डा नहीं होता था। जब तक उसका कोई साथी उसके पास बैठा रहता, वह अपने सीने की आग उगलता रहता।

"शक्ल देखते हो न तुम उसकी – जैसे कोढ़ हो रहा है। बिल्कुल मुर्दार, एक धप्पे की मार और गिट-पिट-गिट-पिट यों बक रहा था, जैसे मार ही डालेगा। तेरी जान की कसम, पहले पहल जी में आया उस गोरे बदख़्वार की खोपड़ी के पुर्जे उड़ा

दूँ लेकिन इस ख़याल से टल गया कि इस मरदूद को मारना अपनी हतक है..." यह कहते-कहते वह थोड़ी देर के लिए ख़ामोश हो जाता और नाक को ख़ाकी कमीज़ की आस्तीन से साफ़ करने के बाद फिर बड़बड़ाने लग जाता –

"कसम है भगवान की इन लाट साहबों के नाज उठाते-उठाते तंग आ गया हूँ। जब कभी इनका मनहूस चेहरा देखता हूँ, रगों में ख़ून खौलने लग जाता है। कोई नया क़ानून-वानून बने तो इन लोगों से निजात मिले। तेरी कसम जान में जान आ जाये।"

और जब एक रोज़ उस्ताद मंगू ने कचहरी से अपने ताँगे पर दो सवारियाँ लादीं और उनकी गुफ्तगू से उसे पता चला कि हिन्दुस्तान में नया संविधान लागू होने वाला है तो उसकी ख़ुशी की हद न रही।

दो मारवाड़ी जो कचहरी में अपने दीवानी मुक़दमे के सिलसिले में आये थे, घर जाते हुए नये संविधान यानी इण्डिया ऐक्ट के बारे में आपस में बातें कर रहे थे।

"सुना है कि पहली अप्रैल से हिन्दुस्तान में नया क़ानून चलेगा – क्या हर चीज़ बदल जायेगी!"

"हर चीज़ तो नहीं बदलेगी मगर कहते हैं कि बहुत कुछ बदल जायेगा और हिन्दुस्तानियों को आज़ादी मिल जायेगी।"

"क्या ब्याज के बारे में भी कोई नया क़ानून पास होगा?"

"यह पूछने की बात है, कल किसी वकील से बात करेंगे।"

इन मारवाड़ियों की गुफ्तगू उस्ताद मंगू के दिल में नाक़ाबिले बयान ख़ुशी पैदा कर रही थी। वह अपने घोड़े को हमेशा गालियाँ देता था और चाबुक से बहुत बुरी तरह पीटा करता था। मगर उस रोज़ वह बार-बार पीछे मुड़कर मारवाड़ियों की तरफ़ देखता रहा और अपनी बढ़ी हुई मूँछों के बाल एक उँगली से बड़ी सफ़ाई के साथ ऊँचे करके घोड़े की पीठ पर बागें ढीली करते हुए बड़े प्यार से कहता,

"चल बेटा चल – ज़रा इसे बातें करके दिखा दे।"

मारवाड़ियों को उनके ठिकाने पहुँचाकर उसने अनारकली में दीनू हलवाई की दुकान पर आधा सेर दही की लस्सी पीकर एक बड़ी डकार ली और मूँछों को मुँह में दबाकर उनको चूसते हुए ऐसे ही बुलन्द आवाज़ में कहा,

"हत तेरी ऐसी की तैसी!"

शाम को जब वह अड्डे को लौटा तो मामूल के ख़िलाफ़ उसे वहाँ कोई जान-पहचान वाला आदमी नहीं मिला। यह देखकर उसके सीने में एक अजीबोग़रीब तूफ़ान मचलने लगा। आज वह एक बड़ी ख़बर अपने दोस्तों को सुनाने वाला था – बहुत बड़ी ख़बर, और इस ख़बर को अपने अन्दर से बाहर निकालने के लिए वह छटपटा रहा था, लेकिन वहाँ कोई था ही नहीं।

आधे घण्टे तक वह चाबुक बग़ल में दबाये स्टेशन के अड्डे की लोहे की छत

के नीचे बैचेनी की हालत में टहलता रहा, उसके दिमाग़ में बड़े अच्छे-अच्छे ख़यालात आ रहे थे। नये क़ानून के लागू होने की ख़बर ने उसको एक नयी दुनिया में ला खड़ा किया था। वह उस नये क़ानून के बारे में, जो पहली अप्रैल को हिन्दुस्तान में रायज होने वाला था, अपने दिमाग़ की तमाम बत्तियाँ रौशन करके, गहराई से सोच रहा था। उसके कानों में मारवाड़ी की यह आशंका कि,

"क्या ब्याज के बारे में भी कोई नया क़ानून पास होगा?"

बार-बार गूँज रहा था और उसके तमाम जिस्म में ख़ुशी की एक लहर दौड़ रही थी, कई बार अपनी घनी मूँछों के अन्दर हँसकर उसने मारवाड़ियों को गाली दी...

"ग़रीबों की खटिया में घुसे हुए खटमल – नया क़ानून इनके लिये खौलता हुआ पानी होगा!"

वह बहुत प्रसन्न था। ख़ासकर उस वक़्त उसके दिल में ठण्डक पहुँचती जब वह ख़याल करता कि गोरों – सफ़ेद चूहों (वह उनको इसी नाम से याद करता था) की थूथनियाँ नये क़ानून के आते ही बिलों में हमेशा के लिए ग़ायब हो जायेंगी।

जब नन्हू गंजा, पगड़ी बग़ल में दबाये अड्डे में दाख़िल हुआ तो उस्ताद मंगू उससे बढ़कर मिला और उसका हाथ अपने हाथ में लेकर बुलन्द आवाज़ से कहने लगा,

"ला हाथ इधर... ऐसी ख़बर सुनाऊँ कि जी ख़ुश हो जाये – तेरी इस गंजी खोपड़ी पर बाल उग आयें।"

और यह कहकर मंगू ने बड़े मज़े ले-लेकर नये क़ानून के बारे में अपने दोस्तों से बातें शुरू कर दीं। बातचीत के दौरान उसने कई बार नत्थू गंजे के हाथ पर ज़ोर से अपना हाथ मारकर कहा,

"तू देखता रह, क्या बनता है, यह रूस वाला बादशाह कुछ न कुछ ज़रूर करके रहेगा।"

उस्ताद मंगू मौजूदा सोवियत व्यवस्था की साम्यवादी गतिविधियों के बारे में बहुत कुछ सुन चुका था और उसे वहाँ के नये क़ानून और दूसरी नयी चीज़ें बहुत पसन्द थीं। इसीलिए उसने रूस वाले बादशाह को "इण्डिया ऐक्ट" यानी नये संविधान के साथ मिला दिया और पहली अप्रैल को जो नये परिवर्तन होने वाले थे, उन्हें वह "रूस वाले बादशाह" के असर का नतीजा समझता था। कुछ अर्से से पेशावर और दूसरे शहरों में "सुर्ख़ पोशों" का आन्दोलन जारी था। उस्ताद मंगू ने इस आन्दोलन को अपने दिमाग़ में "रूस वाले बादशाह" और फिर नये क़ानून के साथ घुला-मिला दिया था। इसके अलावा जब कभी वह किसी से सुनता कि फलाँ शहर में इतने बम बनाने वाले पकड़े गये हैं, या फलाँ जगह इतने लोगों पर बग़ावत के आरोप में मुक़दमा चलाया गया है तो इन तमाम घटनाओं को नये क़ानून की

पूर्वपीठिका समझता और दिल ही दिल में बहुत ख़ुश होता था। एक दिन उसके ताँगे में दो बैरिस्टर बैठे नये क़ानून पर बड़े ज़ोर-ज़ोर से आलोचना कर रहे थे और वह ख़ामोशी से उनकी बातें सुन रहा था। उनमें से एक, दूसरे से कह रहा था –

"नये विधान का दूसरा हिस्सा फेडरेशन है, जो मेरी समझ में अभी तक नहीं आया – ऐसा फेडरेशन संसार के इतिहास में आज तक न सुनी, न देखी गयी। राजनीतिक दृष्टिकोण के हिसाब से भी यह फेडरेशन बिल्कुल ग़लत है, यों कहना चाहिए कि यह कोई फेडरेशन है ही नहीं।"

इन बैरिस्टरों के दरम्यान जो वार्ता हुई, चूँकि उसमें अधिकांश शब्द अंग्रेजी के थे, इससे उस्ताद मंगू सिर्फ़ ऊपर के ही वाक्य को किसी हद तक समझता और उससे धारणा बनायी कि ये लोग हिन्दुस्तान में नये क़ानून की आमद को बुरा समझते हैं। ये नहीं चाहते कि हमारा वतन आज़ाद हो। चुनांचे इस विचार के तहत उसने इन दो बैरिस्टरों को हिकारत की निगाह से देखकर मन ही मन कहा, "टोडी बच्चे।"

जब कभी वह किसी को दबी ज़बान में "टोडी बच्चा" कहता तो दिल में यह महसूस करके बड़ा प्रसन्न होता था कि उसने इस नाम को सही जगह इस्तेमाल किया है और यह कि वह शरीफ़ आदमी और टोडी बच्चे में भेद करने की क्षमता रखता है।

इस घटना के तीसरे दिन वह गवर्नमेण्ट कॉलेज के तीन छात्रों को अपने ताँगे में बिठाकर मिजंग जा रहा था कि उसने इन तीन लड़कों को आपस में बातें करते सुना,

"नये संविधान ने मेरी उम्मीदें बढ़ा दी हैं, अगर... साहब असेम्बली के मेम्बर हो गये तो किसी सरकारी ऑफ़िस में नौकरी ज़रूर मिल जायेगी।"

"वैसे भी बहुत-सी जगहें और निकलेंगी, शायद इसी गड़बड़ में हमारे हाथ भी कुछ आ जाये"

"हाँ-हाँ, क्यों नहीं।"

"वो बेकार ग्रेजुएट जो मारे-मारे फिर रहे हैं, उनमें कुछ तो कमी होगी!"

इस वार्तालाप ने उस्ताद मंगू के मन में नये क़ानून की अहमियत और भी बढ़ा दी और वह उसको ऐसी चीज़ समझने लगा जो बहुत चमकती हो, "नया क़ानून...?" वह दिन में कई बार सोचता "यानी कोई नयी चीज़!" और हर बार उसकी नज़रों के सामने अपने घोड़े का वह नया साज़ोसामान आ जाता जो उसने दो साल पहले चौधरी ख़ुदाबख़्श से बड़ी अच्छी तरह ठोंक-बजाकर ख़रीदा था। उस साज पर जब वह नया था, जगह-जगह लोहे की निकिल चढ़ी हुई कीलें चमकती थीं और जहाँ-जहाँ पीतल का काम था वह तो सोने की तरह दमकता था। इस लिहाज़ से भी "नये क़ानून" का चमकदार व रौशन होना ज़रूरी था।

पहली अप्रैल तक उस्ताद मंगू ने नये क़ानून के ख़िलाफ़ और उसकी हिमायत

में बहुत कुछ सुना मगर उसके बारे में जो तस्वीर वह अपने ज़ेहन में बना चुका था, बदल न सका। वह समझता कि पहली अप्रैल को नये क़ानूनों के लागू होते ही सब गड़बड़ ठीक हो जायेगी और उसको विश्वास था कि उसकी आमद पर जो चीज़ें नज़र आयेंगी उनसे आँखों को ठण्डक ज़रूर पहुँचेगी।

आख़िरकार मार्च के इक्तीस दिन ख़त्म हो गये और अप्रैल के शुरू होने में रात के चन्द ख़ामोश घण्टे बाक़ी रह गये थे। मौसम ख़िलाफ़ेमामूल सर्द था और हवा में ताजगी थी। पहली अप्रैल को उस्ताद मंगू सुबह-सवेरे उठा और अस्तबल में जाकर घोड़े को ताँगे में जोता और बाहर निकल गया। उसकी तबियत आज ग़ैरमामूली तौर पर ख़ुशी व जोश से भरी हुई थी – वह नये क़ानून को देखने वाला था। उसने सुबह के सर्द धुँधलके में कई तंग और खुले बाज़ारों का चक्कर लगाया मगर उसे हर चीज़ पुरानी नज़र आयी – आसमान की तरह पुरानी। उसकी आँखें आज ख़ास तौर पर नया रंग देखना चाहती थीं, मगर सिवाये उस कलगी के जो रंग बिरंगे परों से बनी थीं और उसके घोड़े के सिर पर जमी हुई थी और सब चीज़ें पुरानी नज़र आती थीं। यह नयी कलगी उसने नये क़ानून की ख़ुशी में 31 मार्च को चौधरी ख़ुदाबख़्श से साढ़े चौदह आने में ख़रीदी थी।

घोड़े के टापों की आवाज़, काली सड़क और उसके आस-पास थोड़ा-थोड़ा फ़ासला छोड़कर लगाये हुए बिजली के खम्भों, दुकानों के बोर्ड, उसके घोड़े के गले में पड़े हुए घुंघरू की झनझनाहट, बाज़ार में चलते-फिरते आदमी... इनमें से कौन-सी चीज़ नयी थी। ज़ाहिर है कि कोई भी नहीं। लेकिन उस्ताद मंगू मायूस नहीं था।

"अभी बहुत सवेरा है, दुकानें भी सब की सब बन्द हैं!" इस ख़याल से उसे तसकीन थी। इसके अलावा वह यह भी सोचता था "हाईकोर्ट में तो नौ बजे के बाद ही काम शुरू होता है। अब इससे पहले नये क़ानून का क्या नज़र आयेगा।"

जब उसका ताँगा गवर्नमेण्ट कॉलेज के दरवाज़े के क़रीब पहुँचा तो कॉलेज के घड़ियाल ने बड़े गर्व से नौ बजाये। जो छात्र कॉलेज के बड़े गेट से बाहर निकल रहे थे, साफ़ सुन्दर कपड़े पहने हुए थे, मगर उस्ताद मंगू को न जाने क्यों उनके कपड़े मैले-मैले से नज़र आये। शायद इसकी वजह यह थी कि उसकी निगाहें आज किसी बहुत ज़ोरदार दृश्य का नज़ारा करने वाली थीं।

ताँगे को दायें मोड़कर वह थोड़ी देर के बाद फिर अनारकली में था। बाज़ार की आधी दुकानें खुल चुकी थीं और अब लोगों का आना-जाना भी बढ़ गया था। हलवाई की दुकान पर ग्राहकों की ख़ूब भीड़ थी। मनिहारों की नुमाइशी चीज़ें शीशे की अलमारियों में लोगों को दर्शन का निमन्त्रण दे रही थीं और बिजली के तारों पर कई कबूतर आपस में लड़-झगड़ रहे थे। मगर उस्ताद मंगू के लिए इन तमाम चीज़ों में कोई दिलचस्पी न थी – वह तो नये क़ानून को देखना चाहता था। ठीक उसी

तरह जिस तरह वह अपने घोड़े को देख रहा था।

जब उस्ताद मंगू के घर में बच्चा पैदा होने वाला था तो उसने चार-पाँच महीने बड़ी व्याकुलता में गुज़ारे थे। उसको यक़ीन था कि बच्चा किसी न किसी दिन अवश्य पैदा होगा, मगर वह इन्तज़ार की घड़ियाँ नहीं काट सकता था। वह चाहता था, अपने बच्चे को सिर्फ़ एक नज़र देख ले, उसके बाद वह पैदा होता रहे। चुनांचे इसी पराजित इच्छा के तहत उसने कई बार अपनी बीमार बीवी के पेट को दबाकर और उसके ऊपर कान रख-रखकर अपने बच्चे के सम्बन्ध में कुछ जानना चाहा था। मगर नाकाम रहा था, एक दफ़ा वह इन्तज़ार करते-करते इस क़दर तंग आ गया था कि अपनी बीवी पर भी बरस पड़ा था –

"तू हर वक़्त मुर्दे की तरह पड़ी रहती है, उठ ज़रा चल-फिर, तेरे अंग में थोड़ी-सी ताक़त तो आये, यों तख़्ता बने रहने से कुछ न हो सकेगा। तू समझती है, इस तरह लेटे-लेटे बच्चा जन देगी।"

उस्ताद मंगू स्वभाव से बहुत जल्दबाज़ था। वह हर सबब की अमली तशकील देखने का न सिर्फ़ ख़्वाहिशमन्द था बल्कि जिज्ञासु था। उसकी बीवी गंगावती, उसकी इस क़िस्म की बेक़रारी को देखकर आमतौर पर यह कहा करती थी –

"अभी कुआँ खोदा नहीं गया और तुम प्यास से बेहाल हो रहे हो।"

कुछ भी हो मगर मंगू उस्ताद नये क़ानून की प्रतीक्षा में उतना व्याकुल नहीं था जितना कि उसे अपने स्वभाव के हिसाब से होना चाहिए था। वह आज नये क़ानून को देखने के लिए घर से निकला था, ठीक उसी तरह जैसे गाँधी जी या जवाहरलाल के जुलूस का नज़ारा करने के लिए निकलता था। लीडरों की महानता का अन्दाज़ा उस्ताद मंगू हमेशा उनके जुलूस के हंगामों और उनके गले में डाले हुए फूलों के हारों से किया करता था। अगर कोई लीडर गेंदे के फूलों से लदा हुआ हो तो उस्ताद मंगू के निकट वह बड़ा आदमी था और अगर किसी लीडर के जुलूस में भीड़ की वजह से दो-तीन फसाद होते-होते रह जायें तो उसकी दृष्टि में वह और भी बड़ा था। अब नये क़ानून को वह अपने ज़ेहन के इसी तराजू पर तौलना चाहता था। अनारकली से निकलकर वह माल रोड की चमकीली सतह पर अपने ताँगे को आहिस्ता-आहिस्ता चला रहा था। मोटरों की दुकान के पास उसे छावनी की एक सवारी मिल गयी। किराया तय करने के बाद उसने अपने घोड़े को चाबुक दिखाया और सोचा –

"चलो यह भी अच्छा हुआ – शायद छावनी ही से नये क़ानून का कुछ पता चल जाये।"

छावनी पहुँचकर उस्ताद मंगू ने सवारी को उसकी मंज़िल पर उतार दिया और सिगरेट निकालकर बायें हाथ की आख़िरी दो उँगलियों में दबाकर सुलगायी और पिछली सीट पर बैठ गया – जब उस्ताद मंगू को किसी सवारी की तलाश नहीं होती

थी या उसे किसी बीती हुई घटना के बारे में सोचना होता वह आम तौर पर अगली सीट छोड़कर पिछली सीट पर बड़े इत्मीनान से बैठकर अपने घोड़े की बागें अपने दायें हाथ के गिर्द लपेट लिया करता था। ऐसे मौक़ों पर उसका घोड़ा थोड़ा-सा हिनहिनाने के बाद बड़ी धीमी चाल चलना शुरू कर देता था। जैसे उसे कुछ देर के लिए भाग-दौड़ से छुट्टी मिल गयी हो।

घोड़े की चाल और उस्ताद मंगू के दिमाग़ में ख़यालात की आमद बहुत सुस्त थी। जिस तरह घोड़ा आहिस्ता-आहिस्ता क़दम उठा रहा था, उसी तरह उस्ताद मंगू के ज़ेहन में नये क़ानून के सम्बन्ध में नये अन्दाज़े दाख़िल हो रहे थे।

वह नये क़ानून की मौजूदगी में म्युनिस्पल कमेटी से ताँगों के नम्बर मिलने के तरीक़े पर विचार कर रहा था। नये क़ानून में कैसे मिलेंगे नम्बर...? वह सोच में डूबा हुआ था कि उसे यों महसूस हुआ जैसे उसे किसी सवारी ने आवाज़ दी है। पीछे पलटकर देखने से उसे सड़क के एक तरफ़ दूर बिजली के खम्भे के पास एक "गोरा" खड़ा नज़र आया, जो उसे हाथ से बुला रहा था।

जैसा कि बयान किया जा चुका है, उस्ताद मंगू को गोरों से सख़्त नफ़रत थी, जब उसने अपने ताज़ा ग्राहक को गोरे की शक्ल में देखा तो उसके दिल में नफ़रत के भाव भड़क उठे। पहले उसकी इच्छा हुई कि उसकी तरफ़ किंचित ध्यान न दे और उसको छोड़कर चला जाये मगर बाद में उसके मन में आया कि इनके पैसे छोड़ना भी तो नादानी है। कलगी पर जो मुफ़्त में साढ़े चौदह आने ख़र्च कर दिये हैं, इनकी ही जेब से वसूल करना चाहिए। चलो चलते हैं..."

ख़ाली सड़क पर बड़ी सफ़ाई से ताँगा मोड़कर उसने घोड़े को चाबुक दिखाया और एक क्षण में वह बिजली के खम्भे के पास था। घोड़े की बागें खींचकर उसने ताँगा रोका और पिछली सीट पर बैठे-बैठे गोरे से पूछा।

"साहब बहादुर कहाँ जाना माँगटा है?"

इस सवाल में बेपनाह व्यंग्य था। साहब बहादुर कहते वक़्त उसका ऊपर का मूँछों भरा होंठ नीचे की तरफ़ खिंच गया और पास ही गाल के इस तरफ़ जो मद्धम-सी लकीर नाक के नथुने से ठोड़ी के ऊपरी भाग तक चली आ रही थी, एक कम्पन्न के साथ गहरी हो गयी। जैसे किसी ने नुकीले चाकू से शीशम की साँवली लकड़ी में धारी डाल दी हो। उसका सारा चेहरा हँस रहा था और अपने अन्दर उसने उस "गोरे" को छाती की आग में जलाकर भस्म कर डाला था।

जब गोरे ने जो बिजली के खम्भे की ओट में हवा का रुख़ बचाकर सिगरेट सुलगा रहा था, मुड़कर ताँगे के पायदान की तरफ़ क़दम बढ़ाया तो अचानक उस्ताद मंगू और उसकी निगाहें चार हुईं और ऐसा महसूस हुआ उस क्षण एक साथ आमने-सामने की बन्दूक़ों से गोलियाँ निकल पड़ी हों और आपस में टकराकर आग का एक गोला बनकर ऊपर को उड़ गयीं।

उस्ताद मंगू जो अपने दायें हाथ से लगाम के बल खोलकर ताँगे पर से नीचे उतरने वाला था, अपने सामने खड़े "गोरे" को यों देख रहा था गोया वह उसके वजूद के कण-कण को अपनी निगाहों से चबा रहा है और गोरा कुछ इस तरह अपनी पतलून पर से कुछ न दिख सकने वाली चीज़ें झाड़ रहा था, गोया वह उस्ताद मंगू के इस हमले से अपने वजूद के कुछ हिस्से सुरक्षित रखने की कोशिश कर रहा है।

गोरे ने सिगरेट का धुआँ निगलते हुए कहा – "जाना माँगटा या फिर गड़बड़ करेगा?"

"वही है!" उस्ताद मंगू के ज़ेहन में शब्द गूँजे और उसकी चौड़ी छाती के अन्दर नाचने लगे।

"वही है!" उसने शब्द अन्दर ही अन्दर दोहराये और साथ ही उसे पूरा यक़ीन हो गया कि वह गोरा जो उसके सामने खड़ा था वही है, जिससे पिछले बरस उसकी झड़प हुई थी और उस फालतू के झगड़े में, जिसका सबब गोरे के दिमाग़ में चढ़ी हुई शराब थी, उसे मजबूरन न चाहते हुए भी बहुत-सी बातें सहनी पड़ी थीं। उस्ताद मंगू ने गोरे का दिमाग़ दुरुस्त कर दिया होता बल्कि उसके पुर्जे उड़ा दिये होते मगर वह किसी ख़ास कारण से ख़ामोश हो गया था। उसको मालूम था कि इस क़िस्म के झगड़ों में अदालत का फ़ैसला आम तौर पर कोचवानों के ख़िलाफ़ होता है।

उस्ताद मंगू ने पिछले बरस की लड़ाई और पहली अप्रैल के नये क़ानून पर ग़ौर करते हुए गोरे से कहा, "कहाँ जाना माँगटा है?"

गोरे ने जवाब दिया, "हीरामण्डी।"

"किराया पाँच रुपये होगा?" उस्ताद मंगू की मूँछें थरथरायीं।

यह सुनकर गोरा हैरान हो गया, वह चिल्लाया, "पाँच रुपये, क्या तुम...?"

"हाँ, हाँ, पाँच रुपये" यह कहते हुए उस्ताद मंगू का दाहिना बालों भरा हाथ भींचकर एक वजनी घूँसे की शक्ल इख़्तियार कर गया।

"क्यों... जाते हो या बेकार बातें बनाओगे?"

उस्ताद मंगू का लहज़ा सख़्त हो गया,

गोरा पिछले साल की घटना को याद करके उस्ताद मंगू की छाती की चौड़ाई नज़रअन्दाज़ कर चुका था, वह सोच रहा था कि इसकी खोपड़ी लगता है फिर खुजला रही है। इस उत्साह बढ़ाने वाले विचार के तहत वह ताँगे की तरफ़ अकड़कर बढ़ा और अपनी छड़ी से उस्ताद मंगू को ताँगे पर से नीचे उतरने का इशारा किया, पालिश की हुई बेंत की छड़ी उस्ताद मंगू की मोटी जाँघ के साथ दो-तीन मर्तबा टकरायी। उसने खड़े-खड़े ऊपर से पस्त कद के गोरे को देखा, गोया वह अपनी दृष्टि के भार से ही उसे पीस डालना चाहता है। फिर उसका घूँसा कमान में से तीर की तरह ऊपर को उठा और पलक झपकते ही गोरे की ठुड्डी के नीचे

जम गया। धक्का देकर उसने गोरे को परे हटाया और नीचे उतरकर उसे धड़ाधड़ पीटना शुरू कर दिया।

हैरान–चकित गोरे ने इधर–उधर सिमटकर उस्ताद मंगू के वजनी घूँसों से बचने की कोशिश की और जब देखा कि उस पर दीवानगी की हालत जारी है और उसकी आँखों से चिनगारियाँ बरस रही हैं, तो उसने ज़ोर–ज़ोर से चिल्लाना शुरू कर दिया। इस चीख़–ओ–पुकार ने उस्ताद मंगू की बाँहों का काम भी तेज़ कर दिया, वह गोरे को जी भर के पीट रहा था और साथ–साथ कहता जाता था –

"पहली अप्रैल को भी वही अकड़ क्यूँ – पहली अप्रैल को भी वही अकड़ क्यूँ – अब हमारा राज है बच्चा।"

लोग जमा हो गये और पुलिस के दो सिपाहियों ने बड़ी मुश्किल से गोरे को उस्ताद मंगू की गिरफ़्त से छुड़ाया, उस्ताद मंगू उन दो सिपाहियों के बीच खड़ा था। उसकी चौड़ी छाती फूली हुई साँस की वजह से ऊपर नीचे हो रही थी। मुँह से झाग बह रहा था और अपनी मुस्कुराती हुई आँखों से विस्मय में डूबे वहाँ जमा लोगों की तरफ़ देखकर वह हाँफती हुई आवाज़ में कह रहा था –

"वो दिन गुज़र गये जब खलील ख़ाँ फाख़्ता उड़ाया करते थे – अब नया क़ानून है मियाँ – नया क़ानून।"

और बेचारा गोरा अपने बिगड़े चेहरे के साथ मूर्खों की तरह कभी उस्ताद मंगू की तरफ़ देखता था, कभी हुजूम की तरफ़, उस्ताद मंगू को पुलिस के सिपाही थाने ले गये, रास्ते में और थाने के अन्दर कमरे में वह, "नया क़ानून", "नया क़ानून" चिल्लाता रहा, मगर किसी ने एक न सुनी।

"नया क़ानून, नया क़ानून क्या बक रहे हो – क़ानून वही है पुराना।"

और उसको हवालात में बन्द कर दिया गया।

गरम कोट

राजेन्द्र सिंह बेदी

मैंने देखा है, मिराजुद्दीन टेलर मास्टर की दुकान पर बहुत से अच्छे-अच्छे सूट लटके हुए होते हैं। उन्हें देखकर अक्सर मेरे दिल में ख़्याल पैदा होता है कि मेरा अपना गरम कोट बिल्कुल फट गया है और इस साल, हाथ तंग होने के बावजूद, मुझे एक नया गरम कोट ज़रूर सिलवा लेना चाहिए। टेलर मास्टर की दुकान के सामने से गुज़रने या अपने विभाग के तफ़रीह-क्लब में जाने से गुरेज करूँ तो मुमकिन है मुझे गरम कोट का ख़्याल भी न आये, क्योंकि क्लब में जब सन्तसिंह और यजदानी के कोटों के नफ़ीस वर्सटेड मेरे कल्पना के घोड़े पर (चाबुक) लगाते हैं तो मैं अपने कोट की बोसीदगी "फटे-हाल" को शदीद तौर पर महसूस करने लगता हूँ – यानी कि वह पहले से कहीं ज़्यादा फट गया है।

बीवी-बच्चों को पेट भर रोटी खिलाने के लिए मुझ जैसे मामूली क्लर्क को अपनी बहुत-सी ज़रूरियात तर्क करनी पड़ती है और उन्हें जिगर तक पहुँचती हुई सर्दी से बचाने के लिए ख़ुद मोटा-झोटा पहनना पड़ता है। यह गरम कोट मैंने परसाल देहली दरवाज़े के बाहर पुराने कोटों की एक दुकान से मोल लिया था। कोटों के सौदागर ने पुराने कोटों की सैकड़ों गाँठें किसी "मरानजा मरानजा एण्ड कम्पनी, कराची" से मँगवायी थीं। मेरे कोट में नकली सिल्क के अस्तर से बनी हुए अन्दरूनी जेब के नीचे "मरानजा मरानजा एण्ड कम्पनी" का लेबिल लगा हुआ था। मगर कोट मुझे मिला बहुत सस्ता। महँगा रोए एक बार, सस्ता रोये बार-बार... और मेरा कोट हमेशा ही फटा रहता था।

इसी दिसम्बर की एक शाम को तफ़रीह-क्लब से वापस आते हुए मैं इरादतन अनारकली से गुज़रा। उस वक़्त मेरी जेब में दस रुपये का नोट था। आटा, दाल, ईंधन, बिजली, बीमा कम्पनी के बिल चुका देने पर मेरे पास वही दस का नोट बच रहा था। जेब में दाम हो तो अनारकली से गुज़रना मायूब (बुरा) नहीं। उस वक़्त अनारकली में चारों तरफ़ सूट ही सूट नज़र आ रहे थे और साड़ियाँ... चन्द साल से

हर नत्थू-खैरा सूट पहनने लगा है। मैंने सुना है, गुजश्ता चन्द साल में कई टन सोना हमारे मुल्क़ से बाहर चला गया है। शायद इसीलिए लोग जिस्मानी ज़ेबाइश (शारीरिक श्रृंगार) का ख़याल भी बहुत ज़्यादा रखते हैं। नये-नये सूट पहनना और ख़ूब शान से रहना हमारे इफ़्लात (ग़रीबी) का बदीही सुबूत है। वर्ना जो लोग सचमुच अमीर हैं, ऐसी शानो-शौक़त और ज़ाहिरी तकल्लुफ़ात की ज़रा परवाह नहीं करते।

कपड़े की दुकान में वर्सटेड थानों के थान खुले पड़े थे। उन्हें देखते हुए मैंने सोचा, क्या मैं इस महीने के बचे हुए दस रुपये में से कोट का कपड़ा ख़रीदकर बीवी-बच्चों को भूखा मारूँ? लेकिन कुछ अर्से के बाद मेरे दिल में नये कोट के नापाक ख़याल का रद्दे-अमल शुरू हुआ। मैं अपने पुराने गरम कोट का बटन पकड़कर उसे बल देने लगा। चूँकि तेज़-तेज़ चलने से मेरे ज़िस्म में हरारत आ गयी थी, इसलिए मौसम की सर्दी और इस क़िस्म के खारजी असरात (बाहरी असर) मेरे कोट ख़रीदने के इरादे को पाये-तकमील (पूर्णता) तक पहुँचाने से कासिर (असमर्थ) रहे। मुझे तो उस वक़्त अपना वह कोट भी सरासर तकल्लुफ़ नज़र आने लगा।

ऐसा क्यों हुआ? मैंने कहा है कि जो शख़्स हकीकतन अमीर हों, वह ज़ाहिरी शान की ज़रा फ़िक्र नहीं करते। जो लोग सचमुच अमीर हों, उन्हें तो फटा हुआ कोट, बल्कि कमीज़ भी तकल्लुफ़ में दाख़िल समझनी चाहिए। तो क्या मैं सचमुच अमीर था कि...?

मैंने घबड़ाकर जातीतजजिया (आत्मविश्लेषण) छोड़ दिया और बमुश्किल दस का नोट सही सलामत लिये घर पहुँचा।

शम्मी, मेरी बीवी, मेरी मुन्तज़िर थी।

आटा गूँधते हुए उसने आग फूँकनी शुरू कर दी... कमबख़्त मंगलसिंह ने इस दफ़ा लकड़ियाँ गीली भेजी थीं। आग जलने का नाम ही नहीं लेती थी। ज़्यादा फूँकें मारने से गीली लकड़ियों में से ज़्यादा धुआँ उठता। शम्मी की आँखें लाल अंगार हो गयीं। उनसे पानी बहने लगा।

"कमबख़्त कहीं का... मंगलसिंह!" मैंने कहा, "इन पुरनम आँखों के लिए मंगलसिंह तो क्या मैं तमाम दुनिया से ज़ंग करने पर आमादा हो जाऊँ...।"

बहुत तगो-दू के बाद लकड़ियाँ आहिस्ता-आहिस्ता चटखने लगीं।

आख़िर इन पुरनम आँखों के पानी ने मेरे ग़ुस्से की आग बुझा दी। ...शम्मी ने मेरे शाने पर सिर रखा और मेरे फटे हुए गरम कोट में पतली-पतली उँगलियाँ दाख़िल करती हुई बोली, "अब तो यह बिल्कुल काम का नहीं रहा।"

मैंने धीमी आवाज़ में कहा, "हाँ"।

"सी दूँ?... यहाँ से..."

"सी दो। अगर कोई एक-आध तार निकालकर रफ़ू कर दो तो क्या कहने हैं।"

कोट को उलटाते हुए शम्मी बोली, "अस्तर को तो मुई टिड्डियाँ चाट रही हैं...नकली रेशम का है ना... यह देखिये।"

मैंने शम्मी से अपना कोट छीन लिया और कहा, "मशीन के पास बैठने की बजाय तुम मेरे पास बैठो शम्मी...। देखती नहीं हो, दफ़्तर से आ रहा हूँ। यह काम तुम उस वक़्त कर लेना, जब मैं सो जाऊँ।"

शम्मी मुस्कुराने लगी।

शम्मी की वह मुस्कुराहट और मेरा फटा हुआ कोट।

शम्मी ने कोट को ख़ुद ही एक तरफ़ रख दिया। बोली, "मैं ख़ुद भी इस कोट की मरम्मत करते-करते थक गयी हूँ... उसे मरम्मत करने में इस गीली ईंधन को जलाने की तरह जानम करनी पड़ती है – आँखें दुखने लगती हैं।

"आख़िर आप अपने कोट के लिए कपड़ा क्यों नहीं ख़रीदते?"

मैं कुछ देर सोचता रहा।

यूँ तो मैं अपने कोट के लिए कपड़ा ख़रीदना गुनाह ख़याल करता था, मगर शम्मी की आँखें... उन आँखों को तकलीफ़ से बचाने के लिए मैं मंगलसिंह तो क्या तमाम दुनिया से ज़ंग करने पर आमादा हो जाऊँ। वर्सटेड के थानों के थान ख़रीद लूँ। नये गरम कोट के लिए कपड़ा ख़रीदने का ख़याल दिल में पैदा हुआ ही था कि पुष्पामणि भागती हुई कहीं से आ गयी। आते ही बरामदे में नाचने और गाने लगी। उसकी हरकत कथकली मुद्रा से ज़्यादा कैफ़-अंगेज थीं।

मुझे देखते ही पुष्पामणि ने अपना नाच और गाना ख़त्म कर दिया। बोली "बाबूजी, आप आ गये? आज बड़ी बहन जी ने कहा था – मेज़पोश के लिए दुसूती लाना और गरम कपड़े पर काट सिखायी जायेगी। गुनिया माप के लिए और गरम कपड़ा..."

चूँकि इस वक़्त मेरे कोट ख़रीदने की बात हो रही थी, शम्मी ने ज़ोर से एक चपत उसके मुँह पर लगायी और बोली, "इस जनमजली को हर वक़्त कुछ-न-कुछ ख़रीदना ही होता है... मुश्किल से उन्हें कोट सिलवाने पर राज़ी कर रही हूँ...।"

वह पुष्पामणि का रोना और मेरा नया कोट।

मैंने ख़िलाफ़-आदम ऊँची आवाज़ से कहा, "शम्मी।"

शम्मी काँप गयी। मैंने ग़ुस्से से आँखें लाल करते हुए कहा, मेरे इस कोट की मरम्मत कर दो...अभी... किसी तरह करो... ऐसे जैसे रो-पीटकर मंगलसिंह की गीली लकड़ियाँ जला लेती हो... तुम्हारी आँखें। ...हाँ, याद आया...देखो तो पुष्पामणि कैसे रो रही है। पोपो बेटा। इधर आओ न, इधर आओ मेरी बच्ची। क्या कहा था तुमने? बोलो तो... दुसूती? गुनिया माप के लिए और काट सीखने को गरम कपड़ा? ...बच्चू नन्हा भी तो ट्राइसिकल का राग अलापता और गुब्बारे के लिए मचलता सो

गया होगा। उसे गुब्बारा न ले दोगी तो मेरा सिल जायेगा ना? कितना रोया होगा बेचारा... शम्मी। कहाँ है बच्चू?

बच्चू आ गये... आँधी और बारिश की तरह शोर मचाते हुए।...

मैंने शम्मी को ख़ुश करने के लिए नहीं, बल्कि यूँ ही काफ़ूरी रंग के मीनाकारी काँटे सबसे पहले लिये। अचानक रसोई की तरफ़ मेरी नज़र उठी। चूल्हे में लकड़ियाँ धड़-धड़ जल रही थीं और इधर शम्मी की आँखें भी दो चमकते हुए सितारों की तरह रौशन थी। मालूम हुआ कि मंगलसिंह गीली लकड़ियाँ वापस ले गया है।

"वह शहतूत के डण्डे जल रहे हैं और खोखा..." शम्मी ने कहा।

"और उपले?"

"मंगलसिंह देवता है... शायद मैं भी जल्दी ही गरम कोट के लिए अच्छा-सा वर्सटेड ख़रीद लूँ ताकि तुम्हारी आँखें चमकती ही रहें। इन्हें तकलीफ़ न हो...। इस माह की तनख़्वाह में तो गुंजाइश नहीं अगले महीने... ज़रूर...ज़रूर!"

"जी हाँ, जब सर्दी गुज़र जायेगी..."

पुष्पामणि ने कई चीज़ें लिखायीं... दुसूती, गुनिया माप के लिए गरम ब्लेज़र, सफ़ेद रंग का एक गज मुरब्बा, डी.एम.सी. के गोले, गोटे की मगजी...और इमरतियाँ और बहुत से...गुलाबजामुन...। मुई ने सबकुछ ही तो लिखवा दिया। मुझे दाईमी क़ब्ज़ था। मैं चाहता था कि यूनानी दवाख़ाने से त्रिफला ज़मानी का एक डिब्बा भी रख लूँ। दूध के साथ थोड़ा-सा खाकर सो जाया करूँगा मगर मुई पुष्पा ने उसके लिए गुंजाइश ही कहाँ रखी थीं? और जब पुष्पामणि ने कहा, गुलाबजामुन। तो उसके मुँह में पानी भर आया। मैंने कहा, सबसे ज़रूरी चीज़ तो यही है... शहर से वापस आने पर गुलाबजामुन वहाँ छुपा दूँगा जहाँ सीढ़ियों से बाहर जमादार अपना दूध का कलसा रख दिया करता है और पुष्पा से कहूँगा कि मैं तो लाना ही भूल गया तुम्हारे लिए गुलाबजामुन, ओहो।... उस वक़्त उसके मुँह में पानी भर आयेगा और गुलाबजामुन न पाकर उसकी अजीब क़ैफ़ियत होगी।

फिर मैंने सोचा, बच्चू भी तो सुबह से गुब्बारे और ट्राइसिकल के लिए ज़िद्द कर रहा था। मैंने एक मरतबा अपनेआप से सवाल किया, त्रिफला ज़मानी? शम्मी बच्चू को पुचकारती हुई कह रही थी, "बच्चू बेटे को ट्राइसिकल ले दूँगी अगले महीने. ..बच्चू बेटा सारा दिन चलाया करेगा ट्राइसिकल... पोपी मुन्ना नहीं लेगी।"

"बच्चू चलाया करेगा और पोपी मुन्ना नहीं लेगी।" ...और मैंने शम्मी की आँखों की कसम खायी कि जब तक ट्राइसिकल के लिए छह-सात रुपये जेब में न हो, मैं नीले गुम्बद के बाज़ार से नहीं गुज़रूँगा। आप पर ग़ुस्सा आयेगा, अपनी-जात से नफ़रत पैदा होगी।

इस वक़्त शम्मी बैलजियमी आईने की बैजवी टुकड़ी के सामने अपने काफ़ूरी सफ़ेद सूट में खड़ी थी। मैं चुपके से उसके पीछे जा खड़ा हुआ और कहने लगा,

"मैं बताऊँ, तुम इस वक़्त क्या सोच रही हो।"

"बताओ तो जानूँ।"

"तुम सोच रही हो, काफ़ूरी सफ़ेद सूट के साथ वह काफ़ूरी रंग के मीनाकारी काँटे पहनकर जिलेदार की बीवी के यहाँ जाऊँ तो दंग रह जायें।"

"नहीं तो," शम्मी ने हँसते हुए कहा, "आप मेरी आँखों से प्यार करते तो कभी का गरम..."

मैंने शम्मी के मुँह पर हाथ रख दिया। मेरी तमाम ख़ुशी बेबसी में बदल गयी। मैंने आहिस्ता से कहा, "...बस... इधर देखो... अगले महीने ज़रूर ख़रीद लूँगा...।"

"जी हाँ, जब सर्दी..."

...फिर मैं अपनी उस हसीन दुनिया को जिसकी तकलीफ़ पर महज दस रुपये सिर्फ़ होते थे, तसव्वुर में बसाये बाज़ार चला गया।

मेरे सिवा अनारकली से गुज़रने वाले हर जी-इज़्ज़त आदमी ने गरम सूट पहन रखा था। लाहौर के हर एक लहीम-शहीम जेण्टलमैन की गरदन नेकटाई और मुकल्लफ़ (कलफ़दार) कालर के सबब मेरे छोटे भाई के पालतू कुत्ते "टाइगर" की गरदन की तरह अकड़ी हुई थी। मैंने उन सूटों की तरफ़ देखते हुए कहा, "लोग सचमुच मुफ़लिस हो गये हैं। इस महीने न मालूम कितना सोना-चाँदी हमारे मुल्क़ से बाहर चला गया है।" काँटों की दुकान पर मैंने कई जोड़ियाँ काँटे देखे। अपने तख़य्युल की पुख़्ताकारी से मैं शम्मी की काफ़ूरी सफ़ेद सूट में तलबूस ज़ेहनी तस्वीर को काँटे पहनाकर पसन्द या नापसन्द कर लेता। काफ़ूरी सफ़ेद सूट... काफ़ूरी मीनाकारी काँटे... कसरते-अकसाम के बायस मैं एक भी मुन्तखिब। उस वक़्त बाज़ार में यजदानी मिल गया। वह तफ़रीह-क्लब से जो दरअसल परेल क्लब थी, पन्द्रह रुपये जीतकर आया था। आज उसके चेहरे पर अगर सुर्ख़ी-बशाशत की लहरें दिखायी देती थीं तो कुछ ताज्जुब की बात न थी। मैं एक हाथ से अपनी जेब की सिलवटों को छुपाने लगा। निचली बायीं जेब पर एक रुपये के बराबर कोट से मिलते हुए रंग का पैबन्द बहुत ही नामौज़ूं दिखायी दे रहा था... मैं उसे भी एक हाथ से छुपाता रहा। फिर मैंने दिल में कहा, "क्या अजब यजदानी ने मेरे शाने पर हाथ रखने से पहले मेरी जेब की सिलवटें और वह रुपये बराबर कोट के रंग का पैबन्द देख लिया हो।..." उसका भी रद्दे अमल (प्रतिक्रिया) शुरू हुआ और मैंने दिलेरी से कहा, "मुझे क्या परवाह है... यजदानी मुझे कौन-सी थैली बख़्श देगा... और इसमें बात ही क्या है? यजदानी और सन्तसिंह ने बारहा मुझे कहा कि वह रिफ़अते-ज़ेहनी की ज़्यादा परवा करते हैं और वर्सटेड की कम। मुझसे कोई पूछे, मैं वर्सटेड की ज़्यादा परवा करता हूँ और रिफरते-ज़ेहनी की कम।"

यजदानी रुख़सत हुआ और जब तक वह नज़र से ओझल न हो गया, मैं ग़ौर से उसके कोट के नफ़ीस वर्सटेड को पुश्त की ज़ानिब से देखता रहा।

फिर मैंने सोचा कि सबसे पहले मुझे पुष्पामणि के गुलाबजामुन और इमरतियाँ ख़रीदनी चाहिए। कहीं वापसी पर सचमुच भूल ही न जाऊँ। घर पहुँचकर उन्हें छुपाने में ख़ूब तमाशा रहेगा। मिठाई की दुकान पर खौलते रोगन में कचौरियाँ ख़ूब फूल रही थीं। मेरे मुँह में पानी भर आया। इस तरह जैसे गुलाबजामुन के तख़य्युल से पुष्पामणि के मुँह में पानी भर आया था। क़ब्ज़ और त्रिफला जामनी के ख़याल के बावजूद मैं सफ़ेद पत्थर की मेज़ पर कोहनियाँ टिकाकर रगबत से कचौरियाँ खाने लगा।

हाथ धोने के बाद जब पैसों के लिए जेब टटोली तो उसमें कुछ भी न था। दस का नोट कहीं गिर गया था।

कोट की अन्दरूनी जेब में एक बड़ा सूराख़ हो रहा था। नकली रेशम को टिड्डियाँ चाट गयी थीं। जेब में हाथ डालने पर उस जगह जहाँ "मरानजा मरानजा एण्ड कम्पनी" लेबिल लगा हुआ था, मेरा हाथ बाहर निकल आया। नोट वहीं से बाहर गिर गया होगा।

एक लम्हे में मैं यूँ दिखायी देने लगा, जैसे कोई भोली-सी भेड़ अपनी ख़ूबसूरत मुलायम-सी ऊन उतर जाने पर दिखायी देने लगती हैं।

हलवाई भाँप गया। ख़ुद ही बोला, "कोई बात नहीं बाबूजी, पैसे कल आ जायेंगे।"

मैं कुछ न बोला, कुछ बोल ही न सका। सिर्फ़ इज़हारे-तशक्कुर के लिए मैंने हलवाई की तरफ़ देखा। हलवाई के पास ही गुलाबजामुन चाशनी में डूबे पड़े थे। रोगन में फूलती हुई कचौरियों के धुएँ में से आतशी इमरतियाँ जिगर पर दाग लगा रही थीं। और ज़ेहन में पुष्पामणि की धुँधली-सी तस्वीर फिर गयी।

मैं वहाँ से बादामी बाग़ की तरफ़ चल दिया और आध-पौने घण्टे के क़रीब बादामी बाग़ की रेलवे लाइन के साथ चलता रहा। इस अर्से में जंक्शन की तरफ़ से एक मालगाड़ी आयी। उसके पाँच मिनट बाद एक शण्ट करता हुआ इंजन, जिसमें से दहकते हुए सुर्ख़ कोयले लाइन पर गिर रहे थे... मगर उस वक़्त क़रीब ही की साल्ट रिफ़ाइनरी में से बहुत से मज़दूर ओवरटाइम लगाकर लौट रहे थे... मैं लाइन के साथ-साथ दरिया के पुल की तरफ़ चल दिया। चाँदनी रात के बावजूद कॉलेज के चन्द मनचले नौजवान कश्ती चला रहे थे।

"क़ुदरत ने अजीब सज़ा दी है मुझे," मैंने कहा, "पुष्पामणि के लिए गोटे की मगजी, दुसूती, गुलाबजामुन और शम्मी के लिए काफ़ूरी मीनाकारी काँटे ख़रीदने से बढ़कर कोई गुनाह सरजद हो सकता है। जी तो चाहता है कि मैं भी क़ुदरत का एक शाहकार तोड़-फोड़कर रख दूँ..." मगर पानी में कश्तीरां लड़का कह रहा था, "इस मौसम में तो रावी का पानी घुटने-घुटने से ज़्यादा कहीं नहीं होता।"

"सारा पानी तो ऊपर से ऊपर बारी-दो आब ले लेती है। और यूँ भी आजकल पहाड़ों पर बर्फ़ नहीं पिघलती।" दूसरे ने कहा।

मैं लाचार घर की तरफ़ लौटा और निहायत बेदिली से ज़ंजीर हिलायी।

मेरी ख़्वाहिश और अन्दाज़े के मुताबिक़ पुष्पामणि और बच्चू नन्हा बहुत देर हुई दहलीज़ से उठकर बिस्तरों में जा सोये थे। शम्मी चूल्हे के पास शहतूत के नीमजान कोयलों को तापती हुई कई मर्तबा ऊँघी और कई मर्तबा चौंकी थी। वह मुझे ख़ाली हाथ देखकर ठिठक गयी। उसके सामने मैंने चोर जेब के अन्दर हाथ डाला और लेबिल के नीचे से निकाल लिया। शम्मी सबकुछ समझ गयी। वह कुछ न बोली...कुछ बोल ही न सकी।

मैंने कोट खूँटी पर लटका दिया। मेरे पास ही दीवार का सहारा लेकर शम्मी बैठ गयी और हम दोनों सोये हुए बच्चों और खूँटी पर लटके हुए गरम कोट को देखने लगे।

अगर शम्मी ने मेरा इन्तज़ार किये बग़ैर काफ़ूरी सूट बदल दिया होता तो शायद हालत इतनी मुतग्गैयुर (बदली हुई) न होती।

यजदानी और सन्तसिंह तफ़रीह–क्लब में परेल खेल रहे थे। उन्होंने दो–दो घूँट पी भी रखी थी। मुझसे पीने के लिए इसरार करने लगे। मगर मैंने इन्कार कर दिया इसलिए कि मेरी जेब में दाम न थे। सन्तसिंह ने अपनी तरफ़ से एक–आध घूँट ज़बरदस्ती मुझे भी पिला दी – शायद इसीलिए कि वह रिफ़अते–ज़ेहनी की वर्सटेड से ज़्यादा परवाह करते थे।

अगर मैं घर में उस दिन शम्मी को वही काफ़ूरी सफ़ेद सूट पहने हुए न देखकर आता तो शायद परेल में क़िस्मत–आजमाई करने को मेरा जी भी न चाहता। मैंने सोचा, काश मेरी जेब में भी एक–दो रुपये होते... क्या अजब था कि मैं बहुत–से रुपये बना लेता... मगर मेरी जेब में तो कुल पौने चार आने थे।

यजदानी और सन्तसिंह निहायत उम्दा वर्सटेड के सूट पहने नेक आलम से झगड़ रहे थे। नेक आलम कह रहा था कि वह तफ़रीह–क्लब को परेल क्लब और "बार" बनते हुए कभी नहीं देख सकता। उस वक़्त मैंने एक मासूम आदमी के मख़सूस (ख़ास) अन्दाज़ में जेब में हाथ डाला और कहा, "बीवी, बच्चों के लिए कुछ ख़रीदना क़ुदरत के नज़दीक गुनाह है, इस हिसाब से परेल खेलने के लिए तो उसे अपनी गिरह में दाम देने चाहिए। ही...ही...खी...खी..."

अन्दरूनी हँसी... बायीं निचली जेब... कोट में पुश्त की तरफ़ मुझे काग़ज़ सरकता हुआ मालूम हुआ। उसे सरकाते हुए मैंने दायीं जेब के सूराख़ के नज़दीक जा निकाला।

वह दस रुपये का नोट था जो उस दिन अन्दरूनी जेब की तह के सूराख़ में से गुज़रकर कोट के अन्दर–ही अन्दर गुम हो गया था।

उस दिन मैंने क़ुदरत से इन्तकाम लिया। मैं इसी ख़्वाहिश के मुताबिक़ परेल–परेल न खेला। नोट को मुट्ठी में दबाये घर की तरफ़ भागा। अगर उस दिन

मेरा इन्तज़ार किये बग़ैर शम्मी ने वह काफ़ूरी सूट बदल दिया होता तो मैं ख़ुशी से यूँ दीवाना कभी न होता।

हाँ, फिर चलने लगा वही तख़य्युल का दौर। गोया एक हसीन से-हसीन दुनिया की तख़लीक़ (रचना) में दस रुपये से ऊपर एक दमड़ी भी ख़र्च नहीं आती। जब मैं बहुत-सी चीज़ों की फ़ेहरिस्त बना रहा था, शम्मी ने मेरे हाथ से काग़ज़ छीनकर पुर्जा-पुर्जा कर दिया और बोली, इतने क़िले मत बनाइये... फिर नोट को नज़र लग जायेगी।

"शम्मी ठीक कहती है," मैंने सोचते हुए कहा, न तख़य्युल इतना रंगीन हो और न महरूमी से इतना दुख पहुँचे।"

फिर मैंने कहा, "एक बात है शम्मी। मुझे डर है कि नोट फिर कहीं मुझसे गुम न हो जाये... तुम्हारी खेमों पड़ोसन बाज़ार जा रही है, उसके साथ जाकर तुम यह सब चीज़ें ख़ुद ही ख़रीद लाओ... काफ़ूरी मीनाकारी-काँटे, डी.एम.सी. के गोले, मगजी और देखो, पोपी-मुन्ना के लिए गुलाबजामुन ज़रूर लाना... ज़रूर।"

शम्मी ने खेमों के साथ जाना मंज़ूर कर लिया और उस शाम शम्मी ने कश्मीरे का एक वह सूट पहना जो उसे दहेज में माँ-बाप ने दिया था।

बच्चों के शोरा-गोगा से मेरी तबियत बहुत घबड़ाती है। मगर उस दिन मैं देर तक बच्चू नन्हें को उसकी माँ की ग़ैरहाज़िरी में बहलाता रहा। रसोई से ईंधन की कोलकी, ग़ुसलख़ाने, नीभा छत पर... हर जगह उसे ढूँढ़ता रहा। मैंने उसे पुचकारते हुए कहा, "ट्राइसिकल लेने गयी है...नहीं, जाने दो... ट्राइसिकल गन्दी चीज़ होती है, आख थू। ...गुब्बारा लायेगी बीवी तुम्हारे लिए बहुत ख़ूबसूरत गुब्बारा।"

बच्चू बेटे ने मेरे सामने थूक दिया। बोला, "ऐ...ई... गण्डी"

मैंने कहा, "कोई देखे तो... कैसा बेटियों-जैसा बेटा।"

पुष्पामणि को भी मैंने गोद में ले लिया और कहा, "पोपी मुन्ना आज गुलाबजामुन जी भर खायेगा न।"

उसके मुँह में पानी भर गया। वह गोदी से उतर पड़ी और बोली "ऐसा मालूम होता है जैसे एक बड़ा-सा गुलाबजामुन खा रही हूँ..."

बच्चू रोता रहा। पुष्पामणि कथकली मुद्रा से ज़्यादा हसीन नाच बरामदे में नाचती रही।

मुझे, मेरी कल्पनाओं की उड़ान से कौन रोक सकता था? कहीं मेरे तख़य्युल के क़िले ज़मीन पर न आ रहें, इसी डर से तो मैंने शम्मी को बाज़ार भेजा था। मैं सोच रहा था, "शम्मी अब घोड़ा अस्पताल के क़रीब पहुँच चुका होगा... अब कॉलेज रोड की नुक्कड़ पर होगी... अब गन्दे इंजन के पास..."

और एक निहायत धीमी आवाज़ से ज़ंजीर हिली।

शम्मी अन्दर आते हुए बोली, "मैंने दो रुपये खेमों से उधार लेकर भी ख़र्च कर

डाले हैं।"

"कोई बात नहीं," मैंने कहा।

फिर बच्चू, पोपी मुन्ना और मैं तीनों शम्मी के आगे-पीछे घूमने लगे।

मगर शम्मी के हाथ में एक बण्डल के सिवा कुछ न था। उसने बण्डल खोला, वह मेरे कोट के लिए बहुत नफ़ीस वर्सटेड था।

पुष्पामणि ने कहा, "बीबी, मेरे गुलाबजामुन...।"

शम्मी ने ज़ोर से एक चपत उसके मुँह पर लगा दी।

दुलारी

सज़्ज़ाद ज़हीर

गोकि बचपन से वह इस घर में रही-पली, मगर सोलहवें-सत्रहवें बरस में थी कि आख़िरकार लौंडी भाग गयी। उसके माँ-बाप का पता नहीं था, उसकी सारी दुनिया यही घर था और इसके घर वाले शेख़ नाज़िम अली साहब ख़ुशहाल आदमी थे। घराने में अल्लाह की मेहरबानी से कई बेटे और बेटियाँ भी थीं। बेगम साहिबा भी ज़िन्दा थीं और जनाने में उनका पूरा राज था। दुलारी ख़ास उनकी लौंडी थी। घर में और नौकरानियाँ और मामाएँ आतीं, महीना-दो महीना, साल-दो साल काम करतीं, उसके बाद ज़रा-सी बात पर झगड़कर नौकरी छोड़ देतीं और चली जातीं। मगर दुलारी के लिए हमेशा एक ही ठिकाना था। उससे घर वाले काफ़ी मेहरबानी से पेश आते। ऊँचे दर्जे के लोग हमेशा अपने से नीचे तब़के वालों का ख़्याल रखते हैं। दुलारी को खाने और कपड़े की शिकायत न थी। दूसरी नौकरानियों के मुक़ाबले में उसकी हालत अच्छी न थी। मगर बावजूद इसके कभी-कभी जब किसी मामा से उसका झगड़ा होता तो वह हमेशा यह कटाक्ष सुनती, "मैं तेरी तरह कोई लौंडी थोड़ी हूँ।" इसका दुलारी के पास कोई ज़वाब नहीं होता।

उसका बचपन बेफ़िक्री में गुज़रा। उसका रुतबा घर की बीवियों से तो क्या नौकरानियों से नीचे था। वह पैदा ही इस वर्ग में हुई थी। यह सब तो ख़ुदा का किया-धरा है। वही जिसे चाहता है इज़्ज़त देता है, जिसे चाहता है जलील करता है। इसका रोना क्या? दुलारी को अपनी पस्ती की कोई शिकायत नहीं थी। मगर जब उसकी उम्र का वह ज़माना आया जब लड़कपन की समाप्ति और जवानी की आमद होती है और दिल की गहरी और अँधेरी बेचैनियाँ ज़िन्दगी को कभी तल्ख़ और कभी मीठी बनाती हैं, तो वह अक्सर संजीदा-सी रहने लगी। लेकिन यह एक अन्दरूनी क़ैफ़ियत थी, जिसकी उसे न तो वजह मालूम थी और न दवा। छोटी साहबज़ादी और दुलारी क़रीब-क़रीब एक उम्र की थीं और साथ खेलती थीं। मगर ज्यों-ज्यों उनकी वय बढ़ती थी, त्यों-त्यों दोनों के बीच फ़ासला ज़्यादा होता जाता। साहबज़ादी

क्योंकि शरीफ़ थीं, उनका वक्त पढ़ने, लिखने, सीने-पिरोने में ख़र्च होने लगा। दुलारी कमरों की धूल साफ़ करती, जूठे बरतन धोती, घड़ों में पानी भरती। वह ख़ूबसूरत थी, खुला हुआ चेहरा, लम्बे-लम्बे हाथ-पैर, भरा जिस्म। मगर आमतौर पर उसके कपड़े मैले-कुचले होते और उसके बदन से बू आती। त्यौहार के दिनों में अलबत्ता वह अपने रखाऊ कपड़े निकालकर पहनती और सिंगार करती थी। अगर कभी भूले-भटके उसे बेगम साहिबा या साहबज़ादियों के साथ कहीं जाना होता तब भी उसे साफ़ कपड़े पहनने होते।

शबेबरात थी। दुलारी गुड़िया बनी थी। औरतों वाले घर के आँगन में आतिशबाज़ी छूट रही थी। सब घर वाले, नौकर-चाकर खड़े तमाशा देखते। बच्चे शोर मचा रहे थे। बड़े साहबज़ादे क़ाजिम भी मौजूद थे। जिनका सिन बीस-इक्कीस बरस का था। यह अपने कॉलेज की शिक्षा ख़त्म ही करने वाले थे। बेगम साहब उन्हें बहुत चाहती थीं। मगर वह हमेशा घर वालों से बेजार रहते और उन्हें तंगनज़र व जाहिल समझते। जब वह छुट्टियों में घर आते तो उनकी छुट्टियाँ बहस करते ही गुज़र जातीं। वह अक्सर पुरानी रस्मों के ख़िलाफ़ थे। मगर इनसे नाराज़गी ज़ाहिर करके सबकुछ बरदाश्त कर लेते। इससे ज़्यादा कुछ करने को तैयार नहीं थे।

उन्हें प्यास लगी और उन्होंने अपनी माँ के कन्धे पर सिर रखकर कहा, "अम्मी जान, प्यास लगी है।" बेगम साहब ने मोहब्बत-भरे लहजे में जवाब दिया, "बेटा शर्बत पियो, मैं अभी बनवाती हूँ" और यह कहकर दुलारी को पुकारकर कहा शर्बत तैयार करे।

क़ाजिम बोले, "जी नहीं, अम्मी जान, उसे तमाशा देखने दीजिये, मैं ख़ुद जाकर पानी पी लूँगा।" मगर दुलारी हुक्म मिलते ही अन्दर की तरफ़ चल दी थी। क़ाजिम भी पीछे-पीछे दौड़े। दुलारी एक तंग अँधेरी कोठरी में शर्बत की बोतल चुन रही थी। क़ाजिम भी वहीं पहुँचकर रुके।

दुलारी ने मुड़कर पूछा, "आपके लिए कौन-सा शर्बत तैयार करूँ?"

मगर उसे कोई जवाब नहीं मिला। क़ाजिम ने दुलारी को आँख भरकर देखा। दुलारी का सारा जिस्म थरथराने लगा और उसकी आँखों में आँसू भर आये। उसने एक बोतल उठा ली और दरवाज़े की तरफ़ बढ़ी। क़ाजिम ने बढ़कर बोतल उसके हाथ से लेकर अलग रख दी और उसे गले से लगा लिया। लड़की ने आँखें बन्द कर लीं और अपना तन-मन उसकी गोद में दे दिया।

दो हस्तियों ने, जिनके मानसिक जीवन में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ था, यकायक यह महसूस किया कि उनकी आकांक्षाओं को किनारा मिल गया है। दरअसल वो तिनकों की मानिन्द काली ताक़तों के समन्दर में बहे चले जा रहे थे।

एक साल गुज़र गया। क़ाजिम की शादी ठहर गयी। शादी के दिन आ गये। चार-पाँच दिन के अन्दर घर में दुल्हन आ जायेगी। घर के मेहमानों का हुजूम है,

एक जश्न है, बहुत सारे काम हैं। दुलारी एक रात को ग़ायब हो गयी। बहुत छानबीन हुई, पुलिस को सूचना दी गयी, मगर कहीं पता न चला। एक नौकर पर सबको शक था। लोग कहते थे उसी की मदद से दुलारी भागी और वही उसे छिपाये हुए है। वह नौकर निकाल दिया गया। वास्तव में दुलारी उसी के पास निकली मगर उसने वापस जाने से साफ़ इन्कार कर दिया।

तीन-चार महीने बाद शेख़ नाज़िम अली साहब के एक बूढ़े नौकर ने दुलारी को शहर के ऐसे मोहल्ले में देखा, जहाँ ग़रीब रण्डियों का बसेरा था। बुड्ढा बेचारा बचपन से दुलारी को जानता था। वह उसके पास गया और घण्टों दुलारी को समझाया कि वापस चले। वह राज़ी हो गयी। बुड्ढा समझता था कि उसे इनाम मिलेगा और यह लड़की मुसीबत से बचेगी।

दुलारी की वापसी ने सारे घर में खलबली डाल दी। वह गरदन झुकाये, सिर से पैर तक एक सफ़ेद चादर ओढ़े, परेशान सूरत, अन्दर दाख़िल हुई और दालान के कोने में जाकर ज़मीन पर बैठ गयी। पहले तो नौकरानियाँ आयीं। वो दूर से खड़े होकर उसे देखतीं और अफ़सोस करके चली जातीं। इतने में नाज़िम अली साहब जनाने में तशरीफ़ लाये। उन्हें जब मालूम हुआ कि दुलारी वापस आ गयी है तो वह बाहर निकले, जहाँ दुलारी बैठी थी। वह काम-काजी आदमी थे, घर के मामलों में बहुत कम हिस्सा लेते थे। उन्हें भला इन ज़रा-ज़रा-सी बातों की कहाँ फ़ुरसत थी। दुलारी को दूर से पुकारकर कहा, "बेवक़ूफ़, अब ऐसी हरकत मत करना" और यह फ़रमाकर अपने काम पर चले गये। इसके बाद छोटी साहबज़ादी दबे क़दम अन्दर से बाहर आयीं और दुलारी के पास पहुँचीं, मगर बहुत क़रीब नहीं। इस वक़्त वहाँ कोई और न था। वह दुलारी के साथ खेली हुई थीं। दुलारी के भागने का उन्हें बहुत अफ़सोस था। शरीफ़, पवित्र, बाइस्मत हसीना बेगम को उस ग़रीब बेचारी पर बहुत तरस आ रहा था। मगर उनकी समझ में न आता था कि कोई लड़की कैसे ऐसे घर का सहारा छोड़कर जहाँ उसकी सारी ज़िन्दगी बसर हुई हो, बाहर क़दम तक रख सकती है। और फिर नतीजा क्या हुआ? इस्मत फ़रोशी (देह व्यापार), गुर्बत-जिल्लत। यह सच है कि वह लौंडी थी, मगर भागने से उसकी हालत बेहतर कैसे हुई? दुलारी गरदन झुकाये बैठी थी। हसीना बेगम ने सोचा कि वह अपने किये पर शर्मिन्दा है। उस घर से भागना, जिसमें वह पली, एहसान फ़रामोशी थी। मगर उसकी इसे ख़ूब सज़ा मिल गयी। ख़ुदा भी गुनाहगारों की तौबा क़ुबूल कर लेता है। गोकि उसकी आबरू ख़ाक में मिल गयी। मगर एक लौंडी के लिए यह उतनी अहम चीज़ नहीं जितनी कि एक शरीफ़ज़ादी के लिए। किसी नौकर से उसकी शादी कर दी जायेगी। सब फिर से ठीक हो जायेगा। उन्होंने आहिस्ता से नर्म लहज़े में कहा, "दुलारी, यह तूने क्या किया?" दुलारी ने गरदन उठायी, डबडबायी आँखों से एक पल के लिए अपने बचपन की हमजोली को

देखा और फिर उस तरफ़ से सिर झुका लिया।

हसीना बेगम वापस जा रही थीं कि ख़ुद बेगम साहब आ गयीं। उनके चेहरे पर जीत की मुस्कुराहट थी। वह दुलारी के एकदम पास आकर खड़ी हो गयीं। दुलारी उसी तरह चुप, गरदन झुकाये बैठी रही।

बेगम साहब ने उसे डाँटना शुरू किया, "बेहया, आख़िर जहाँ से गयी थी, वहीं वापस आयी न, मगर मुँह काला करके। सारा ज़माना तुझ पर थू-थू करता है। बुरे काम का यही अंजाम है।..."

लेकिन बावजूद इन सब बातों के बेगम साहब उसके लौट आने से ख़ुश थीं। जब से दुलारी भागी थी, घर का काम उतनी अच्छी तरह नहीं होता था।

इस लानत-मलामत का तमाशा देखने सब घर वाले बेगम साहब और दुलारी के चारों तरफ़ खड़े हो गये थे। एक गन्दी नाचीज़ हस्ती को इस तरह जलील होता देखकर सबके सब अपनी बड़ाई और बेहतरी महसूस कर रहे थे। मुर्दाख़ाने वाले गिद्ध भला कब समझते हैं कि जिस लाचार जिस्म पर वह अपनी नुकीली चोंचें मारते हैं, बेजान होने के बावजूद उनके ऐसे ज़िन्दों से बेहतर हैं।

यकायक बग़ल के कमरे से क़ाजिम अपनी ख़ूबसूरत दुल्हन के साथ निकले और अपनी माँ की तरफ़ बढ़े। उन्होंने दुलारी पर नज़र नहीं डाली। उनके चेहरे पर ग़ुस्सा साफ़ नज़र आ रहा था। उन्होंने अपनी माँ से तीखे लहज़े में कहा, "अम्मी, ख़ुदा के लिए इस बदनसीब को अकेला छोड़ दीजिये। वह काफ़ी सज़ा पा चुकी है। आप देखती नहीं कि उसकी हालत क्या हो रही है।"

लड़की इस आवाज़ को सुनने की ताब न ला सकी। उसकी आँखों के सामने वे सारे मंज़र घूम गये जब वह और क़ाजिम रातों की तनहाई में यकजा होते थे। जब उसके कान प्यार के लफ़्ज सुनने के आदी थे। क़ाजिम की शादी उसके सीने में नश्तर चुभाती थी। इसी चुभन और इसी बेदिली ने उसे कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया और अब यह हालत है कि वह भी यों बातें करने लगे। इस रूहानी कोफ़्त ने दुलारी को उस वक़्त नारी स्वाभिमान की मूर्ति बना दिया। वह उठ खड़ी हुई। उसने सारे गिरोह पर एक ऐसी नज़र डाली कि एक-एक करके सबने हटना शुरू किया। मगर यह एक ज़ख़्मी कटे परों वाली चिड़िया की उड़ान की आख़िरी कोशिश थी। उस रात को वह फिर ग़ायब हो गयी।

बादल नहीं आते

अहमद अली

और बादल नहीं आते। निगोड़े बादल नहीं आते, गर्मी इस तड़ाखे की पड़ रही है कि अल्लाह-अल्लाह, तड़पती हुई मछली की तरह भुने जाते हैं। सूरज की गर्मी और धूप की तेज़ी। भाड़ भी क्या ऐसा गर्म होगा। पूरी दोजख है। कभी देखी भी है? नहीं देखी तो अब मज़ा चख लो। वह मुई चिलचिलाती हुई धूप है कि अपने होश में तो देखी नहीं। चील अण्डा छोड़ती है। हिरन तो काले हो गये होंगे। भई कोई पंखे ही को तेज़ कर दो। सूकुन तो हो जाता है।

ख़ामोशी, ख़ामोशी, सुस्ती और पस्ती, पस्ती और मस्ती। बचपन में सुनते थे कि हिमालय पर्वत के दामन में एक बड़ी गुफा है। ऊँचे आसमान से बातें करते हुए पहाड़। सख़्त और घने। एक हिस्से में एक सूखी, बड़ी, चौड़ी और अँधेरी गुफा, उसके मुँह पर एक बड़ी चट्टान रखी रहती है। इस गुफा में बादल बन्द रहते हैं। सफ़ेद, भूरी और काली गाएँ बन्द रहती हैं। कैसे-कैसे अहमक (मूर्खतापूर्ण) ख़यालात होते हैं। जहालत की भी कोई हद है। कितना ही समझाओ समझ में नहीं आता। एक ही लाठी से बैल और बकरियों को हाँकते हो। हम कोई कुत्ते हैं कि भौंके चले जायें? भों-भों-भों कोई सुनता तक नहीं। अक्ल पर पत्थर पड़ गये हैं। ऐ कोई तो बताओ कि अक्ल बड़ी या भैंस। भैंस बड़ी है भैंस। भैंस अक्ल की दुम में नमदा। ज़्यादा कहो डण्डा लेकर पिल पड़े। सब मौलवियों के भी कहीं अक्ल होती है? अक्ल-अक्ल, सूरत न शक्ल। भाड़ में से निकल। दाढ़ी ने दिल पर क्या स्याही छा रखी है। दिमाग़ को इस्तेमाल नहीं करते। समझ को छप्पर पर रख दिया। ताक में से किताब उतारी, हिल-हिलकर पढ़ रहे हैं, झुक-झुककर पढ़ रहे हैं। वाह मियाँ, मिट्ठू – ख़ूब बोले। पढ़ो मियाँ मिट्ठू पढ़ो हक़ अल्लाह – पाक जात अल्लाह, पाक नबी रसूल अल्लाह, नबी जी भेजो। या अल्लाह भेज। मौलवी साहब को बच्चे की तमन्ना है। सख़्त आरजू है। न मालूम क्या गुनाह किया है जिसकी सज़ा मिल रही है। घबराइए नहीं। दो तावीज देता हूँ। हकीर-फ़कीर, नाचीज़ ओ गुनाहगार हूँ।

लेकिन कलामे इलाही है। अल्लाह ने चाहा तो मुराद पूरी होगी। इशा (रात की नमाज़) के बाद नहाकर सात बार दुरूद शरीफ़ पढ़कर लोबान की धूनी के साथ सहवास के वक़्त नाभि के नीचे बाँध दीजियेगा। दूसरा पानी में घोलकर एक सुराही या किसी बरतन में रख लीजियेगा और सात दिन आबे जम-जम (मक्का के एक पवित्र सोते का पानी) मिलाकर निहार मुँह पी लीजियेगा। अगर खुदा ने चाहा तो मुराद ज़रूर बर आयेगी। यह नज़राना है।

लाहौलविला कूवत... तुमको शर्म नहीं आती, समझते हो कि अल्लाह का कलाम ख़रीदा जा सकता है? खुदा को भी मोल लोगे? मैं नज़राना-वज़राना नहीं लेता। जाओ किसी टुटपुँजिये के पास जाओ। भाग यहाँ से, निकल। हज़रत सख़्त कुसूर हुआ, माफ़ी चाहता हूँ। आइन्दा ऐसी गुस्ताख़ी न होगी। अच्छा ख़ैर जा, लेकिन एक बात याद रखना – नौचन्दी जुमेरात (इस्लामी मास का पहला बृहस्पतिवार) को बड़े पीर साहब की नियाज़ दिलवा देना। सवा रुपया और पाव भर मोतिया के फूल हरे-भरे साहब के मज़ार पर चढ़ा देना। का-आ-री आजेब आ-आ आपकी दस्तारे मुबारक में खातन का आ...आ मौलवी साहब खायी। हाँ बेटा ख़ूब खायी। अजी मौलवी साहब ख़ूब खायी, हाँ-हाँ बेटा ख़ूब खायी। नहीं मौलवी साहब खायी, अबे कह तो दिया खायी, हाँ ख़ूब खायी! अंग्रेज़ों को खुदा गारत करे। अंग्रेज़ी पढ़ा-पढ़ाकर नास्तिक बना दिया, जनखा बना डाला। मर्दानगी की नाक काटकर ले गये, न दोजख का डर, न जन्नत की ख़्वाहिश। पढ़ा-पढ़ाया सब ख़ाक में मिला दिया। हमारा मज़ाक़ उड़ाते हैं, खुदा-ए-पाक पर हँसते हैं। जब आग में जलेंगे तो. ..और एक साधु उस गुफा का मुँह बरसात में खोल देता है। बादल भड़-भड़ उड़ निकलते हैं। सुन-सुन सखी पंखी का ब्याह होता था... तातल, मयूरी नाचती थी.. . बुलबुल तो ख़ूब बोला पोदना सताई,... तीतरी, मंमेरी सको कि नाल... पर बिल्ली जो नाइन आयी सारी सबा भगाई। भाड़-भाड़ सब बारात उड़ गयी। अब तो हवा उखड़ गयी। हवा। अभी देखो क्या होता है खुदा नेक हिदायत दे। सच है, क़यामत के सब आसार मौजूद हैं। आग उगलता हुआ साँप। तफरके झगड़े, लड़ाइयाँ, मज़हब और खुदा की तौहीन। ज़मीन का तबका बदल रहा है। जब यूनान का तख़्ता उल्टा था तो यही सब लक्षण मौजूद थे। या अल्लाह रहम कर। यह जाहिल हैं। यह नहीं समझते कि क्या कह रहे हैं। तू दुनिया का रब है। इनको माफ़ कर।

बादल क्यों नहीं आते? और ज़िन्दगी बवाल है। बवाल। बाल लम्बे-लम्बे काले-काले बाल। एक फिजूल की लादी लदी हुई। आख़िर हम भी मरदुवों की तरह क्यों नहीं कटवा सकते। छोटे-छोटे बालों से सिर कैसा हल्का मालूम होगा। खुदा बख़्शे, अब्बा जान के तो छोटे-छोटे थे। एक मरतबा ऐसी ही गर्मी पड़ी तो पान भी बनवा लिया था। मैंने और साबरा ने ख़ूब सिर सहलाया। काश कि हमारे बाल भी कटने होते। गुद्दी जली जाती है। झुलसी जाती है। उस पर भी बाल नहीं कटवा

सकते। ख़ानदान वालों की क्या बड़ी नाक है, हम जो बाल कटवा लेंगे तो उनकी नाक कट जायेगी। अगर मैं कहीं लड़का होती तो खोंडी छुरी से काट डालती, जड़ से उड़ा डालती। जब नाक ही न रहती तो कटने का डर कहाँ? ख़ुदा गंजे को नाख़ून ही नहीं देता। ज़ख़्म के भरने तलक नाख़ून न बढ़ आयेंगे क्या? ज़ख़्म तो भर आया लेकिन नाख़ून ही नहीं। जो ज़ख़्म-ज़ख़्म, रहम-अलरहम...

...आख़िर हम ही में रहम क्यों पैदा किया। औरत कमबख़्त मारी की भी क्या जान है, चिचड़ी से बदतर। काम करें-काज करें, सीना-पिरोना, खाना-पकाना, सुबह से रात तक जले पाँव की बिल्ली की तरह इधर-उधर फिरना। उस पर तुर्रा यह कि बच्चे जनना। जी चाहे या न चाहे, जब मियाँ मुए का जी चाहा हाथ पकड़ के खींच लिया। इधर आओ मेरी जानी, मेरी प्यारी। तुम्हारे नखरे में गर्म मसाला। देखो तो कमरे में कैसी ठण्डक है, मेरे कलेजे की ठण्डक, परे आओ। हटो परे, तुम पर हर वक़्त कमबख़्त शैतान सवार रहता है न दिन देखो, न रात। हाय, मार डाला, कटारी मारो न। हाथ निगोड़ा मरोड़ डाला-तोड़ डाला, कहाँ भागी जाती हो? सीने से चिमट के लेट जाओ। देखो कटारी का मज़ा चख लो। वही मुए दूधों पर हाथ चलने लगे। सख़्त-सख़्त उँगलियों से मसल डाला-वसल डाला। कमबख़्त ने घुण्डी को किस ज़ोर से दबाया कि बिलबिला भी न सकी। मुआ जवान मरे। कोठेवालियों के साथ भी कोई ऐसा बर्ताव न करता होगा। कमज़ोर जान लेट गयी कि सारा गर्मी का ग़ुस्सा मुझ ही पर उतरा। मुर्दे की तरह क्यों पड़ी हो। क्या जान नहीं, ज़ोर लगाओ। प्यारी प्या...री, ज...अ...आ...नी।

और हम हैं कि कुछ कर ही नहीं सकते। हम क्यों नहीं कुछ कर सकते? अगर अपना रुपया होता तो ये सब ज़िल्लतें क्यों सहनी पड़तीं। जिस वक़्त जो जी चाहता करते। कमाने की इजाज़त भी तो नहीं। पर्दे में पड़े-पड़े सड़ते हैं। लौंडियों (नौकरानियों) से बदतर ज़िन्दगी है। जानवरों से भी गये-गुज़रे हुए पिंजरे में पड़े हैं, क़ैद किये पड़े हैं। पर होते हुए भी फड़फड़ाने की गुंजाइश नहीं। हमारी ज़िन्दगी ही क्या है? बुझा दिया तो बुझ गये, जला दिया तो जल रहे हैं। हर वक़्त जला करते हैं। जलने के अलावा और भी कुछ हमारी क़िस्मत में है? हुक्म की तामील करते जायें बस। मर्द मुए सारे में जूतियाँ चटखाते फिरते हैं। कहीं बैठकर हुक्का गुड़गुड़ाया, कहीं गप्पें कीं, कहीं गंजीफा (ताश), कहीं शतरंज, कहीं मुए ताश, रात को कुछ नहीं तो चावड़ी चले गये। गाना सुनने का बहाना। लेकिन फिर सुबह नहाना कैसा? और कह-कहकर हमें जलाना। कहीं जल भी नहीं चुकते। लाख-लाख आँसू बहाते हैं। मुई आग ऐसी चौबीस घड़ी की लगी रहती है कि ज़रा बुझने का नाम नहीं लेती। मौत भी तो नहीं आती। हिन्दुओं की ज़िन्दगी कहीं हम से अच्छी है। आज़ादी तो है। ईसाइयों का तो क्या कहना। जो जी में आता है करती हैं। नाच नाचें, तस्वीरें देखें, बाल कटाएँ, लिखने वाला चैन लिखता है...

आग लगे ऐसे मज़हब को। मज़हब, मज़हब, मज़हब, रूह की तसल्ली मर्दों की तसल्ली है। और बेचारी को क्या? पाँच उँगली भर दाढ़ी रख के बड़े मुसलमान बनते हैं। टट्टी की आड़ में शिकार खेलते हैं। हमारे तो जैसे जान तलक नहीं। आज़ादी के लिए तो बस एक दीवार है। अब्बा जान ने किस मुसीबत से स्कूल में दाख़िल किया था। मुश्किल से आठवीं तक पहुँची थीं कि ख़ुदाबख़्शे दुनिया से चले गये। फ़ौरन स्कूल से नाम कटा दिया और इस मोटे-मुस्टण्डे, दाढ़ी वाले के साथ नत्थी कर दिया। मुवा शैतान है। औरत की आज़ादी तो आज़ादी, औरत का जवाब तक देना गवारा नहीं करता।

क्या समन्दर सूख गये जो बादल नहीं आते, सूख गये? समन्दर सात समन्दर पार से आये, हमारी भी लुटिया डूब गयी, गुड़प-गुड़प-गुड़प गोते लगा रहे हैं, अपने ही ख़ून में नहा रहे हैं। धूप तो इतनी तेज़ है, भाप भी नहीं बनती। काहे की भाप बने, ख़ून तो खुश्क हो गया, जलकर राख हो गया, लेकिन क्या सचमुच बादल भाप के बनते हैं? हम तो सुना करते थे कि बादल स्पंज की तरह होते हैं। हवा में तैरा करते हैं। जब गर्मी बहुत सख़्त पड़ी, प्यास के मारे समन्दर के किनारे उतर पड़ते हैं। ख़ूब पानी पीते हैं और फिर हवा में उड़ जाते हैं। शायद हमारी सरकार के जहाज़ी बेड़े से डर के उड़ जाते हैं और तोपों के ख़ौफ़ से मूतने लगते हैं। जो कुछ भी स्कूल में पढ़ाते हैं झूठ बकते हैं। बादल सचमुच भाप के नहीं होते। भूगोल ग़लत ख़ौफ़े-बरतानियाँ दुरुस्त। दुरुस्त। यही बात है। ओ-हो बात समझ में आयी। क्या समझे – जहाज़ी बेड़ा और तोप। लेकिन अफ़ग़ान भी क्या तप्पुक मारता है। चट्टानों की आड़ में छिपा रहता है। जहाँ दुश्मन को देखा एक आँख भींच ली। शायद दोनों आँखें बन्द कर लेता है। घोड़ा दबा दिया। ठाँय! ठप से ज़िन्दा जान मुर्दे की तरह गिर पड़ी। ख़ूब मारा – ख़ूब, लेकिन अफ़ग़ान तो पैदल चलता है। मगर हवाई जहाज़ को एक गोली से गिरा लेता है। हमारे पास तो मोटर छोड़ इक्का भी नहीं। हम क्या करेंगे? चलो जलियाँवाला बाग़ की सैर कर आयें। मगर जायेंगे काहे में? हम बताएँ, सरकण्डे की गाड़ी में दो बैल जोते जायें। वाह भई वाह। ख़ूब सुनायी। इतने सारे आदमी और सरकण्डे की गाड़ी।

पागल है भाई पागल, पीरी है बेलमड़द पीरी है। सफ़ेद की पीरी है। वह काटा, यों नहीं तो यों सही। हुश-हुश मेरे कान में घुस। सबके कान में घुस लेंगे। पागल है भाई पागल है। वह काटा। यही तो मुसीबत है, सुनते तक नहीं। इस कान से सुना, उस कान से निकाल दिया। जूँ तक नहीं चलती। घड़ा भी क्या इतना चिकना होगा। मिट्टी में पड़े रौंदते हैं। सूरत तक को नहीं सँभालते। क्या शेर था – क्या? हमने अपनी सूरत बिगाड़ ली, उनको तस्वीर बनानी आती है। क्या था? एक हम हैं। हाँ, हम यह ही हम जिनको अपनी सूरत का अहसास नहीं। काले भुजंगे, मैले-कुचैले, लँगोटी में मस्त हैं। भाई बन्दों में किसी ने कोई बात कह दी लड़ने-मरने पर आमादा

और दूसरे जो गला काट डालते हैं। उसका कुछ नहीं। जूते खाते हैं लात सहते हैं। गालियाँ सुनते हैं और फिर वही लौंडों की सी बात, अबके मार। चाट। अच्छा अबके तो मार लिया। अबके तू मार। चाट–चाट। में, में। देखो बी अम्माँ चुन्नू का बच्चा नहीं मानता, जब से बरोबर मारे जा रहा है। उसको समझा लो, नहीं तो उस हरामज़ादे की...।

...माशा अल्लाह – चश्मेबद्दूर–चश्मेबद्दूर, क्या मीठी गाली दी है। मुँह चूम ले। मुँह। ज़बान गुद्दी के पीछे से खींच के निकाल डाले, ऐसा चाँटा मारे कि सारा पिजूड़ापन दूर हो जाये। कुत्ते की तरह मारते हैं, हड्डी दिखाकर मारते हैं, अजी पास बुला के मारते हैं, धार करके मारते हैं, प्यार करके मारते हैं, दुलार करके मारते हैं और तो और मार करके मारते हैं। और हम हैं कि कुत्ते की जात फिर उनके चूतड़ों में घुसे जाते हैं। अफ़सोस तो यह है कि गू तक नहीं मिलता। आख थू...काले कुत्ते का गू। लानत है तुम जैसे लोगों पर। बस बे छोटम। बस। चुन्नू की गाली सह ली। मार–मार देखता क्या है? लपक के, दे दबा के हाथ, मार और। राजा मारी पोदनी हम बीर बसावन जायें। आपकी सूरत तो मुलाहेजा हो। क्या पिद्दी का शोरबा। हम बीर बसावन जायें। वाह मेरे सींख के पहलवान, वाह, कोई फबती कहो। ख़ुदा लगती कहो। हम बैर बसावन जायें। हाँ, बैर कहते तो एक बात भी थी। मियाँ शेख़पुर के बहुत अच्छे होते हैं। कभी सहारनपुर के बीरों का भी नाम सुना है? अजी हज़रत बैल होंगे, बैल, जी हाँ। बजा फरमाया, दुरुस्त बैल ही तो थे। हम बैर बसावन जायें। सरकण्डों की गाड़ी दो बैल जोते जायें। और...? राजा मारी पोदनी, हम बैर बसावन जायें। वाह मियाँ पोदने बड़ी हिम्मत की। मिट्टी का शेर है न? सरकण्डों की गाड़ी में बैठेगा, बैलों पर, कि।

राजा मारी पोदनी, हम बैर बसावन जाये।

अफ़तारी

रशीद जहाँ

"रोज़ादार रोज़ा खुलवा दे, अल्लाह तेरा भला करेगा" एक फ़कीर की आवाज़ ड्योढ़ी से होती हुए आँगन तक आयी, डिप्टी साहब की बेगम साहिबा जिनका मिज़ाज पहले ही से चिड़चिड़ा था बोलीं,

"न मालूम कमबख़्त ये सारे दिन कहाँ मर जाते हैं, रोज़ा भी तो चैन से नहीं खोलने देते।"

"अल्लाह तेरा भला करेगा" की काँपती हुई आवाज़ फिर घर में पहुँची।

"नसीबन, अरी ओ नसीबन, देख वहीं कुफली (एक बरतन) में कुछ जलेबियाँ परसों की बची हुई रखी हैं, फ़कीर को दे दे।"

नसीबन ने पूछा, "और भी कुछ?"

"और क्या चाहिए, सारा घर न उठाकर दे दे।"

नसीबन दुपट्टा सँभालती हुए अन्दर चली गयी। बरामदे में तख़्त पर बेगम साहिबा बैठी थीं। दस्तरख़्वान सामने बिछा था जिस पर चन्द अफ़तारी की चीज़ें चुनी हुई थीं और कुछ अभी तली जा रही थीं। मिनट-मिनट में घड़ी देख रही थीं कि कब रोज़ा खुले और कब वह पान और तम्बाकू खायें, वैसे ही बेगम साहिबा का मिज़ाज क्या कम था लेकिन रमजान में तो उनकी ख़ुशमिज़ाजी नौकरों में एक कहावत की तरह मशहूर थी। सबसे ज़्यादा मुसीबत तो बेचारी नसीबन की आती थी, घर की पली छोकरी थी। बेगम साहिबा के सिवा उसका दुनिया में कोई नहीं था और बेगम साहिबा अपनी इस ममता को नसीबन की अक्सर मरम्मत करके पूरा कर लिया करती थीं। हालाँकि गर्मी रुख़सत हो गयी थी लेकिन फिर भी एक पंखा बेगम साहिबा के क़रीब रखा रहता था, जो ज़रूरत के वक़्त नसीबन की ख़बर लेने के काम आता था।

"अरी क्या वहीं मर गयी, निकलती क्यों नहीं?"

नसीबन ने जल्दी से मुँह पोंछा, जलेबियाँ लेकर ड्योढ़ी की तरफ़ चली।

"इधर तो दिखा, कितनी हैं?"

नसीबन ने आकर हाथ फैला दिया। उसमें सिर्फ़ दो जलेबियाँ थीं।

"दो..." बेगम साहिबा ज़ोर से चीख़ पड़ीं।

"अरे उजड़ी उसमें तो ज़्यादा थीं। इधर तो आ... क्या तू खा गयी?"

"जी नहीं..." नसीबन मुँह ही मुँह में मिनमिनाई। लेकिन बेगम साहिबा की तेज़ निगाहों ने जलेबी के टुकड़े नसीबन के दाँतों में देख ही लिए। बस फिर क्या था, आव देखा न ताव, पंखा उठाकर पिल ही तो पड़ीं,

"हरामज़ादी, यह तेरा रोज़ा है, आवारा, नीच, तुझसे आधे घण्टे और सब्र न किया गया। ठहर तो मैं तुझे चोरी का मज़ा चखाती हूँ।..."

"अल्लाह तेरा भला करेगा, अपाहिज का रोज़ा खुलवा दे!"

"अब नहीं... अच्छी बेगम साहिबा, अब नहीं, अल्लाह बेगम साहब माफ़ कीजिए, अच्छी बेगम साहिबा अच्छी..." नसीबन गिड़गिड़ाने लगी।

"अब नहीं... अब नहीं कैसी... ठहर तो तू। मुर्दार तेरा दम ही न निकालकर छोड़ा हो रोज़ा तोड़ने का मज़ा"

"तेरे बाल बच्चों की ख़ैर, रोज़ादार का रोज़ा"

जब बेगम साहिबा बेदम होकर हाँफने लगी तो नसीबन को धक्का देकर बोलीं –

"जा कमबख़्त, जाकर फ़कीर को ये जलेबियाँ दे आ। बेचारा बड़ी देर से चीख़ रहा था... और ले यह दाल भी..." बेगम साहिबा ने थोड़ी-सी दाल, नसीबन की मुट्ठी में डाल दी। नसीबन सिसकियाँ भरती हुई ड्योढ़ी पर गयी। दो जलेबियाँ और दाल फ़कीर को दे आयी।

नयी सड़क जो शायद कभी नयी हो, अब तो पुरानी और ख़स्ता हालत में थी, इसके दोनों तरफ़ घर थे। बस कहीं-कहीं कोई मकान ज़रा अच्छी हालत में नज़र आ जाता था। ज़्यादातर मकान पुराने और बोसीदा थे, जो इस मोहल्ले की गिरी हुई हालत का पता देते थे। यह सड़क ज़रा चौड़ी थी, जिसको रंगरेज, धोबी, जुलाहे और लोहार वग़ैरह अलावा चलने फिरने के, आँगन की तरह इस्तेमाल करने पर मजबूर थे। गर्मियों में इतनी चारपाइयाँ बिछी होती थीं कि चक्का भी मुश्किल से निकल सकता था। इस मोहल्ले में ज़्यादातर मुसलमान आबाद थे। अलावा घरों के यहाँ तीन मस्जिदें थी। इन मस्जिदों के मुल्लाओं में एक तरह की बाज़ी लगी रहती थी कि कौन इन जाहिल ग़रीबों को ज़्यादा उल्लू बनाये और कौन इनकी गाढ़ी कमाई में से ज़्यादा हजम करे। ये मुल्ला बच्चों को क़ुरआन पढ़ाने से लेकर झाड़-फूँक, तावीज, गण्डा, गरज कि हर उन तरीक़ों के उस्ताद थे कि जिन से वो इन जुलाहों और लोहारों को बेवक़ूफ़ बना सकें। ये तीन बेकार और फिजूल ख़ानदान इन मेहनत करने वाले इन्सानों के बीच ऐसे रहते थे कि जिस तरह घने जंगलों में दीमक रहती हैं और

आहिस्ता–आहिस्ता दरख़्तों को चाटती रहती हैं। ये मुल्ला सफ़ेदपोश थे और उनका पेट पालने वाले मैले और गन्दे थे। ये मुल्ला साहेबान सय्यद और शरीफ़जादे थे और मेहनतक़श नीच व कमीनों में गिने जाते थे।

इस मोहल्ले में एक टूटा हुआ मकान था। नीचे के हिस्से में कबाड़ी की दुकान थी और ऊपर कोई पन्द्रह बीस ख़ान रहते थे। ऊपर की मंज़िल का छज्जा सड़क की तरफ़ खुलता था। ये ख़ान सरहद के रहने वाले थे और सब के सब सूद पर रुपया चलाते थे। ये लोग बहुत गन्दे थे, मोहल्ले वाले इनसे डरे रहते थे। एक तो ज़्यादातर लोग इनके कर्ज़दार थे, दूसरे इनकी निगाह ऐसी बुरी थी कि अकेली औरत की हिम्मत उनके घर के सामने से निकलने की नहीं होती थीं। दिन भर उनके घर में ताला पड़ा रहता था। शाम को जब ये लोग वापस आते तो एक छोटी देग में गोश्त उबाल लेते। बाज़ार से नान लेकर उसी एक बरतन में हाथ डालकर खाना खा लेते और चिंचोड़ी हुई हड्डियाँ नीचे सड़क पर फेंक जाते। जब उनके खाने का वक़्त होता तो शाम को बहुत से कुत्ते जमा हो जाते और देर तक गर्र–गर्र भों–भों की आवाज़ें आती रहतीं।

अपना पेट भर के ये ख़ान बही–खाते खोलकर बैठ जाते। हिसाब–किताब करने लगते। फिर कुछ अपने कम्बल बिछाकर और हुक्का लेकर सोने को लेट जाते और चन्द मनचले शहर की मटरगश्ती को निकल खड़े होते, सूद खाने वाले ख़ान रोज़ा नमाज़ के बहुत पाबन्द होते हैं और अपने को सच्चा मुसलमान समझते हैं। हालाँकि उनके मज़हब ने सूद लेने को एकदम मना किया है लेकिन ये सूद को नफ़ा कहकर हजम कर जाते थे और अपने ख़ुदा के हुज़ूर में अपनी इबादत रिश्वत के रूप में पेश करते रहते थे। आजकल रमजान था तो सब ख़ान भी रोज़ा रखे हुए थे और अफ़तार के ख़याल से जल्दी घर लौट आते थे। उनका दिल बहलाने का एक तरीक़ा यह भी था कि अपने छज्जे पर खड़े होकर सड़क की सैर करें और कोई इक्का–दुक्का औरत सड़क से गुज़रे तो उस पर आवाज़ें कसें। उनके सामने का जो घर था, उसकी खिड़कियाँ तो कभी खुलती ही नहीं थीं। कभी जब वहाँ रौशनी होती तो पता चलता कि फिर वहाँ कोई नया किरायेदार आ गया है। फिर एक दिन छकड़े और ताँगे आते और घर फिर ख़ाली हो जाता।

एक दिन असग़र साहब मकान ढूँढ़ते फिरते थे। इस घर को भी देखा। उस वक़्त ख़ान बाहर गये हुए थे। घर में ताला पड़ा हुआ था। असग़र साहब ने घर को पसन्द किया, ख़ासकर किराये को, कुली वग़ैरा हो जाने पर अपनी बीवी–बच्चे और माँ के साथ घर आ गये। उनकी बीवी नसीमा को घर बहुत पसन्द आया। आसपास का मुहल्ला गन्दा और बोसीदा हालत में है तो हुआ करे। बीस रुपये में इतना बड़ा मकान यों कहाँ मिला जाता था। उसने फ़ौरन घर को सजाने और ठीक कराने का इरादा कर लिया। शाम को वह अपनी खिड़की से झाँककर बाहर सड़क पर बच्चों की भागदौड़

देख रही थी कि उसकी सास भी आ खड़ी हुई और बाहर देखने लगीं और एकदम "उई..." कहकर पीछे हट गयीं।

"ऐ देख तो इन मोटे-मुस्टण्डे पठानों को – "

"फूटें इनके दीदे। इधर देख-देखकर कैसे हँस रहे हैं" नसीमा ने निगाह मोड़ी तो देखा कि कई ख़ान अपने छज्जे पर दाँत निकाले उसकी तरफ़ घूर रहे हैं। नसीमा के उधर देखते ही पठानों की फ़ौज में एक हलचल हुई और वो ज़ोर-ज़ोर से बातें करने लगे। शुक्र तो यह था कि उनका घर ज़रा तिरछा था फिर भी सामना ख़ूब होता था।

"ऐ दुल्हन खिड़की बन्द करके हट जाओ...यह कैसा बेपर्दा घर असग़र ने लिया है। मैं तो यहाँ दो रोज़ नहीं टिक सकती।" नसीमा ने जवाब नहीं दिया और पठानों की आँखों में आँखें डालकर बराबर उधर देखती रही। सास वहाँ से बड़बड़ाती हुई चली गयीं, "मर्दों की कौन जब औरतें ही शर्म न करें।"

असग़र और नसीमा की ज़िन्दगी में अब से नहीं कुछ अर्से से रुकावट पैदा हो गयी थी। इन दोनों की मँगनी बचपन ही में हो गयी थी। जैसे-जैसे बढ़ते गये, पर्दा भी बढ़ता गया मगर आँख मिचौली, जैसी अपने यहाँ अक्सर मंगेतरों में होती है, इनमें भी होती रही, नौबत यहाँ तक पहुँची हुई थी, कि छिप-छिपकर ख़त भी लिखा करते थे।

असग़र जब कॉलेज में पढ़ता था तो नौजवानी का ज़माना था तबियत में जोश था, और उन लड़कों का साथी था जो मुल्क़ की आज़ादी का दर्द दिल में रखते थे। उसकी जोशीली तक़रीरें और अंग्रेज़ों के ज़ुल्म, ज़मींदारों की बेगार, किसानों की मुसीबत, सरमायेदारों की लूट और मज़दूरों के संगठन के बारे में उसके तर्क व व्याख्याएँ बहुत मशहूर थीं। बोलने वाला गजब का था, विद्यार्थियों की दुनिया में वह हर जगह मशहूर था। देश को उससे बहुत आशाएँ थीं, नसीमा को उससे भी ज़्यादा। असग़र अपने कॉलेज की सब बातें नसीमा को लिखता रहता और जब वह उसका नाम अख़बार में देखती तो गर्व से सिर ऊँचा हो जाता। उसकी किसी सहेली का भाई या मंगेतर ऐसा देशभक्त नहीं था। नसीमा ने भी अपने को नयी ज़िन्दगी के लिए तैयार करना शुरू किया।

अक़लमन्द को इशारा काफ़ी। होशियार लड़की थी, वह अपने समाज के रोगों को अच्छी तरह समझने लगी और साथ ही उनको सुधारने की तरक़ीबें भी अपने दिमाग़ में खींचने लगी। देश को आज़ाद कराने और उसको सुख पहुँचाने के लिए वह हर क़िस्म का बलिदान करने की तैयारी करने लगी। आज़ादी के नाम से उसको इश्क़ हो गया था। वह उस पर अपना सबकुछ क़ुर्बान कर सकती थी।

जैसे ही असग़र ने बी.ए. किया दोनों की शादी हो गयी और साथ रहने से नसीमा को पता चला कि असग़र की रौशनख़्याली एक छोटे-से दायरे के अन्दर

बन्द है। उन्होंने इतना ज़रूर किया कि अपने चन्द दोस्तों से बीवी को मिलवा दिया था। इन लोगों से बातचीत करने के बाद नसीमा की सोच और समझ में ज़्यादा तरक्की हो गयी और उसमें ख़ुद आगे बढ़कर काम करने की ख़्वाहिश हुई। एक तरफ़ तो नसीमा का शौक़ और जोश बढ़ रहा था, दूसरी तरफ़ असग़र धीरे-धीरे ठण्डे और ढीले पड़ते जा रहे थे। कहते कुछ थे, करते कुछ थे। जिस आसानी के साथ दोस्तों से बहानेबाज़ी कर सकते थे, नसीमा के साथ नहीं कर पाते थे। कभी कहते हमारे यहाँ तो बच्चा होने वाला है, फिर यह कि बच्चा छोटा है। कभी कहा कि वकालत ख़त्म कर लेने दो, वकालत ख़त्म भी न की थी कि नौकर हो गये। नौकरी भी की तो सरकारी। अपने पुराने दोस्तों से अलग होने लगे।

आख़िर कब तक नसीमा से अपने दिल का हाल छिपा सकते थे। बाहर तो बीवी-बच्चों का बहाना था लेकिन घर में क्या कहते। नसीमा भी समझ गयी कि यह करने-धरने वाले तो कुछ हैं नहीं, सिर्फ़ बातें बनाने के हैं। जब कभी पुराने दोस्त इत्तेफाक से मिल जाते तो असग़र साहब फिर वही ज़बानी जमा ख़र्च शुरू कर देते और अपनी ग़ैर सियासी ज़िन्दगी को एक मुसीबत बनाकर दोस्तों के सामने पेश कर देते और सब यही सोचते कि नसीमा ही इनको बहकाने की ज़िम्मेदार है। मियाँ (पति) की इस मौक़ापरस्ती से उसके दिल में गिरह पड़ गयी और उसने ख़ामोशी इख़्तियार कर ली।

अब तो असग़र के दोस्त ढीले-ढाले वकील और सरकारी मुलाज़िम थे, जिनमें सी.आई.डी. वाले भी शामिल थे। नसीमा के पास अकेले बैठते हुए उन्हें एक उलझन-सी होती थी, क्योंकि उनके दिल में चोर था और जानते थे कि इस चोर का पता नसीमा को ख़ूब मालूम है। नसीमा की हर बात उन्हें ताना नज़र आती थी। उसकी सर्द ख़ामोशी से उन्हें झुँझलाहट-सी आ जाती थी और उनका दिल चाहता था कि वह नसीमा के चेहरे पर एक ज़ोर का थप्पड़ मार दें। अगर नसीमा उनसे लड़ती, बातें सुनाती और ताना दे-देकर उनके दिल को छलनी कर देती तो इतनी तकलीफ़ न होती जितनी कि उसकी ख़ामोश हिकारत से होती थी।

अफ़तार का वक़्त क़रीब था। सब ख़ान दरीचे में मौजूद थे। कुछ खड़े थे, कुछ चाय पका रहे थे। नसीमा असलम के साथ अपनी खिड़की से झाँक रही थी। उसे यहाँ रहते एक माह होने को आया था, ख़ान अब तक उसकी सूरत और लापरवाही के आदी हो चुके थे। अब भले नसीमा वहाँ घण्टों खड़ी रहे, वे लोग उसकी तरफ़ ध्यान नहीं देते थे। उस वक़्त भी उनकी आँखें और कान मस्जिद की तरफ़ लगे हुए थे।

अफ़तार (रोज़ा खोलने) में अभी कुछ देर थी, कि एक बूढ़ा फ़कीर गली में से निकलकर सड़क पर आया, जिस तरह वह टटोलता हुआ चल रहा था, उससे लगता था कि वह अन्धा था, उसके सारे जिस्म में कम्पन था, जिस लकड़ी के सहारे

वह चल रहा था, उसे पकड़े रहने में उसे मुश्किल हो रही थी। उसकी मुट्ठी में कोई चीज़ थी, जो उसके हाथों के काँपने की वजह से दिखायी न देती थी। वह आहिस्ता-आहिस्ता बढ़कर नसीमा के घर के सामने एक दीवार से टेक लगाकर खड़ा हो गया।

"देखो अम्माँ उस फ़कीर के हाथ में क्या है?"

नसीमा ने ध्यान से देखकर कहा,

"खाने की कोई चीज़ मालूम होती है"

"खा क्यों नहीं लेता...?"

"रोज़े से होगा, शायद अजान का इन्तज़ार कर रहा हो?"

"अम्माँ तुम रोज़ा नहीं रखती?"

"तुम जो नहीं रखते" नसीमा ने नन्हे असलम को छेड़ा।

"मैं तो छोटा हूँ, दादी अम्माँ कहती हैं, जो बड़ा हो जाये और रोज़ा न रखे तो वह दोजख में जाता है। अम्माँ दोजख क्या होती है?"

"दोजख? दोजख वह तुम्हारे सामने तो है।"

"कहाँ?" असलम ने सामने की तरफ़ ध्यान से देखा।

"वह नीचे जहाँ अन्धा फ़कीर खड़ा है, जहाँ वो जुलाहे रहते हैं, और जहाँ रंगरेज रहता है और लोहार भी..."

"दादी अम्माँ तो कहती हैं कि दोजख में आग होती है"

"हाँ आग होती है, लेकिन ऐसी थोड़ी होती है जैसी हमारे चूल्हे में। दोजख की आग बेटा भूख की आग होती है। अक्सर वहाँ खाने को मिलता ही नहीं और जो मिलता भी है तो बहुत बुरा और थोड़ा सा। मेहनत भी बहुत करनी पड़ती है और कपड़े भी दोजख वालों के पास फटे-पुराने होते हैं और असलम मियाँ, दोजख के बच्चों के पास खिलौने भी नहीं होते...।"

"कल्लू के पास भी तो खिलौने नहीं हैं, वह दोजख में जो रहता है।"

"हाँ..." नसीमा ने असलम को प्यार से देखते हुए कहा।

"और जन्नत...?" असलम ने मासूमियत से पूछा।

"जन्नत यह है, जहाँ हम और तुम, चचा और खालाजान रहते हैं। बड़ा-सा घर, साफ़-सुथरा, खाने को मजे-मज़े की चीज़ें, मक्खन, टोस्ट, फल, अण्डा, सालन, दूध सबकुछ होता है। बच्चों के पास अच्छे कपड़े और खेलने की अच्छी-सी मोटर होती है।"

"तो अम्माँ सब लोग जन्नत में क्यों नहीं रहते?"

"इसलिए मेरी जान..." नसीमा ने असलम के माथे को चूमते हुए कहा "...कि जो लोग जन्नत में रहते हैं, वो उन लोगों को घुसने नहीं देते, अपना काम तो करवा लेते हैं और फिर उन लोगों को दोजख में धक्का दे देते हैं।"

"और वो अन्धे भी हो जाते हैं...?"

"हाँ बेटा, दोजख में अन्धे बहुत ज़्यादा होते हैं"

"तो वो खाते कैसे हैं?"

इतने में अजान की आवाज़ आयी और गोला चला। ख़ान चाय पर लपके और बुड्ढे फ़कीर ने हाथ में दबी जलेबियाँ जल्दी से मुँह की तरफ़ बढ़ाईं। रआशा (कम्पन) और बढ़ गया। उसके हाथ ज़्यादा काँपने लगे और सिर भी ज़ोर-ज़ोर से हिलने लगा बड़ी मुश्किल से हाथ मुँह तक पहुँचाया और जब मुँह खोलकर जलेबियाँ मुँह में डालने लगा तो रआशा की वजह से जलेबियाँ हाथ से छूटकर ज़मीन पर गिर पड़ीं। साथ ही बुड्ढा भी जल्दी से घुटनों के बल ज़मीन पर गिर पड़ा और अपने काँपते हाथों से जलेबियाँ ढूँढ़ने लगा। उधर एक कुत्ता जलेबियों पर लपका और जल्दी से जलेबियाँ खा गया। दूसरे कुत्ते भी बढ़े। बुड्ढे ने भी उनको डाँटा, कुत्ते इस पर गुर्राने लगे। बुड्ढा निढाल होकर ज़मीन पर बैठ गया, और बच्चों की तरह बिलख-बिलखकर रोने लगा। ख़ान जो उधर देख रहे थे, उन्होंने यह सीन देखकर क़हक़हा लगाया और बुड्ढे फ़कीर की शक्ल और बेचारगी पर हँस-हँसकर लोट-पोट हो गये।

छोटा असलम सहमकर नसीमा से चिमट गया और बोला –

"अम्माँ..."

उसके नन्हे-से दिमाग़ ने पहली बार दोजख की असली तस्वीर देखी थी। नसीमा ने पठानों की तरफ़ ग़ुस्से से देखकर कहा,

"यह कमबख़्त..."

असलम ने फिर दबी आवाज़ में कहा,

"अम्माँ..."

नसीमा ने झुककर उसे गोद में उठा लिया और उसकी आँखों में आँखें मिलाकर जोश से कहा,

"मेरी जान, जब तुम बड़े हो जाओगे, तो इस दोजख को मिटाना तुम्हारा ही काम होगा"

"और माँ तुम...?"

"मैं बेटा अब इस क़ैद से कहाँ जा सकती हूँ?"

"क्यों... अभी तो तुम दादी की तरह बूढ़ी नहीं हुई हो कि चल न सको।"

नन्हे असलम ने माँ की संजीदगी की नकल करते हुए कहा –

"तुम भी चलना माँ,"

"अच्छा मेरे लाल, तुम्हारे साथ ज़रूर चलूँगी।"

कुलवन्ती

क़ुर्रतुल ऐन हैदर

लम्बे-चौड़े सीले हुए स्नानगृह में दिन में भी अँधेरा रहता था। पीतल के झालपाल ततेड़, ऊँचा हमाम, मटके, चौकी, रंग-बिरंगी साबुनदानियाँ, बेसन, उबटन, झाँवे, लोटे, आफ़्ताबे, मग्गे, खूटियों पर ग़रारों और मैले दुपट्टों का ढेर। आँवलों और रीठों से भरी तश्तरियाँ, अँधेरा घुप्प, मुआ अली बाबा चालीस चोर की गुफा-सा। लेकिन यही स्नानगृह छम्मी बेगम के दुखी जीवन में समय-समय पर आश्रय का काम देता था। उसी की हरे शीशों वाली बन्द खिड़की का रुख़ चमेली वाले मकान की ओर था। उसके एक शीशे का रंग नाख़ून से ज़रा-सा खुरचकर छम्मी बेगम ने बाहर झाँकने की जुगाड़ कर रखी थी, क्योंकि छम्मी बेगम के लाडले अज्जू मियाँ चमेली वाले मकान में रहते थे। वे छम्मी बेगम के दूर के रिश्तेदार थे। पहरों वे उस शीशे में से सामने वाले घर में इस तरह तकती रहती थीं जैसे शाहजहाँ अपने क़ैदख़ाने में से ताजमहल को देखा करता था।

औसत दर्जे के इस ज़मींदार परिवार के पुश्तैनी घर के दो भाग थे। बाहर वाला मर्दाना भाग, जिसके आँगन में चमेली की घनी झाड़ियाँ थीं 'चमेली वाला मकान' कहलाता था। ज़नाने हिस्से के आँगन में इमली का छायादार पेड़ खड़ा था, इसलिए सारे मोहल्ले में इसका नाम 'इमली वाला मकान' पड़ गया था। दोनों आँगनों की बीच वाली दीवार में आने-जाने के लिए एक खिड़की थी।

छम्मी बेगम के अब्बा और अज्जू मियाँ के अब्बा पास-पास रहते थे। छम्मी बी के पैदा होते ही उनकी अज्जू मियाँ से सगाई हो गयी थी । नौ-दस बरस की उम्र में मंगेतर से काना-पर्दा करा दिया गया था। अज्जू मियाँ बहुत ख़ूबसूरत और खिलन्दड़ थे। इकलौते लाडले बेटे, इसलिए वे तो जी-भर के बिगड़े। पतंगबाज़ी, कबूतरबाज़ी, यह बाज़ी, वह बाज़ी। लेकिन उनके माँ-बाप को विश्वास था कि शादी होते ही सुधर जायेंगे। छम्मी बेगम तो होश सँभालते ही उन्हें अपना सभी कुछ समझने लगी थीं। माँ-बाप की इकलौती वे भी थीं। उनके नाज़-नख़रे भी कम न

उठाए जाते। ज़िद्दी, गुस्सेवाली और अभिमानी छम्मी बेगम सोलह साल की हुई तो शादी की तारीख़ तय कर दी गयी। दोनों ओर धूम-धाम से तैयारियाँ होने लगीं कि अचानक मौत ने इस सुखी और ख़ुशहाल घराने की बिसात उलट दी। उस साल शाहजहाँपुर में महामारी फैली तो उसमें पन्द्रह दिन के अन्दर-अन्दर छम्मी बेगम की अम्माँ और अब्बा दोनों चटपट हो गये। छम्मी बेगम पर क़यामत गुज़र गयी। लेकिन अभी अज्जू मियाँ के माँ-बाप का साया सिर पर सलामत था। सबसे बड़ी बात यह कि अज्जू मियाँ से निकाह होने वाला था। छम्मी बेगम माँ-बाप का शोक मनाने के बाद फिर से भविष्य के सुहाने सपने देखने में व्यस्त हो गयीं।

शादी कुछ समय के लिए आगे बढ़ा दी गयी लेकिन इससे पूर्व कि अज्जू मियाँ के बाप तारीख़ तय करें, दिल का दौरा पड़ने से उनकी भी मृत्यु हो गयी।

उनके मरते ही अज्जू मियाँ ने कहा कि वे कुछ मुक़दमों के सिलसिले में लखनऊ जा रहे हैं, और अपने ख़ास दोस्तों के साथ उड़न-छू हो गये। उनकी माँ छम्मी बेगम के मकान में आकर रहने लगीं। अब इमली वाले मकान में ड्योढ़ी पर पुराने नौकर धम्मू ख़ाँ डण्डा सँभाले बैठे रह गये। अन्दर सलामत बुआ और उनकी लड़कियाँ खाना पकाने में जुटी रहतीं। दोनों घरों की सुरक्षा के लिए अज्जू मियाँ की माँ ने एक बूढ़े रिश्तेदार मल्लन ख़ाँ को बरेली से बुलवा भेजा, जो चमेली वाले मकान में दालान में खटिया डालकर पड़ रहते।

अज्जू मियाँ लखनऊ गये तो वहीं के हो रहे। हर पत्र में अम्माँ को लिख भेजते कि मुक़दमे की तारीख़ बढ़ गयी है। महीने दो महीने में आ जाऊँगा।... पूरे छह महीने बाद वापस आये तो अम्माँ ने शादी की बात छेड़ी। वे बोले, जब तक ज़मीनों के मामले नहीं सुधर जाते मैं शादी-वादी नहीं करने का। तभी से छम्मी बेगम अँधेरे स्नानगृह के कोने में मैले कपड़ों के ढेर पर बैठकर चुपके-चुपके रोने लगीं। अब छम्मी बेगम उन्नीस वर्ष की हो चुकी थीं। अज्जू मियाँ ने शायद तय कर लिया था कि लखनऊ में ही रहेंगे। लोगों ने आकर बताया कि ख़ूब रंगरलियाँ मना रहे हैं। छम्मी बेगम भी न जाने कैसा भाग्य लिखवाकर आयी थीं कि एक दिन अज्जू मियाँ की अम्माँ पर दिल का दौरा पड़ा और वे भी चल बसीं।

अब छम्मी बेगम बिल्कुल अकेली, हैरान-परेशान रह गयीं। आँगन में उल्लू बोलने लगे। कुछ और सुरक्षा के ख़याल से अन्धे-धुन्धे मल्लन ख़ाँ चमेली वाले मकान से इमली वाले मकान में आ गये। इधर आँगन में पड़े वे खाँसा करते। ड्योढ़ी में धम्मू ख़ाँ खाँसता रहता।

अज्जू मियाँ माँ की मौत पर आये थे। तीजा करते ही वापस चले गये। किस तरह उन्होंने मँझधार के बीचोबीच छम्मी बेगम का साथ छोड़ा, अल्लाह-अल्लाह। जब वे यह सब सोचतीं तो कलेजा फटने लगता। महीने-के-महीने छम्मी बेगम की ज़मीनों की थोड़ी-सी आमदनी दो सौ रुपये की रक़म का मनीआर्डर लखनऊ से आ

जाता था। कभी-कभी मल्लन ख़ाँ के नाम ख़ैर-ख़बर पूछने का पत्र आ जाता था। मल्लन ख़ाँ की बीवी और बेटी भी बरेली आ गयी थीं लेकिन अपने चिड़चिड़े स्वभाव के कारण छम्मी बेगम की उन दोनों से एक दिन न बनी। दिनभर उन लोगों से लड़ने-झगड़ने या आप-ही-आप तिलमिलाने और कुढ़ने के बाद छम्मी बेगम फिर स्नानगृह मे घुस जातीं और रोतीं या 'शाह – जहानी शीशे' में से चमेली वाले मकान को तका करतीं। यह जीवन भी कोई जीवन है? वे सोचती। अभी कुछ भी नहीं। कल की सी बात लगती है कि इस घर में कितनी रौनक़ थी। दालान में आराम कुर्सियाँ पड़ी हैं। आँगन में मोढ़े बिछे हैं। अब्बा और अज्जू मियाँ के बाप के दोस्तों की महफ़िल जमी है। बड़ी-बड़ी दावतें हो रही हैं। उनके बाद या तो मुशायरा हो रहा है या क़व्वाल गा रहे हैं। जब अज्जू मियाँ के दोस्त आते तो अज्जू मियाँ आँगन वाली खिड़की में आकर खँखारते और एक ख़ास अन्दाज़ में धीरे-से पुकारते – "अरे भई छम्मी, ज़रा चाय तो भिजवा दो।"

इन सुखी घरानों को किसकी नज़र लग गयी?

अपनी इस धनी निराशा के बावजूद छम्मी बेगम को यक़ीन था कि एक-न-एक दिन अज्जू वापस आयेंगे। चमेली वाला मकान फिर आबाद होगा।

जुमे-के-जुमे वे उस मकान में जाती। धम्मू ख़ाँ और सलामत बुआ की लड़कियों के साथ मिलकर बाग़ के झाड़-झंखाड़ साफ़ करवातीं। दालान के जाले उतारे जाते। अन्दर के कमरों पर ताला था। दरवाज़ों के शीशों में से झाँककर वे अन्दर के कमरों पर नज़र डालती और सिर हिलाती, ठण्डी आहें भरतीं, वापस आ जातीं।

छम्मी बेगम तीस बरस की हो गयीं। बाल समय से पूर्व सफ़ेद हो चले। अब उन्होंने चमेली के बाग़ की देखभाल भी छोड़ दी। दुनिया से जी उचाट-सा हो गया, लेकिन ग़ुस्से और रोब-दाब की आदत वही रही। बल्कि अब उम्र के बढ़ने के साथ इसमें भी वृद्धि होती जा रही थी। उनके इस अभिमान और तनातनी के कारण भी कुछ कम न थे। माँ-बाप ख़ालिस असल-नसल रोहेले पठान। दादा-परदादा हफ़्त-हज़ारी न सही, एक हज़ारी दो हज़ारी (या निगोड़े जो कुछ भी वे होते थे) ज़रूर ही रहे होंगे। सारे कुनबे का सुर्ख़ रंग और पठानी अहंकार और ग़ुस्सा इस बात का खुला सबूत था कि इस ख़ानदान में खोट खबेल कभी न हुई। अतीत के इन जुगादरी रोहेला सरदारों के नाम-लेवा इस कुनबे की कुलीनता और सम्मान पर कोई आँच न आये यही सोचकर वे बिल्कुल क़िला-बन्द होकर बैठ रहीं। मुहल्ले की औरतों से मिलना-जुलना भी कम कर दिया। विधवाओं की तरह सफ़ेद कपड़े पहनने लगीं। उनका अधिकतर समय नमाज़ के तख़्त पर गुज़रता। प्रायः दोपहर के सन्नाटे में सलामत बुआ आँगन की खिड़की में बैठकर जर्दा फाँकते हुए बड़े डरावने स्वर में आप-से-आप बुड़बुड़ाती-"बारी तआला (अल्लाह) फ़रमाता है।... मुझे दो वक़्त अपने बन्दों पर हँसी आती है। एक जब, जिसे मैं बना रहा होऊँ वह अपने को

बिगाड़ने की कोशिश करे और दूसरे जब, जिसे मैं बिगाड़ रहा होऊँ वह अपनेआप को बनाने की कोशिश करे। बस दो वक़्त।" और छम्मी बेगम दहलकर डाँटती – "ऐ सलामत बुआ, मनहूसत की बातें मत करो।" लेकिन सलामत बुआ इतमीनान से उसी तरह बुड़बुड़ाती रहतीं।

उस रोज़ नौचन्दी जुमेरात (इस्लामी माह की पहली बृहस्पतिवार) थी। छम्मी बेगम स्नानगृह में नहा रही थीं। सर्दियों का मौसम था। हमाम के नीचे सुलगते अंगारे कबके बुझ चुके थे और छम्मी बेगम को कँपकँपी-सी चढ़ रही थी। जल्दी से बाल तौलिए में लपेटकर खड़ावें पहन रही थीं जब सलामत बुआ की सिड़बिल्ली नवासी ने स्नानगृह के दीमक लगे किवाड़ की कुण्डी ज़ोर से खड़खड़ाई।

"आपा-ऐ आपा, जल्दी निकलो।"

"अरे क्या है बावली?" छम्मी बेगम ने झुँझलाकर आवाज़ दी।

"आपा, चमेली वाले मकान में, आपसे कहा है कि चार-पाँच जनों के लिए चाय भिजवा दीजिये, जल्दी।"

"क्या...क्या? छम्मी को अपने कानों पर यक़ीन न आया। उन्होंने जल्दी से 'शाह-जहानी शीशे' से आँख लगा दी।

अँगनाई का फाटक खुला हुआ था। बाहर दो ताँगे खड़े थे। दो-तीन लोग सामान उतरवा रहे थे। तीखे नैन-नक़्शवाली एक काली-कलूटी औरत, लाल जारजेट की साड़ी पहने हरी बनारसी शाल में लिपटी, दालान में मोढ़े पर बैठी आराम से घुटने हिला-हिलाकर नौकरों को हुक्म दे रही थी। एक उसकी हमशक्ल तेरह-चौदह साल की उछाल-छक्का-सी छोकरी कासनी शलवार कमीज़ पहने फ़र्श पर उकड़ूँ बैठी एक बक्स खोलने में व्यस्त थीं। इतने में सदा की तरह बाँके छबीले अज्जू मियाँ अन्दर से निकले। झुककर उस लाल चुड़ैल से कुछ कहा। वह क़हक़हा मारकर हँसी। छम्मी बेगम की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। धुँधली रोशनी वाला स्नानगृह अब बिल्कुल अन्धा कुआँ बन गया। उन्होंने जल्दी से एक खूँटी पकड़ ली फिर लड़खड़ाती हुई बाहर आयी और बेसुध होकर अपने बिस्तर पर गिर गयीं।

बात यह थी कि अज्जू मियाँ, उन्होंने बरसों से लखनऊ वाली कल्लो को घर डाल रखा था, अब बाक़ायदा निकाह करके उसे अपने साथ ले आये थे। कासनी शलवार वाली लड़की अशरफ़ी को कल्लो अपने साथ लायी थी। वह अज्जू मियाँ की बेटी नहीं थी।

शाम को अज्जू मियाँ कल्लो को साथ लेकर पर्दा करवाए बिना बेधड़क, छम्मी बी के घर को आये और दालान में पहुँचकर पुकारा –

"अरे भई छम्मी... आओ, अपनी भाभी से मिल लो।"

छम्मी बेगम काँपकर रह गयी। पलंग से उठकर फिर स्नानगृह में जा घुसीं और ज़ोर से चटख़नी चढ़ा ली। अज्जू ज़रा चोर-से बने दालान के एक दर में खड़े रहे।

कल्लो उनके पीछे दुबकी हुई थी। दोनों मियाँ-बीवी कुछ मिनट तक उसी प्रकार चुपचाप खड़े रहे और फिर सिर झुकाये वापस चले गये।

उस दिन के बाद से छम्मी बेगम की दुनिया बदल गयी। अब वे सारा दिन क़ुरानशरीफ़ ही पढ़ा करती । अज्जू ने उन्हें इतने वर्षों तक अधर में लटकाकर, उनका जीवन बरबाद करके किसी और से शादी कर ली, इस असहनीय सदमे से ज़्यादा डर उन्हें इस बात से था कि उन्होंने कल्लो बाई तवायफ़ से निकाह करके ख़ानदान की इज़्ज़त और आबरू ख़ाक कर दी। छम्मी बेगम इस अपराध के लिए उन्हें मरते दम तक क्षमा नहीं कर सकती थीं। कल्लो ने कई बार उनकी ओर दोस्ती का हाथ बढ़ाया। अक्सर वह आँगन की खिड़की में से धीरे-से कहती – "बिटिया, किसी चीज़ की ज़रूरत हो तो बता दीजिये।" कभी कोई ख़ास खाना बनता तो नौकर के हाथ सीनी भिजवाती लेकिन, छम्मी बेगम ने धम्मू ख़ाँ को हुक्म दे रखा था कि चमेली वाले मकान से कोई चिड़िया का बच्चा भी इस तरफ़ आये तो उसकी टाँगें तोड़ दो।

छम्मी बेगम की ज़मीनों की आमदनी बिल्कुल ख़त्म हो चुकी थी। घर वापस आने के बाद दूसरे महीने अज्जू ने मल्लन ख़ाँ के हाथ दो सौ रुपये भिजवाए, लेकिन छम्मी बेगम खिड़की में जाकर ललकारी – जुम्मा ख़ाँ मरहूम की बेटी और शब्बू ख़ाँ मरहूम की पोती, चकले से आया हुआ एक पैसा भी अपने ऊपर हराम समझती है। मल्लन ख़ाँ ग़ैरत वाले पठान हो तो जाकर यह दो सौ रुपल्ली भेजने वाले के मुँह पर दे मारो।" यह कहकर उन्होंने खिड़की खट से बन्द कर ली और उसमें मोटा ताला डाल दिया।

अब छम्मी बेगम अपने गहने बेचकर गुज़ारा करने लगीं। गहने ख़त्म हो गये तो घर का क़ीमती सामान कबाड़ी के हाथ बेच डाला। लेकिन भूख एक स्थायी रोग है जिसका वक़्ती इलाज काफ़ी नहीं और छम्मी बेगम को धम्मू ख़ाँ, मल्लन ख़ाँ, सलामत बुआ और उनके चींगड़-पोटो का पेट भरना था। उन्होंने अपने घर में मोहल्ले की लड़कियों को क़ुरानशरीफ़ और उर्दू पढ़ाने के लिए बच्चियों का एक छोटा-सा मदरसा खोल लिया। मोहल्ले वालों के कपड़ों की सिलाई करने लगीं। जब मेहनत करते-करते बीमार पड़ गयीं और हलहलाकर बुखार चढ़ आया तो सलामत घबरा गयी और बोली – "बीवी, क्या आन पर जान दे दोगी? ऐसी भी क्या निगोड़ी आन?" लेकिन छम्मी बेगम बुखार से बेसुध पड़ी थीं। सलामत भागी-भागी चमेली वाले मकान में पहुँची।

कल्लो फ़ौरन सिर पर बुर्का डालकर गली के रास्ते अन्दर आयी। डॉक्टर बुलाया गया। कल्लो सारी रात पलंग की पट्टी से लगी बैठी रही। अज्जू मियाँ ने कई बार आकर दुखियारी छम्मी की हालत देखी, लेकिन शायद अब भी उसे अन्याय का अहसास न हुआ जो उन्होंने इनके साथ किया था, क्योंकि सलामत बुआ के

शब्दों में – "उस काली-बला ने उन्हें उल्लू का मांस खिला रखा था।"

छम्मी बेगम को ज्यों ही होश आया, आँखें खोली और कल्लो का फ़िक्रमन्द चेहरा सामने देखा, उन पर ग़म और गुस्से का भूत फिर सवार हो गया। कल्लो उनके पठानी तेज़ से बहुत भयभीत थी। फ़ौरन कान दबाकर अपने घर वापस भाग गयीं। अधिकतर तवायफ़ों की तरह, जो शादी करके बेहद वफ़ादार नेक बीवियाँ बन जाती हैं, कल्लो भी बड़ी पतिव्रता औरत थी और बड़ी अभिलाषा यही थी कि छम्मी बेगम उसे कुनबे की बहू मानकर उसे इमली वाले घर में प्रवेश करने दें। उसकी इच्छा कभी पूरी न हुई ।

दस वर्ष बीत गये। अज्जू मियाँ को छम्मी बेगम के रिश्ते की फ़िक्र भी थी, लेकिन छम्मी बेगम अधेड़ हो चुकी थीं। अब उनसे विवाह कौन करेगा?

छम्मी बेगम उनसे और कल्लो से उसी प्रकार कड़ा पर्दा करती थी। उसी प्रकार मदरसा चलाकर गुज़ारा कर रही थी कि देश का विभाजन हो गया। आधा मोहल्ला समझो ख़ाली हो गया। उनके मदरसे की अधिकतर लड़कियाँ अपने-अपने माँ-बाप के साथ पाकिस्तान चली गयीं। छम्मी बेगम के यहाँ रोटियों के लाले पड़ गये। उसी ज़माने में किसी काम से अज्जू मियाँ दिल्ली गये और दंगों में वे भी मारे गये। जब उनकी सूनावनी आयी कल्लो पछाड़ें खाने लगी। चूड़ियाँ तोड़ डालीं। आँगन की खिड़की पर मुक्के मार-मारकर हाथ लहूलुहान कर लिए – "हाय बिटिया... बिटिया... अरे मैं कहीं की न रही।"

छम्मी दालान के तख़्त पर बेख़बर सो रही थीं। रोने-चिल्लाने की भयंकर आवाज़ सुनकर जाग उठीं। दीवार की कील से टँगी चाबी उतारी। ताला खोला। कल्लो बाल बिखराए भूतनी की तरह खड़ी चीख़ रही थी – "अरे लोगो! मेरा सुहाग लूट गया... हाय बिटिया, मेरी माँग उजड़ गयी।" ...उसने आगे बढ़कर छम्मी से लिपटना चाहा। वे दो क़दम पीछे हट गयी। फिर वे भी खिड़की में बैठ गयी। सफ़ेद दुपट्टा मुँह पर रख लिया। सिसक-सिसककर रोने लगी। रोते-रोते बोली – "अरे मुरदार तू तो आज बेवा हुई है। मैं अभागिन तो सदा की विधवा हूँ।" "अज्जू मियाँ के चालीसवें के बाद ही कल्लो न जाने कहाँ ग़ायब हो गयी। उसकी लड़की अशरफ़ी, जिसका पन्द्रह वर्ष पूर्व अज्जू मियाँ ने अपने किसी ख़ास मित्र से निकाह करवा दिया था, लखनऊ से आयी चमेली वाले मकान का सारा सामान छकड़ों पर लदवाकर चलती बनी। छम्मी बेगम स्नानगृह के शीशे में से गहरी उदासी से इस नश्वर संसार के ये सारे तमाशे देखती रहीं।

चमेली वाले मकान पर कस्टोडियन का ताला पड़ गया क्योंकि छम्मी बेगम अदालत में यह किसी प्रकार साबित न कर सकीं कि अज्जू मियाँ पाकिस्तान नहीं गये बल्कि दंगों में मारे गये। ख़ुद किसी पुराने प्रेत की तरह इमली वाले मकान में मौजूद रहीं। मल्लन और धम्मू ख़ाँ दोनों बुढ़ापे और भूख के कारण मर गये। सलामत

बुआ पर फ़ालिज गिर गया। उनकी लड़कियाँ और जमाई पाकिस्तान चले गये। छम्मी बेगम सिलाई करके पेट पालती रहीं। अकेले मकान में रहते हुए अब उन्हें डर नहीं लगता था क्योंकि सिर सफ़ेद हो चुका था। बहुत जल्द मुहल्ले की बड़ी-बूढ़ी कहलायेंगी। कुछ समय बाद चमेली वाले मकान में एक सिख शरणार्थी डॉक्टर आन बसे। कभी-कभी सरदारनियाँ आँगन की खिड़की में आ बैठतीं और वे और छम्मी बेगम से अपने दुख-सुख की बातें करतीं। डॉक्टर साहब की लड़की चरणजीत कौर की शादी नयी दिल्ली में किसी सरकारी अधिकारी से हुई थी। अबकी बार वह मायके आयी तो उसने अपनी माँ से कहा कि उसके पति के मुसलमान अधिकारी की बेगम को एक ट्यूटर की आवश्यकता है जो घर पर रहकर उनके बच्चों को उर्दू और क़ुरान पढ़ा सके। "मैं तो छम्मी मौसी से कहते डरती हूँ। उन्हें ग़ुस्सा आ जायेगा। आप कहकर देखिये।"

बड़ी सरदारनी ने छम्मी बेगम से इस नौकरी का ज़िक्र किया। समझाया-बुझाया – "बहिन जी, इस ग़रीबी और अकेलेपन में कब तक गुज़ारा करोगी। दिल्ली चली जाओ, सबीहउद्दीन साहब के घर इज़्ज़त और आराम से बुढ़ापा कट जायेगा।"

छम्मी बेगम का ग़ुस्सा कब का धीमा पड़ चुका था। रोब-दाब, आवेश और तेज़ी में कमी आ गयी थी। उनकी समझ में यह बात आ गयी कि यदि कल को मर गयी तो अन्तिम समय में यासीन शरीफ़ (मृत्यु के समय पढ़ी जाने वाली दुआ) पढ़ने वाला तो कोई होना चाहिए।

मुख़्तसर यह कि छम्मी बेगम बुर्क़ा ओढ़ केवल एक बक्स और बिस्तर और लोटा साथ लेकर घर से निकली। अब तक घर बिल्कुल खण्डहर बन चुका था, और जिसके खण्डहर बनने का अब उन्हें बिल्कुल ग़म न था क्योंकि वे त्याग और सन्यास की अवस्था में पहुँच चुकी थी। वे रेल में बैठकर दिल्ली पहुँची, जहाँ रेलवे स्टेशन पर बेगम सबीहउद्दीन, चरणजीत का पत्र मिलने पर कार लेकर उन्हें घर ले जाने के लिए आ गयी थीं।

उसी दिन से शाहजहाँपुर के जुम्मन ख़ाँ ज़मींदार की बेटी छम्मी बेगम मुग़लानी (आया) बन गयी।

छम्मी बेगम ने पूरे बारह साल सफ़ेद दुपट्टा माथे से लपेटे सबीहउद्दीन साहब के घर में बिता दिये। बच्चे, जिन्हें क़ुरानशरीफ़ पढ़ाने आयी थीं, बड़े हो गये। बड़ा लड़का बी.ए. करने के बाद अपने चचा के पास पाकिस्तान भेज दिया गया। मझली लड़की भी ब्याह कर कराची चली गयी। छोटी लड़की कॉलेज में थी। अब बेगम सबीहउद्दीन को छम्मी बेगम की ज़रूरत नहीं रही। सबीहउद्दीन साहब रिटायर होकर अपने आबई वतन मिर्ज़ापुर जाने वाले थे। दिल्ली से रवाना होने से पहले बेगम सबीहउद्दीन ने छम्मी बेगम को अपनी सहेली बेगम राशिद अली के यहाँ रखवा दिया। राशिद अली साहब भी भारत सरकार के एक उच्च अधिकारी थे।

छम्मी बेगम, सबीहउद्दीन साहब के घर बहुत सुख-चैन से रही थी। उनके साथ घर के बड़ों जैसा व्यवहार किया जाता था। उन्हें तीनों बच्चों से बेहद मोहब्बत हो गयी थी। ग़ुस्सा भी बहुत कम आता था। यदि आता भी तो अपनी मजबूरियों का विचार करके पी जाती थीं। अब उनके नाज़ उठाने वाला कौन था? उनके नाज उठाने वाले कब के मर चुके थे। कभी-कभी उन्हें कल्लो का विचार भी आ जाता और सोचती थीं कि वह कमबख़्त अब न जाने कहाँ और किस हाल में होगी? या शायद वह भी मर-खप गयी हो। आजकल ज़िन्दगी का क्या भरोसा है?

बेगम राशिद अली आजकल की माडर्न लड़की थीं, लेकिन इज़्ज़त उन्होंने भी छम्मी बेगम की बहुत की। यहाँ भी वे घर के सदस्य की भाँति रहती। राशिद अली उनका बहुत ख़याल रखते। उनकी रोबदार शक्ल-सूरत और कुलीनता से भी प्रभावित थे। बेगम राशिद अली अक्सर सहेलियों से कहती – "भई वाकई लाईफ़ में कैसे-कैसे उतार-चढ़ाव आते हैं। पलभर में क्या से क्या हो जाता है! हमारी मुग़लानी बी का क़िस्सा सुना है आपने? शाहजहाँपुर के एक ऊँचे ख़ानदान से ताल्लुक़ रखती हैं..." और महिलाएँ सिर हिलाकर ठण्डी साँसे भरतीं और दूसरे इसी तरह के नसीहत भरे क़िस्से सुनातीं।

बेगम राशिद अली के बच्चे बहुत छोटे थे। उनकी हैदराबादी 'आया माँ' देखभाल करती थीं। छम्मी बेगम हाउस-कीपर बन गयी। घर सँभालने के लिए बेगम राशिद को छम्मी बेगम की बेहद ज़रूरत थी क्योंकि उनका अपना समय अधिकतर क्लबों, पार्टियों और सरकारी कार्यक्रमों में गुज़रता था।

पाँच वर्ष छम्मी बेगम ने राशिद अली के घर में काट दिये । जब राशिद साहब का ट्रांसफ़र भारतीय दूतावास वाशिंगटन होने लगा तो उनकी बेगम को फ़िक्र हुई कि छम्मी बेगम का कहीं और ठिकाना बनाएँ। एक दिन वे अपने एक अलविदाई लंच के लिए रौशनआरा क्लब गयी हुई थीं और छम्मी बेगम से कहती गयीं कि तीन बजे कार लेकर मुन्नी को मेरे पास ले आइएगा। जब छम्मी बेगम रौशनआरा क्लब पहुँची तो लंच अभी ख़त्म नहीं हुआ था। छम्मी बेगम बच्चों की उँगली पकड़े घास पर टहलती रहीं। वे अब पर्दा नहीं करती थीं। और साड़ी पहनती थीं। इस निगोड़ी दिल्ली में उन्हें पहचानने वाला अब कौन रखा था? सामने बरामदे में एक तरफ़ रमी की महफ़िल जमी थी। एक बेहद फ़ैशनेबल चालीस-पैंतालीस साल की तेज़ तर्रार औरत पाँच-छह मर्दों के साथ कहकहे लगा-लगाकर ताश देखने में व्यस्त थीं।

सत्रह वर्ष दिल्ली में रहकर छम्मी बेगम इस नयी 'ऊँची सोसाइटी और आधुनिक भारतीय महिलाओं की अल्ट्रा मार्डन जीवन-शैली की भी अभ्यस्त हो चुकी थी, इसलिए वे आराम से घास पर टहलती रहीं। कुछ मिनटों के बाद उस महिला ने सिर उठाकर छम्मी बेगम को ज़रा ध्यान से देखा । कुछ देर बाद फिर नज़र डाली और अपने एक साथी से कुछ कहा। तब छम्मी बेगम ने देखा, एक मर्दुवा ताश

की मेज़ से उठकर लम्बे-लम्बे डग भरता, उनकी ओर आ रहा है।

पास आकर उससे कहा – "बड़ी बी, ज़रा इधर आइए।"

छम्मी बेगम शालीनता से बरामदे में पहुँची। अजनबी महिला ने पूछा यह बच्ची किसकी है और वह किसकी नौकर है? छम्मी बेगम ने बताया। महिला ने कहा, यह बम्बई में रहती है और आजकल उन्हें भी एक विश्वस्त 'बड़ी बी' की ज़रूरत है। अगर वह अपने जैसी किसी बड़ी बी को जानती हो तो बताएँ। छम्मी बेगम फ़ौरन दिल में उस मेहरबान ख़ुदा का लाख-लाख शुक्र बजा लायी जो अन्न का एक दरवाज़ा बन्द करता है तो दूसरा फ़ौरन खोल देता है। फिर उन्होंने उसी शालीनता से उत्तर दिया कि वे स्वयं शीघ्र ही इस नौकरी से मुक्त होने वाली है। "मेरी बेगम साहब अभी बाहर आती होंगी, उनसे बात कर लीजिये।" इतना कहकर वे वहीं बरामदे में बेगम राशिद की प्रतीक्षा करने लगीं। जब बेगम साहिबा लंचरूम से निकलीं तो मेज़ से उठकर अजनबी औरत ने अपना परिचय दिया। अपना नाम मिसेज रज़िया बानो बताया और छम्मी बेगम के सम्बन्ध में उनसे बात की। बेगम राशिद भी बहुत ख़ुश हुईं और वायदा किया कि वाशिंगटन रवाना होने से पहले वे ख़ुद छम्मी बेगम को रेल में बिठा देंगी। रज़िया बानो ने बताया था कि वे आज शाम ही बम्बई वापस जा रही हैं। अपने घर का पता लिखकर उन्होंने छम्मी बेगम को दे दिया, लेकिन बेगम राशिद ने ज़रा चिन्तित होकर पूछा – "ख़ाला, क्या तुम अकेली इतनी दूर का सफ़र कर सकोगी?" छम्मी बेगम ने फ़ौरन स्वीकृति में सिर हिला दिया। छम्मी बेगम को अब जीवन की किसी बात के लिए 'नहीं' कहने की ज़रूरत ही न रही थी। उन्होंने रज़िया बानो से तनख़्वाह का फ़ैसला भी न लिया क्योंकि उन्होंने सदा के लिए एक तनख़्वाह निश्चत कर ली थी। चालीस रुपये महीना और खाना। ये चालीस रुपये उनकी निजी आवश्यकताओं के लिए बहुत थे। कपड़े उन्हें हमेशा अपनी बेगमों से मिल जाते थे। बहुत समय पहले उन्हें मालूम हो चुका था कि कपड़े-लत्ते, गहने-पाते, जायदाद-सम्पत्ति, दोस्ती-प्यार सब अर्थहीन और नश्वर चीज़ें हैं।

बेगम राशिद अली और छम्मी बेगम बरामदे में से उतरने लगीं तो रज़िया बेगम ने बैग खोलकर फ़ौरन डेढ़ सौ रुपये के नोट निकालकर छम्मी बेगम को दे दिये – "सफ़र ख़र्च।" उन्होंने ज़रा लापरवाही से कहा। बेगम राशिद को उनकी इस दरियादिली पर आश्चर्य तो हुआ लेकिन उन्हें ख़ुद पता था कि बम्बई में एक से एक बड़ी सेठानी बसती हैं। छम्मी बेगम ने ख़ामोशी से नोट जेब में उड़स लिए। उन्होंने अब जीवन की अनोखी घटनाओं पर चकित होना भी छोड़ दिया था।

मिस्टर और मिसेज राशिद अली के अमरीका जाने से दो दिन पहले छम्मी बेगम ने भी ट्रेन में सवार होकर बम्बई का रास्ता पकड़ा। बम्बई सेण्ट्रल पहुँचकर वे पहली बार कुछ घबराई क्योंकि नयी दिल्ली की शान्त कोठियों में उन्होंने अब तक बहुत

सुरक्षित जीवन गुज़ारा था। अल्लाह का नाम लेकर प्लेटफार्म से बाहर निकलीं। कुली के सिर से अपना टिन का बक्स और दरी में लिपटा बिस्तर उतरवाया। अपना लोटा, पंखा और पायदान सँभालकर टैक्सी की। सरदारजी को पता बताया – "गुलज़ार जाडन रोड।"

थोड़ी देर बाद टैक्सी एक ऊँची नयी इमारत की बरसाती में जा रुकी। छम्मी बेगम ने बूढ़े सरदारजी को किराया दिया, जो रास्ते में उनसे दुनिया के हालात पर विचार-विनिमय करते आये थे। उसी समय दो बेहद स्मार्ट लड़कियाँ लिफ़्ट से निकलकर सरदारजी की टैक्सी में बैठ गयी। सरदारजी ने ख़ामोशी से "लैग गिराया और फाटक से बाहर निकल गये। कितनी सिस्टमेटिक और मशीनी ज़िन्दगी थी इस शहर की।

छम्मी बेगम ने सदरी की जेब से काग़ज़ का टुकड़ा निकालकर आँखें चुँधियायीं और पता पढ़ा – "ग्यारहवीं मंज़िल, "फ़्लैट नम्बर तीन।" स्टूल पर बैठे चौकीदार ने उकताए हुए अन्दाज़ में ख़ामोशी से उठकर उनका सामान लिफ़्ट में रख दिया। लिफ़्ट आटोमेटिक थी। छम्मी बेगम बहुत घबराई। चौकीदार जल्दी से अन्दर आया और उन्हें ग्यारहवें माले पर पहुँचाकर नीचे वापस चला गया। अब छम्मी बेगम अपने सामान सहित लम्बी गैलरी में अकेली खड़ी थीं। फिर उनकी नज़र पास के एक दरवाज़े पर पड़ी, जिसके ऊपर नम्बर तीन लिखा था। उसपर एक जालीदार दरवाज़ा था जैसे बैंक के दरवाज़े होते हैं। छम्मी बेगम ने आगे बढ़कर घण्टी बजाई। कुछ क्षणों बाद एक भूरी आँख ने अन्दर के किवाड़ के जालीदार सुराख से उन्हें अपने घर का पट हटाकर झाँका। खुरचा हुआ शीशा याद आ गया, जिसमें से उन्होंने पहली बार उस मनहूस लाल चुड़ैल को देखा था। थोड़ी देर बाद दोनों दरवाज़े खुले एक गुस्सैला-सा गोरखा बाहर निकला उसने सन्देह-भरी नज़रों से छम्मी बेगम को देखा। छम्मी बेगम डर-सी गयी फिर याद आया कि वे भी पठान हैं। सिर उठाकर रोब से कहा – "बेगम साहब से कहो, छम्मी बेगम दिल्ली से आ गयी हैं।"

"मालूम है तुम दिल्ली से आया है। अन्दर आ जाओ" – गोरखे ने रूखाई से जवाब दिया और बाहर निकलकर उनका सामान उठा लिया। उसके पीछे-पीछे छम्मी बेगम अन्दर आ गयी तो उसने खट-से दोनों दरवाज़े बन्द कर लिए।

अब छम्मी एक मद्धिम रौशनी वाले एयरकण्डीशण्ड आलीशान ड्राइंगरूम में खड़ी थीं ऐसा शानदार ड्राइंगरूम तो न बेचारे सबीहउद्दीन साहब का था और न राशिद अली साहब का। एक तरफ़ की दीवार पर काला पर्दा पड़ा था जो ज़रा-सा सरका हुआ था और इसके पीछे दीवार से लगी सिनेमा की छोटी-सी स्क्रीन नज़र आ रही थी। कमरे के दूसरे हिस्से में 'बार' थी।

"बेगम साहब हैं?" छम्मी बेगम ने दोनों हाथों में लोटा, पानदान और पंखा उठाए-उठाए सवाल किया।

"मेम साहब सो रहा है।"

"और साहब?" नौकरी शुरू होने से पहले, घर के साहब के इण्टरव्यू से वे हमेशा झिझकती थीं।

गोरखे ने कोई उत्तर नहीं दिया और ड्राइंगरूम से निकलकर एक गैलरी की ओर चला गया। छम्मी बेगम उसके पीछे-पीछे दोनों तरफ़ देखती हुई चल पड़ीं। गैलरी में दोनों ओर चार दरवाज़े थे, जो सब अन्दर से बन्द थे। यह बहुत बड़ा और शानदार फ़्लैट था।

आगे जाकर गैलरी बायीं ओर मुड़ गयी थी। यहाँ रसोईघर और नौकरों के दो छोटे-छोटे कमरे थे, जिनके बाहर बालकनी थी। नौकरों के इस्तेमाल वाले जीने में भी अन्दर से ताला पड़ा था। एक साफ़-सुथरी और रौशन ख़ाली कोठरी में जाकर गोरखे ने बक्स-बिस्तरा धम-से ज़मीन पर रख दिया और उसी तरह चुपचाप बाहर चला गया।

छम्मी बेगम ने पानदान अलमारी के तख़्ते पर रखकर अपनी नयी पनाहगाह, नये ठिकाने पर नज़र डाली। कोने में लोहे का एक पलंग पड़ा था। उन्होंने दिल में सोचा, यह बहुत चुभेगा। दीवारों पर पिछले शौक़ीन-मिज़ाज नौकरों की चिपकाई हुई फ़िल्मी अभिनेत्रियों की तस्वीरें मुस्कुरा रहीं थी। कोठरी में उमस थी। छम्मी ने खिड़की खोली तो सहसा समन्दर आँखों के सामने आ गया। नीला, विस्तृत, फैला हुआ ठाठें मारता, अप्रत्याशित जीवन की घटनाओं के समान अचानक। उन्होंने समन्दर पहले कभी न देखा था। एकाएक ख़याल आया, उस मालिक के क़ुर्बान जाऊँ जो बिगड़े कामों को बना देता है। समन्दर तक पहुँच गयी। अब ख़ुदा ने चाहा तो हज भी कर आऊँगी । इसी समन्दर के उस पार मक्का-मदीना है। यह सोचकर उनका जी भर आया।

कोठरी से मिला हुआ नौकरों का स्नानगृह था। छम्मी बेगम ने बक्सा खोला, कपड़े निकाले, स्नानगृह में गयीं। अपने ख़ानदानी मकान का वह लम्बा-चौड़ा मद्धिम रौशनी वाला हमाम, मामाएँ, असीलें वे बरसों की कोशिश के बाद भुला चुकी थीं। मनुष्य जीवन के निरन्तर परिवर्तनों का अभ्यस्त होता चला जाता है। अन्यथा मर जाये।

नहा-धोकर और कपड़े बदलकर वे फिर अपनी कोठरी में आयी। सारा घर सुनसान पड़ा था। नौकर न चाकर। साहब दफ़्तर गये होंगे। बच्चे स्कूल। मेम साहब सो रही थीं। दोपहर का समय था। अब उन्हें चाय की तलब सताने लगी। सारी उम्र तीव्र मानसिक और भावनात्मक दुख सहते रहने से छम्मी बेगम की तेज़-तर्रारी कबकी हवा हो चुकी थी, और वे बुढ़ापे के कारण सत्तरी भोली-भुग्गी-सी हो गयी थीं। सादगी से सोचा, अब किचेन में जाकर चाय बनाऊँ।

सुनसान किचेन में पहुँचीं तो वहाँ गैस के चूल्हे नज़र आये, जिनको इस्तेमाल

करना नहीं जानती थीं। ज़रा झुँझलाकर गैलरी में आयी, जिसके चार दरवाज़ों में से एक खुल चुका था और उस पर पड़ा क़ीमती पर्दा दिखायी दे रहा था।

"उनके पैरों की चाप सुनकर पर्दे के पीछे से किसी ने आवाज़ दी – कौन है।"

"ओह...आ गयी! आओ, आ जाओ!" पर्दा सरकाकर अन्दर गयी। एक बिल्कुल शाही ढंग के शयनकक्ष में लम्बे-चौड़े अमेरिकन छपरखट पर रज़िया बानो गुलाबी नाइलोन का नाइटगाऊन पहने तक़िये के सहारे लेटी थीं। उँगलियों में सिगरेट सुलग रही थी। छम्मी बेगम को उनका यह नंगा-पहनावा ज़रा भी पसन्द न आया। लेकिन सोचा, भई अपना-अपना दस्तूर है। इस शहर के यही रंग-ढंग हैं। रज़िया बानो भी सिगरेट पीती थीं। उन्होंने रोब से कहा – "अस्सलाम व अलेकुम।"

"आओ बुआ बैठो।" रज़िया बानो ने फ़र्श की ओर इशारा किया।

जब से छम्मी बेगम बुर्का सिर पर डालकर हक़-हलाल की रोज़ी कमाने बाप-दादा की चौखट से निकली थीं आज तक उन्हें किसी ने 'बुआ' (मुस्लिम घरानों में सेविका के लिए सम्मान परक सम्बोधन) नहीं कहा था। सबीहउद्दीन साहब और राशिद साहब दोनों के घर उन्हें 'छम्मी ख़ाला' या केवल ख़ाला कहकर पुकारा जाता था। वे धैर्य से दीवान के किनारे पर टिक गयी। रज़िया बानो के सिरहाने दो टेलीफ़ोन रखे थे। एक सफ़ेद वाले की घण्टी बजी। रज़िया बानो ने रिसीवर उठाकर अंग्रेज़ी में धीरे-धीरे कुछ बातें की। हाथ बढ़ाकर साइड-टेबल से एक बड़ी-सी सुन्दर नोटबुक उठायी। उसमें कुछ लिखा। फिर रिसीवर रखकर लाल रंग के टेलीफ़ोन से एक नम्बर मिलाया और धीरे-से कहा-"माधव...नाईन थरटी"... और फ़ोन बन्द कर दिया। छम्मी बेगम ख़ामोश बैठी कमरे की सजावट देखती रहीं। संगमरमर की मूर्तियाँ, बड़ी-बड़ी तस्वीरें, रेडियोग्राम, लम्बा-चौड़ा सफ़ेद रंग का वार्डरोब। इतने में पर्दा सरकाकर एक तरहदार लड़की, हाउसकोट पहने अन्दर आयी। गैलरी के बन्द दरवाज़े में से एक खुला। कमरे मे ज़ोर से स्टीरीयो की आवाज़ सुनायी दी लड़की ने रज़िया बानो से कुछ गिट-पिट की। उल्टे पाँव वापस गयी और गैलरी वाला दरवाज़ा फिर बन्द हो गया।

"अल्लाह रक्खे ...कितने बच्चे हैं? छम्मी बेगम ने पूछा।

"मेरे यहाँ कोई औलाद नहीं है। ये मेरी भाँजियाँ हैं। मेरे साथ ही रहती हैं।"

रज़िया बानो ने संक्षिप्त उत्तर देकर फिर नोटबुक खोल ली।

"कॉलेज में पढ़ती होंगी" – छम्मी बेगम ने कहा।

"कौन?" रज़िया बानो ने बे-ख़याली से पूछा।

"भाँजियाँ आपकी।"

"हूँ..."

अल्लाह रक्खे, आपके मियाँ बिजनेस करते हैं? छम्मी बेगम को पता था कि बम्बई में सब लोग बिजनेस करते हैं।

"हैं... क्या? रज़िया बानो ने नोटबुक से सिर उठाकर ज़रा नागवारी से पूछा।

"मियाँ?"

"मियाँ मर गये।"

"इन्ना लिल्लाहे व इन्ना इलैहे राजेऊन" छम्मी बेगम के मुँह से निकला। क्षणभर के लिए अज्जू मियाँ का ग़म फिर हरा हो गया। हर मौत की ख़बर पर हरा हो जाता था। कोई क्या जान सकता था कि छम्मी बेगम ने अपनी सारी उम्र कैसे असीम दुखों में रहकर, उन्हें किस तरह सहन करके गुज़ार दी। सब्र शुक्र। सब्र, शुक्र।

चूड़ीदार पाजामा पहने एक और साक्षात क़यामत नौजवान लड़की लहराती, बलखाती कमरे में आयी। रज़िया बानों ने उससे अंग्रेज़ी में कुछ कहा। लड़की उसी तरह लहराती-मुस्कुराती बाहर चली गयी। अब रज़िया बानो ने छम्मी बेगम की ओर ध्यान दिया, जिन्हें चाय की तलब में जम्हाइयाँ आने लगी थीं। रज़िया बानो ने एक तक़िया कोहनियों के नीचे दबाकर कहना शुरू किया – "बुआ, (छम्मी बेगम फिर कुलबुलायी) आपने बहुत अच्छा किया जो मेरे यहाँ आ गयी। मैंने पहली नज़र में ही अन्दाज़ा लगा लिया था कि आप बेसहारा और दुखी हैं। अब आप इस घर को अपना घर समझिए। मैं हमेशा यही चाहती हूँ कि कोई नेक बीबी मेरे घर में नमाज़-क़ुरान पढ़ती रहा करें। बरसों से मेरे पास एक हैदराबादी 'बड़ी बी' थीं। वे बेचारी पिछले साल हज करने गयीं। वहीं गुज़र गयीं। ...अच्छा.." रज़िया बेगम ने पहलू बदलकर बात जारी रखी – "मैं अब आपको यह बताना चाहती हूँ बुआ कि यह बम्बई शहर एक क़यामत का मैदान है। तरह-तरह की बातें। भाँति-भाँति के लोग। किसी बात पर कान न धरिए। बस अपने काम से काम रखिए। किचेन की देखभाल कर लीजिये। बाक़ी वक़्त अपने नमाज़-रोज़े में गुज़ारिए। अब आपके लिए मेहनत का नहीं, आराम का वक़्त है। क़ुरानशरीफ़ पढ़िए। मेरे लिए दुआएँ – ख़ैर करती रहिये। बाक़ी यह कि लड़कियों... मेरी भाँजियों के लिए दूसरी आया मौजूद है। इब्राहीम ख़ानसामा का नाम बिशन सिंह गोरखा है। माधव मेरा ड्राइवर है। किसी के झगड़ों-टण्टों में न पड़िए।"

"मैं ख़ुद..." छम्मी बेगम ने कहना चाहा लेकिन रज़िया बानो ने उनकी बात काटी।

"...मेरा अल्लाह के फज़्ल से बहुत बड़ा बिजनेस है" – ज़रा ठहरकर फिर बोलीं – "एक्सपोर्ट-इम्पोर्ट जानती हैं? एक्सपोर्ट-इम्पोर्ट?"

"जी हाँ"-छम्मी बेगम ने सिर हिलाया। सबीहउद्दीन साहब व्यापार विभाग के अफ़सर थे और इस तरह के शब्द छम्मी बेगम के कानों में अक्सर पड़ते रहते थे। रज़िया बानो, छम्मी बेगम को बहुत समझदार और नेक बीबी मालूम हुई और इतनी ही ख़ुदापरस्त। छम्मी बेगम ने उनका बारीक़ नाइटगाऊन और सिगरेटनोशी माफ़ कर दी।

"मैं औरत ज़ात, बिल्कुल अकेली, इतना बड़ा कारोबार सँभाल रही हूँ इस वजह से दस तरह के लोगों से मिलना पड़ता है। भाँजियाँ भी आजकल की लड़कियाँ हैं। उनके मिलने-जुलने वाले भी आते-जाते रहते हैं। फिर मेरे बिजनेस की वजह से पुलिस दो बार रेड कर चुकी है।"

"पुलिस?" छम्मी बेगम ने ज़रा डरकर दोहराया।

रज़िया बानो हँस पड़ी-"डरिये नहीं यहाँ बड़े-बड़े कारोबारियों को पुलिस और इनकमटैक्स वाले अक्सर परेशान करते रहते हैं। मैं अकेली औरत, दसियों दुश्मन पैदा हो गये। किसी ने जाकर पुलिसवालों से जड़ दी कि मैंने इनकमटैक्स नहीं दिया। बस दौड़ी आ गयी। इसलिए मैंने बाहर लोहे का दरवाज़ा लगवा लिया है। अब तो आपसे कहना यह है कि जब बाहर की घण्टी बजे वो आप पहले सूराख़ में से देखकर इतमीनान कर लीजिये। कभी-कभी ये पुलिसवाले सादा कपड़ों में भी आ जाते हैं।

छम्मी बेगम यात्रा की थकान और चाय की तलब में निढाल हुई जा रही थीं। उठ खड़ी हुई और बोलीं – "बीबी, गैस का चूल्हा कैसे जलता है?"

रज़िया बानो ने सिरहाने एक बिजली का बटन दबाया। एक मिनट में इब्राहीम बावर्ची दरवाज़े में 'जिन्न' की तरह प्रगट हुआ।

"इब्राहीम, ये हमारी नयी बुआ हैं। इनके लिए चाय तो बना दो झटपट।"

छम्मी बेगम जल्दी-से उठकर इब्राहीम के पीछे-पीछे किचेन की ओर रवाना हो गयी।

जुहर, असर, मग़रिब, सारी नमाज़ें पढ़कर वे फिर बालकनी में जाकर खड़ी हो गयी। घर में करने के लिए कुछ काम ही न था। रज़िया बानो सज-संवरकर बाहर जा चुकी थीं। दो 'भाँजियों' के कमरों में रोशनी जल रही थी। इसलिए घण्टी बजी तो बजती ही चली गयी। छम्मी बेगम नयी दिल्ली की आदत के अनुसार फ़ौरन दरवाज़ा खोलने के लिए ड्राइंगरूम की ओर लपकीं, और जल्दी से अन्दर वाला दरवाज़ा उस समय पहले से ही एक तरफ़ सरका हुआ था और जिस तरह सबीहउद्दीन साहब और राशिद साहब की कोठियों में ड्राइंगरूम की दहलीज़ पर आकर वे मेहमानों से बहुत शालीनता से कहती-"तशरीफ़ लाइये।"

दो मोटे-ताजे सेठ और एक ख़ुशबू में बसा हुआ युवक अमीरज़ादा अन्दर आये। अमीरज़ादा सीधे 'बार' की ओर चला गया। दोनों सेठ धम्म-से एक सोफ़े पर बैठ गये। सबीहउद्दीन साहब के यहाँ भी अक्सर इस प्रकार के कारोबारी अपने कामों से आया करते थे। लेकिन ख़ुशबुओं से महकते उस युवक को देखकर अलबत्ता ज़रा ताज्जुब हुआ। फिर सोचा, इस शहर का यही दस्तूर होगा। अभी वे यह तय नहीं कर पायी थीं कि प्रतिष्ठित मेहमानों से चाय के लिए पूछें या कॉफी के लिए कि इतने में सोने के बटनों और हीरे की अँगूठियों वाले एक मोटे आदमी ने डपटकर पूछा-

"मैडम किधर हैं?"

छम्मी बेगम अच्छी तरह जानती थीं कि बेगम को अंग्रेज़ी में मैडम कहते हैं। सलीक़े से जवाब दिया–"मैडम बाहर गयी हैं।"

"साला छोकरी लोग किधर गया?" छम्मी बेगम को क्रोध आ गया। यह सही है कि बम्बई के लोग तमीज़दार और सभ्य भाषा बोलने वाले लोग नहीं, लेकिन यह गाली–गलौच, इसका क्या मतलब? उन्होंने होंठ पिचकाकर पूछा–"बेगम साहिबा की भाँजियाँ?"

इतने में दरवाज़ा खुला और रज़िया बानो तेज़ी–से ख़ुद अन्दर आ गयी और छम्मी बेगम से कहा–"बुआ, तुम जाकर अपनी कोठरी में बैठो। आराम करो।"

"जी अच्छा...।" उन्होंने जवाब दिया। उनके गैलरी में से गुज़रने के बाद एक 'भाँजी' के कमरे में से एक साहब निकलकर बाहर चले गये।

छम्मी बेगम ने अपनी कोठरी में जाकर एक बार फिर जा–नमाज़ निकाली। वजू किया। नमाज़ पढ़ने लगीं और उस जलाल वाले रब का शुक्र अदा किया, जिसे अपने बन्दों पर सिर्फ़ दो वक़्त हँसी आती है और उसी पाक परवरदिगार ने उनके बाप–दादा की लाज, उनकी कुलीनता और प्रतिष्ठा की इज़्ज़त रख ली और एक बार फिर एक शरीफ़–घराने की हक़–हलाल की कमाई में उनका हिस्सा भी लगा दिया।

मुग़ल बच्चा

इस्मत चुग़ताई

फतेहपुर सीकरी के सुनसान खण्डहरों में गोरी दादी का मकान पुराने सूखे ज़ख़्म की तरह खटकता था। लखौरी ईंट का दो मंज़िला घुटा-घुटा-सा मकान एक मार खाये रूठे हुए बच्चे की तरह लगता था। देखकर ऐसा मालूम होता था कि वक़्त का भूचाल उसकी ढिठाई से हारकर आगे बढ़ गया और शाही शानोशौक़त पर टूट पड़ा।

गोरी दादी सफ़ेद झक चाँदनी बिछे तख़्त पर सफ़ेद बेदाग कपड़ों में एक संगमरमर का मकबरा मालूम होती थीं। एकदम सफ़ेद बाल, बेख़ून की सफ़ेद धोयी हुई मलमल जैसी खाल, हल्की भूरी आँखें, जिनपर सफ़ेदी रंग आयी थी, पहली नज़र में सफ़ेद लगती थीं। उन्हें देखकर आँखें चकाचौंध हो जाती थीं जैसे पिसी हुई चाँदी की धूल उनके पास छायी हुई हो। न जाने कब से जिये जा रही थीं। लोग उनकी उम्र सौ से ऊपर बताते थे। खुली-खुली गुमसुम बेनूर आँखों से वो इतने साल क्या देखती रही थीं। बारह-तेरह साल के सिन में वह मेरी अम्माँ के चचादादा से ब्याही तो गयी थीं मगर दूल्हा ने दुल्हन का घूँघट तक नहीं उठाया था। क्वाँरेपन की एक सदी उन्होंने इन्हीं खण्डहरों में बितायी थी। गोरी बी जितनी सफ़ेद थीं उतने ही उनके दूल्हा स्याह भद्द थे। इतने काले कि उनके आगे चिराग़ बुझा-सा महसूस हो। गोरी बी बुझकर भी धुआँ देती रहीं।

सरेशाम खाना खाकर झोलियों में सूखा मेवा भरकर हम बच्चे लिहाफ़ों में दुबककर बैठ जाते और पुरानी ज़िन्दगी के पन्ने उलटे जाने लगते। बार-बार सुनकर भी जी न भरता। अदबदाकर गोरी बी और काले मियाँ की कहानी दोहराई जाती। बेचारे की अक़्ल पर पत्थर पड़ गये थे कि इतनी गोरी-गोरी दुल्हन का घूँघट भी न उठाया।

अम्माँ साल के साल पूरा लाव लश्कर लेकर मायके पर धावा बोल देतीं। बच्चों की ईद हो जाती। फतेहपुर के रहस्यमय शाही खण्डहरों में आँख मिचौली खेलते-खेलते जब शाम पड़ जाती तो खोये-खोये सुरमई वातावरण से डर लगने

लगता। हर कोने में साये लपकते। दिल धक-धक करने लगता – काले मियाँ आ गये...। हम एक-दूसरे को डराते। गिरते-पड़ते भागते और लखौरी ईंट के दो मंज़िला मकान की गोदी में दुबक जाते। काले मियाँ हर अँधेरे कोने में छिपे हुए महसूस होते।

बहुत से बच्चे मरने के बाद सलीम चिश्ती की दरगाह पर माथा रगड़ा। तब गोरी बी का मुँह देखना नसीब हुआ। माँ-बाप की आँखों की ठण्डक गोरी बी बड़ी ज़िद्दी थीं। बात-बात पर अटवाती-खटवाती लेकर पड़ जातीं। भूख हड़ताल कर देतीं। घर में खाना पकता, कोई मुँह न झुठलाता। ज्यों का त्यों उठवाकर मस्जिद भिजवा दिया जाता। गोरी बी न खातीं तो अम्मा-बाबा कैसे निवाला तोड़ते।

बात इतनी-सी थी कि जब मंगनी हुई तो लोगों ने मज़ाक़ में छींटे कसे,

"गोरी दुल्हन, काला दूल्हा"

मगर मुग़ल बच्चे मज़ाक़ के आदी नहीं होते। सोलह-सत्रह बरस के काले मियाँ अन्दर ही अन्दर घुटते रहे। जल कर मुरण्डा होते रहे!

– दुल्हन मैली हो जायेगी। ख़बरदार यह काले-काले हाथ न लगाना!

– बड़े नाज़ों की पली है। तुम्हारी तो परछाईं भी पड़ी तो काली हो जायेगी।

– बड़ी बददिमाग़ है। सारी उम्र जूतियाँ उठवायेगी।

अंग्रेज़ों ने मुग़लशाही का जब अन्तिम संस्कार किया तो सबसे बुरी मुग़ल बच्चों पर बीती, क्योंकि वे ही ज़्यादा ओहदे सँभाले बैठे थे। ऊँचे ओहदे और जागीरें छिन जाने के बाद लाख के घर देखते-देखते ख़ाक हो गये। बड़ी-बड़ी ढंढार हवेलियों में मुग़ल बच्चे भी पुराने सामान की तरह जा पड़े। भौचक्के से रह गये, जैसे किसी ने पैरों तले से तख़्ता खींच लिया हो।

तभी मुग़ल बच्चे अपने गौरव व आत्माभिमान की तार-तार चादर में सिमटकर अपने अन्दर ही अन्दर घुसते चले गये। मुग़ल बच्चे अपनी दिमाग़ी धुरी से थोड़ा खिसके हुए होते हैं। ख़ैर मुग़ल की यही पहचान है कि उसके दिमाग़ के दो-चार पेंच ढीले या ज़रूरत से ज़्यादा टाईट होते हैं। आकाश से धरती की तरफ़ लुढ़के तो मस्तिष्क का सन्तुलन डगमगा गया। ज़िन्दगी की क़दरें गडमड हो गयीं। बुद्धि से ज़्यादा भावनाओं से काम लेने लगे।

अंग्रेज़ की चाकरी लानत और मेहनत मज़दूरी शान के ख़िलाफ़। जो ज़मीन-जायदाद बची उसे बेच-बेचकर खाते रहे। हमारे अब्बा के चचा रुपये-पैसे की जगह चाची के दहेज के पलंग के पायों से चाँदी के पत्तर उखाड़ ले जाते थे। जेवरों और बरतनों के बाद गोटे-टँके कपड़े नोच-नोचकर खाये। पानदान की कुलियाँ सिलबट्टे से कुचलकर टुकड़ा-टुकड़ा बेचीं और खायीं। घर के मरद दिन भर पलंग की अदवायन तोड़ते। शाम को पुरानी घुनीं अचकनें पहनीं और शतरंज पचीसी खेलने निकल गये। घर की बीवियाँ छिप-छुपकर सिलाई कर लेतीं। चार पैसों से घर का

चूल्हा जल जाता या मुहल्ले के बच्चों को कु़रआन पढ़ा देतीं तो कुछ नज़राना मिल जाता।

काले मियाँ ने दोस्तों की छेड़खानी को जी का घाव बना लिया। जैसे मौत की घड़ी नहीं टलती वैसे ही माँ-बाप की तय की हुई शादी न टली। काले मियाँ सिर झुकाकर दूल्हा बन गये। किसी सरफ़िरी ने ऐन मुँह दिखायी के वक़्त और छेड़ दिया –

"ख़बरदार, जो दुल्हन को हाथ लगाया, काली हो जायेगी।" मुग़ल बच्चा चोट खाये नाग की तरह पलटा। बहन का आँचल सिर से नोचा और बाहर चला गया। जब दूल्हा अन्दर आता है तो उसकी बहन उसके सिर पर अपना आँचल डालकर लाती है।

हँसी में खँसी हो गयी। एक मातम बरपा हो गया। मरदान ख़ाने में इस ट्रेजेडी की ख़बर हँसी में उड़ा दी गयी। बग़ैर मुँह दिखायी की रस्म के विदाई एक क़यामत थी।

– "ख़ुदा की कसम मैं उसके घमण्ड को चकनाचूर कर दूँगा। किसी ऐसे-वैसे से नहीं, मुग़ल बच्चे से वास्ता पड़ा है।" काले मियाँ फुफकारे!

काले मियाँ शहतीर की तरह पूरी मसहरी पर फैले पड़े थे। दुल्हन एक कोने में गठरी बनी काँप रही थी। बारह बरस की बच्ची की बिसात ही क्या।

– घूँघट उठाओ, काले मियाँ डकराये।

दुल्हन और गुड़ी-मुड़ी-सी हो गयी।

– हम कहते हैं घूँघट उठाओ, कोहनी के बल उठकर बोले।

सहेलियों ने तो कहा था, दूल्हा हाथ जोड़ेगा, पैर पकड़ेगा और ख़बरदार जो घूँघट को हाथ लगाने दिया। दुल्हन जितना ही अपने बचाव के लिए हाथ-पैर मारे, उतनी ही ज़्यादा पवित्र समझी जाती है।

– देखो जी तुम नवाबज़ादी होगी अपने घर की। हमारे तो पैर की जूती हो। घूँघट उठाओ, हम तुम्हारे बाप के नौकर नहीं।

दुल्हन को जैसे लकवा मार गया।

काले मियाँ चीते की तरह लपककर उठे। जूतियाँ उठाकर बग़ल में दाबीं और खिड़की में से पाईं बाग़ में कूद गये। सुबह की गाड़ी से वह जोधपुर दनदना गये।

घर में सोता पड़ा था। एक एक्का बी (गोली) जो दुल्हन के साथ आयीं थी जाग रही थीं। कान दुल्हन की चीख़ की तरफ़ लगे थे। जब दुल्हन के कमरे से चूँ की आवाज़ तक न आयी तो उनके पैरों का दम निकलने लगा,

– हय-हय कैसी बेहया लड़की है। लड़की जितनी भी ज़्यादा मासूम और क्वाँरी होगी उतना ही ज़्यादा द्वन्द्व मचायेगी। क्या काले मियाँ में कुछ खोट है? जी

में सोचने लगी। जी चाहा कुएँ में कूदकर क़िस्सा ख़त्म करे!

चुपके से कमरे में झाँका तो जी सन्न से होके रह गया। दुल्हन जैसी की तैसी धरी थी और दूल्हा ग़ायब। बड़े-उल्टे सीधे क़िस्म के हंगामे हुए, तलवारें खिंचीं, बड़ी मुश्किल से दुल्हन ने जो उस पर बीती थी कह सुनायी। इस पर तरह-तरह की खुसुर-पुसुर होती रही। ख़ानदान में दो पार्टियाँ बन गयी। एक काले मियाँ की दूसरी गोरी बी की।

– आख़िर वह उसका शौहर है, उसका दुनियावी ख़ुदा। उसका हुक्म न मानना गुनाह है।

एक पार्टी इस बात पर डटी हुई थीं।

– कहीं किसी दुल्हन ने कभी ख़ुद घूँघट उठाया है?

दूसरी पार्टी का कहना था।

काले मियाँ को जोधपुर से बुलवाकर दुल्हन का घूँघट उठवाने की सारी कोशिशें असफल रहीं। वे वहाँ घुड़सवारों में भर्ती हो गये और बीवी को रोटी-कपड़े का ख़र्च भेजते रहे जो गोरी बी की माँ समधन के मुँह पर मार आती।

गोरी बी कली से फूल बन गयीं। हर अठवाड़े हाथ पैरों में मेंहदी रचाती रहीं। बँधे टँके दुपट्टे ओढ़ती रहीं और जीती रहीं।

फिर ख़ुदा का करना ऐसा हुआ कि बाबा मृत्यु शैय्या पर जा पड़े। काले मियाँ को ख़बर गयी तो जाने किस मूड में थे कि भागे चले आये। बाबा मौत का हाथ झटककर उठ बैठे। काले मियाँ को हाज़िरी का हुक्म दिया। दुल्हन का घूँघट उठाने के मसले पर बहस-मुबाहिसा हुआ।

काले मियाँ ने सिर झुका दिया। मगर शर्त वही रही कि चाहे जो हो जाये, घूँघट तो दुल्हन को अपने हाथों उठाना पड़ेगा।

– अब्बा हुज़ूर, मैं कसम खा चुका हूँ। मेरी गरदन उड़ा दीजिये मगर मैं कसम नहीं तोड़ सकता।

मुग़ल बच्चों की तलवारें ज़ंग खा चुकी थीं। आपस की मुक़दमेबाजियों ने सिर का कस बल निकाल दिया था। मगर अहमक़ाना ज़िदें रह गयी थीं। बस उन्हीं को कलेजे से लगाये बैठे थे। किसी ने काले मियाँ से न पूछा कि तुमने ऐसी बेवक़ूफ़ी की कसम खायी ही क्यों कि अच्छी भली एक ज़िन्दगी अजाब बन गयी।

ख़ैर साहब, गोरी बी फिर से दुल्हन बनायी गयीं। लखौरी ईंट वाला मकान फिर इतर व फूलों की ख़ुशबू से महक उठा।

अम्माँ ने समझाया – "तुमसे उसका निकाह हुआ है। बेटी घूँघट उठाने में कोई ऐब नहीं। उसकी ज़िद पूरी कर दो। मुग़ल बच्चे की आन रह जायेगी। तुम्हारी दुनिया सँवर जायेगी। गोदी में फूल बरसेंगे। अल्लाह के हुक्म की तकमील होगी।"

गोरी बी सिर झुकाये सुनती रहीं। कच्ची कली सात साल में क़यामत ढा देने

वाली नवयुवती बन चुकी थी। हुस्न और जवानी का एक तूफ़ान था जो तन–मन से फूटा पड़ता था।

औरत काले मियाँ की सबसे बड़ी कमज़ोरी थी। उनके सब के सब सोच–विचार इसी बिन्दु पर केन्द्रित थे। मगर उनकी कसम एक काँटेदार गोले की तरह उनके गले में फँसी हुई थीं। उनकी वासनाओं के सात साल ने कैसी–कैसी आँखमिचौली खेली थी। उन्होंने सैकड़ों घूँघट नोच डाले, रण्डीबाज़ी, लौंडेबाज़ी, बटेरबाज़ी, कबूतरबाज़ी मतलब कोई बाज़ी न छोड़ी। मगर गोरी बी के घूँघट की चोट दिल में पंजे गाड़े रही, जो सात साल सँभालने के बाद घाव बन चुकी थी। इस बार उन्हें यक़ीन था कि उनकी कसम पूरी होगी, गोरी बी ऐसी अक्ल की कोरी नहीं कि जीने का यह आख़िरी अवसर भी गँवा दे। दो उँगलियों से हल्का–फुल्का आँचल ही तो सरकाना है। कोई पहाड़ तो नहीं ढोने।

"घूँघट उठाओ..." काले मियाँ ने विनीत भाव से कहना चाहा मगर मुग़लई दबदबा हावी रहा।

गोरी बेगम सुरूर में तमतमाई सन्नाटे में बैठी रही।

"आख़िरी बार हुक्म देता हूँ। घूँघट उठा दो वरना इसी तरह पड़ी सड़ जाओगी। अब जो गया तो फिर पलटकर न आऊँगा।"

मारे ग़ुस्से के गोरी बी लाल भभूका हो गयी। काश उनके सुलगते हुए चेहरे से एक शोला लपकता और वह मनहूस घूँघट जलकर ख़ाक हो जाता।

बीच कमरे में खड़े काले मियाँ कौड़ियाले साँप की तरह झूमते रहे। फिर जूते बग़ल में दबाये पाईं बाग़ में उतर गये।

युग बीत गये। अब पाईं बाग़ कहाँ। उधर पिछवाड़े लकड़ियों की टाल लग गयी। बस दो जामुन के पेड़ रह गये थे और एक विशाल बरगद। बेले–चमेली की झाड़ियाँ, गुलाबों के झुण्ड, शहतूत और अनार के घने पेड़ कब के लुट पिट चुके।

जब तक माँ ज़िन्दा रहीं, गोरी बी को सँभाले रही। उनके बाद यह ड्यूटी गोरी बी ने ख़ुद सँभाल ली। हर जुमेरात को मेंहदी पीसकर पाबन्दी से लगाती। दुपट्टे में रंग चुनकर गोटा टाँकतीं और जब तक ससुराल ज़िन्दा रही, ईद–बकरीद सलाम करने जाती रहीं।

अबके काले मियाँ ग़ायब ही हो गये। सालों उनका सुराग़ न मिला। माँ–बाप रो–रोकर अन्धे हो गये। वो न जाने किन जंगलों की ख़ाक छानते फिरे। कभी मक़बरों–दरगाहों में उनका पता मिलता, कभी मन्दिर की सीढ़ी पर पड़े पाये जाते।

गोरी बी के सुनहले बालों में चाँदी फूल गयी। मौत की झाड़ू काम करती रही। आस–पास की ज़मीनें और मकान कौड़ियों के मोल बिकते रहे। कुछ पर नये लोग ज़बरदस्ती बस गये, कुँजड़े, कसाई आन बसे। पुराने महल ढहकर नयी दुनिया की नींव पड़ने लगी। परचून की दुकान, डिस्पेंसरी, एक मरगिल्ला–सा जनरल स्टोर भी

उग आया, जहाँ अल्मूनियम की पतीलियाँ और लिप्टन की चाय की पुड़ियों (पाउच) के हार लटकने लगे।

एक अधमुइ मुट्ठी की दौलत रिस–रिसकर बिखर रही थी। कुछ जानदार उँगलियाँ समेटने लगी थीं। जो कल तक पतंग की अदवाइन पर बैठते थे। झुक–झुककर सलाम करते थे। आज साथ उठना–बैठना भी अपनी शान के ख़िलाफ़ समझने लगे।

गोरी बी के ज़ेवर आहिस्ता–आहिस्ता लाला जी की तिज़ोरी में पहुँच गये। दीवारें ढह रही थीं, छज्जे झूल रहे थे। बचे–खुचे मुग़ल बच्चे अफ़ीम का अण्टा निगलकर पतंगों से पेंच लड़ा रहे थे। तीतर–बटेर सधा रहे थे और कबूतरों की दुमों के पर गिनकर हलक़ान हो रहे थे। लफ़्ज़ "मिर्ज़ा" जो कभी शान और दबदबे की निशानी समझा जाता था, मज़ाक़ बन रहा था। गोरी बी कोल्हू के अन्धे बैल की तरह ज़िन्दगी के छकड़े में जुती एक धुरी पर घूमे जा रही थीं। उनकी नीली आँखों में सूनेपन ने डेरा डाल दिया था।

उनके लिये तरह–तरह की कहानियाँ मशहूर थीं कि उन पर जिन्नों का बादशाह आशिक़ था। ज्योंही काले मियाँ उनके घूँघट को हाथ लगाते, चट तलवार सूतकर खड़ा हो जाता। हर जुमेरात को तहज्जुद (आधी रात की नमाज़) के बाद वजीफा पढ़तीं तो सारा आँगन कौड़ियाले साँपों से भर जाता। फिर सुनहरी मुकुट वाला नागराज अजगर पर सवार होकर आता है। गोरी बी के पाट की धुन पर सिर धुनता है। पौ पटते ही सब अपनी राह लेते हैं।

जब हम क़िस्से सुनते तो कलेजे उछलकर हलक़ में फँस जाते और हम रात को साँपों की फुँकारें सुनकर उठते और चीख़ें मारने लगते।

गोरी बी ने सारी उम्र कैसे–कैसे नाग खिलाये होंगे, कैसे अकेली नामुराद ज़िन्दगी का बोझ ढोया होगा। उनके रसीले होंठों को कभी किसी ने नहीं चूमा। उन्होंने अपने जिस्म की पुकार को क्या जवाब दिया होगा?

अच्छा होता यह कहानी यहीं ख़त्म हो जाती। क़िस्मत मुस्कुरा रही थी।

पूरे चालीस बरस बाद काले मियाँ अचानक अपनेआप आ धमके। उन्हें क़िस्म–क़िस्म की लाइलाज बीमारियाँ लग चुकी थीं। पोर–पोर सड़ रही थी। रोम–रोम रिस रहा था। बदबू के मारे नाक सड़ी जाती थी। मगर आँखों में हसरतें जाग रही थीं। जिनके सहारे जान सीने से अटकी हुई थी।

"गोरी बी से कहो मुश्किल आसान कर जायें।"

एक कम साठ बरस की दुल्हन ने रूठे हुए दूल्हा को मनाने की तैयारियाँ शुरू कर दीं। मेंहदी घोलकर हाथ–पैरों में रचाई। पानी गर्म करके पिण्डा पाक किया। सुहाग का चिकटा हुआ तेल सफ़ेद लटों में बसाया। सन्दूक खोलकर भर–भर टपकता–झपकता शादी का जोड़ा निकालकर पहना और उधर काले मियाँ दम तोड़ते

रहे।

जब गोरी बी शरमाती लजाती धीरे–धीरे क़दम उठाती उनके सिरहाने पहुँचीं तो झिलंगे पलंग पर चीकट तक़िये और गूदड़ बिस्तर पर पड़े हुए काले मियाँ की ठण्डी हड्डियों में ज़िन्दगी की लहर दौड़ गयी। मौत के फरिश्ते से जूझते हुए काले मियाँ ने हुक्म दिया।

"गोरी बी, घूँघट उठाओ।"

गोरी बी के हाथ उठे मगर घूँघट तक पहुँचने से पहले गिर गये।

काले मियाँ दम तोड़ चुके थे।

वह बड़े सुकून से उकड़ू बैठ गयीं। सुहाग की चूड़ियाँ ठण्डी कीं और रण्डापे का सफ़ेद आँचल माथे पर खींच लिया।

परिन्दा पकड़ने वाली गाड़ी

ग़यास अहमद गद्दी

सुबह होती, दिन चढ़ता और सूरज जब ठीक शिखर पर पहुँचता, शहर में एक ऐसी गाड़ी आती, जो शहर के परिन्दों को पकड़कर ले जाती, ठीक वैसे ही जैसे म्युनिसिपैलटी की गाड़ी कुत्ते पकड़ने के लिए निकलती है। यह गाड़ी, जो चारों तरफ़ से रंगीन शीशों से बन्द बेहद ख़ूबसूरत होती कि निगाह उठाकर दाद देती, इसके चारों तरफ़ नन्ही-नन्ही घण्टिया बँधी होतीं, जो चलते वक़्त धीरे-धीरे बज रही होतीं। घण्टियों की आवाज़ अजीब होती, कुछ ऐसी, जैसे कोई सहर फूँक रहा हो। एक लम्बा, ख़मीदा-कमर, ज़र्दरू आदमी गाड़ी को खींच रहा होता। बिल्कुल उसी तरह दूसरा आदमी गाड़ी के पीछे चल रहा होता, जिसके हाथ में पतला सा, बहुत लम्बा बाँस होता। बाँस के सिरे पर ब्रश जैसा गुच्छा-सा होता, जिस पर गोंद या उसी तरह की चिपक जाने वाली लसदार रोतूबत लगी होती, जिससे वह परिन्दों को पकड़ता था।

दीवार पर, छतों की मुण्डेरों पर, टेलीफ़ोन के खम्भों, पेड़ों या फ़र्श पर दाना-दुनका चुनते हुए परिन्दे जहाँ नज़र आते, वह आदमी बाँस को आगे बढ़ा देता और जिन परिन्दों के परों पर लसदार रोतूबत लगा हुआ गुच्छा छुला देता, पहले तो वे परिन्दे तड़पते, छटपटाते, उड़ने की कोशिश करते, फिर थक-हारकर लसदार रोतूबत से चपड़-चपड़ करते हुए परों की कूवते परवाज के उलझ जाने के कारण एक तरफ़ औंधे होकर लुढ़क जाते। तब वह आदमी जल्दी से बढ़ता और दोनों हाथों से झपटकर परिन्दों को पकड़ता, धीरे से गाड़ी के छोटे-से दरवाज़े को खोलता, उसमें परिन्दे को ढकेल देता, दरवाज़ा बन्द करता, फिर ग़ौर से शीशे को बन्द करके देखता, जहाँ परिन्दा फड़फड़ाकर थक जाता। उस वक़्त उस आदमी के चेहरे पर अजीब-सी हँसी बिखर जाती और आँखें अँधेरे में बिल्ली की आँखों की तरह चमक उठतीं।

हर रोज़ जैसे सूरज सरों पर आता, तेज़ किरणें सरों पर गड़ती, पच्छिमी दरवाज़े

की जानिब से छोटी–छोटी घण्टियों की सदा सुनायी देती। ज़रा देर बाद बड़ी सुबुक खरामी से एक आदमी, जिसका चेहरा बेहद ज़र्द होता और जिसकी आँखें नीमदा होतीं, जिसकी कमर से पतली–सी रस्सी लिपटी होती, जो गाड़ी के सिरे से बँधी होती और वह नीम गनूदगी के आलम में चलता बढ़ा आता। फिर जहाँ कोई चिड़िया, कोई परिन्दा नज़र आता, वह आदमी आप–ही–आप रुक जाता और अपने पीछे आने वाले आदमी को परिन्दे की तरफ़ इशारा करता।

यह रोज़मर्रा का दस्तूर होता। दुकानदार दुकानों में होते, राहगीर चलते–चलाते रहते, मोटरकारें तेज़ी से पूँ–पाँ करती गुज़रती होतीं, जूता गाँठने वाला गाँठता रहता, ख़रीदफ़रोख़्त होती रहती, शोरोगुल से कान पड़ी आवाज़ सुनायी न देती, लेन–देन का बाज़ार इतना जवाँ होता कि अव्वल तो गाड़ी की तरफ़ किसी की नज़र ही न उठती, लेकिन उनमें से किसी की नज़र उठ भी जाती, तो वह सहरजदा–सा इस अजीबोग़रीब गाड़ी और उसके हुस्न को देखने में खो जाता।

कभी ऐसा भी होता कि कोई आदमी चौंकता और ज़रा हौसले से उठता। गाड़ी वाले जब उस आदमी को क़रीब आते देखते, तो झट अपनी लम्बी जेब में हाथ डालते और चन्द सिक्के निकालकर उसकी तरफ़ उछाल देते। फिर वह आदमी सिक्के चुनने में ऐसा लीन हो जाता कि उसे किसी चीज़ का होश ही न रहता। लोग यह मंज़र देखते और आँखों और चेहरों से हैरत का इज़्हार करते। इस वक़्त उनकी आँखें फटी–की–फटी रह जातीं। यह भी कुछ ज़्यादा देर नहीं रहता। फ़क़त चन्द मिनट, दस या बीस मिनट तक। फिर हैरत का यह वक़्फा कम होता गया और होते–होते महज चन्द सेकेण्ड रह गया, तो अब उसके बाद वह मंज़िल आने वाली थी कि लोग–बाग अपने कामों में मसरूफ़ हैं और परिन्दे पकड़ने वाली गाड़ी आ गयी है, और परिन्दे पकड़ती चली जा रही है और आदमी है कि उसकी ओर नज़र उठाकर देखता भी नहीं।

ऐसी ही कैफ़ियत वाला एक दिन था, जब मैंने एक दुकानदार को जलेबियों के थाल की तरफ़ इशारा करते हुए कहा कि यहाँ देखो, जलेबियों पर कितनी मक्खियाँ बैठी हुई हैं! अभी, जब शहर में बीमारी फैली हुई है, ये मक्खियाँ कितनी ख़तरनाक...

– मक्खियाँ...? हलवाई ने काहिली से हाथ उठाकर मक्खियों को उड़ाने की कोशिश की। मक्खियाँ ज़रा देर से उड़ीं, फिर जलेबियों के थाल पर टूट पड़ीं। हाँ, मक्खियाँ तो साली उड़ती ही नहीं।

हलवाई ने मेरी जानिब ग़ौर से देखते हुए कहा – मगर तुमको क्या साहब, तुमको तो नहीं ख़रीदना!

मैंने जवाब में इन्कार किया, तो हलवाई ने आँख मारी और सरगोशियों से ज़रा क़रीब के लहज़े में कहा – और मुझको क्या साहब, मुझको भी तो खाना नहीं!

बस, यहीं से मैं चौंक गया कि असल बात क्या है... परिन्दे पकड़ने वाली गाड़ी आती है शहर के परिन्दों को पकड़कर ले जाती है और कोई पूछने वाला तो क्या मिलेगा, कोई ख़ुदा का बन्दा पलटकर देखता भी नहीं है... मेरी समझ में बात आ गयी, मेरी पेशानी पर जो बहुत देर से, बल्कि कई दिनों से, एक त्यौरी किसी सन्तरी की तरह खड़ी दिख रही थी, सिमट गयी। फिर मैं हँसा और मैंने भी ज़रा गुफ्तगू के ज़रा दूर के लहजे में कहा – तो भाई हलवाई, एक काम करो न, उन गाड़ी-वालों की तवज्जो मक्खियों की जानिब मबजूल कर दो...।

हलवाई चौंक गया और उसने मुस्कुराकर मेरी जानिब देखा। लेकिन पल भर में संजीदा हो गया – अरे हाँ... मगर क्यों साहब, मुझे इस झंझट से क्या फ़ायदा?

– ये, जो मक्खियाँ जलेबी का सारा रस...

– हाँ, ये तो ठीक कहा है, सारा रस चूसे चली जाती हैं कमबख़्त...। मगर साहब, मुझे इससे क्या नुकसान, मुझे तो फ़ायदा है।

– वह क्या? मैंने हलवाई की आँखों में आँखें डालकर पूछा। फ़ायदा कैसे है? हलवाई पहले हँसा, फिर उसने अपनी वनस्पति में चुपड़ी हुई तोंद पर हाथ फेरा और बेहद संजीदा होकर मेरी तरफ़ झुक गया। बाबू, तुम क्या जानो दुनियादारी! यह राज की बात है...दुनिया ऐसे ही नहीं चलती...! फिर हलवाई ख़ामोश हो गया और ज़रा गहरे होकर फिर बोला – पर तुम मेरे हमदर्द लगते हो, इसलिए बताता हूँ, किसी से कहना नहीं... तो बाबू जलेबियों का यह रस, जो मक्खियाँ चूसती हैं, तो फिर रस और मक्खियाँ कहाँ जाती है, ज़रा इतना तो बताओ?

– कहाँ जाती हैं, मुझे पता नहीं, हलवाई मियाँ तुम्हीं बताओ?

– कहीं नहीं जातीं। हलवाई फ़ैसलाकुन लहज़े में बोला, रस मक्खियों के पेट में और मक्खियाँ जलेबियों के साथ पलड़े पर। समझे बाबू? ऐसे फ़ायदा हुआ!

लेकिन मैं बहुत देर तक समझ न सका और बहुत देर तक बेवक़ूफ़ों की तरह हलवाई के चेहरे को ताकता रहा। हलवाई फिर हँसा, फिर उसने मूँछों पर ताव दिया – नहीं समझे अब भी...?

अभी हमारी गुफ़्तगू यहीं तक पहुँची थी कि पश्चिमी दरवाज़े की जानिब से घण्टियों की आवाज़ सुनायी पड़ी और मेरी तवज्जो उसकी तरफ़ मबजूल हो गयी। ज़रा देर बाद वह जर्दरू, खमीदा-कमर आदमी दिखायी पड़ता है, हस्ब दस्तूर, उसकी कमर से पतली-सी रस्सी बँधी हुई थी जिसके पिछले सिरे पर वह गाड़ी घसीटने वाला हाथ को आँखों के ऊपर छज्जे की शक्ल में किये आस-पास मुतस्सिस नज़रों से झाँकता फिर रहा था। फिर वह ठहर गया। सामने नाली के किनारे पर एक परिन्दा प्यास से बेहाल झुक-झुककर नाली से पानी पी रहा था और गरदन उठाकर इधर-उधर देख भी रहा था। उसे किसी बात का डर भी लगा हुआ था। तभी गाड़ी खींचने वाले आदमी ने बाँस वाले साथी को इशारा किया।

बाँस वाले ने चुपके से लपककर परिन्दे को जा लिया। ज़रा देर बाद उसने रंगीन शीशों वाली गाड़ी के दरवाज़े का पट खोला और धीरे से परिन्दे को अन्दर ढकेल दिया। परिन्दा एक तरफ़ लुढ़क गया, तो फुदकती हुई गौरैया एक बार ज़ोर से शीशों पर फड़फड़ाने लगी, गोया बन्द शीशों को तोड़कर निकल भागेगी। बाँस वाले आदमी ने मुस्कुराकर, शीशे के अन्दर झाँककर देखा। उसके चेहरे और आँखों में चमक आ गयी। फिर उसने शीशे पर हल्की-हल्की थपकियाँ दीं। गौरैया सहमकर एक तरफ़ हो गयी।

इसके बादे वैसी ही हल्की चाल से गाड़ी आगे बढ़ी। घण्टियों की आवाज़ ख़ामोश फ़िज़ाँ में सुनायी दी – टन, टन, टन...टन...टन। ज़रा देर बाद गाड़ी नज़रों से ओझल हो गयी।

– गयी... चली गयी।

– हाँ, चली गयी... उस परिन्दे को भी ले गयी। जब फ़िज़ाँ का सहर टूटा, तो गाड़ी उत्तरी इलाक़े के सख़्त ढलान में उतर चुकी थी। अब दिखायी भी नहीं दे रही थी। फ़क़त उसके पहियों से उड़ती हुई धूल थी, जो धीरे-धीरे फ़िज़ाँ से हाथ छुड़ाकर बैठ रही थी। फिर चन्द मिनट बाद तमाशबीनों के चेहरों पर जो हैरत के असरात थे, वे जायल हो गये और वे अपने-अपने कामों में मसरूफ़ हो गये।

– अच्छा भाई जान, यह परिन्दे वाली गाड़ी...?

सवाल करने वाला रुक गया, और ख़ासी देर तक रुक गया। तब मैंने पलटकर देखा। ठीक मेरी पुश्त पर एक दस-ग्यारह साल का लड़का खड़ा मेरी तरफ़ मुजस्सम सवाल बना तक रहा था।

– यह परिन्दे वाली गाड़ी थी। वह लड़का इतना कहकर फिर रुक गया, जैसे उसे ख़ुद पता नहीं कि पूछना क्या है।

– हाँ-हाँ... मियाँ, क्या पूछना चाहते हो, परिन्दे वाली गाड़ी के मुताल्लिक़?

– जी भाईजान, इतना कि ...यह क्या गाड़ी है – परिन्दे पकड़ने वाली?

– हाँ, मियाँ हम भी यही सोच रहे हैं कि क्या गाड़ी है! हर रोज़ दोपहर में आती है और शहर के जितने परिन्दे मिलते हैं समेटकर चल देती है!

– अच्छा, भाईजान...! ज़रा देर बाद इस लड़के ने यूँ चौंककर सवाल किया, गोया अचानक कोई बात याद आ गयी हो, अच्छा भाई जान, क्या ये लोग बाजी के लका को भी ले जायेंगे?

– हाँ ज़रूर ले जायेंगे, देखने की देर है।

– फिर बाजी कैसे अच्छी होगी...? उन्हें लकवा हो गया है न। हकीमजी ने कहा था, दवाओं के साथ लका कबूतरों के परों की दवा भी चाहिए! लड़के ने बड़ी हैरत से कहा, यूँ कि मैं उसके अफसूर्दा चेहरे की तरफ़ एकटक देखने लगा?

– हाँ-हाँ, बात तो है सोचने की। लका कबूतर को नहीं जाना चाहिए।

– फिर मैं क्या करूँ, आप ही बताइए, भाई जान... मैं तो बहुत छोटा हूँ... मेरी समझ में नहीं आता!

– मेरी भी समझ में नहीं आता, मियाँ... और सच पूछो तो मैं भी बहुत छोटा हूँ।

– आप छोटे हैं?... वह लड़का खिलखिलाकर हँस पड़ा। आप इतने बड़े हैं, वाह...! वह लड़का फिर कहकहे लगाने लगा।

मैं ख़ामोशी से बदस्तूर उसे देखता रहा और दिल-ही-दिल में कहा, मियाँ तुम हँस रहे हो?

– भाई जान, एक बात और पूछूँ? उसने ज़रा ठहरकर दूसरा सवाल किया।

– पूछो मियाँ वह भी पूछ डालो...

– आप इतने उदास...भाई जान, आप कभी हँसते क्यों नहीं?

मेरा जी चाहा, सच कह दूँ, कैसे हँसू मियाँ, इस कारजा शीशागरी में हँसना कोई खेल है? मगर मैं इस मासूम बच्चे को, जो ज़रा देर पहले लका कबूतर के चले जाने की फ़िक्र में उदास था और अब ज़रा देर में कहकहे लगा रहा था, कुछ नहीं बता सका।

– भाई जान, मैं आपको हँसा दूँ?... वह लड़का बड़ी मुहब्बत से मेरी तरफ़ बढ़ा और मेरी आँखों में आँखें डालकर बोला – आप कहिए तो मैं आपको हँसा दूँ?

पहले तो मैं चौंका, दफ़्तन मुझे अजीब-सा लगा, नासमझी में इस लड़के ने ज़रा अपने कद से बड़ी बात कर दी थी। फिर मैंने ज़रा मुहब्बत से ताकीद की – मियाँ, आहिस्ता बोलो। घर जाओगे, किसी ने सुन लिया, तो दूसरों को ख़बर कर देगा कि यह कैसा लड़का है कि इसकी बहन बीमार पड़ी है और इसका लका कबूतर भी चला जाने वाला है और यह है कि खुद हँसता भी है और दूसरों को हँसाने की भी सोचता है! होश के नाख़ून लो, मियाँ मुफ़्त में मारे जाओगे।

– बला से मार दिया जाऊँगा! लड़के ने हौसले में कहा। आप कहिए तो, हँसा दूँ आपको?

– हँसा दो, मियाँ, बड़ा करम होगा...बड़ी मेहरबानी होगी तुम्हारी।

– तो फिर दोस्ती कीजिए। उसने दोस्ती के लिए अपना हाथ आगे बढ़ा दिया।

– तुमसे दोस्ती? अरे छटंकी, तुम्हारे इत्ते-इत्ते तो मेरे बेटे हैं! मैं तुम्हारे बाप के बराबर हूँ!

– तो क्या हुआ, बाप भी दोस्त होते हैं। मेरे मौलवी जी कहते हैं, अच्छे बाप अपने बच्चों के दोस्त भी हुआ करते हैं।

– यह बात है... तो हुआ दोस्त तुम्हारा आज से! मैंने उसके नन्हे-से, ख़ूबसूरत

हाथ पर अपना हाथ दे दिया।

– फिर चलिए मेरे साथ नदी की तरफ़। वहाँ आप और हम, दो ही होंगे। वहाँ मैं आपको एक चीज़ दिखाऊँगा।

फिर वह मेरा हाथ पकड़कर ले चला। मैं पीछे–पीछे और वह आगे–आगे। राहगीर पलट–पलटकर हमारी दोस्ती को देखते रहे और हम पलटकर राहगीरों को ताक रहे थे, जिनके कोई दोस्त थे भी या नहीं, जिनके कोई ऐसे प्यारे बेटे थे भी या नहीं। यूँ जब हम नदी के क़रीब पहुँचे, तो उसने पहले तो चालाक निगाहों से दायें देखा, बायें देखा, हर तरफ़ से इतमीनान हो गया, तो उसने अपने नेकर की जेब से माचिस की एक डिबिया निकाली, मुस्कुराया, मेरी तरफ़ पलटा और गहरी सरगोशी में बोला – इसमें है...

जवाब में मैंने भी उतनी ही होशियारी से पहले बायीं तरफ़ देखा, दायीं तरफ़ देखा, जब हर तरफ़ से इतमीनान हो गया, तो उतनी ही सरगोशी में पूछा –

क्या है इसमें?

– यह है... यह है इसमें! लड़के ने कहा और झट से माचिस के अन्दरूनी हिस्से को बाहर ढकेल दिया।

माचिस की डिबिया में मेरी आँखों के सामने एक बेहद ख़ुशरंग–सी तितली नीमजान–सी पड़ी थी, जो बाहर की हवा और धूप लगते ही फड़फड़ाने लगी। उसके नन्हे–नन्हे परों के इर्द–गिर्द ज़ाफ़रानी रंग बिखरा हुआ था। पैरों के ऐन दरमियान जेरा के बराबर सुर्ख़ी थी और परों के किनारे पर अफशाँ चमक रही थी। डूबते सूरज की रोशनी में बेहद हसीन दिख रही थी।

मैं तितली को ग़ौर से देखता रहा और ज़रा देर रंगों की दुनिया में खोया रहा। जब तक मैं रंगों में डूबता–उबरता रहा, वह लड़का इतने ही इनहेमाक से मेरे चेहरे के खतो–ख़याल पर कुछ ढूँढ़ता फिरा। मैंने तितली की तरफ़ से नज़र उठायी, उस लड़के की तरफ़ देखा, वह क़दरे अफसुर्दगी से मेरी तरफ़ पलटा – आप तो अजीब हैं, भाई जान!... आप तो तितली देखकर भी ख़ुश नहीं हुए!

– हाँ मियाँ!... मैं चौंक उठा। इस दस बरस के बच्चे ने तो मुझे बहुत दूर पहुँचकर पकड़ लिया। यह तुमने क्या कह दिया मियाँ कि मैं...

– हाँ, भाई जान!... उसने कतए कलाम करते हुए कहा, आप तो तितली से भी ख़ुश नहीं होते, कैसे हमारी दोस्ती निभेगी?...

– नहीं निभेगी, मियाँ कभी नहीं निभेगी!

मैं यह कहकर आगे बढ़ गया, मगर साथ–साथ तेज़ी से चलते हुए वह लड़का भी हमराह रहा – लेकिन भाई जान, यह मेरा लका कबूतर... वह गाड़ी...

दूसरे दिन मैं बाज़ार के सारे लोगों से कहता रहा... जूते गाँठने वाले मोची से,

कपड़े बेचने वाले बजाज से, भीड़ में घिरे रहने वाले डॉक्टर से, रोटी और दाल बेचने वाले से, सफ़ेद पतलून वाले तेज़ रफ़्तार बाबू से, बोझ ढोने वाले कुली से, रंगीन दुपट्टे वाली ख़ातून से, जो सड़क पर हौले-हौले यूँ चलती हैं गोया सारे ज़माने को रौंदकर गुज़र जाने का फ़ैसला कर लिया हो, उन राहगीरों से जो संजीदा अन्दाज़ की गुफ़्तगू में लपके चल जा रहे थे, एक-एक आदमी से पूछता फिरा। तेज़ रफ़्तार गाड़ियों को रोकने की नाकामयाब कोशिश की कि उस दस साल के बच्चे की जवान बहन लकवा की मरीज़ है और हकीम जी ने दवाओं के साथ लका कबूतर के परों की दवा के लिए कहा है। अगर ये गाड़ी वाले बच्चे के कबूतर को भी ले गये, तो फिर क्या होगा?

मुझे किसी ने जवाब नहीं दिया। सब अपनी-अपनी दुनिया में मसरूफ़ रहे। इसीलिए मैं दस साल के बच्चे के सवाल को पी गया और कोई जवाब नहीं दे सका। मुझे अफ़सोस था। उदास, सिर झुकाये चला जा रहा था। मेरे पाँव थक गये थे।

दोपहर से शाम होने को आ गयी थी। सुरमई अँधेरे का जन्म होने वाला था कि मेरी नज़र चौक के कोठे पर गयी, जहाँ शहर की मशहूर रण्डी मुन्नी बाई बालकनी में खड़ी बाल सँवार रही थी। मुन्नी बाई के सामने अड्डे पर उसका तोता दायें-बायें गरदन घुमा-घुमाकर झूम रहा था और वह अपने बालों में कंघी करती जा रही थी और तोते को पढ़ाती भी जा रही थी।

मैं चुपके से कोठे पर चढ़ गया। उसके कमरे को ओबूर करके बालकनी में ऐन मुन्नी बाई की पुश्त पर खड़ा हो गया। मुन्नी बाई मेरी आवाज़ से मुतलिक बेख़बर तोते को पढ़ाने में मगन थी – बोल मियाँ मिट्ठू, नबीजी, रोज़ी भेजो!

मियाँ मिट्ठू ने अड्डे में दायें और बायें जानिब रखी हुई दोनों प्यालियों को गरदन घुमाकर देखा, फिर एक प्याली पर झुककर, हरी मिर्च को कुतरकर, मुन्नी बाई की तरफ़ मुख़ातिब होकर बोला – नबीजी, रोज़ी भेजो...! नबीजी, रोज़ी भेजो! तोते ने अकड़कर कहा।

– सो मैं आ गया। उसके पीछे खड़े मैंने आहिस्ता से कहा। मुन्नी बाई सुनकर चौंक उठी। उसने पलटकर मुझे घूरा, ज़रा देर को सहम गयी, फिर ज़रा डपटकर बोली – तुम कैसे चले आये जी... कौन हो?

– सीढ़ियों से जी... मुझे नहीं पहचाना, मुन्नी बाई? मुझे नबीजी ने तुम्हारे पास भेजा है।

मुन्नी बाई यह सुनकर हँस पड़ी – अच्छा...अच्छा जी चलो, इधर बैठो तख़्त पर। उसने कंघी के दाँतों से सुनहरे बालों का गुच्छा निकाला, गोली बनाकर उस पर थूका, फिर नीचे सड़क पर फेंक दिया।

– बड़ी तोताचाम हो मुन्नी बाई, ज़रा-से में तोते की तरह रंग बदलती हो! जवाब में मुन्नी बाई ने एक और रंग बदला और मुस्कुरा पड़ी।

तख़्त पर बैठे हुए मैंने उसके क़दमों पर चौदह रुपये के एक-एक नोट रख दिये। मेरे पास इतने ही हैं, जो तुम्हारे नबीजी ने बड़े ग़रीब आदमी को आज इधर भेजा!

— नहीं जी, ये भी क्या कम है!... हम तो अपने आकाओं की ख़िदमत करना जानते हैं।

लेकिन बहुत देर हो गयी और मैंने मुन्नी बाई से कोई ख़िदमत नहीं ली तो वह झल्ला गयी — यहाँ काहे को आये हैं जी! ...और ये रुपये क्यों दिये?...

— मुन्नी बाई, बुरा न मानो। मैं तो सिर्फ़ इसीलिए आया हूँ कि तुमसे भी पूछ देखूँ, तुम क्या कहती हो?

— काहे के बारे में?

— ये जो आजकल हर दोपहर में परिन्दे पकड़ने वाली गाड़ी आती है, इसको देखती हो?

— हाँ, देखती हूँ कभी-कभी।

— तो तुम्हें कैसा लगता है?

— अच्छा जी... अच्छा लगता है... पीले-पीले, लाल-लाल, ख़ूबसूरत शीशों में से चहकते हुए परिन्दे भले दीखते हैं।

बहुत दूर से देखती हो न... जितनी दूर से तुम्हें तुम्हारे चाहने वाले देखते हैं।
— हाँ जी, इस बालकनी से।

— मुन्नी बाई, किसी दिन नीचे जाकर क़रीब से देखो।

— वह क्यों? मुझे इतनी फ़ुरसत नहीं जी! मुन्नी बाई ने नागवारी से मेरी ओर देख, फिर गालिबन उसे मेरे चौदह रुपये के नोट याद आ गये, तो वह मुस्कुरा पड़ी — तुम मुझे ज़रा क़रीब से देखो न, जी...

— सो तो देख ही रहा हूँ, मुन्नी बाई, और तुम भी देख लोगी, जिस दिन गाड़ी वाले तुम्हारे तोते को पकड़कर ले जायेंगे...

— मेरे तोते को क्यों ले जाने लगे! मुन्नी बाई ने कड़ककर बर्जस्ता कहा। यह कोई सड़क पर फिरने वाला आवारा परिन्दा है? यह तो पालतू है, मेरा हीरामन।

— हाँ मुन्नी बाई, पहले तो वह सड़क पर फिरने वाले परिन्दे को पकड़ेंगे, फिर कुछ दिनों बाद लाल-लाल, पीले-पीले ख़ूबसूरत शीशों के पीछे से और परिन्दों के दरमियान यह तुम्हारा हीरामन तोता देखने में कितना अच्छा लगेगा! तुम देखो न देखो, सड़क पर चलने-फिरने वाले लोग-बाग और दुकान में सौदा-सुलुफ बेचने वाले बनिये ज़रूर देखेंगे और सड़क पर जो परिन्दे वाली गाड़ी वाले दोनों आदमी सिक्के फेंक देते हैं, उन सिक्कों को और लोगों के साथ तुम भी चुनने लगोगी और यह भूल जाओगी कि...

— क्या भूल जाऊँगी...? बहुत से सिक्के मिल जायें, तो हीरामन को कौन रोता

है! गाड़ी वाले अगर ढेर सारे सिक्के फेंक देंगे, तो मैं सब चुन लूँगी। बाज़ार से नया तोता ले आऊँगी।

– हे-हे मुन्नीबाई, होश के नाख़ून लो! यह दुनिया है और दुनिया साली बड़ी मतलबी होती है। मान लो बाज़ार में तोता न मिला और मिला तो ऐसा पढ़ने वाला न मिला और ऐसा पढ़ने वाला भी मिल गया, तो उसकी ज़ुबान में यह तासीर...

मुन्नीबाई खिल-खिलाकर हँस पड़ी और कुछ देर तक हँसते रहने के बाद बोली – वाह, बहुत अच्छा बोलते हो जी! कहाँ रहते हो? क्या काम करते हो?

– कहानियाँ लिखता हूँ, मुन्नी बाई। रहता-वहता क्या, जहाँ पाया, रह लिया। जहाँ चाहा, सो लिया।

– अरे, कहानियाँ लिखना भी कोई काम हुआ! लगता है, तुम तो हमसे भी गये-गुज़रे हो! तुम्हारा धन्धा तो हमारे धन्धे से भी गया-गुज़रा लगता है जी... क्यों जी?

– हाँ, मुन्नी बाई, तुम तो ज़रा में इकट्ठे चौदह रुपये रखवा लेती हो और मुझे तो चौदह रुपये हासिल करने के लिए आठ कहानियाँ लिखनी पड़ती हैं! दो रुपये फी कहानी के हिसाब से ज़रीदे वाले ने दिये हैं।

– दो रुपये फी कहानी!... ये तो बहुत कम होते हैं... मुन्नी बाई ने मायूसी से कहा। अचानक उसे कोई बात याद आ गयी – दो रुपये फी कहानी के हिसाब से आठ कहानियों के सोलह रुपये बनते हैं... बाक़ी दो रुपये भी निकालो... जल्दी करो!

– हाँ जी, बनते तो सोलह रुपये ही हैं, मगर एक कहानी तो नाप-तौल में चली गयी।

– नाप-तौल में? अरे वाह! मुन्नी बाई फिर हँसी। नाप-तौल में कैसे चली गयी।

– वह ऐसे कि जब ज़रीदे वाले के पास पहुँचा उसे आठ कहानियाँ पढ़ायीं, तो वह झट अन्दर से तराजू ले आया।

– तराजू? कहानियाँ क्या तौलकर बिकती हैं?

– ख़ुदा का शुक्र है, मुन्नी बाई, अभी तो तौलकर बिकती हैं, कुछ दिनों बाद देखना बेतौले ही बेचनी पड़ेंगी!

– अच्छा-अच्छा, फिर वह तराजू ले आया?... मुन्नी बाई ने दिलचस्पी से कहा।

– हाँ, तराजू ले आया। डण्डी मिलायी, तो एक तरफ़ पासंग था। उसने झट आधी कहानी नोच ली और दूसरी तरफ़ वाले पलड़े पर रख दी। जब पासंग बराबर हो गया, तो एक तरफ़ वज़न के सात पत्थर रखे और दूसरी तरफ़ साढ़े सात कहानियाँ।

मैंने कहा – वज़न सात ही पत्थर रखे गये हैं। देखो तो, कहानीवाला पलड़ा कितना झुक गया है... आधी कहानी तो तुमने पहले ले ली!...

– पहले लेकर आधी कहानी क्या मैं खा गया? पासंग न मिला तराजू का? ज़रीदे वाले ने चिढ़कर कहा।

बात सच थी। मैंने जल्दी से कहा – अच्छा, ठीक है, तुम सच कहते हो, पर दूसरी तरफ़ का पलड़ा जो इतना झुक आया है। मुन्नी बाई, यह सुनकर जरीदे वाला बिगड़ गया। उसने तुर्शी से कहा – इतना झुक गया, तो दम निकल गया तुम्हारा! क्या सोना तौल रहे हो? कहानियाँ ही तो हैं!

– सच ही ज़रीदे वाले ने... मुन्नी बाई ने हमदर्दी से मेरी तरफ़ देखते हुए कहा। फिर मुझे दिलबरदाश्ता देखकर मुन्नीबाई ने दुख से कहा – वाकई हमारा धन्धा तुम्हारे धन्धे से बहुत अच्छा है।

– हाँ, मुन्नी बाई, बहुत अच्छा है, इसीलिए कभी-कभी जी चाहता है, काग़ज़ क़लम फेंककर तुम्हारा ही वाला धन्धा शुरू कर दूँ।

यह सुनकर मुन्नी बाई बेसाख्ता हँस पड़ी और उसने जल्दी से दोनों हाथों से चेहरे को ढँक लिया – अल्लाह ऐसा न कर बैठना जी, वरना मुफ़्त में हमारी रोटी मारी जायेगी!... बहुत देर तक हँसते रहने के बाद जब मुन्नी बाई थक गयी तो उसे कुछ याद आया। अच्छा जी, एक कहानी हम पर लिखो!...

– नहीं मुन्नी बाई, तुम पर तो बहुतों ने कहानियाँ लिखी हैं। मैं तो तुम्हारे तोते पर एक अच्छी-सी कहानी लिखना चाहता हूँ।

– लिखो जी ज़रूर लिखो, मेरे तोते पर ही लिखो!... मुन्नी बाई ने मसर्रत से कहा। मगर क्या लिखोगे?

– यह लिखूँगा कि परिन्दा पकड़ने वाली गाड़ी आ गयी है और अब जब बाज़ार के सारे परिन्दे ख़त्म हो चुके हैं, रंगीन शीशों से घिरी हुई गाड़ी वाले, दोनों ज़हरीली आँखों वाले आदमी चारों ओर घूर-घूरकर ढूँढ़ते फिर रहे हैं, कि कहीं से कोई परिन्दा नज़र आ जाये। कहीं से कोई गौरेया, उमरी बुलबुल, कहीं से कोई कर्क, नीलकण्ठ, कोई मैना, कोई तोता दिखायी पड़े। इतने में उनकी चारों ज़हरीली निगाहें तुम्हारे तोते पर पड़ती हैं और वे दोनों चुपके से तोते के बायें बाज़ू पर लसदार रतूबत वाले गुच्छे को छुआ देता हैं। तोता फड़फड़ाता है, थरथराता है, उड़ने की कोशिश करता है और बरसों के अड्डे को ग़ैर-महफ़ूज़ जानकर बालकनी की रेलिंग का सहारा लेना चाहता है, मगर नहीं ले पाता और तड़पता हुआ नीचे आ रहता है, जहाँ वह खड़ा होता है।

वह लपककर तोते को उठाता है, तोता चें-चें की आवाज़ से ज़ोर से चीख़ता है, फड़फड़ाता है, फिर पता नहीं, उसका साथ छोड़ती हुई उड़ान की ताक़त कहाँ से लौट आती है। वह ज़रा ऊपर उड़ता है, लेकिन फिर गिर पड़ता है।

वह आदमी जिसकी कमर से गाड़ी वाली रस्सी बँधी होती है, अपने दूसरे साथी को देखता है और इतमीनान से मुस्कुरा देता है, जिसके जवाब में रफ़ीक पहले अपने

साथी को देखता है, फिर फ़र्श पर हाँफते हुए तोते को देखता है, इसके बाद फिर अपने साथी को देखकर इतमीनान से मुस्कुरा देता है और आहिस्ता से आगे बढ़कर तोते को उठाने के लिए झुकता है...

लेकिन दफ्तन तोता उसकी गिरफ़्त में आने की बजाय तड़पकर उछलता है और उसकी कनपटियों पर झपटता है और गरदन का गोश्त नोच लेता है।

उस आदमी के मुँह से चीख़ निकलती है, जिसे सुनकर उसका दूसरा साथी लपकता है और तोते की गरदन पर हाथ डालना ही चाहता है कि तोता घूरकर दूसरे आदमी को देखता है। उसकी छोटी-छोटी आँखें फैल जाती है और उनमें लहू उतर आता है। वह अपनी पूरी ताक़त को समेटता है और रेल कर दूसरे आदमी पर भी हमला करता है और उसके सारे चेहरे को नोचकर लहुलूहान कर देता है। वह आदमी भी झल्ला उठता है और जल्दी से अपने दोनों हाथों की मदद से तोते को अलग करता है और उसे ज़ोर से ज़मीन पर फेंक देता है।

अब दोनों तोते के एक तरफ़ खड़े हैरत से देख रहे होते हैं और तोता आहिस्ता-आहिस्ता टहलता हुआ कभी पहले आदमी की तरफ़ जाता है, फिर उसी इतमीनान-ख़ातिर से टहलता हुआ दूसरे आदमी की तरफ़ लौट जाता है और दोनों को अपनी ख़ून उतरी नज़रों से घूर रहा होता है...

और इतने में मुन्नी बाई जल्दी से कह उठती है – मैं लपककर जाती हूँ और अपनी चादर उस पर डाल देती हूँ और परिन्दे को पकड़कर गाड़ी वाले के हिस्से कर देती हूँ और उससे बहुत से... जब बहुत-पैसे मिलने वाले हों, तो क्या मैं तोते को ये सब करने दूँगी...?

मुन्नी बाई हिकारत से मेरी तरफ़ देखती है और थूक देती है – ऐसी कहानी लिखी जाती है, जी...?

जवाब में मैं मुन्नी बाई के चेहरे को देखता हूँ, अड्डे पर इधर से उधर होते हुए तोते को देखता हूँ और फिर एक बार पलटकर तोते को देखता हूँ। फिर कहता हूँ – फिर गाड़ी वाले मुन्नी बाई के नबी जी से "रोज़ी भेजो" की मेहनत करने वाले तोते को भी ले जाते हैं। फिर रफ़्ता-रफ़्ता शहर सूना हो जाता है। कहीं कोई परिन्दा, कोई गौरैया, कोई बुलबुल, मैना, तोता, कोई मुर्ग, कोई फाख़्ता नज़र नहीं आती।

शाम ढले दरख़्तों पर बसेरा लेने वाली चिड़ियों की चहकार सुनायी नहीं देती। लाजवर्दी आसमान पर सफ़ेद बगुले, तवाजुन से उड़ने वाले बगुले भी नहीं दिखायी देते। भरी दोपहर की ख़ामोश फ़िज़ाँ में चीलों की दर्द-भरी चीख़ भी सुनायी नहीं देती। कबूतर की गुटरगूँ, पपीहे की पी-कहाँ, पी-कहाँ, मैना की खाँय-खाँय की आवाज़ से हम महरूम हो जाते हैं, यहाँ तक कि मौलवी साहब के मुर्ग की अजान भी कहीं खो गयी है।

भीड़

रामलाल

लाखों आदमियों से भरा एक जंगल। उन लोगों में साझी बात एक ही है – अजनबियत। बसों, ट्रामों, लोकल ट्रेनों और फ़ुटपाथों पर थोड़ी देर का साथ और बेशुमार धक्के। बड़े शहरों की अब यही नियति है।

इसी भीड़ में एक दिन आतम कस्सी को देख लेता है। दोनों एक ही दिशा में हावड़ा ब्रिज पर जा रहे थे। शाम हो रही थी। आगे-पीछे चलने वाले और भी लाखों लोग थे दोनों तरफ़ फ़ुटपाथों पर। बीच सड़क पर मोटरें, ट्रामें और बसें।

आतम पहले उसे उसकी पीठ से पहचानता है – एक तन्दुरुस्त जवान, पीठ और गरदन के पीछे ढेर सारे ख़ूबसूरत बाल। उसे यक़ीन है, वह कस्सी ही है।

"कस्सी..." कस्सी भी अपना नाम सुनकर हैरान रह गयी है। फिर यह आवाज़ जानी-पहचानी-सी, लेकिन सालों के बाद अचानक सुनायी पड़ी है। दोनों की आँखों में अजीब-सी प्रसन्नता और गर्व का-सा भाव चमक उठता है।

"अरे, आतम तुम... तुम भी यहाँ रहते हो?"

"हाँ, मैं तो पाँच साल से यहाँ हूँ, लेकिन क्या तुम भी अभी तक...?"

"क्यों? मैं और कहाँ जाती? यह कैसे सोचा!"

आतम चुप, गहरी-गहरी आँखों से उसका चेहरा ताकता रह गया। इसके बालों में सिन्दूर नहीं है, होंठों पर लिपिस्टिक भी नहीं, फिर भी इसके होंठ कितने लाल हैं। कस्सी अपने सवाल का ख़ुद ही जवाब देने लगी –

"मैं तो कहीं और गयी ही नहीं। यही पैदा हुई, यहीं बड़ी हुई, यहीं एजुकेशन पायी और यहीं सर्विस भी कर रही हूँ।"

"कौन-से ऑफ़िस में?"

उसी वक़्त एक व्यक्ति पीछे की भीड़ से आकर उन दोनों के बीच से यह कहता हुआ निकल गया –

"अम्माँ के जीते दाऊ भाई..."

कस्सी अब उसके साथ सटकर चलने लगती है।

"मैं कद्दरपुर डाक्स पर स्टेनो हूँ, पोर्ट ट्रस्ट के एक सेक्शन में। और तुम?" पीछे से उमड़ती हुई भीड़ ने उन्हें थोड़ी देर के लिए अलग-अलग कर दिया। कोशिश करके वे फिर साथ-साथ चलने लगे।

"मैं स्टॉक एक्सचेंज की मेन बिल्डिंग में शिफ़्ट मैकेनिक हूँ। याद है जब तुम हमारे यहाँ आयी थीं, मैं तब आई.टी.आई. में ट्रेनिंग कर रहा था।"

"हाँ, ख़ूब याद है आतम, वहाँ मेरे और तुम्हारे पिता के दरम्यान जायदाद का झगड़ा हो गया था। पर ज़रा धीरे-धीरे चलो, मैं पीछे रह जाती हूँ।"

"अच्छा हाँ, कस्सी, मुझे वह बात याद तो है। वही तो कारण था कि हम फिर मिल नहीं पाये। लेकिन उन्होंने ज़रा-सी बात के लिए इतना बड़ा झगड़ा कर लिया?"

"आतम, इस भीड़ में तुम्हारे साथ बात करना मुश्किल हुआ जा रहा है, मेरा हाथ पकड़ लो। तुमने अभी क्या कहा?"

"मैंने यह कहा कस्सी जी, कि झगड़ा बहुत ज़रूरी था। वे लोग तो एक-दूसरे से ऐसे रूठे कि फिर मिल न पाये। जब मेरे पिताजी का स्वर्गवास हुआ, तब तुम्हारे पिता जी ने ख़ुद आना तो दूर रहा हमें एक ख़त भी न लिखा।"

"हाँ आतम, मेरे पिता जी ने यह ठीक नहीं किया। मुझे ख़ुद इसका बहुत दुख है। लेकिन तुम जानते हो कि मैं तब कितनी छोटी थी।"

"नहीं कस्सी, मुझे शिकायत नहीं है। मैं तो तुम्हारे पिता जी की..."

"..."

"...आतम, देखो पीछे से कितना तेज़ रेला आ गया, शोर भी बढ़ गया है। मैं सुन नहीं पायी, पता नहीं तुमने क्या कहा।"

"कस्सी, हम अब स्टेशन के क़रीब पहुँच गये हैं। कहीं बैठकर चाय पियेंगे और इत्मीनान से बातें करेंगे।"

"मैं भी यही चाह रही थी।"

आतम ने कस्सी का हाथ मज़बूती से पकड़ लिया और भीड़ को चीरकर उसे बाहर ले आया। वह दोनों हाथ पीछे उठाकर अपना जूड़ा ठीक करने लगी, तो आतम उसे बड़ी गहरी नज़रों से देखने लगा। कस्सी अब कितनी बड़ी हो गयी है, पूरी औरत लगती है, बाप रे बाप। कस्सी भी उसे अपनी तरफ़ इस तरह देखता हुआ पाकर लजा गयी। उसका चेहरा लाल हो गया। कुछ देर दोनों में से कोई न बोल सका। वह चुपचाप ख़ाली जगह की तलाश में घूमते रहे। पहले वेजीटेरियन रेस्त्रां में गये, फिर नॉन वेजीटेरियन में। हर जगह भीड़ थी। बाहर कॉफ़ी के स्टालों में भी वही हाल था।

लोग जल्दी-जल्दी कॉफ़ी के घूँट निगलते हैं, जल्दी-जल्दी बातें करते हैं, पालिटिक्स, घरेलू समस्याएँ, ऑफ़िस और बिजनेस के मामलात –

"ऐ बार बांग्लाय-लेफ़्टिस्ट सरकार निश्ची आसबे।"

"यार, मेरी पत्नी बड़ी बीमार है।"

तभी उन्हें अचानक सामने से लोकल आती दिखायी दे जाती है और वे प्याले और पैसे रखकर भाग खड़े होते हैं।

आतम और कस्सी को एक ट्रेन के आख़िर में लगी डाइनिंग कार दिख जाती है। गाड़ी छूटने में अभी देर थी। दोनों अन्दर जा बैठे। आमने-सामने बैठकर दोनों ने पहली बार एक-दूसरे को ध्यान से देखा। बैरा चाय रख गया तो कस्सी ने पूछा –

"आतम तुम उस वक़्त क्या कह रहे थे?"

"कब?" वह जैसे किसी स्वप्न से चौंक उठा।

"जब तुम मेरा हाथ पकड़कर मुझे भीड़ से बाहर ले आये थे?"

"याद नहीं पड़ता अब? हटाओ, होगी कोई बात। अच्छा यह बताओ, अब तुम्हारे साथ कौन-कौन हैं, चाचा जी और चाची जी के अलावा?"

"और तो कोई नहीं है। दोनों बड़े भाइयों के ब्याह हो चुके हैं, एक बम्बई में है, दूसरा मद्रास में। श्यामा दीदी कभी-कभी ससुराल से आ जाती है। महीना-पन्द्रह दिन रहकर फिर चली जाती है।"

"और तुम, तुम नहीं गयी ससुराल अभी तक..?"

आतम ने महसूस किया, जैसे उसने एक मुश्किल सवाल पूछ लिया है। यह सवाल शायद अनुत्तरित ही रह जाये। लेकिन कस्सी मुस्कुरा दी और फिर चहकते हुए बोली –

"ससुराल जाना क्या ज़रूरी होता है, हर लड़की के लिए?"

आतम कुशाग्र बुद्धि नहीं था, लेकिन भावुक अवश्य था। वह कुछ भी न कह सका और कस्सी उसकी भीतरी कशमकश भाँपकर बहुत ख़ुश हुई। बोली, "अच्छा यह बताओ, चाची कैसी हैं।"

"वैसी ही हैं, लेकिन उसकी नज़र बहुत कमज़ोर हो गयी है। कई ऐनकें बदलवानी पड़ीं। और तुम्हारी माता जी? उनकी तो मैं शक्ल ही भूल चुका हूँ। शायद अपने बचपन में ही उनकी गोद में खेला था।"

कस्सी हँस पड़ी, "बचपन का ज़माना भी कितना सुहावना होता है। पाँच साल पहले हम मिले थे। वह भी हमारे बचपन ही का ज़माना था। तुम आई.टी.आई. में थे। मैं दसवीं का इम्तहान देने वाली थी। मुझे याद है, एक रोज़ मुझे साइकिल पर बिठाकर शान्ति निकेतन ले गये थे।"

"हाँ, और तुमने कहा था – इसी यूनिवर्सिटी से डिग्री लेने आऊँगी।"

"नहीं आ सकी। पिताजी का हाथ तंग हो गया था। दो भाइयों की एजुकेशन और श्यामा दीदी की शादी के लिए उन्हें जायदाद का बँटवारा करना पड़ा था और हमारा हिस्सा बेचकर ही सब काम हो पाया।"

"अच्छा कस्सी, मुझे यह बात मालूम नहीं थीं, मुझे अफ़सोस है, असली बात

जाने बिना ही मैं तुम्हारे पिता जी के बारे में इतना कह गया।"

"कब कहा तुमने? मैंने तो नहीं सुना।"

"तुम इतने अच्छे स्वभाव की हो, मेरी किसी बात का बुरा ही नहीं मानती।"

"अच्छा, भली कही। ज़रा-सी देर में तुम्हें मेरे सुभाव का भी अन्दाज़ा हो गया। पर मैं अपने घर में बड़ी लड़ाका समझी जाती हूँ।" वह खिलखिलाकर हँस पड़ी।

सहसा गाड़ी चल दी। दोनों दरवाज़े की तरफ़ लपके, लेकिन उनके लिए उतरना असम्भव हो गया। कस्सी ने घबराकर पूछा –

"अब यह गाड़ी कहाँ रुकेगी बाबा।"

एक बैरे ने बताया, "एक घण्टा बाटे, ऐ बार खड़गपुर..."

आतम ने कस्सी को धीरज बँधाने के लिए बैरे की बात आगे सुनी ही नहीं। वह बोला, "मैं तुम्हारे साथ हूँ न। खड़गपुर पहुँचकर वापसी के लिए हमें फ़ौरन कोई ट्रेन मिल जायेगी। क्या तुम इससे पहले कभी देर से घर नहीं गयीं?"

कस्सी ने बताया, "ज़्यादा से ज़्यादा आठ साढ़े आठ तक ज़रूर चली आती हूँ। वह भी जब कोई लोकल लेट हो जाती है, वरना सात तक तो मैं ज़रूर पहुँच जाती हूँ।"

"ठीक है, आज मैं तुम्हारे साथ ही घर चलूँगा। सब एक्सप्लेन कर दूँगा। इस शहर में तो ये सब रोज़ ही होता है। चिन्ता छोड़ो। एक-एक चाय और पी जाये और कुछ खाया भी जाये न, भूख लग रही है। क्या खाओगी?"

"जो तुम खाओगे।"

"वाह, यह क्या बात हुई। फिर तो मैं भी वही खाऊँगा जो तुम खाओगी।"

"अरे बाबा, तब तो मुश्किल होगी। अच्छा मैं मटन चॉप का आर्डर दे रही हूँ। चलेगा?" कस्सी फिर पहले-जैसी हो गयी।

"तुम बचपन में बहुत ज़िद्दी हुआ करते थे आतम, अब भी वही हाल है।"

"नहीं, मैंने ज़िन्दगी के बारे में बहुत सोच लिया है, उसके साथ कहीं समझौता भी किया है। परन्तु सिर्फ़ वहाँ, जहाँ मेरे सिद्धान्त क़ुर्बान नहीं होते।"

"तुम ड्रामों-वामों में भी इण्ट्रेस्ट लिया करते थे?"

"हमारा अब भी एक ड्रामेटिक क्लब है। अभी पिछली ही मंथ हमने एक स्टेज प्ले किया था, 'थका हुआ ख़ुदा'।"

"ओ माँ, बहुत इण्ट्रेस्टिंग टाइटिल है यह तो।"

"और तुम्हारे ख़ास सब्जेक्ट्स तो हिस्ट्री और सोश्योलॉजी थे न?"

"वहाँ से यहाँ तक आते-आते कई और सब्जेक्ट्स भी लिये हैं – संगीत, सितार और अब दो सौ मिनट की रफ़्तार से सर्विस।" दोनों हँस पड़े।

उसी वक़्त गाड़ी खड़गपुर के यार्ड में दाख़िल हो गयी। आतम को अचानक याद आया, उन्होंने टिकट भी नहीं ख़रीदी है।

कस्सी को बताया तो वह डर ही गयी। बोली, "ऐ बाबा, बहुत फ़ाइन देना पड़ेगा। मेरे पास तो कुल मिलाकर पन्द्रह-बीस ही रुपये होंगे।"

यह कहकर उसने अपना हैण्ड बैग मेज़ पर उलट दिया। आतम ने भी अपनी जेब से रुपये-पैसे उनमें मिला दिये और कहा –

"यहाँ का बिल और रेल का भाड़ा तो अदा हो जायेगा, लेकिन वापसी के लिए यक़ीनन कुछ न बचेगा।"

"तब हम वापस कैसे होंगे?"

आतम उसके चेहरे पर चिन्ता का रंग देखकर मुस्कुरा उठा। बोला, "यहाँ मेरी बड़ी बहन रहती है, वहीं चलते हैं। खाना भी खायेंगे और रुपए भी ले आयेंगे।"

"ना बाबा, मैं नहीं जाऊँगी तुम्हारी बहन के सामने, जाने क्या सोच बैठे?"

"तब तुम बाहर रुक जाना। मैं कोई बहाना बनाकर रुपए ले आऊँगा।"

"ठीक है।" दोनों एक-दूसरे की शरारत में बच्चों की सी मासूमियत से साथ दे रहे थे, आनन्द में डूबे हुए।

गाड़ी से उतरकर दोनों ने रेल का किराया अदा किया। कस्सी टैक्सी में बैठी रही। आतम चन्द ही मिनट में मुस्कुराता हुआ वापस आ गया। उसके पास दस-दस के पाँच नोट थे।

कस्सी ने ख़ुश होकर उसका हाथ दबा दिया। बातें करते और हँसते हुए वे वापस स्टेशन आ गये। ज़िन्दगी में कभी-कभी अचानक इस तरह ख़ुश हो उठने का अवसर हाथ लगता है, रास्ते में पड़ी हुई दौलत के समान। लेकिन उन्हें वापस ले जाने वाली गाड़ी तीन घण्टे लेट थी। यह सुनकर कस्सी के तो होश ही उड़ गये। आतम ने उसके लिए जो खाना मँगवा लिया था, उसे छूने के लिए भी वह तैयार न हो सकी। आतम उसकी आँखों में आँसू देखकर चुप-सा हो गया। गाड़ी आयी, तब भी वे उसी तरह ख़ामोश थे। यह गाड़ी सुबह पाँच से पहले कलकत्ता न पहुँच सकती थी। आतम ने दुख और पछतावे भरे लहजे में कहा –

"मुझसे बड़ी भूल हुई है, कस्सी, मेरी ही वजह से तुम यहाँ तक चली आयीं। लेकिन जो कुछ हुआ, बस होता ही चला गया, एक ऐडवेंचर की तरह।"

कस्सी अपने घुटनों पर सिर रखे-रखे ही सिसकते हुए बोली, "मैं तुम्हें दोष नहीं देती आतम, मैं तो ख़ुद भी तुमसे मिलकर सबकुछ भूल गयी। इतना ही याद रह गया कि हमारा भी कोई बचपन था, जो बेहद सुहावना था। उसी को याद करते-करते फिर से बच्चे बन गये। लेकिन मैं घर जाकर कैसे उन्हें विश्वास दिला पाऊँगी कि हम रात-भर कलकत्ता और खड़गपुर के बीच क्यों भटकते रहे? मैंने तो तुमसे झूठ बोला था कि घर पर मेरी राह देखने वाले मेरे माता-पिता हैं। वे तो कभी के परलोक सिधार गये। वहाँ तो मेरा पति है, जो रात-भर जागता रहेगा।"

यह सुनकर आतम सन्नाटे में आ गया। कुछ देर तक इसी सन्नाटे में बैठा रहा

– एकदम ख़ामोश। फिर वह अपने घुटनों में सिर झुकाकर बोला –

"कुछ झूठ मैं भी बोल गया हूँ तुमसे, ग़लत कहा मैंने कि मेरी माँ ज़िन्दा है। वहाँ तो मेरी बीवी और मेरा छोटा-सा बच्चा है। मैं भी अब यह सोच-सोचकर परेशान हो रहा हूँ, वह सो नहीं पा रही होगी। ज़रा-सा खटका होने पर भी चौंककर सिर उठा लेती होगी। पर क्या हम कोई बहाना नहीं बना सकते हैं? कह सकते हैं, वापसी पर ट्रैफ़िक जाम हो गया। ये सब तो होता है न यहाँ?"

"लेकिन मेरे घर और दफ़्तर के बीच आज तो कुछ भी नहीं हुआ, अख़बारों में आज किसी हंगामे का समाचार नहीं होगा।"

"अख़बार वाले सारी ख़बरें छापते ही कब हैं कस्सी। रोज़-रोज़ के हंगामों के वे ऐसे आदी हो गये हैं कि सब बातों का ज़िक्र करना वे ज़रूरी नहीं समझते।"

इसके बाद देर तक दोनों ख़ामोश रहे। सुबह होने में ज़्यादा देर नहीं थी, पौ फट रही थी। दोनों के चेहरे मुरझा चुके थे। कपड़े धूल-गर्द से पटे पड़े थे। आतम आँखें बन्दकर लेता तो उसे अपने अन्दर भी एक शोर-सा सुनायी देता। बसों और ट्रामों का जैसे उसके अन्दर भी एक शहर आबाद हो, बहुत बड़ा शहर।

अचानक गाड़ी एक जगह रुक गयी। आगे बहुत से लोग खड़े थे। नारे लगा रहे थे।

"चोलबे है न, चोलबे है ना।"

आतम उतरकर नीचे गया। लोगों से गाड़ी रोकने का सबब पूछा। इनकी कोई लोकल अचानक लेट हो गयी थी, इस पर वे अपना आक्रोश व्यक्त कर रहे थे। आतम जल्दी-जल्दी कस्सी के पास लौट आया। उसे भी उतारकर भीड़ के पास ले गया। बोला, "ये सब वही हैं, जिनके साथ हम रोज़ धक्के खाते हैं। कल इनसे दूर होकर अपनी कहने-सुनने के लिए हम कितना बेचैन थे, पर अब इनमें शामिल होकर ही हमारी मुक्ति हो पायेगी। हम दो-तीन दिन भी घर नहीं पहुँचेंगे, तो हमें कोई कुछ न कहेगा। शायद पुलिस भी आने वाली है।"

आतम के चेहरे पर सहज मुस्कान देखकर कस्सी के चेहरे का तनाव भी दूर हो गया। वह जल्दी से भीड़ में शामिल हो गयी। साड़ी का पल्लू उसने कमर के चारों तरफ़ कस लिया और दोनों हाथों में पत्थर भी उठा लिये।

एक हलफ़िया बयान

इक़बाल मजीद

मैं मुक़द्दस किताबों पर हाथ रखकर क़सम खाता हूँ कि जो कुछ मैंने देखा है वो सच-सच बयान करूँगा।

उस सच्चाई में आपको शरीक़ कर लूँगा जो सिर्फ़ सच है और सच के सिवा कुछ नहीं।

यह एक रात की बात है।

यह एक अँधेरी सुनसान बरसात की रात की बात है।

यह एक ऐसी रात की बात है जब मैं अकेला अपने बिस्तर पर लेटा था और दीवार पर ट्यूबलाइट जल रही थी। कमरे का दरवाज़ा बन्द था। रौशनदान खुला था। बारिश का मौसम था। ट्यूबलाइट पर बहुत से छोटे-छोटे कीड़े रेंग रहे थे। यक़ीनन ये बरसाती कीड़े थे। तब ही मेरे सिर के ऊपर से मसहरी और कमरे की छत के दरमियान फिज़ा में भिनभिनाहट की आवाज़ के साथ किसी क़दर बड़े कीड़े के उड़ने की आवाज़ आयी और फिर मसहरी के बराबर फ़र्श पर पट से किसी के गिरने की आवाज़... यह आवाज़ इतनी साफ़ थी कि मेरा ध्यान उसकी तरफ़ चला गया।

क्या गिरा था? आप ज़रूर ये सवाल करेंगे।

अगर मैं चाहूँ तो इस सवाल का जवाब देने से पहले आपको दूसरी बातों में काफ़ी देर उलझाए रख सकता हूँ लेकिन आप ख़ुद पहले से बहुत उलझे हुए हैं और वक़्त कम है और सब्र-और इन्तज़ार से आप सब ही घबराते हैं और फ़ौरन अस्ल मुआमलात तक पहुँचने की आप में ज़ालेमाना हद तक आदत पड़ चुकी है और ये कि 'जुज़ियात' (विवरण) से नहीं अस्ल से दिलचस्पी ज़्यादा है और ये भी कि सच्चाई को आप दो-टूक ही पसन्द करते हैं इसलिए... मैं तमाम तहज़ीबों और क़ौमों और इन्सानी बिरादरियों के तमामतर ख़ुदाओं को हाज़िरोनाज़िर जानकर कसम खाता हूँ और फिर कहता हूँ कि मैंने जो कुछ देखा है वो आपको सही और ठीक-ठीक बता दूँगा।

यह एक रात की बात है।

यह एक अँधेरी सुनसान बरसात की रात की बात है।

ये एक ऐसी रात की बात है जब मैं फ़र्श पर किसी चीज़ के गिरने की आवाज़ सुनकर उसकी तरफ़ मुख़ातिब हो गया था। मैंने देखा मसहरी के क़रीब, बस मुश्किल से एक मीटर दूर, एक काले रंग का बेढंगा, बदशक्ल, बदरू, बदक़िमाश, बदनज़र, बदनीयत कीड़ा पीठ के बल उल्टा पड़ा हुआ था। उस कीड़े के मोटे भद्दे और गोल-गोल से छोटे-से जिस्म पर ग़ालिबन दो पर भी थे, छोटे-से बारीक़ दो पर। इन परों की लम्बाई उसके डीलडौल को देखते हुए बहुत ही छोटी थी। उसकी कई टाँगें थी, चार भी हो सकती थीं या छह भी। उन्हें गिना इसलिए नहीं जा सकता था कि वो उन्हें बराबर चलाये जा रहा था। पीठ के बल फ़र्श पर पड़ा हुआ वो बराबर अपने पैर चलाये जा रहा था। मैं उसे चुपचाप मसहरी पर लेटे-लेटे देखता रहा।

चिकना फ़र्श।

कीड़े की पीठ शायद चिकनी थी।

क्या आप जानते हैं फिर क्या हुआ।

आप में से बहुत से नहीं जानते होंगे।

टाँगें बेहद बारीक़। भद्दा जिस्म और उस पर जिस्म का ख़ासा वज़न, बस वो टाँगें चलाये जा रहा था। दो मिनट, पाँच मिनट, दस मिनट, वो मुस्तक़िल अपने को पलटने की कोशिश में लगा हुआ था।

दरअस्ल यह एक कोशिश की बात है।

यह एक लगातार, एक ही जगह पकड़कर चिकने फ़र्श से बेनियाज़ होकर की जाने वाली कोशिश की बात है।

यह एक अँधेरी बेमानी रात में बेमक़्सद कोशिश की बात है।

जब पीठ चिकनी हो।

फ़र्श चिकना हो।

पर छोटे हों।

टाँगें बारीक़ हों।

और उनकी दस्तरस में फ़ज़ा हो, ज़मीन न हो।

उसके बाद फिर एक अजीब बात हुई।

क्या बात हुई...? आप सवाल ज़रूर करेंगे।

अगर मैं चाहूँ तो इस सवाल को पसेपुश्त डालकर आपको बहुत देर तक दीगर मुआमलात में उलझा सकता हूँ क्योंकि मुझे ऐसा लग रहा है जैसे आपकी दिलचस्पी इस कीड़े में कुछ बढ़ गयी। क्योंकि इस तरह के कीड़े आपने भी ज़रूर देखे होंगे जो एक बार पीठ के बल उलट जायें तो फिर सीधे नहीं हो पाते इसलिए...।

इसलिए मैं इन्सान के ख़ून में दौड़ते हुए ऐसे तमाम सरचश्मों की क़सम खाकर कहता हूँ जो उसमें तजस्सुस (उत्सुकता), इस्तेज़ाब (जिज्ञासा), हैरत और रम्ज कुशाई (पहेली समझने) के लम्हात जगाते हैं और उन आसमानी ताक़तों को हाज़िरोनाजिर जानकर अपना बयान आगे बढ़ाता हूँ जो ताकते हरजीरूह (प्राणी) में जब्र बरदाश्त करने की सलाहियतें बख़्शती हैं, जो उसे वसवसों और अन्देशों की काली बरसात जैसी रातों में चुपका पड़ा रहने पर मज़बूत कर देती है, ...मैंने देखा कि वो कीड़ा बराबर, रुके बग़ैर अपनी टाँगें फजा में उछाल रहा था। अपने पैरों को भी नीचे से निकालने की कोशिश कर रहा था। मुझे उसकी ये कोशिश देखते हुए लगभग एक घण्टा हो चुका था। सबकुछ भूलकर मैं उसे देख रहा था कि यकायक मुझे ख़याल आया।

ये हरामज़ादा बदअक़्ल बदरूह है।

यह कमीना अपने आस-पास की दुनिया से अब भी वाक़िफ़ नहीं है।

यह ज़लील ये भी नहीं जानता कि यह इस कमरे में अकेला नहीं है।

अगर इस ख़बीस को यह अहसास हो जाये कि ग़ैर-महफ़ूज़ है और जितनी जल्द मुमकिन हो उसको मौजूदा सूरतेहाल से छुटकारा पा लेना चाहिए तो शायद ये कुछ और तदबीर करे, शायद अपने को सीधा उलट लेने के लिए कुछ और जतन करे, शायद ये खौफ़ज़दा होकर अपनी कोशिशों को इस क़दर तेज़ कर दे कि उसके सीधी हो जाने का कोई रास्ता निकल आये। लेकिन ये तभी मुमकिन था जब वो भयभीत हो जाये, उसको यह अहसास हो कि वहाँ उसके क़रीब या आस-पास कुछ और भी है। कोई ऐसी चीज़ जिससे उसको नुकसान पहुँच सकता है।

यह सोचकर मैं मसहरी पर से उतरा। उसके क़रीब गया। अपना दाहिना पैर उसके पास लाया।

और फिर उसके क़रीब ही ज़मीन पर पैर को दो-एक बार थपथपाया। तब ही एक अजीब बात हुई।

मेरा ख़याल है कि वो बात मुझे आपको बग़ैर किसी बकवास के बता देना चाहिए इसलिए...।

...इसलिए मैं दुनिया के तमाम कमज़ोर व नहीफ-लाचार-मजबूर और नादार इन्सानों की क़सम खाकर और उन्हें हाज़िरोनाजिर जानकर कहता हूँ कि मैंने अपनी आँखों से जो देखा है वो सच-सच बताऊँगा। मेरा सच नहीं बल्कि आपका भी सच होगा। क्योंकि अब जो कुछ मैं आपको बताने जा रहा हूँ वह मुझे पूरी उम्मीद है कि आपने भी देखा है इसलिए...।

...इसलिए मैं उन सारे तजुरबों, महसूसात और इन्सानी रवैयों की कसम खाकर कहता हूँ जो मेरे ही नहीं बल्कि आपके भी तजुरबे, महसूसात और रवैये हैं कि मेरे पैर की धमक की आवाज़ से उस कीड़े पर एक अजीब असर हुआ। वो यकायक

जैसे बेसुध हो गया। उसकी टाँगें चलना बन्द हो गयी और वह बिल्कुल बेहरकत इस तरह बन गया जैसे उसमें जान ही न हो।

दरअस्ल यह एक बेसुध और अपने को मुर्दा ज़ाहिर कर देने वाले कीड़े की बात है।

किसी बाहरी ख़ौफ़ के तहत अपने को पुरसकूत, पुरअम्न और इनएफेक्टिव ज़ाहिर कर देने वाले एक वजूद की बात है।

वो बात जो एक बरसात की रात से शुरू हुई।

जो एक अँधेरी सुनसान रात में एक उल्टे पड़े हुए कीड़े की कहानी बन गयी।

जो उस कीड़े को ज़रा से बाहरी ख़ौफ़ के सबब, मुर्दा बनकर पड़े रहने का नाटक सिखा गयी इसलिए...।

...इसलिए मैं मय तारीख़ के उन सारे माजूल पस्त हजीमत याफ़ता, –(अपमानित) बदनसीब, पिटे और हारे हुए जिल्लेसुभानियों, आलीजाहों, राजों–महाराजों, तलवारबाज़ों और फ़ौजी जनरैलों की क़ब्रों और समाधियों पर हाथ रखकर कसम खाता हूँ कि उस बरसाती कीड़े का वो नाटक देखकर मुझे बहुत गुस्सा आया और मैंने उसको एक ठोकर मार दी, ठोकर से वो तक़रीबन चन्द फीट दूर फिसलता चला गया। ऐसा लग रहा था जैसे सोडे की बोतल का ढक्कन हो, उसी तरह बेजान, बेहरकत वो पड़ा रहा जैसे समझना चाह रहा हो :

"यार तुम किस चक्कर में... मैं भी कूड़ा–करकट हूँ... अपना काम करो यार, अपना काम।"

वो बेहिसो–हरकत पड़ा था। अब कमरे की दीवार उससे एक–आध फीट दूर थी। मैं फिर उसके क़रीब गया। पैर से उसको फिर इधर–उधर किया। वो हर बार इस तरह बेहिसो–हरकत चुपचाप ठोकर से इधर–उधर होता रहा। आख़िर को मैं मसहरी में आकर लेट रहा।

तक़रीबन एक घण्टे बाद मुझे फिर उसका ख़याल आया। देखा तो फिर जल्दी–जल्दी वो अपनी टाँगें चला रहा था।

मैंने फिर उसको बाहरी ख़तरे से पैर थपथपाकर आगाह किया। वो फिर मुर्दा बन गया।

एक घण्टे बाद वो फिर चल रहा था।

मैंने फिर उसको अहसास दिलाया बाहर ख़तरा है, वो दम साध गया।

तो हुआ ये कि या तो उसके पैर बहुत तेज़ चलते थे या साकित हो जाते। पीठ जहाँ थी वहीं थी और इसलिए...

...इसलिए मैं दुनिया के उन सारे अदाकारों, नक़्क़ालों, बाज़ीगरों, बहरूपियों, भाँडों, नटों और करतबबाज़ों के बैनुल–अक़्वामी (अन्तरराष्ट्रीय) तमाशों, अदाकारियों और खेलों की क़सम खाकर कहता हूँ कि मैंने जो कुछ अपनी आँखों

से देखा है और वही कुछ भी आप भी देखते हैं और महसूस करते हैं लेकिन उसे बयान नहीं कर पाते हैं, उसको बयान कर दूँगा और एक लफ़्ज़ झूठ नहीं बोलूँगा।

सुबह मेरी आँख खुली, वो कीड़ा मुझको उसी जगह मिला। उसके पैर उसी तरह फजा में तेज़ी के साथ चल रहे थे। वो उसी तरह पीठ के बल पड़ा हुआ था। फिर उसके बाद एक अजीब बात हो गयी।

क्या बात हुई?... मेरे ख़याल में अब आप ये सवाल नहीं करेंगे क्योंकि ऐसी हालत में कोई अजीब बात नहीं हो सकती।

क्योंकि ये सारी बात एक अँधेरी बेमानी रात में एक ऐसी बेहुसूल कोशिश की बात है जबकि पीठ चिकनी हो, फ़र्श चिकना हो, पर छोटे हों, टाँगें बारीक़ हों और उनकी दस्तरस में ज़मीन न हो इसलिए... इसलिए मैं यूनान की अज़ीम अलमिया दास्तानों (ट्रेजडीज़) की क़सम खाकर कहता हूँ कि जिनमें जालिम भी उतना ही लायके एहतराम है कि जितना मजलूम। क्योंकि ट्रेजिडी वही है जिसमें किसी के लिए कोई राहेफ़रार न हो। जहाँ पीठ भी बेकुसूर हो और फ़र्श भी, इसलिए मैं उन सारी हिकायतों (कथाओं) की कसम खाता हूँ कि जिनमें इन्सान अपने दर्द और अपनी महरूमियों और नाकामियों को सीने से लगाये तड़पता रहा इसलिए कि मेलोड्रामा की गुंजाइश न थी चूँकि फरार की कोई राह न थी। इसलिए मैं सिर्फ़ इतना ही आपको बताऊँगा कि जो सच है और सच की सिवा कुछ नहीं।

अब इन्साफ़ होने वाला है

जीलानी बानो

खिड़की बन्द कर दो, डॉक्टर शाहिद हुसैन की गरजदार आवाज़ कमरे में गूँजती है।

"नहीं नहीं, खिड़की खोल दो।" आमिना आहिस्ते से कहती है। फिर दोनों हाथ ठोड़ी के नीचे रखकर आहिस्ता-आहिस्ता सिसकियाँ लेती है, क्योंकि वह हर वफ़ादार बीवी की तरह अपनी सिसकियों को गले से नीचे उतार सकती है, क्योंकि डॉक्टर शाहिद हुसैन हर मोहब्बत करने वाले शौहर की तरह बीवी की सिसकियों को बरदाश्त नहीं कर सकते। यों भी समाजशास्त्री डॉक्टर शाहिद हुसैन, जिस वक़्त लिख रहे होते, तो वह अपनेआप को बड़े अहमक लगते थे। उनकी हर बात फूल होती, और हर फूल गुलाब। ऐसे वक़्त दुनिया उन्हें बड़ी हकीर-सी नज़र आती थी और अगर आमिना को देखना हो, तब उन्हें... मगर इसकी क्या ज़रूरत थी?

आमिना ने प्याज की डली की तरह अपने ऊपर मसलहतों और कुर्बानियों की इतनी परतें चढ़ा ली थीं कि उनका अन्त कहीं नहीं था और डॉक्टर शाहिद हुसैन को उलझे धागों से बड़ी वहशत होती थी।

कई लफ़्ज दूसरों के मुँह से खंजर की नोंक बनकर निकलते हैं और फिर कलेजे के पार...

डॉक्टर शाहिद हुसैन भी दिन में कई बार आमिना को क़त्ल करते हैं। फिर रात को जब उनका पुरजोश सेहतमन्द बदन आमिना को अपने हिसार में ले लेता है, तो आमिना मिस्री की डली बनकर घुलने लगती है, ख़त्म हो जाती है। मगर दिन का उजाला उसे फिर एक थकी हुई बीमार औरत के वजूद में अकेले पलंग पर पटक देता है। अब रात का समन्दर शान्त हो चुका है, इसलिए वे दोनों फिर अजनबी से बन जाते हैं। कमरे की चौहद्दी फैलने लगती है... समाजशास्त्री डॉक्टर शाहिद हुसैन अपने खोल में बन्द होकर हिन्दुस्तान के सामाजिक हालात पर बहुत अहम पेपर तैयार कर रहे हैं। भला इतना अहम काम कहीं इस तरह हो सकता है कि बाहर की तेज़ हवा हर बार अपने साथ नये झमेले लाये और मेज़ पर रखा हुआ हिन्दुस्तान की

सामाजिक समस्याओं का हल चारों तरफ़ बिखर जाये।

"खिड़की बन्द कर दो," डॉक्टर शाहिद हुसैन कहने से पहले हर बात को तोलते हैं। फिर बोलते हैं।

"खिड़की खोल दीजिये न।" आमिना फ़रियादी लहजे़ में कहती है।

समाजशास्त्री डॉक्टर शाहिद हुसैन इस बात को क्यों नहीं समझते कि खिड़की बन्द हो जाये, तो ताज़ा हवा अन्दर नहीं आती। और ताज़ा हवा अन्दर न आये तो कोई औरत...

मर्दों की बात अलग है कि वे सामाजिक हालात पर ग़ौर करने के लिए एक नयी सिगरेट काफ़ी समझते हैं, मगर औरत जात अपनी खिड़कियाँ बन्द कर ले, तो नये मसले अन्दर कैसे आयेंगे।

यों तो ताज़ा हवा घर में सुकून के साथ बैठकर काम करने वाले सारे विद्वानों के लिए ही नुकसानदेह है, मगर सबसे बढ़कर आमिना के लिए है। उसका दिल ज़्यादा ख़राब है या जिगर? गुर्दा बदलना है या ख़ून, डॉक्टर यह फ़ैसला नहीं कर पाते।

और यह मर्ज़ खुली खिड़की के रास्ते अन्दर आता है... डॉक्टर शाहिद हुसैन आमिना के इलाज करने वाले डॉक्टरों से यही बात कहते हैं और इसीलिए आमिना की उस भयभीत बीमार याचना को डॉक्टर शाहिद हुसैन हर बार अपने ज्ञान और विद्वता की कैंची से काट देते हैं।

डॉक्टर शाहिद हुसैन के साथ दुनिया के सभी विद्वान कम से कम एक बात पर ज़रूर सहमत हो सकते हैं कि खुली खिड़की के बेशुमार नुकसान हैं। इसीलिए वे लोग हमेशा अपनी खिड़कियाँ बन्द रखते हैं और इन लोगों तक अपनी बात पहुँचाने के लिए उनके महलों में लटकते हुए सोने के घण्टे मजलूमों को बजाने पड़ते हैं, ताकि इन घण्टों की आवाज़ सुनकर सारे शहर के लोग इकट्ठा हो जायें। चौंक पड़ें कि अब इन्साफ़ होने वाला है।

किसके साथ इन्साफ़ होने वाला है...

यह नाक़ाबिले-यक़ीन दृश्य देखने के लिए आमिना भी बड़ी मुश्किल से उठती है – यों जैसे कोई अनजानी ताक़त उसे खींचे लिये जा रही हो। वह मज़बूती के साथ ग्रिल पकड़ लेती है। इसके बावजूद कोई जादू उसे उड़ाकर नीचे ले जाता है। आमिना के इस मर्ज़ की तफ़्सील कई बार डॉक्टर शाहिद हुसैन ने डॉक्टरों को सुनायी है और हर डॉक्टर ने बड़ी चिन्तातुर नज़रों से आमिना को देखा है।

"आप ज़रा बाहर तशरीफ़ लाइये।"

वह जानती है कि डॉक्टर इतने ख़ौफ़नाक मर्ज़ का नाम उसके सामने लेना नहीं चाहते। वह यह भी जानती है कि डॉक्टर शाहिद हुसैन अब उसकी देखभाल से थक चुके हैं। औरत की छठी संज्ञा ने उसे समझा दिया है कि डॉक्टर शाहिद हुसैन का

अकारण प्यार दरअसल उनकी नफ़रत का इज़हार है, क्योंकि प्यार में खोट का पता तो अहमक से अहमक औरत को भी पल भर में चल जाता है। इसलिए आमिना बाजी हारने को तैयार नहीं। कोई न कोई मोहरा आगे बढ़ाये जाती है। हर औरत की तरह कोई न कोई खिड़की खोल लेती है।

हर बार खिड़की खोलने का मतलब यही होता है कि अब आमिना ख़ौफ़ से हाँफती–काँपती पलंग पर गिर जायेगी। साथ ही उसका ब्लडप्रेशर अपना सन्तुलन खो देगा। फिर उसकी कराहों में हिन्दुस्तान के सारे सामाजिक मसले एक तरफ़ धरे रह जायेंगे और डॉक्टर शाहिद हुसैन क़लम पटककर उठ जायेंगे, क्योंकि अब उन्हें आमिना के साथ मोहब्बत भरे डायलाग्स बोलने हैं।

"डर गयी मेरी जान, आँखें खोलो, दवा ले लो।" डॉक्टर शाहिद हुसैन पहले हर बात तोलते हैं, फिर बोलते हैं और कई बार तो सिर्फ़ तोलते रह जाते हैं। इसीलिए तो कमरे की दम घुटा देने वाली फ़िज़ा में यह लफ़्ज़ बेगाना–सा लगता है, अब जिसका नाम प्यार है। इसलिए डार्लिंग आँखें नहीं खोलती और वह दवाओं की आलमारी की तरफ़ बढ़ते हैं। यह विटामिन बी है, ताक़त बढ़ाने के लिए। यह कॉमन ड्राप्स हैं दिल को जगाने के लिए। दवाओं के ढेर हैं। डॉक्टर शाहिद हुसैन को वह दवा ढूँढ़नी पड़ती है, जो आमिना को सिर्फ़ उस वक़्त खिलानी चाहिए, जब होटल फ़िरदौस के बैरे छोटी पतरोलियाँ सड़क पर फेंकते हैं, और एक क़यामत का शोर ऊपर उठता है। यह दुनिया का सबसे दिलचस्प तमाशा है। आमिना उस वक़्त का बड़ी बेचैनी के साथ इन्तज़ार करती है, जैसे एक भारी पत्थर उसके सिर पर गिरने वाला हो। फिर खिड़की खोलते ही उसे न जाने क्या हो जाता है कि वह ख़ुद भी फिसलती हुई उस हुजूम में मिल जाती है।

छोटी पतरोलियाँ चाटने के लिए, पैरों तले मसले हुए चावल खाने के लिए, धक्कमपेल में उसका पाँव फिसल जाता है। लोग उसे रौंद डालते हैं। डॉक्टर शाहिद हुसैन दवाओं की सारी अलमारी उलट–पलट कर डालते हैं। डॉक्टर आदम ने आमिना की इस ग़ैर–यक़ीनी बीमारी को देखकर यहाँ हर मर्ज़ की दवा रख दी है।

घबराकर डॉक्टर शाहिद हुसैन को अपने पड़ोसियों से मशविरा करना पड़ा। यह तो पूरी कालोनी सम्मानित लोगों की है। एक से एक मशहूर आदमी यहाँ रहते हैं। मशहूर सितारवादक बासु चटर्जी, मशहूर सोशल वर्कर सोमनाथ रेड्डी, मशहूर डांसर रोशी... और मशहूर... मशहूर...

इन शानदार फ़्लैटों में रहने वाले सारे जीनियस लोग किसी न किसी ख़ौफ़नाक बीमारी में मुब्तला हैं। अब अच्छी खुराकें उनके लिए ज़हर बन चुकी हैं। वे होटल फ़िरदौस के नीचे मिट्टी में मिले हुए चावल खाने वालों को बड़ी भूखी नज़रों से ताका करते हैं

"इन कमबख़्तों को न हार्ट–अटैक होता है, न ब्लडप्रेशर बढ़ता है" मिसेज

वहीदुद्दीन जल कर कहती हैं। "मैं तो नीचे के शोर की वजह से सुबह रियाज नहीं कर सकता", बासु चटर्जी हीरे की अँगूठियों वाले हाथ को लहराकर कहते हैं।

"मेरी नयी दुल्हन घर में है। दिन भर ये भिखारी हमारी खिड़कियों की तरफ़ ताका करते हैं" इंस्पेक्टर जमाल गुस्से में कह रहा था।

"और मेरी बीवी... मेरी... मेरी बीवी तो इन भिखारियों को..." डॉक्टर शाहिद हुसैन बात करने से पहले बात को तोलते हैं और कभी झुकते पलड़े को हाथ से थामना भी पड़ता है।

चुनांचे इससे पहले कि भैरों के शुद्ध सुरों में कोई खोट आये, होटल फ़िरदौस के मालिक से कहा गया कि वह इस तमाशे को बन्द कर दे।

अब आमिना चुपचाप अकेली पड़ी रहती है। इतनी अकेली भी नहीं... डॉक्टर शाहिद हुसैन की शख़्सियत पूरे कमरे में छायी रहती है।

अचानक चारों तरफ़ सोने के घण्टे बजने लगे। अब किसी के साथ इन्साफ़ होने वाला है। आमिना घबराकर उठी और गिरती-पड़ती दौड़ी, खिड़की की तरफ़ जिधर से फ़िरदौस की हवा आती है, मगर अब होटल का मैनेजर जूठी पतरोलियाँ आमिना के फ़्लैट के सामने कूड़े के ड्रम में फेंकवा रहा था। इसलिए तमाम इन्तज़ार कर रहे भूखे मक्खियों की तरह कूड़े के ड्रम पर टूट पड़े। पतरोलियों पर लगे हुए चावलों के साथ-साथ बहुत-सा कूड़ा-करकट भी चट कर गये। ख़ैर, इस बात पर किसी ने भी प्रतिरोध करना ज़रूरी नहीं समझा कि यह भूखों का अपना निजी मामला था और एक जम्हूरी मुल्क़ में आप कौन होते हैं किसी के फटे में टाँग अड़ाने वाले। इसीलिए तो इंस्पेक्टर जमाल अपनी दुल्हन को मार रहा है, तो मजाल है कि कोई सभ्य पड़ोसी उधर पलटकर देखे, मगर आमिना को कहाँ क़रार... वह खिड़की की ग्रिल पकड़कर चिल्लाने लगी, "इन्साफ़... इन्साफ़... जमाल अपनी दुल्हन को मार रहा है।"

"चुप...चुप..." जमाल की अम्माँ ने आकर रोती हुई दुल्हन के मुँह पर हाथ रखा।

"तुम हट जाओ अम्माँ, आज मैं इसका क़िस्सा ख़त्म कर डालूँगा।" जमाल ने अम्माँ को हटाकर अपनी खिड़की बन्द कर ली।

"अच्छा किया..." डॉक्टर शाहिद हुसैन ठीक कहते हैं कि पड़ोसी की खिड़की में नहीं झाँकना चाहिए। अब मजाल है कि कोई जमाल की दुल्हन की चीख़ें सुन सके। अब जमाल की फ़रियाद सुनने के लिए कोई सोने के घण्टे बजाओ... बेचारे कितना सताए हुए हैं... ससुर ने पचास हज़ार का दहेज देने का वायदा करके तीस हज़ार में एक दुबली-पतली लड़की सौंप दी और फिर सितम यह है कि ईद की सलामी पर न स्कूटर भेजा, न मोटर... अगर खुले मुँह में लड्डू जाने वाले हों, और पड़ जायें कंकर... तब कितना जी जलता है न? खिड़की की ग्रिल पकड़े काँपते पैरों

से आमिना कब से इन्तज़ार में खड़ी है कि जमाल ने दुल्हन का मिज़ाज ठीक किया या नहीं... उसकी आँखों में अँधेरा छाने लगा। सीने से उठने वाला धुआँ पूरे कमरे में फैलने लगा।

"आग..आग..." आमिना चिल्लाने लगी। डॉक्टर शाहिद हुसैन घबराकर उठे। हिन्दुस्तान की सामाजिक व्यवस्था पर लिखे हुए उनके काग़ज़ इधर-उधर बिखर गये। वह पहले खिड़की की तरफ़ आये और फिर आलमारी की तरफ़। उस दवा का नाम न जाने क्या है, जो किसी लड़की के चिल्लाने का दृश्य देखने वालों को खिलाना चाहिए।

"टन...टन... टन..." दरवाज़े की बेल बजती है।

"पुलिस वाले होंगे। गवाही लेने आये हैं। बस इन्साफ़ होने वाला है।"

आमिना उठकर बैठ गयी है, "हाँ, मैंने देखा है। पहले उसने जूते से और... और फिर..."

"और फिर हमने खिड़की बन्द कर ली" डॉक्टर शाहिद हुसैन ने जल्दी से आमिना की बात छीन ली।

"बात दरअसल यह है इंस्पेक्टर साहब कि मैं बहुत मसरूफ़ आदमी हूँ। हिन्दुस्तान के सामाजिक मसलों पर ग़ौर करने से मुझे इतनी फ़ुरसत कहाँ मिलती है कि औरतों की चीख़-पुकार पर वक़्त जाया..."

डॉक्टर शाहिद हुसैन, पहले हर बात को तोलते हैं, फिर बोलते हैं। इसीलिए कई बार उन्हें डण्डी भी मारनी पड़ती है।

फिर आमिना दो-तीन घण्टे तक चुपचाप लेटी रही, जमाल की दुल्हन की ठण्डी लाश की तरह।

मगर जानवरों की तरह कई इन्सान भी दहशत की बू पा लेते हैं। वह घबराकर उठ बैठी, "खिड़की खोल दो... ख़ुदा के लिए..." उसके लहज़े में ख़ुशामद थी।

"ख़ुदा के लिए..." डॉक्टर शाहिद हुसैन ने क़लम रोककर बड़ी ग़ुस्से भरी नज़रों से आमिना को देखा। उन्होंने ख़ुदा को कभी वक़्त पड़ने पर आमिना की तरह चाहा था, और वक़्त निकल जाने के बाद आमिना की तरह नज़रअन्दाज़ भी कर चुके थे। इसलिए उस वक़्त उस चुपचाप कमरे की उदास फ़िज़ा में ख़ुदा का क्या काम था...?

मगर शायद यह एक नयी दुल्हन के जले हुए बदन की ख़ुशबू का असर था, जो सारे घर में फैली हुई थी। इसीलिए आमिना यह बात जान चुकी थी कि अब डॉक्टर शाहिद हुसैन सिर्फ़ उसके लिए कुछ नहीं कर सकते।

डॉक्टर शाहिद हुसैन ने दुनिया के सारे मसले हल कर डाले, मगर औरत की गुत्थी सुलझाने के लिए उन्हें आज भी क़लम रोकनी पड़ती थी।

कमरे की ख़ामोशी बढ़ने लगी। आमिना को यों लगा, जैसे वे दोनों संशय की

मद्धिम-सी धुन्ध में घुल रहे हों। अँधेरा फैल चुका है, मगर उस कमरे में रोशनी होने से भी क्या फ़र्क़ पड़ता है। डॉक्टर शाहिद हुसैन काग़ज़ पर अपने ख़यालात का इज़हार हमेशा आँखें बन्द करके करते रहे हैं और आमिना उनके चेहरे पर लिखी हुई लिखत अँधेरे में पढ़ने की आदी हो चुकी है। अब वह उस दवाओं भरे कमरे से बहुत दूर निकल आयी है। उसे अपने कमरे का यह दृश्य एक पेण्टिंग की तरह नज़र आ रहा है। डॉक्टर शाहिद हुसैन एक पोर्ट्रेट थे। दायरों से बनायी हुई एक तस्वीर...।

होटल फ़िरदौस के नीचे बैठने वाली भिखारिन ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रही है। आमिना फिर नीचे की तरफ़ लौट आती है। उस पेण्टिंग का एक हिस्सा बनने के लिए उस भिखारिन का बच्चा किसी हादसे में टूट-फूट गया था। कुहनियों के पास से हाथ मुड़े हुए, आँखों की जगह गड्ढ़े और एक टाँग ग़ायब। आमिना को यों लगा, जैसे किसी ने ग़ुस्से में उसे तोड़ डाला है। तभी तो लोग भिखारिन पर पैसे फेंकते हुए जाते हैं। दूसरे भिखारी इस पर ख़ूब जलते, "अपाहिज बच्चे की माँ बनकर मौज उड़ाती है साली..."

मजबूरन आमिना को फिर उठकर खिड़की खोलनी पड़ी।

सामने वाले स्टाप पर हर मिनट के बाद एक बस आकर रुकती है। लोग भागते हुए उसमें सवार हो जाते हैं, मगर वह लड़की क्यों नहीं जाती। दस-ग्यारह बरस की एक ख़ूबसूरत-सी लड़की स्कूल यूनीफार्म पहने गले में बस्ता डाले न जाने कब से अपनी बस का इन्तज़ार कर रही है।

खड़े-खड़े आमिना के पाँव दुखने लगे, मगर वह उस बच्ची को अकेला छोड़कर कैसे जा सकती है... उसे ले जाने वाले आ गये। एक आटो रिक्शा रुका। चार गुण्डे उतरे। उन्होंने बड़ी फुर्ती के साथ चीख़ती-चिल्लाती लड़की को उठाकर आटो में डाला और चल दिये।

"उन्हें रोको..." आमिना चिल्लायी, मगर उसकी आवाज़ ट्रैफ़िक के उस सिपाही तक भी नहीं पहुँचेगी, जो बीच चौराहे पर खड़ा ग़लत रास्ता चलने वालों को रोकता है। उसने आटो को नहीं रोका, क्योंकि वह लड़की वहीं जा रही थी, जहाँ उसे जाना चाहिए।

"उसे रोको...उसे पकड़ो..." आमिना ने काँपते हुए डॉक्टर शाहिद हुसैन से याचना की और उन्होंने बेजार होकर सामाजिक काम की बहस को रोक दिया। खुला हुआ क़लम पैड पर रखा। सिगार ऐशट्रे में फेंका और उठकर खिड़की तक आये, मगर आमिना तो अब अपनी बीमारी सारे कमरे में घोल चुकी थी।

"अब कौन-सी दवा दूँ?" वह फिलहाल बोलने के मूड में नहीं थे, न तोलने के।

मगर अब कोई दवा काम नहीं आयेगी। दस बरस की बच्ची और चार गुण्डे।

दहशत के मारे आमिना कराहने लगी।

घबराकर डॉक्टर शाहिद हुसैन वह दवा ढूँढ़ने लगे, जो ख़ून में लथपथ औरत को दम तोड़ते वक़्त देनी चाहिए, मगर आमिना ने दवा का गिलास हाथ से झटक दिया।

"सोने के घण्टे बजाओ न... बजाओ न..."

झुँझलाकर डॉक्टर शाहिद हुसैन ने फिर खिड़की से बाहर देखा। दूर-दूर तक कोई ख़ास बात नज़र नहीं आयी। एक यही सड़क क्या, वह साल में कई बार किसी न किसी मुल्क़ में होने वाले सेमिनारों में शिरकत करने जाते हैं, मगर उन्हें कहीं कोई ग़ैर क़ानूनी बात नज़र नहीं आती...

"इन्साफ़... इन्साफ़..." बेहोशी में आमिना बड़बड़ा रही है।

दोनों हाथों में सिर थामे डॉक्टर शाहिद हुसैन बैठ गये।

थोड़ी देर बाद किसी के रोने-चिल्लाने पर उन्होंने सिर उठाया।

आमिना खिड़की की ग्रिल पकड़े बाहर की तरफ़ झुकी खड़ी थी और सिसकियाँ ले रही थी। उन्हें फिर दवा ढूँढ़ने से पहले मर्ज़ तलाश करना है... मालूम हुआ कि भिखारिन का अपाहिज बच्चा कोई उठाकर ले गया।

ममता की आग बुरी बला होती है। उसके रोने पर डॉक्टर शाहिद हुसैन को भी अफ़सोस हुआ। कोई हद है... अभी चन्द घण्टे पहले उसी सड़क पर एक लड़की का अगवा हुआ और अब एक बच्चे की चोरी...

आमिना अपनी आदत के अनुसार रोते-रोते फिर बेहोश हो गयी। डॉक्टर शाहिद हुसैन ने घबराकर उसे कई दवाएँ एक साथ खिला दीं। डॉक्टर आदम ने नये सिरे से उसके सारे चैकअप किये और फिर डॉक्टर शाहिद हुसैन का अहमतरीन आलेख तैयार हो गया, क्योंकि अब सड़क सुनसान पड़ी रहती थी। भिखारिन की जगह एक तोते के पिंजरे वाला ज्योतिषी बैठने लगा। इसलिए सारी कालोनी अपने नसीबों का हाल सुनकर सहम चुकी थी, मगर एक दिन उस ज्योतिषी की क़िस्मत पर भी शनि का मनहूस साया मँडराने लगा। आमिना ने देखा कि वही भिखारिन अपनी गुदड़ी सँभाले फिर आ गयी और उस गुदड़ी में से उसने एक लाल निकाला। साल भर की दम तोड़ती हुई बच्ची। आँखों की जगह दो गड्ढे। हाथ पीछे की तरफ़ मुड़े हुए...एक टाँग ग़ायब...

"खिड़की बन्द कर दो... बन्द कर दो अब..." आमिना ज़ोर से चिल्लायी और ग्रिल छोड़कर धड़ाम से फ़र्श पर गिर पड़ी। समाजशास्त्री डॉक्टर शाहिद हुसैन ने ऐनक सरकाकर ग़ौर से सड़क पर देखा, मगर उन्हें इतना ख़ौफ़नाक दृश्य कोई नज़र नहीं आया कि आमिना आज खिड़की बन्द करने का फ़ैसलाकर डाले, "उठो, उठो आमिना... अब इन्साफ़ होने वाला है।" वह आदत के मुताबिक़ बोलने से पहले तोलने बैठ गये।

निर्धन

जोगेन्दर पाल

मैं आजकल कोई काम-वाम नहीं करता। अब इस उम्र में किसी काम का रहा भी नहीं। बस सारा दिन अख़बार पढ़ता रहता हूँ – हाँ, अख़बार पढ़ना तो आध-पौन घण्टे में ही हो लेता है। पहले-पहल तो मैं इसे एक बार पढ़ने के बाद फिर से पढ़ना शुरू कर देता था और फिर न मालूम कैसे मेरी आदत-सी हो गयी कि मेरी नज़र ख़बर के पहले ही वाक्य की आड़ में खड़ी रह जाती और वह सारी घटना मेरे सामने शुरू से आख़िर तक घटने लगती – एक और विवाहिता नारी ने अपनेआप को जला लिया। उस बीस-बाईस वर्षीय लड़की का नाम रामप्यारी है। उसके हाथ-पैर अभी तक शादी की मेंहदी से रँगे हुए हैं। वह अपने कमरे में बन्द है और अचानक अपने इरादे से भयभीत होकर चिल्लाने लगी है। उसके घरवाले उसकी आवाज़ें सुनकर बाहर से दरवाज़ा पीटने लगे हैं जिस पर उसने सिर झटककर माचिस की तीली जलायी है और पेट्रोल से भीगे हुए अपने वस्त्रों पर लगा ली है और फिर मृत्यु के अग्निवर्षक हाथों को अपने मुँह-सिर की ओर उठाते हुए पाकर ज़ोर-ज़ोर से चीख़ने लगी है। घर के लोग उसे पुकार-पुकारकर दरवाज़ा पीटते जा रहे हैं। वह दरवाज़े की ओर लपकी है किन्तु दो-चार क़दम में ही गिर गयी है और...

"तुमने ही आगे बढ़कर उसे क्यों न बचा लिया, बाबा?"

मैं अपने भोले-भाले पोते-पोतियों को कैसे समझाऊँ कि वाक्यों की ओट में सहमा हुआ-सा मैं किसी को क्या बचाऊँगा? कहाँ तो मनुष्य प्रलय की सौन्दर्यपरक कल्पना से इतने फ़ासले से ज़रा डरकर ख़ुश हो लेता था और कहाँ अब हर सुबह आँख खुलते ही उसे सचमुच की प्रलय का सामना करना पड़ता है। और अख़बार पढ़ते हुए उसकी नज़र फटकर रह जाती है और फिर हड़बड़ाकर उसे याद आता है कि काम पर जाने के लिए देर हो रही है – अरे, नाश्ता जल्दी लाओ या फिर क्या आज नाश्ते के बिना ही चला जाऊँ?

नहीं, मेरी बात और है। मुझे कहीं काम पर नहीं जाना होता। बता चुका हूँ न?

कोई दो पंक्ति का समाचार भी मेरे मन और मस्तिष्क में एक लम्बा-चौड़ा क़िस्सा बनकर फैल जाता है। यही कारण है अख़बार पर सारा दिन झुके रहने के बावजूद आजकल मैं पहले पन्ने से भी आगे नहीं बढ़ पाता।

"बाबा! बा...बा...!"

मैं अपनी पोती शोकी की आवाज़ सुनकर आँखें खोलकर अपनी दोनों बाँहें उसकी ओर फैला देता हूँ। "आओ बिटिया, आओ, हमारी गोद में बैठ जाओ।"

"तुम्हारी गोद में अख़बार पड़ा है, बाबा!"

"लो, हम अख़बार को एक ओर डाल देते हैं, बेटी।"

वह उछलकर मेरी गोद में आ बैठी है परन्तु 'तुम्हारी गोद बहुत छोटी है, बाबा!' मेरी गोद से वह उठ खड़ी हुई है, 'मैं अब बड़ी हो गयी हूँ – देखो!'

वह मुझे और भी नन्ही-मुन्नी मालूम होने लगी है। 'तुम्हें एक कहानी सुनाऊँ, शोकी बेटी?'

"हाँ, बाबा!" किन्तु उसका चेहरा एकदम ढीला पड़ गया है। "क्या फ़ायदा? तुम्हें कोई सचमुच जादू की कहानी तो आती नहीं। वही अख़बार की कहानियाँ सुनाते हो।"

मेरे सामने मानो सारी दुनिया का चेहरा मासूम इच्छाओं से तमतमा रहा था – फिर?... फिर क्या? पर्वताकार देव ने दोनों हाथ बाँधकर पूछा, "बताओ बालिका, तुम्हारी क्या इच्छा है?"

"मुझे सोने-चाँदी का महल चाहिए..."

'क्या तुम्हें सोने-चाँदी का एक महल चाहिए, शोकी बेटी?"

"नहीं, बाबा, मैं तो चाहती हूँ दंगे-फसाद बन्द हों और हमारे स्कूल खुल जायें।"

"परन्तु तुम्हें तो ख़ुश होना चाहिए कि छुट्टियाँ ही छुट्टियाँ हैं।"

"छुट्टियों से क्या होता है? बाहर तो हर समय कर्फ़्यू लगा रहता है।"

"तो क्या हुआ? फ़्लैट के अन्दर खेला करो।"

"अन्दर फ़ुटबॉल कैसे खेलें, बाबा?"

हाँ, वाकई – मैं सोचने लगा हूँ कि जीना तो तभी होता है जब फ़ुटबॉल ठोकर लगते ही बेरोक-टोक लुढ़कता चला जाये।

'बेटी!' मैंने शोकी की ओर सिर उठाकर उसे सम्बोधित किया है परन्तु वह न जाने कब से मेरे कमरे से जा चुकी है। मैं आप-ही-आप बातें किये जा रहा हूँ। मेरा छियासठवाँ वर्ष भी अभी पूरा नहीं हुआ परन्तु मैं सत्तरा-बत्तरा चुका हूँ।

मैंने अख़बार फिर हाथों में ले लिया है जिसके पहले पृष्ठ पर मेरी नज़र एक छोटी-सी ख़बर में अभी तक वैसे ही दुबकी पड़ी है जैसे मैंने इसे छोड़ा था – "अमेरिका का कोई अप्रवासी पण्डित मध्यप्रदेश की एक बस्ती में भगवान कृष्ण की

स्वर्णमूर्ति पर हाथ साफ़ करते हुए पकड़ा गया था। पण्डित राधेश्याम अमेरिका में यही पुजारी का धन्धा करता था। वर्षों बाद वह अपने पुश्तैनी शहर आया हुआ था और अमेरिका लौटने से पहले अपने शहर के इस पुराने मन्दिर में पूरे पाँच किलो बर्फ़ी का चढ़ावा साथ लाया था। दोपहर बाद जब वह वहाँ पहुँचा तो मन्दिर बन्द पड़ा हुआ था। परन्तु उसके पास समय बहुत कम बचा था, उसने सोचा होगा कि भारत के पुजारी तो दिन-भर दिन के खाने की गरानी से खर्राटे भरते रहते हैं और रात-भर रात के खाने की गरानी से, हम अपने काम रोककर कैसे पड़े रहें? अब आप इसे भगवान की ही करनी कह लीजिये, उस दिन मन्दिर का पुजारी दरवाज़ा बन्द कर चटखनी लगाना भूल गया था, सो पण्डित ने ज़रा-सा दरवाज़ा धकेला और भीतर प्रवेश कर सीधा मूर्तिस्थल पर जा पहुँचा। मूर्ति के दर्शन करके वह खड़े का खड़ा रह गया। नटखट कन्हैया को अपने सोने के बदन में साँस भरते हुए पाकर वह स्वयं मूरत-सा बन गया। आख़िर कुछ सोचकर उसने अपना सिर हिलाया और पहले तो वापस जाकर मन्दिर के बाहरी पट बन्द किये और फिर दबे पाँव पुजारी के रिहाइशी कमरे में घुस गया और अपनी आशानुसार उसे स्वप्नावस्था में पाकर बेहोशी की दवा सुँघा दी, "जी भरकर सो लो, पण्डित!" फिर मुस्कुराते हुए मन्दिर में लौट आया और भगवान की नज़रों से टटोल-टटोलकर तसल्ली करने लगा कि सारे का सारा सोने का ही है या कहीं खोट भी भरा हुआ है? नहीं, खरे सोने का भगवान है – जय गिरधर गोपाल! अपने दोनों हाथ जोड़े हुए उसे गिरधर गोपाल पर दया आने लगी – कितना लापरवाह पुजारी है। बेचारे को उठायीगीरों के लिए इस तरह छोड़कर सोया पड़ा है। पण्डित को मालूम होने लगा कि कन्हैया अपने आस-पास से बहुत बोर हो रहा है मानो हिलने-डुलने की विफल चेष्टा से थक-हारकर खड़ा हो और उससे यह भी न हो पा रहा हो कि ज़रा दिल बहलाने के लिए मुरली वाले हाथ को होंठों पर ही ले जाये।

शायद भगवान की बेबसी अनुभव करके पण्डित राधेश्याम को बँगला के कवि नजरुल का एक क़िस्सा याद आने लगा जिसे अमेरिका में किसी से सुनकर उसने कहा था कि ऐसा कैसे हो सकता है। उस ग़रीब को जब यह बताया गया कि पूरे एक लाख की लागत पर शहर के एक बड़े चौराहे पर उसके बुत का निर्माण किया जा रहा है तो उसने बेइख़्तियार इच्छा प्रकट की कि यदि एक लाख रुपया मुझे दें तो मैं स्वयं ही चौराहे पर बुत बनकर खड़ा हो जाता हूँ। पण्डित के होंठों पर मुस्कुराहट घिर आयी – ग़रीब कवि को क्या पता, अपनी क़ीमत प्राप्त करके सदा बुत-का-बुत बने रहना जानलेवा होता है? फिर हम भगवान का बुत क्यों बना लेते हैं? उसे आज़ादी से घूमने-फिरने के लिए क्यों नहीं छोड़ देते? या...या यह भी तो है कि अपने बारे में सदियों से हमारी इतनी भली-भली बातों पर रीझकर उसके लिए कोई और चारा ही न रह गया हो और सुध-बुध खोये एक वही अकड़-अकड़कर

आप–ही–आप बुत बनकर रह गया हो, अब हिले–डुले कैसे? पण्डित अपनेआप को समझाने लगा, अपने इसी कमाल से तो तुम बड़ों–बड़ों को चित कर लेते हो बन्धु – हाँ, यही तो है बन्धु। जो तुम्हें सुनने से इन्कार करता है, उसे केवल उसकी प्रशंसा सुनाओ – इतनी प्रशंसा कि वह हिलने–डुलने के योग्य ही न रहे, निरा–पुरा भगवान बन जाये...

अपनेआप को खी–खी हँसते पाकर पण्डित अपनी सोच पर लज्जित होकर भगवान की स्वर्णमूर्ति की ओर देखने लगा और व्यावसायिक संकोच से हाथ जोड़कर कोट–पतलून के कसे हुए पहनावे में भी इसी तरह आसानी से घुटनों के बल बैठ गया जैसे धोती–कुर्ता पहने हो। और भगवान के सामने सिर झुकाकर संगमरमर के फ़र्श पर उस समय तक नाक रगड़ता रहा जब तक अमेरिकी क्रीम की चिकनाहट से फ़र्श पर एक चमकीली रेखा न खिंच आयी। फिर वह छींक मारते हुए उठा और पिस्ते वाली बर्फ़ी की टोकरी लिए दो सीढ़ियाँ चढ़कर भगवान की सतह पर जा खड़ा हुआ और टोकरी से बर्फ़ी निकालकर भगवान के अधखुले मुँह में ठूँसने लगा जो भुर–भुर उसके क़दमों में गिरती रही।

"ठहरो, पण्डित!"

पण्डित राधेश्याम ने चौंककर इधर–उधर देखा।

"मैं बोल रहा हूँ।"

अमेरिकी पण्डित को अपने कानों पर विश्वास न आया। भगवान उससे कह रहा था कि मेरे मुँह में इतना मीठा मत ठूँसो। मीठा खा–खाकर मुझे डाइबिटीज हो गया है, पण्डित!

अमेरिकी पण्डित अपना आश्चर्य भूलकर अनायास हँसने लगा।

"इसमें हँसने की क्या बात है?" किन्तु भगवान स्वयं भी हँसने लगा, "वास्तव में मुझे यही डर लगा रहता है, यदि डाइबिटीज हो गया तो मेरा सोने का बदन मिट्टी हो जायेगा। तुम तो अमेरिकी नागरिक हो। फीका और उबला हुआ भोजन क्यों नहीं लाये?"

"इसके लिए तो तुम्हें मेरे साथ हो लेना पड़ेगा, गिरधर गोपाल!"

"सच?' भगवान की बाँछें खिलकर सोने में साफ़ दिखायी देने लगीं, "मेरी भी बड़ी इच्छा है एक बार अमेरिका देख लूँ।"

पण्डित राधेश्याम ने अपने दोनों हाथ सोने के भगवान की ओर बढ़ाते हुए रोक लिये। "पर तुम तो हर जगह हो दयालु – यहाँ भी, वहाँ भी – कहाँ नहीं! मैं तो वहाँ भी चौबीस घण्टे तुम्हारी ही सेवा में मग्न रहता हूँ।"

"नहीं पण्डित, मेरी सेवा करना चाहते हो तो मुझे भी अपने साथ वहीं ले चलो।"

"मैं तो इसीलिए आया हूँ, भगवान!" पण्डित ने भगवान को फ्रेमवर्क से उतारने

के लिए अपने कोट की भीतरी जेब से कोई छोटा-सा हथियार निकाल लिया। "वहाँ पहुँच लो दाता, फिर देखना तुम्हारा यह तुच्छ भक्त कैसे वहीं एक वृन्दावन खड़ा कर देता है।" उसने तुरन्त ऑपरेशन के लिए हथियार प्रभु की ओर बढ़ाया।

"वृन्दावन छोड़ो, भक्त।' भगवान उसे बताने लगे, "अमेरिका में भी अमेरिकी बनकर न रहे तो क्या मज़ा?"

"न-न, भगवान!" वह अपने काम में जुट चुका था, "ग्रीन कार्ड तो तभी मिलेगा जब तुम अमेरिकियों को अपने मोर मुकुट में दिखोगे।"

किन्तु वह अभी भगवान को उतार भी नहीं पाया था कि अचानक वहाँ मन्दिर का पुजारी आ पहुँचा। शायद अपने सपने में मूर्ति की चोरी का दृश्य देखकर सोते-सोते बिस्तर से उठ खड़ा हुआ हो और यों बामन ने बामन को धर लिया। भगवान? – कुछ भी घटित हो जाता, उसे क्या? वह तो सोने का बना हुआ था। सो जिसने किया वह पकड़ा गया और करनीवाला गुमसुम खड़ा रहा।

"बाबा!" मेरा सबसे छोटा बेटा सुरेश किसी विदेशी कम्पनी का रिसेप्शन ऑफ़िसर है। शायद वह लंच के लिए आया है या लंच करके काम पर वापस जा रहा है।

"तुम आप ही आप मुस्कुराये क्यों जा रहे हो?"

"क्योंकि मुझे सवेतन मुस्कुराहट का अवसर नहीं मिलता, बेटे!" मैंने हँसकर उत्तर दिया।

"तुम तो निरुत्तर कर देते हो, बाबा! अच्छा, मुझे ऑफ़िस के लिए देर हो रही है। कुछ चाहिए?" जैसे उसे विश्वास हो कि मुझे कुछ नहीं चाहिए, वह मेरा उत्तर सुने बिना उलटे पाँव कमरे से बाहर चला गया है।

मैंने सारी उम्र इतना कुछ चाहा है कि अब हर इच्छा पर किसी बीती हुई इच्छा का भ्रम होता है – कोई नयी इच्छा? – नहीं, कोई इच्छा मुझे नयी मालूम नहीं होती। कोई भी इच्छा हो, यही मालूम होता है कि ज़माना वर्तमान को अतीत में जीने और अपनेआप को दोहराने में लगा हो। मेरी मुश्किल एक और भी है। मैंने इतिहास पढ़ाकर अपना सारा जीवन बिताया है और स्पष्ट रूप से समझ चुका हूँ कि प्रत्येक काल में उसी एक मनुष्य की उन्हीं इच्छाओं के कारण इतिहास कैसे अपनेआप को दोहरा रहा है – प्रत्येक काल में मनुष्य की ज़रूरत अलग होती है? – नहीं, मनुष्य की ज़रूरत सदा से वही रही है और पेट में उन्हीं इच्छाओं का भँवर उठने पर कोई कंस बेचैनी से चिल्ला उठता था, "मैं भगवान हूँ! – हा-हा-हा! – जल्लादो, अपराधी का सिर उड़ा दो! नहीं, ठहरो – यदि अब वह स्वीकार कर लेता है कि मैं ही भगवान हूँ तो उसे छोड़ दो! – हा-हा!"

"आज? आज क्या अलग है?"

"नहीं! तुम्हारा भगवान भगवान नहीं! – बोलो, केवल मेरा भगवान भगवान है

– बोलो, वरना तुम्हारे पेट में यह खंजर भौंक दूँगा। नहीं?... तो यह लो, जाओ अपने भगवान के पास!... हा हा हा!"

बताओ, क्या अलग है? स्वयं भगवान बनना सुविधाजनक न लगा तो भगवान को ही अपनी इच्छाओं का पुतला बना लिया – हाँ, इसीलिए तो उन्हें विश्वास है भगवान की सबसे बड़ी इच्छा यही है कि उसे किसी तरह अमेरिका का ग्रीन कार्ड उपलब्ध हो जाये।

"बात क्या होती है बाबा और तुम इसे कहाँ उड़ा ले जाते हो?" मेरी बड़ी बहू प्राय: शिकायत करती है, "इसीलिए आपसे कोई बात करना मुमकिन नहीं।"

केवल बड़ी बहू क्यों? घर के दूसरे बालिगों से भी मेरा केवल 'हैलो, हैलो' तक ही सम्पर्क है। वे इतना भी न करें तो मैं क्या कर सकता हूँ?

परन्तु मुझे अख़बार पढ़ने के सिवा और करना भी क्या है? मैं अख़बार पकड़कर फिर उसे पढ़ने लगा हूँ।

आज पहले पृष्ठ पर भगवान के नाम के सिवाय और कुछ है ही नहीं। सारे समाचार उसी के हैं। और तो और, एक इश्तहार में भी लोगों से करुणापूर्ण अपील की गयी है कि सारे देश से एक-एक रामसेवक रामजन्मभूमि मन्दिर के लिए एक-एक ईंट लिए जान की बाज़ी लगाकर भी अयोध्या में पहुँच जाये।

"हे राम!"

मुझे क्या पता था राम मेरी एक ही पुकार पर बाल्मीकि के पन्नों में से उठकर चला आयेगा।

"बोलो, भक्त!"

"मैं क्या बोलूँ? तुम ही बताओ।"

"मैं क्या बताऊँ, भक्त? तुमने याद किया है, तुम ही बोलो।"

"मेरा चिन्तन इतना छोटा पड़ गया है जो करोड़ों ईंटों का घर बनवाने पर अड़ गये हो? बताओ, रामजी!"

"मैं क्या बताऊँ, भक्त? अपनेआप से ही पूछो।"

मैं अपनेआप से पूछता रह गया हूँ और भगवान अन्तर्धान हो भाग लिये। मैंने सटपटाकर नज़रें अख़बार में अटका लीं। ठीक बीच में एक सुर्ख़ी है, 'कश्मीर के पहाड़ों में उग्रवादियों ने एक पूरा गाँव साफ़ कर दिया।' और सुर्ख़ी के नीचे लिखा है : "केवल बीस घायल बचे जिन्हें नीचे वादी के अस्पताल में भरती कर दिया गया है।"

मैं अपनेआप को बताने लगा हूँ कि यों तो इस गाँव में कश्मीरी पण्डितों, बनियों और मुसलमान किसानों के बीस-पच्चीस घराने ही बसे हुए थे परन्तु दो जहान की ज़िन्दगी की रेल-पेल यहाँ सिमट आयी थी। सूर्योदय होते ही बड़े पर्वत की ललकार सुनते ही सभी दूसरे छोटे-बड़े पहाड़ स्वप्निल धुन्ध और अँधेरे से निकलकर गाँव

के इर्द-गिर्द ठीक अपनी जगह जमकर खड़े नज़र आने लगते और सूर्य और पर्वतों में कबड्डी शुरू हो जाती और उस समय तक जारी रहती जब तक सूर्य पर्वतों के घेरे में विवश होकर हार मान लेता, और फिर सारा गाँव, गाँव के फलों से लदे हुए पेड़ और उन पेड़ों की चोटियों पर प्रजनन की सारी सुविधाओं का प्रबन्ध किये भाँति-भाँति के पंछी और पंछियों के सुरों पर कान धरे हुए केसर और गेहूँ के खेत और खेतों के कच्चे और ऊँचे-नीचे किनारों पर एक ओर क़हक़हाती लोटनियों में गिरते हुए झरने और दूसरी ओर बसे-बसे पालतू जानवर और जानवरों से भी पालतू मानव और उन्हीं के आसपास घास-फूस में छिप-छिपकर खेलते हुए अनगिनत कीड़े-मकोड़े – तात्पर्य यह कि गाँव के सभी वासी अपना हर दिन सूर्य पर पर्वतों की विजय को एक साझा त्योहार मनाने के ढंग से शुरू करते। जैसा यह गाँव था, वैसा ही इसका नाम भी – जन्नत। हिन्दू और मुसलमान यहाँ घी-खिचड़ी जैसे रह रहे थे। औरों को छोड़िये, मस्जिद के मौलवी साहब को भी ख़ुदा की इस छोटी-सी जन्नत में हिन्दुओं के स्थायी निवास पर आपत्ति न थी।

"अरे भई, अल्लाह की यह जन्नत उसके सभी नेक बन्दों के लिए है", वे मुसलमानों से कहा करते, 'उनके हिस्से की नमाज़ें भी तुम ही पढ़ लिया करो।' फिर वे दुआ माँगने के अन्दाज़ में अपने दोनों हाथ ऊपर उठा लेते, 'अल्लाह के रहम का कोई हिसाब नहीं। एक की वजह से अल्लाह दूसरे को भी माफ़ कर देता है।'

जन्नत के जिन घायलों को श्रीनगर के अस्पताल में भरती किया गया, उनमें महमूद मियाँ भी था। महमूद मियाँ के दोनों जवान लड़के, बहुएँ, विधवा बेटी, पोते, पोतियाँ सभी उग्रवादियों की गोलियों का निशाना बन चुके थे और वह भी अस्पताल में अन्तिम साँसें गिन रहा था। गोलियाँ लगने से पहले वह अपने ध्यान में गाँव के एकमात्र बाज़ार में खड़ा गुड़ ख़रीद रहा था और अपने हमउम्र बनिये से मज़ाक़ में कह रहा था, "क्यों मेरे उधारी बनते हो, गंगू खूसट? हमारे दिन अब मौत से डरने के हैं।"

"इसीलिए तो तोल में डण्डी मार रहा हूँ, महमूद मियाँ! मरके भी तो हम दोनों को इसी जन्नत में आना है। चार पैसे होंगे तो तुम्हारे दाना-पानी का प्रबन्ध भी मैं ही कर दिया करूँगा।"

उत्तर में अभी महमूद मियाँ को कह-कह हँसने की इच्छा ही हुई कि उन दोनों पर गोलियाँ बरस पड़ीं।

महमूद मियाँ की हालत इस समय गम्भीर है। उसे ऑपरेशन थियेटर ले जा रहे हैं और उसके घायल साथियों ने अभी से सोच लिया है कि महमूद मियाँ बेचारा गया और उनमें से एक के मुँह से निकला, "बड़ा मस्तमौला आदमी था, सीधा जन्नत में जायेगा।" और महमूद मियाँ अपनी नीम-बेहोशी में बड़बड़ा उठा है, "नहीं-नहीं! ख़ुदा के लिए मुझे वापस जन्नत में मत भेजो – मत भेजो!" और

उसके कानों में गोलियों की कड़-कड़ बौछार होने लगी है और इस बार वह उसी दम ढेर हो गया है।

इसी बीच मेरी पोती आसू दौड़ती हुई मेरे कमरे में आती है और मुझे देख ठिठक जाती है, "रो रहे हो, बाबा?"

उसे क्या मालूम महमूद मियाँ ने अभी-अभी किस हालत में मेरी आँखों के सामने दम तोड़ा है।

"कहीं दर्द हो रहा है, बाबा?"

"हाँ, आसू!"

"कहाँ?"

"यहाँ दिल में।"

वह अपने छोटे-से हाथ से मेरी छाती सहलाने लगी है।

"अपना ख़याल रखो, बाबा!"

"हाँ, आसू!"

"हर वक़्त अख़बार मत पढ़ते रहा करो।" उसने मुझे नरमी से झिड़का है, "अब ठीक है?"

"हाँ, आसू!"

"तो मैं चलती हूँ।" वह दरवाज़े की ओर भाग जाती है, "मुझे खेलने जाना है।"

मैं उसकी पीठ पर दो छोटी-छोटी चोटियों को ज़ुबान निकालकर चिढ़ाते पाकर हँस दिया हूँ और घुटनों से सरकता हुआ अख़बार सँभालने लगा हूँ। आख़िरी कालम में ऊपर ही एक ख़बर है कि मुसलमानों के एक गिरोह ने अचानक कहीं हल्ला बोल दिया है। कारण? कारण बस यही था कि जब हम उन्हें मुसलमान नहीं समझते तो वे क्यों अपनेआप को मुसलमान कहने पर तुले रहते हैं। हाँ, यह क्या कम है कि तुम्हें इन्सान समझने से उन्हें इन्कार नहीं? परन्तु सुनिये, एक बार मेरे एक पुराने सहयोगी ने बड़े अपनत्व से मुझसे कहा, "प्रोफ़ेसर साहब, अगर मुझे आपका नाम मालूम न होता तो मुझे यही ख़याल रहता कि आप भी मेरी तरह मुसलमान हैं।"

"आपको यह ख़याल रहता तो मेरे लिए इससे बढ़कर और क्या इज़्ज़त की बात थी?" मैंने ख़ुश होकर उसे जवाब दिया, "आदमी मूलतः अपना नाम तो नहीं होता।"

हमने एक-दूसरे को इस तरह गले लगा लिया जैसे कोई भी रोज़ा खता न होने पर अल्लाहवाले ख़ुदा का शुक्र अदा करते हुए ईद मिल रहे हों।

मैंने अख़बार की ख़बर को एक बार फिर पढ़ा है और ख़बर की ओट में ही चल-चलकर ठीक वहीं जा पहुँचा हूँ जहाँ हमला हुआ था। जले हुए मकानों के मलबे से गुज़रते हुए एक सफ़ेद दाढ़ी वाले बुज़ुर्ग से मेरा सामना हो गया है जो

शायद सदमे को न सह सकने पर पागल हो चुका है और वहाँ कुछ ढूँढ़ रहा है।

"अस्लामा-ए-लैकुम, मौलाना।"

"वा-लैकुम-अस्लाम।"

उसने आगे बढ़ना चाहा है।

"ठहरिए, आप कुछ ढूँढ़ रहे हैं?"

"हाँ, मैंने चप्पा-चप्पा छान मारा है।" उसने फ़रियाद करने के अन्दाज़ में कहा है, "वे सबकुछ ले गये हैं, उसे भी।"

मैंने जिज्ञासा से पूछा है, "किसे?"

"एक उसे छोड़ जाते तो हम फिर अपने पाँव पर खड़े हो जाते, वही सबकुछ फिर से ठीक-ठाक कर देता..."

"मगर वह है कौन, मौलाना?"

"हमारा ख़ुदा।" मौलाना जवाब देकर अपनी धुन में आगे बढ़ गया है।

और मैं अपनी धुन में चलकर अख़बारी ख़बर की ओट में लौट आया हूँ और फिर वहाँ से निकलकर अपने अस्तित्व में, और सोच रहा हूँ, क्या ज़माना आ गया है। लोग ख़ुदा को भी लूट-मार में लपेटकर चलते बनते हैं उसका क्या करते होंगे? बेच देते होंगे! लूट का माल है, ख़रीदने वाले ने जो भाग लगा दिया वही सही, या फिर अपने विजय-स्मारकों में उसे भी सजाकर रख देते होंगे ताकि उन्हें ख़ुदा से भी बड़ा समझा जाये – उन्हीं को ख़ुदा मान लेते होंगे!

हमारा नौकर रामकृष्ण चाय की ट्रे लिए मेरे पास आ रहा है।

"लीजिये बाबा, गरमा-गरम चाय पी लीजिये।" ट्रे मेरे सामने मेज़ पर रखकर वह प्याले में चाय डालने लगा है। "बड़ी बीबी का हुक्म है बाबा, मैं आपके साथ बातों में न उलझ जाऊँ।" उसने प्याला मेरी ओर बढ़ाया है। "यह चाय लीजिये और मुझे छुट्टी दीजिये।"

"अरे भई, जल्दी क्या है?" मैं उससे दो बातें न कर लूँ तो मुझे चाय फीकी लगती है, 'तुम राम भी हो और कृष्ण भी, रामकृष्ण!' मैंने अपनी सोच पर हँसकर उससे पूछा, "कभी-कभी तो तुम्हें ज़रूर लगता होगा तुम ही भगवान हो।"

"मैं तो आपका नौकर हूँ, बाबा!"

मेरा माथा ठनका है और मैं ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगा हूँ, "यही बात है। भगवान न हो तो हमारे घर-बाहर के सारे काम कौन करे?... धन्य हो, भगवान!" मैंने चाय का प्याला मेज़ पर रखकर उसकी ओर अपने दोनों हाथ जोड़ लिये हैं, "धन्य हो!"

रामकृष्ण घबराकर दरवाज़े की ओर पलट गया है। मैंने निरन्तर हँसते हुए चाय का प्याला उठा लिया है और प्याले को मुँह से भी नहीं लगाया है कि आसू फिर चहकती हुई फुर्र से दाख़िल हो गयी है।

"हँस रहे हो, बाबा?"

"हाँ, आसू!" वह मेरी गोद में आ बैठी है तो मैंने चाय का प्याला फिर परे रख दिया है।

"गुदगुदी हो रही है?"

"हाँ, आसू!"

"कहाँ?"

"दिल में।"

"हँसते रहो, बाबा!" चिड़िया ने दरवाज़े की ओर उड़ान भरी है, "मैं देखने आयी थी, तुम अभी तक रो तो नहीं रहे।"

मैंने जल्दी-जल्दी चाय ख़त्म की है और फिर अख़बार ले लिया है। आज वाकई सारा अख़बार केवल भगवान के नाम से भरा हुआ है। एक और ख़बर है कि पंजाब में एक सिक्ख ख़ानदान के सदस्यों को इसलिए गोलियों से भून दिया गया कि ख़ानदान का मुखिया अपने धर्म के युवकों को समझाता फिरता था कि मानव-संहार जैसे हिंसक कार्यों से बाज आ जायें। सारे ख़ानदान में बस एक लड़की बची, जिसने जब बेहोशी से आँखें खोली तो वह अपनी स्मरण-शक्ति खो चुकी थी।

"अमर कौरे!" बाज बुर्जुगों ने जब बड़ी सहानुभूति के साथ उसे सम्बोधित किया तो वह इधर-उधर देखने लगी कि अमर कौरे कौन है।

भगवान का शुक्र है कि उसे मालूम न था कि वही वह है, वरना उसे पूरी ज़िन्दगी अपनी मौत को जीना पड़ता।

मुझे विश्वास नहीं आ रहा कि मौत किसी का वर्तमान और भविष्य उसके लिए छोड़ जाये और केवल उसका अतीत लेकर चलती बने। मैंने भी अपने समाधान के लिए उससे मुख़ातिब होकर कहा है, "अमर कौरे!" और वह मेरी ओर खिंच आयी है और मुझ पर दया करके सोच रही है कि बूढ़ा शायद अपनी पोती को सदा के लिए खोकर पागल हो गया है और अब हर लड़की उसे वही दिखायी देती है। उसने मेरा हाथ बड़ी नरमी से अपनी हाथों में ले लिया है, "बाबा!" अरे, मेरी शोकी इतनी छोटी-सी थी, मेरे देखते-ही-देखते कितनी बड़ी निकल आयी है। उसे मैं अब अपनी गोद में कैसे बिठाऊँगा? मेरी उलटी-सीधी तोतली कहानियों से उसका दिल कैसे बहलेगा?... शोकी बिटिया!..." अमर कौर दया और शोक की मिली-जुली भावना से सिर हिलाती हुई मेरा हाथ थपथपाने लगी है और... और मैं ज्यों का त्यों झुर्रियों से कटा-फटा मुँह लिए खाँस-खाँसकर मानो एकाएक पहली और आख़िरी बार बे-माँ पैदा हो गया हूँ और मेरा कोई नहीं, सबसे कटा हुआ अकेला मैं ही हूँ। मुझे किसी माँ ने दूध नहीं पिलाया तो मैं किससे मुहब्बत करूँगा? कोई भाई-बहन नहीं, मैं किस पर गर्व करूँगा?... मैंने किसी से प्रेम नहीं किया, मेरे बच्चे और मेरे बच्चों के बच्चे कैसे पैदा होंगे?... मेरा अतीत नहीं, मेरा भविष्य कैसे होगा?... नहीं, अमर कौरे! तुम्हें मालूम नहीं, तुम मर चुकी हो... तुम्हें क्या मालूम, तुम्हें भी मार दिया

गया था और तुम केवल अपनी मौत जिए जाने के लिए जीवित हो... ज़िन्दगी क्या होती है, तुम्हें क्या पता, अमर कौरे?... मैं अमर कौरे पर तरस खाये जा रहा हूँ और अमर कौरे मुझ पर। ऊँघ-ऊँघकर जब मेरी आँख खुली है तो अख़बार नीचे फ़र्श पर गिरा हुआ है जिसे मैंने उठा लिया है।

"बाबा...! बाबा...!"

मोहना मेरा सबसे चहेता पोता है। रसोईख़ाने में मेरी कोई मनपसन्द वस्तु पके तो वह उसी समय उसे चुराकर मेरे लिए ले आता है।

"यह देखो, बाबा!" उसने जेब में ठुँसी हुई काग़ज़ की एक पुड़िया निकालकर खोली और दो गरमागरम बड़े मेरे सामने रख दिये।

"एक तुम खाओ, बेटा, एक मैं खाता हूँ।"

"नहीं, दोनों तुम ही खा लो।"

"नहीं, एक तुम, एक मैं।"

हम दोनों ने बड़ों की ओर हाथ बढ़ाये हैं। इसी बीच शोकी अचानक आ धमकी है और हमें देखकर दरवाज़े पर तालियाँ पीट-पीटकर शोर मचाने लगी है, "पकड़ लिया!... पकड़ लिया!" और मोहना अपना बड़ा झपटकर उसके पीछे भागते हुए बाहर निकल गया है और मैं अपने बड़े को मुँह में घोलते हुए अपनी स्वर्गीय पत्नी के बारे में सोचने लगा हूँ – जिस दिन वह मेरे लिए बड़े तैयार करती, उस दिन ख़ूब सजी-धजी होती क्योंकि वह जानती थी कि उस दिन मैं उसे बार-बार बहुत प्यार से देखता हूँ।

अख़बार फिर नीचे फ़र्श पर गिर पड़ा है। मैंने एक ठण्डी साँस भरकर उसे उठाया है और जैसा कि मेरे साथ कई बार होता है, जो कुछ अख़बार में लिखा है उसकी बजाय कोई पुरानी ख़बर फर-फर पढ़ने लगा हूँ। किसी बिहारी क़स्बे की एक अछूत कन्या के बनाये हुए कच्ची मिट्टी के पुतले की ख़बर है, जिसे कन्या की जातिवालों ने भगवान मानकर स्थापित कर लिया था और जिसके पास आकर कोई भी सवाली बेमुराद न लौटता था।

वह कन्या रूपमती कोई पन्द्रह-सोलह साल की अनपढ़ छोकरी थी, परन्तु जब वह अपनी सरल बातें करना शुरू करती तो उसके मुँह से मानो गंगा फूट पड़ती; जो चाहता धारा में बैठकर अपनी जन्म-जन्म की मैल धो लेता। ग्यारह-बारह बरस की उम्र में वह प्रतिदिन हर समय बस्ती के बड़े मन्दिर के दरवाज़े पर खड़ी रहती और ऊँची जात के कार-सेवक यह समझकर कि वह पेट की आग बुझाने के लिए आती है, उसे डाँट-डपटकर पंक्ति में खड़ा होने को कहते और उसकी झोली में बचा-खुचा प्रसाद डाल देते।

रूपमती उन दिनों रूपा कहलाती थी। इस मिट्टी-रंगी मैली-कुचैली बाला ने सुन रखा था कि मन्दिर के भगवान का बदन चाँदी का है और उसके कानों में सोने

की बालियाँ हैं और सिर पर सच्चे मोतियों का मुकुट और...

"और जानते हो, कम्मो?" रूपा छोटी-सी थी मगर जिसके विषय में कोई दिन-रात सोचता रहता है; वह आप-ही आप उसके दिल और दिमाग़ पर हूबहू खिंच आता है। "जानते हो, भगवान के चार हाथ होवें। दो ऊपर उठे होंवे और दो सामने भक्तों की तरफ़।"

"तुमने उसे अन्दर जा के देख लिया है, रूपा?"

"नाहीं, कम्मो, माटी मिला बामन मन्दिर की दहलीज़ पर ही दुतकार देवे है।"

"भगवान..."

"भगवान को का पता, कौन बाहर है, नाहीं तो ख़ुद चले आवै... हाँ!"

"कैसे चले आवैं? चाँदी का बदन चले थोड़ा ही।"

एक दिन रूपा इन्तज़ार से बेचैन होकर कार-सेवक के क़दमों में गिर गयी। "बस एक बार भगवान के दरसन करवा दो भगवान।"

"चल, हट!" कार-सेवक ने उसे धक्का देने के लिए हाथ बढ़ाया, पर यह सोचकर रुक गया कि उसे छूकर फिर नहाना पड़ जायेगा।

आख़िर छोकरी की समझ में आ गया कि मोतियों के भगवान का उससे क्या नाता? सो उसने कच्ची और सुगन्धित माटी को पानी में गूँथ-गूँथकर आदमी के गोश्त की तरह नरम कर लिया और फिर उसमें अपना प्यार और ध्यान फूँक-फूँककर अपनी उँगलियों की पोरों से भगवान के नैन-नक़्श को मूर्ति की गोलाइयों में उतारती चली गयी और मूर्ति के तैयार होते ही उसने अपने भगवान को पहचान लिया, "हाँ, ये ही तो वो है!..." फिर उसने कई दिन सुबह की हल्की-हल्की धूप में उसे सुखाया और अपनी झोंपड़ी के एक सुरक्षित कोने को साफ़ करके उसे वहाँ सजाकर रख दिया और फिर जैसे भी कच्ची कुँवारी प्रेमिका के मन में आया वैसे ही वह पाठ-पूजा में इतनी मग्न हो गयी कि उसे पता भी न चला कि उसकी साँसों से मिट्टी के पुतले में कब जान पड़ गयी – इसके बाद? इसके बाद होते-होते वह गँवार लड़की, जो अपनी नाक साफ़ करना भी न जानती थी, चन्द ही वर्षों में अपने प्रेम से दीवानी हो-होकर पुस्तक पढ़े बग़ैर विद्वान पण्डित हो गयी और शुरू में उसकी झोंपड़-पट्टी से, फिर सारी बस्ती और फिर दूर-दूर से लोग रूपमती के मन्दिर अपने पाप क्षमा करवाने और मुरादें पूरी करवाने आने लगे।

जो हुआ, उसे होना ही था। ऊँची जात के लोगों को रूपमती के मन्दिर की रौनक खलने लगी और जब उनकी और कोई चाल न चली तो मौक़ा पाकर एक रात उन्होंने रूपमती का मन्दिर तहस-नहस कर दिया और साथ ही आसपास की सारी झोपड़पट्टी को भी आग के शोलों में झोंक दिया। उनके चाँदी के भगवान से इतना भी न हुआ कि ज़रा अपना मुँह खोलकर उन्हें रोक देते, पर उन बेचारे का

भी क्या दोष? चाँदी के भगवान थे, बोलते कैसे? प्राण केवल कच्ची मिट्टी में होते हैं, सो जीवित भगवान तो रूपमती के घास-फूस के मन्दिर में अपने ख़ाकी बदन में धड़क रहे थे। मूरख पण्डितों ने इन जीते-जागते भगवान को इतनी निर्दयता से मौत के घाट उतारा, मानो वे भी उन्हीं तुच्छ लोगों में से हों। उनका सिर तन से जुदा था और हाथ-पैर कटकर इधर-उधर बिखरे पड़े थे और जिन्होंने देखा, उनका कहना है कि उनके ख़ून से – सचमुच के ख़ून से झोंपड़ी का कच्चा फ़र्श लथपथ हो गया था और एक कोने में बैठी रूपमती ख़ून पर एकटक नज़र बाँधे हुए थी और उसका सिर कुल्हाड़े के वार से फटा हुआ था और आँखें सफ़ेद पड़ चुकी थीं और शरीर अकड़कर मिट्टी हो चुका था, केवल उसका बुत वहाँ था, वह आप न जाने कहाँ...

मैं फिर ऊँघ रहा हूँ और धुआँ-धुआँ वधस्थल में घूम रहा हूँ और तिलकधारी हत्यारों से हाथ जोड़कर मिन्नत कर रहा हूँ – नहीं, इस बालिका ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?... नहीं, इस अबला की जान मत लो।... नहीं, तुम जिसे भी मारोगे, अपने भगवान को ही मारोगे... भगवान को तो बख़्श दो! बख़्श दो!..."

मछली

अनवर अज़ीम

पानी की सतह से मछली उड़ी, रेत पर गिरी और तड़प-तड़पकर मर गयी।

वह रेत से तड़पकर पानी में गिरा और मर गया।

लाश पानी की सतह पर तैर रही है।

वह मर गया, मारा गया, क्या फ़र्क़ पड़ता है। धरती सूरज के चारों तरफ़ चक्कर लगा रही थी, सो अब भी लगा रही है। एक मछली के मरने से क्या होता है। सारी मछलियाँ भी मर जायें तो क्या हो जायेगा। धरती नाचती रहेगी, सूरज दहकता रहेगा। लोग कोल्ड कॉफ़ी पीते रहेंगे। शायर ठर्रा पीता रहेगा, कसाई बकरी की गरदन पर छुरा फेरता रहेगा, मसीहा का इन्तज़ार होता रहेगा, दीवाने ज़ंजीरों से उलझते रहेंगे, जीनियस एफ.एल.एफ.एल. पुकारते रहेंगे।

लाश तो है मगर वह ख़ुद कहाँ है। वक़्त का क़ैदी कहाँ है। वह कहाँ था, जब वह क़ैदी नहीं था। वह कहाँ है जब वह क़ैदी नहीं है। वह कहाँ है, जिसके वजूद से वक़्त की नाप होती है। वह जिसकी लाश पानी की सतह पर तैर रही है। यारो कॉफ़ी पियो, कॉफ़ी ठण्डी हो जायेगी। हर चीज़ रखी-रखी ठण्डी हो जाती है। सब चुप हैं, जब ख़याल की लौ जलती है, जब अन्दर तूफ़ान चीख़ता है तो ज़बान ख़ामोश हो जाती है। सब चुप है जब अन्दर वीरानी बढ़ती है तो ख़ौफ़ बढ़ता है। ख़ौफ़ में आदमी ज़ोर-ज़ोर से बातें करने लगता है। चारों हम बातें कर रहे हैं। ज़ोर-ज़ोर से, फिर भी सब चुप हैं। हम कॉफ़ी पी रहे हैं। कॉफ़ी भी चुप है यार भी चुप हैं।

सब चुप हैं, फिर यह हंगामा कैसा है। चमचे बज रहे हैं, फालियाँ झनक रही हैं, थालियाँ कोच की हैं। चेहरे रबड़ के हैं। चेहरे थरथरा रहे हैं। रबड़ के खालों में हवा भरी हुई है। हवा में रफ़्तार है। हवा रफ़्तार में ऊँच-नीच पैदा करती है। गुब्बारों में आवाज़ भरी हुई है। जब आवाज़ अपनेआप को गुब्बारों से आज़ाद करा लेती है तो गुब्बारे पिचक जाते हैं। रबड़ की थैलियों की तरह जिन्हें किसी ठोस चीज़ का

इन्तज़ार है। लेकिन जो चीज़ ठोस है, हकीकत नहीं है। इन्तज़ार बेकार है। चेहरों में हवा भर रही है। लेकिन चेहरे हैं कि पिचके चले जा रहे हैं।

चार एक मेज़ के गिर्द बैठे हैं। मेज़ें शक्लें बदलती रहती हैं। कभी यह चौकोर हो जाती है कभी तिकोन। हम सब तिकोन हैं। हम मेज़ के चारों तरफ़ बैठे हैं जो चौकोर है। हम मरी हुई गाय और कुत्तों के गिर्द गिद्धों को इसी तरह बैठे देखते हैं। पर फुलाये, सिर झुकाये, आसमान, धूप, हवा और फूल से बेख़बर। ख़ुशबू से बेजार। हम इसी तरह बैठे हैं पर फुलाये। हमारी काली-काली चोंचें, जिनसे सिगरेट, और आइसक्रीम की बू आती है, कितनी तेज़ हैं। गिद्ध हमें वैसे ही नज़र आते हैं जैसे वह हैं हम उन्हें कैसे नज़र आते हैं। हम गिद्धों को देखते हैं और अपने बारे में सोचते हैं। सोचना हमारी मजबूरी है। गिद्ध मजबूर नहीं। वे हमें चौकोर मेज़ के गिर्द बैठा देखते हैं और कुछ नहीं सोचते। हम साज़िशें करते हैं और गिद्धों को नफ़रत से देखते हैं। जो मुर्दे पर चोंचें मार रहे हैं। हम खड़े सोचते हैं और मुस्कुराते हैं जो सोचते हैं, वहीं मुस्कुराते हैं। गिद्ध मुस्कुराते नहीं। वह अपने पंजों से खाल और गोश्त को नोचते रहते हैं। मेज़ें शक्ल बदल रही हैं। अब हमारी मेज़ लम्बी हो गयी है, ईसा मसीह की मेज़ की तरह। यह आख़िरी खाना है, सूली पर चढ़ने से पहले। एक मेज़ में कितनी मेज़ मिल गयी है। लम्बी मेज़ के गिर्द कुर्सियाँ बढ़ती जा रही हैं। साइज़ में भी और तादाद में भी। कुर्सियाँ हमें देख सकती हैं, हमारा बोझ महसूस कर सकती हैं लेकिन कुर्सियाँ हमें दिखायी नहीं देती। कुर्सियों पर हम जो बोझ डाल रहे हैं, वह भी हमें महसूस नहीं होता। हम ख़ुश हैं। हम समझते हैं हम कुर्सियों पर नहीं, सुर्ख़ फूलों पर बैठे हैं। हम ख़ुशी में मुँह बिसूर रहे हैं और अपना-अपना अँगूठा चूस रहे हैं इसलिए कि हम ज़िन्दा हैं जो अपना अँगूठा नहीं चूस रहे हैं, वो फ्रॉड हैं। हमारी मेज़ लम्बी होती जा रही है, बेसर वे बेनज़र लोग आते हैं और कुर्सियों पर बैठ जाते हैं। कटी हुई गरदनों से जो कटे हुए दरख़्त की तरह ठूँठ हैं, आवाज़ें निकल रही हैं। लेकिन यार चुप हैं। वे सिर्फ़ अपनी आवाज़ें सुन रहे हैं।

मैं सबकी आवाज़ सुन रहा हूँ। तुम सबकी। तुम्हें मेरी कुर्सी ख़ाली नज़र आ रही है। कुर्सी इतनी ऊँची है। मैं अपनी ख़ाली कुर्सी पर मौजूद हूँ। तुम मुझे देख सकते। मैं मर चुका हूँ। जो मर जाते हैं दिखायी नहीं देते। जो दिखायी नहीं देते वे मर जाते हैं। लेकिन मैं अपनेआप को देख सकता हूँ। जब मैं ज़िन्दा था अपनेआप को नहीं देख सकता था। अब मरकर मैं अपनेआप से ऊपर उठ गया हूँ। अब मैं ही मैं हूँ। मैं तुम्हें देख सकता हूँ। तुम्हारी चोंच, तुम्हारी आँखें, तुम्हारे पंजे। मैं अपनी लाश को भी देख सकता हूँ। लाश पानी की सतह पर तैर रही है। मैं मरकर मछली बन गया हूँ। मरी हुई मछली पानी पर तैर रही है। मेरी लाश कितनी बड़ी है। फूली-फूली, नरम-नरम, छोटी-छोटी मछलियाँ मेरा गोश्त नोच रही हैं। मेरे नाख़ून, मेरे दीदें, मेरी नाक-हर चीज़ कितनी नर्म है। छोटे-छोटे मुँह में बुलबुलों

की तरह पिघलती हुई।

आज भी तुम मेज़ के गिर्द बैठे हो। तब भी तुम मेज़ के गिर्द बैठे थे। रात है, शोर है, रौशनी है, परछाइयाँ हैं। मैं आवाज़ों और रौशनियों के बुलबुलों में तैर रहा हूँ। मैं चल नहीं रहा हूँ। मैं तैर रहा हूँ। तुम मुझे देख रहे हो, इस तरह जैसे नहीं देख रहे हो। मैं तुम्हें नहीं देख रहा हूँ इस तरह जैसे देख रहा हूँ। मैं हवा पर चल रहा हूँ। मैं तुम्हारे चेहरों में अपना चेहरा देखता हूँ। अपने चेहरे से कौन कुछ छिपाता है। मैं भी कुछ नहीं छिपाता। मुझे उबकाई आती है। तुम मुँह फेर लेते हो। तुम्हें भी उबकाई आती है। तुम क़हक़हा लगाते हो। सफ़ेद-सफ़ेद बुलबुले मुझ पर हमला करते हैं। मुझे धकेलते हैं, मुझे मारते हैं, मैं डुबकी लगा लेता हूँ, रौशनियों के अँधेरे समन्दर में। बुलबुले वहाँ भी मेरा पीछा करते हैं। तुम इन बुलबुलों से अपनी चोंच निकालते हो और मेरा गोश्त नोचते हो और हँसते हो। मैं परों की आवाज़ सुनता हूँ और बेहोश हो जाता हूँ।

मैं काले समन्दर की काली तह में बन्द हूँ। मैं क़दमों की आहट सुनता हूँ। बूट गुज़रते हैं मेरे सिर को कुचलते हुए। मैं टैंकों की घन गरज सुनता हूँ। और मेरी आँख खुल जाती है। उस औरत का पेटीकोट कितना मैला है, मेरी तरह मैला और पुराना मेरी तरह। बच्चा स्कूल जा रहा है। बच्चे की किताब वर्क़-वर्क़ है। मेरी तरह, वर्क़-वर्क़ और बेमज़ा। मेरी तरह झुर्रियाँ मुझसे कुछ कह रही है। झुर्रियाँ मुस्कुरा रही है। मेरी तरह सख़्त जान और हँसमुख। मैंने कम्बल में मुँह छुपा लिया है। रौशनी और चूल्हे से मुझे नफ़रत है। दोनों मुझे खाये जा रहे हैं। तुम मुझे खाये जा रहे हो। छुरी-काँटे से। तुम खा रहे हो और मैं हँस रहा हूँ। खाओ-खाओ मैं शेर पढ़ता हूँ और तुम मुझे थूक देते हो। मुझे, ख़्याल मेरे तजुर्बे को। तुम मुझे हजम नहीं कर सकते। मैं सड़ी हुई मछली हूँ। इन्सान जब सड़ जाता, मछली बन जाता है। मछली जब सड़ जाती है, पानी की सतह पर तैरने लगती है। मैं पानी की सतह पर तैर रहा हूँ, तुम मेज़ के आस-पास बैठे हो। कॉफ़ी पी रहे हो और शराब की सोच रहे हो। मुझे हिचकी आ रही है और तुम्हें शाम की फ़िक्र है।

क़तरा-क़तरा
ज़हर
क़तरा-क़तरा
टपक रहा है
शिराओं में
और मैं पक रहा हूँ
लावा-लावा
फ़रेब, झूठ, ख़्वाब
बलात्कार, धींगामुश्ती

मेरा गीत
वक़्त का भँवर
क़तरा-क़तरा

मैं क़हक़हा लगाता हूँ, तुम कहते हो यह प्रोपेगेण्डा है। मैं ज़हर पीता हूँ, तुम कहते हो यह प्रोपेगेण्डा है। मैं लावा बनकर फटता हूँ। तुम कहते हो यह प्रोपेगेण्डा है। जो ग़ैर हानिप्रद नहीं वह प्रोपेगेण्डा है। सिर्फ़ गेन्द प्रोपेगेण्डा नहीं। सो तुम पट्टे खा रहे हो। यहाँ लोग कॉफ़ी पी रहे हैं। देखो-देखो अपनी प्यालियों में झाँककर देखो। तुम्हारी कॉफ़ी का रंग कैसा है। रंग? रंग प्रोपेगेण्डा है। हम कलाकार हैं, कलाकार का कोई रंग नहीं होता। मैं भूख हूँ। भूख? यह प्रोपेगेण्डा है। जो कुछ है प्रोपेगेण्डा है। जो कुछ नहीं है, कला है। तुम हो। हम नहीं है। तुम क़हक़हा लगाते हो। तुम्हारा क़हक़हा आर्ट है। मेरा क़हक़हा नकबजनी है। मैं जिस औरत के साथ सोता हूँ, उसे पहचानता हूँ। मैं उसके साथ सफ़र करता हूँ। तुम सोते हो मगर पहचानते नहीं। तुम सफ़र नहीं करते, खड़े रहते हो। सफ़र करना प्रोपेगेण्डा है। खड़ा रहना आर्ट है। तुम खड़े हो। तुम दो किनारों के बीच खड़े हो। तुम किसी के तरफ़दार नहीं। तुम सबके यार। तुम एक चौराहा हो। मुझे आगे जाना है। तुम्हारी मेज़ से आगे।

जाओ-जाओ, हमारी मेज़ से आगे जाओ, सवेरा, तूफ़ान, हमला – हमारी मेज़ मूलियों का पड़ाव नहीं। जाओ-जाओ आगे जाओ। स्फंज की तरह भीगा हुआ चेहरा, आँखों में गैंज, होंठ सूजे हुए, हाथ-पाँव सिकुड़े हुए – वेटर इसको उठाकर बाहर फेंक दो। हम ख़ूबसूरत बातें कर रहे हैं। आयी में अश्लीलता क्या है? बक रहे हो। फासीज़्म क्या है? बक रहे हो। कास का प्लेग क्या है? वेटर फेंक दो उठाकर इसे। शायर बना फिरता है कहीं का। कॉफ़ी लाओ, और लाओ हम कलाकार लोग। हाँ जी मेरी कहानी के साथ यह नोट छापिये। ख़त्म हो जायेंगे सब। लो देखो शायर फिर घुसा चला आ रहा है अन्दर।

भई मेरी सुनिये। मैं कुछ अर्ज़ कर रहा हूँ। मुझे पैसे दीजिये। मुझे पीना है। मुझे पीना है। घर में कुछ नहीं, जिस्म पर कुछ नहीं, दफ़्तर में कुछ नहीं। मुझे रोज़ चाहिए आग। बोतल में बन्द आग। यह आग नहीं मिलती तो मैं फैलने लगता हूँ। मैं इतना फैलता हूँ कि आसमान छिप जाता है। ज़मीन छिप जाती है। तब मुझे डर लगता है। जब डर लगता है तो मैं पीता हूँ। तब में असल हालत पर आ जाता हूँ। तब हर चीज़ तारों की तरह अपनी-अपनी जगह पर झिलमिलाने लगती हैं।

उसका चेहरा स्पंज की तरह है, भीगा हुआ। उसके मुँह की बदबू भीगी हुई है। वह दायें पैर का जूता बायें पैर में पहने हुए है। उसका बायाँ पैर नंगा है। उसकी पतलून के बटन खुले हुए हैं। शायद बटन है ही नहीं। पतलून भीगी हुई है। चाक गिरेबाँ से बाल झाँक रहे हैं। बालों में मैल है, रस्सी की तरह बटे हुए बाल। कोहनियाँ छिली हुई हैं और आस्तीनों के छेदों से झाँक रही हैं। पेशानी के ज़ख़्म की पपड़ी

उखड़ गयी है। ज़ख़्म के निशान से ज़ख़्म के अन्दर झाँका जा सकता है। लेकिन ज़ख़्म के अन्दर ड्राइंगरूम नहीं है। देखिये–देखिये, उसका कद बढ़ने लगता है। उसका सीना चौड़ा होता जा रहा है। आँखों की नमी मिटने लगी है। उसकी साँस लपटें लपक रही हैं। उसके नुकूश मिटने लगते हैं। एक साया है और कुछ नहीं। रेस्त्रां में बादल उतर आया है। बादल जो एक आकार है और कुछ नहीं। बादल गरजता है। मेज़ों के गिर्द बैठे हुए लोग साये की तरफ़ देखते हैं और पत्थर बन जाते हैं। उनकी गरदन की रगें तनी हुई हैं। रगों में ख़ून जम गया है। पत्थर की रगें, पत्थर का ख़ून, पत्थर की आवाज़ें यार चुप हैं, साया बोल रहा है।

तुम मेज़ के गिर्द सा जोड़े बैठे हो, तुम कितने उदास हो। एक मछली के लिए तुम कितने उदास हो। मछली तुम्हारे पास कुर्सी पर बैठी है और तुम मछली के लिए चन्दा जमा कर रहे हो। लेकिन यह तो ज़िन्दा मछली पकड़ने का गुर है। मरी हुई मछली काटी नहीं जाती। मरी हुई मछली केंचुआ भी नहीं खाती। तुम कितने अच्छे केंचुवे हो। चिन्तित और उदास। तुम्हारा रेस्तोरां जहाँ मछलियाँ भुन रही हैं, गूँज रहा है। गप से, तुम नाख़ून से बरगद का दरख़्त काट रहे हो। तुम्हें दरख़्त के गिरने का इन्तज़ार है। इस इन्तज़ार ने तुमको कितना बदल दिया है। तुम बर्छियों की तरह लम्बे हो गये हो। चीड़ के दरख़्तों से ज़्यादा ऊँचे। पतले और ऊँचे लेकिन सिर्फ़ देखने में; असल में तुम कैक्टस हो। और मैं तुम्हारे जंगल में खो सा गया हूँ। मैं तुम्हारे काँटों भरे जिस्मों को छूता हुआ चल रहा हूँ। मैं सदियों से इसी तरह चल रहा हूँ। जंगल में अँधेरा है। मैं ख़ुद अपने क़दमों की आहट सुन रहा हूँ। मैं भाग रहा हूँ और तुम मुझे घेर रहे हो।

तुम कहते हो मछली ने आत्महत्या कर ली। मछली कुछ और कहती है। मछली को रेत पर डाल देना बिल्कुल दूसरी कहानी है। लाश पानी पर तैर रही है। पानी का रंग – पानी का कोई रंग नहीं होता। पानी में रौशनियों की कश्तियाँ डूब रही हैं। अच्छा हुआ वह मर गया। वह कश्तियों के उभरने का इन्तज़ार कब तक करता।

यार चुप हैं। सब अपना–अपना अँगूठा चूस रहे हैं। ज़िन्दा मछलियाँ मरी हुई मछलियों को नोच रही हैं। न जाने उसका काँटा कब तक पानी में तैरता रहेगा। पानी कितना मेहरबान है जो मछली का बोझ उठा लेता है। यार कॉफ़ी पी रहे हैं। उनकी आँखों में धुन्ध छा रही है। उनकी टाँगें हिल रही हैं। मेज़ और कुर्सियों की संख्या बढ़ती जा रही है। सिर्फ़ दीवारें सिकुड़ रही हैं। दूर बहुत दूर, मछली का सियाह काँटा पानी में डूब जाता है।

बिजूखा

सुरेन्द्र प्रकाश

प्रेमचन्द की कहानी का होरी इतना बूढ़ा हो चुका था कि उसकी पलकों और भँवों तक के बाल सफ़ेद हो गये थे, कमर में खम पड़ गये थे और हाथों की नसें साँवले खुरदरे गोश्त से उभर आयी थीं।

इस अन्तराल में उसके यहाँ दो बेटे हुए थे, जो अब नहीं रहे। एक गंगा में नहा रहा था कि डूब गया और दूसरा पुलिस मुक़ाबले में मारा गया। पुलिस के साथ उसका मुक़ाबला क्यों हुआ। इसमें कुछ ऐसी बात बताने की नहीं! जब कोई व्यक्ति अपने अस्तित्व से परिचित होता है और अपने चारों तरफ़ फैली बेचैनी महसूस करने लगता है तो उसका पुलिस के साथ मुक़ाबला हो जाना स्वाभाविक हो जाता है। बस ऐसा ही कुछ उसके साथ हुआ था – और होरी के हाथ हल के हत्थे को थामे हुए एक बार ढीले पड़े, ज़रा काँपे और फिर उनकी गिरफ़्त अपनेआप मज़बूत हो गयी। उसने बैलों को हाँक लगायी और हल से ज़मीन का सीना चीरता हुआ आगे बढ़ गया।

उन दोनों बेटों की बीवियाँ थीं और आगे उनके पाँच बच्चे। तीन गंगा में डूबने वाले के और दो पुलिस मुठभेड़ में मारे जाने वाले के। अब उन सबकी परवरिश का भार होरी पर आ पड़ा था और उसके बूढ़े जिस्म में ख़ून ज़ोर से गर्दिश करने लगा था।

उस दिन आसमान सूरज निकलने से पहले कुछ ज़्यादा ही सुर्ख़ था और होरी के आँगन के गिर्द पाँचों बच्चे नंग-धड़ंग बैठे नहा रहे थे। उसकी बड़ी बहू कुएँ से पानी निकाल-निकालकर उन पर बारी-बारी उड़ेलती जा रही थी और वो उछलते हुए अपना पिण्डा मलते पानी उछाल रहे थे। छोटी बहू बड़ी-बड़ी रोटियाँ बनाकर चंगे़री में डाल रही थी और होरी अन्दर कपड़े बदलकर पगड़ी बाँध रहा था। पगड़ी बाँधकर उसने ताकचे में रखे आईने में अपना चेहरा देखा। सारे चेहरे पर लकीरें फैल गयी थीं। उसने क़रीब ही लटकी हुई हनुमान जी की छोटी-सी तस्वीर के सामने

आँखें बन्द करके दोनों हाथ जोड़कर सिर झुकाया और फिर दरवाज़े में से गुज़रकर बाहर आँगन में आ गया।

"सब तैयार हैं?" उसने कुछ ऊँची आवाज़ में पूछा।

"हाँ बापू" – सब बच्चे एक साथ बोल उठे। बहुओं ने अपने सरों पर पल्लू ठीक किये और उनके हाथ तेज़ी से चलने लगे। होरी ने देखा अभी कोई भी तैयार नहीं था – सब झूठ बोल रहे थे – उसने सोचा यह झूठ हमारी ज़िन्दगी के लिए कितना ज़रूरी है। अगर भगवान ने झूठ जैसी नेमत न दी होती तो लोग धड़ाधड़ मरने लग जाते। उनके पास जीने का कोई बहाना न रह जाता। हम पहले झूठ बोलते हैं और फिर उसे सच साबित करने की कोशिश में देर तक ज़िन्दा रहते हैं।

होरी के पोते-पोतियाँ और बहुएँ – अभी-अभी बोले हुए झूठ को सच साबित करने में पूरी एकाग्रता से जुट गये। जब तक होरी एक कोने में पड़े कटाई के औज़ार निकाले – वो सचमुच तैयार हो चुके थे।

उनका खेत लहलहा उठा था। फ़सल पक गयी थी और आज कटाई का दिन था। ऐसे लग रहा था, जैसे कोई त्योहार हो। सब बड़े चाव से जल्दी से जल्दी खेत में पहुँचने की कोशिश में थे कि उन्होंने देखा कि सूरज की सुनहरी किरणों ने सारे घर को अपने जादू में जकड़ लिया है।

होरी ने अँगोछा कन्धे पर रखते हुए सोचा, "कितना अच्छा समय आ पहुँचा है। न पटवारी की धौंस न बनिये का खटका, न अंग्रेज़ की ज़ोर ज़बरदस्ती और न ज़मींदार का हिस्सा" – उसकी नज़रों के सामने हरे-हरे कोंपल झूम उठे।

"चलो बापू" उसके बड़े पोते ने उसकी उँगली पकड़ ली। बाक़ी बच्चे उसकी टाँगों के साथ लिपट गये। बड़ी बहू ने कोठरी का दरवाज़ा बन्द किया और छोटी बहू ने रोटियों की पोटली सिर पर रखी।

वीर बजरंगी का नाम लेकर सब बाहर की चहारदीवारी वाले दरवाज़े में से निकलकर गली में आ गये और फिर दायीं तरफ़ मुड़कर अपने खेत की तरफ़ बढ़ने लगे।

गाँव की गलियों-गलियारों में चहल-पहल शुरू हो चुकी थी। लोग खेतों को आ-जा रहे थे। सब के दिलों में ख़ुशी के अनार फूट रहे थे। सबकी आँखें पकी फ़सलें देखकर चमक रही थीं। होरी को लगा कि ज़िन्दगी कल से आज बदली हुई है। उसने पलटकर अपने पीछे आते हुए बच्चों की तरफ़ देखा। वो बिल्कुल वैसे ही लग रहे थे जैसे किसानों के बच्चे होते हैं। साँवले मरियल से – जो जीप गाड़ी के पहियों की आवाज़ और मौसम की आहट से डर जाते हैं। बहुएँ वैसी ही थीं, जैसी कि ग़रीब किसान की बेवा औरतें होती हैं। चेहरे घूँघट में छिपे हुए और लिबास की एक-एक सिलवट में ग़रीबी जुओं की तरह छिपी बैठी।

वह सिर झुकाकर फिर आगे बढ़ने लगा। गाँव के आख़िरी मकान से गुज़रकर

आगे खुले खेत थे। क़रीब ही रहट ख़ामोश खड़ा था, नीम के दरख़्त के नीचे एक कुत्ता पूरी निश्चिन्तता से सोया हुआ था और तबेले में कुछ गायें, भैंसें और बैल चारा खाकर फुँकार रहे थे। सामने दूर-दूर तक लहलहाते हुए सुनहरे खेत थे – इन सब खेतों के बाद ज़रा दूर, जब ये सब खेत ख़त्म हो जायेंगे और फिर छोटा-सा नाला पार करके अलग-थलग होरी का खेत था जिसमें झौना पककर अँगड़ाइयाँ ले रहा था।

वो सब पगडण्डियों पर चलते हुए दूर से ऐसे लग रहे थे जैसे रंग-बिरंगे कीड़े सूखी घास पर रेंग रहे हों – वो सब अपने खेत की तरफ़ जा रहे थे, जिसके आगे थल था। दूर-दूर तक फैला हुआ, जिसमें कहीं हरियाली नज़र नहीं आती थी, बस थोड़ी बेजान मिट्टी थी, जिसमें पाँव रखते ही धँस जाता था, और मिट्टी यूँ भुरभुरी हो गयी थी जैसे उसके दोनों बेटों की हड्डियाँ चिता में जलकर फूल बन गयी थीं। और फिर हाथ लगाते ही रेत की तरह बिखर जाती थीं। वह थल धीरे-धीरे बढ़ रहा था। होरी को याद आया पिछले पच्चास बरसों में वह दो हाथ आगे बढ़ आया था। होरी चाहता था जब तक बच्चे जवान हों वह थल उसके खेत तक न पहुँचे और तब तक वह ख़ुद किसी थल का हिस्सा बन चुका होगा।

पगडण्डियों का न ख़त्म होने वाला सिलसिला और उस पर होरी और उसके ख़ानदान के लोगों के हरकत करते हुए नंगे पाँव...

सूरज आसमान की मशरिकी खिड़की में से झाँक रहा था। चलते-चलते उनके पाँव मिट्टी से अट गये थे। कई इर्द-गिर्द के खेतों में लोग कटाई करने में मसरूफ़ थे। वो आते-जाते को राम-राम कहते और फिर किसी अनजाने जोश और वलवले के साथ टहनियों को दराँती से काटकर एक तरफ़ रख देते।

उन्होंने बारी-बारी नाला पार किया। नाले में पानी नाम भर को भी बहने के लिए नहीं था। अन्दर की रेत मिली मिट्टी बिल्कुल खुश्क हो चुकी थी और उसपर अजीबोग़रीब नक़्शोनिगार बने हुए थे। वो पानी के चरणचिन्ह थे। और सामने लहलहाता हुआ खेत नज़र आ रहा था। सबका दिल बल्लियों उछलने लगा – फ़सल कटेगी तो उनका आँगन फूस से भर जायेगा और कोठरी अनाज से। फिर खटिया पर बैठकर भात खाने का मज़ा आयेगा। क्या डकारें आयेंगी पेट भर जाने के बाद। उन सबने एक ही बार सोचा।

अचानक होरी के क़दम रुक गये। वो सब भी रुक गये। होरी खेत की तरफ़ हैरानी से देख रहा था। वो सब कभी होरी को कभी खेत को देख रहे थे कि अचानक होरी के जिस्म में बिजली की लहर-सी पैदा हुई। उसने चन्द क़दम आगे बढ़कर बड़े जोश से आवाज़ लगायी।

"अबे कौन है...ए...ए...?"

और फिर सबने देखा कि उनके खेत की पकी हुई फ़सल में कुछ बैचेनी के

आसार थे। अब तो सब होरी के पीछे तेज़-तेज़ क़दम बढ़ाने लगे। होरी फिर चिल्लाया।

"अबे कौन है रे – बोलता क्यों नहीं – कौन फ़सल काट रहा है मेरी?"

मगर खेत में से कोई उत्तर नहीं मिला, अब वो क़रीब आ चुके थे और खेत के दूसरे कोने पर दराँती चलने की सड़ाप-सड़ाप आवाज़ बिल्कुल साफ़ सुनायी दे रही थी। सब थोड़ा सहम गये, फिर होरी ने हिम्मत से ललकारा।

"कौन है हराम का जना – बोलता क्यों नहीं?"

और अपने हाथ में पकड़ी दराँती सूँत ली।

अचानक खेत के परले हिस्से में एक ढाँचा-सा उभरा और जैसे मुस्कुराकर उन्हें देखने लगा हो – फिर उसकी आवाज़ सुनायी दी।

"मैं हूँ होरी काका – बिजूखा" उसने अपने हाथ में पकड़ी दराँती फ़िज़ाँ में हिलाते हुए जवाब दिया।

डर की एक कातर लहर सबके भीतर दौड़ गयी। उनके होंठ घुटी-घुटी-सी चीख़ से लरज गये। उनका रंग पीला पड़ गया और होरी के होंठों पर जैसे सफ़ेद पपड़ी-सी जम गयी। कुछ देर के लिए सब सकते में आ गये और बिल्कुल ख़ामोश खड़े रहे, वह कुछ देर अन्तराल का कितना हिस्सा था, एक पल एक सदी या फिर एक युग – इसका उनमें से किसी को अन्दाज़ा नहीं हुआ। जब तक कि उन्होंने होरी की ग़ुस्से से काँपती हुई आवाज़ न सुनी, उन्हें अपनी ज़िन्दगी का अहसास नहीं हुआ।

"तुम...बिजूखा – तुम... तुमको तो मैंने खेत की निगरानी के लिए बनाया था – बाँस की खपच्चियों से और तुमको उस अंग्रेज़ शिकारी के कपड़े पहनाये थे, जिसके शिकार में मेरा बाप हाँका लगाता था और वह जाते हुए ख़ुश होकर अपने फटे हुए ख़ाकी कपड़े मेरे बाप को दे गया था। तेरा चेहरा घर की बेकार हाँडी से बना था और उस पर उसी अंग्रेज़ शिकारी का टोपा रख दिया था। अरे तू बेजान पुतला मेरी फ़सल काट रहा है।"

होरी कहता हुआ आगे बढ़ रहा था और बिजूखा बदस्तूर उनकी तरफ़ देखता हुआ मुस्कुरा रहा था – जैसे उस पर होरी की किसी बात का असर न हुआ हो।

जैसे ही वो क़रीब पहुँचे उन्होंने देखा – फ़सल एक चौथाई के क़रीब कट चुकी थी और बिजूखा उसके क़रीब दराँती हाथ में लिए खड़ा मुस्कुरा रहा है। वो सब हैरान हुए कि दराँती उसके हाथ में कहाँ से आ गयी?"

वो कई महीनों से उसे देख रहे थे। बेजान बिजूखा दोनों हाथों से ख़ाली खड़ा रहता था – मगर आज... वह आदमी लग रहा था – हाड़-मांस का उन जैसा आदमी। यह दृश्य देखकर होरी तो जैसे पागल हो उठा। उसने आगे बढ़कर उसे ज़ोरदार धक्का दिया – मगर बिजूखा तो अपनी जगह से बिल्कुल न हिला। अलबत्ता

होरी ही अपने ही ज़ोर का धक्का खाकर दूर जा गिरा। सब लोग चीख़ते हुए होरी की तरफ़ बढ़े। वह अपनी कमर पर हाथ रखे उठने की कोशिश कर रहा था। सबने उसे सहारा दिया।

उसने भयभीत होकर बिजूखा की ओर देखते हुए कहा :

"तू मुझसे भी ज़्यादा ताक़तवर हो चुका है। बिजूखा – मुझसे... जिसने तुम्हें अपने हाथों से बनाया, अपनी फ़सलों की हिफ़ाज़त के वास्ते।"

बिजूखा पहले ही की तरह मुस्कुरा रहा था, फिर बोला, "तुम बेकार ही नाराज़ हो रहे हो होरी काका, मैंने तो सिर्फ़ अपने हिस्से की फ़सल काटी है। एक चौथाई"

"लेकिन तुमको क्या हक़ है, मेरे बच्चों का हिस्सा लेने का, तुम कौन होते हो?"

"मेरा हक़ है होरी काका – क्योंकि मैं हूँ – और मैंने इस खेत की हिफ़ाज़त की है।"

"लेकिन मैंने तुम्हें बेजान समझकर यहाँ खड़ा किया था और बेजान चीज़ का कोई हक़ नहीं। यह तुम्हारे हाथ में दराँती कहाँ से आ गयी?"

बिजूखा ने जैसे अट्टहास किया – "बहुत भोले हो तुम होरी काका। ख़ुद ही मुझसे बातें कर रहे हो और मुझको बेजान भी समझते हो?"

"लेकिन तुमको यह दराँती और ज़िन्दगी किसने दी? मैंने तो नहीं दी थी।"

"यह मुझे आप से आप मिल गयी। जिस दिन तुमने मुझे बनाने के मक़सद से बाँस की फाँकें चीरी थीं, अंग्रेज़ शिकारी के फटे पुराने कपड़े लाये थे। घर की बेकार हाँडी पर मेरी आँखें, नाक, कान और मुँह बनाया था – उस दिन इन सब चीज़ों में ज़िन्दगी कुलबुला रही थी और यह सब मिलकर मैं बना और मैं फ़सल पकने तक यहाँ खड़ा रहा और एक दराँती मेरे सारे वजूद में आहिस्ता–आहिस्ता निकलती रही – और जब फ़सल पक गयी – वह दराँती मेरे हाथ में थी। लेकिन मैंने तुम्हारी अमानत में छेद नहीं किया। मैं आज के दिन की प्रतीक्षा करता रहा और आज जब तुम अपनी फ़सल काटने आये हो, मैंने अपना हिस्सा काट लिया, इसमें बिगड़ने की क्या बात है।"

बिजूखा ने आहिस्ता–आहिस्ता सब कहा – ताकि उन सबको उसकी बातें अच्छी तरह समझ में आ जायें।

"नहीं ऐसा नहीं हो सकता। ये सब साज़िश है। मैं तुम्हें ज़िन्दा नहीं मानता, ये सब छलावा है, धोखा है। मैं पंचायत से इसका फ़ैसला कराऊँगा। तुम दराँती फेंक दो। मैं तुमको एक तिनका भी ले जाने नहीं दूँगा"

होरी चीख़ा और बिजूखा ने मुस्कुराते हुए दराँती फेंक दी।

गाँव के चौपाल पर पंचायत लगी। पंच और सरपंच सब मौजूद थे। होरी अपने पोते–पोतियों के साथ बीच में बैठा था। उसका चेहरा मारे ग़म के मुर्झाया हुआ था।

उसकी दोनों बहुएँ दूसरी औरतों के साथ खड़ी थीं और बिजूखा का इन्तज़ार था। आज पंचायत को अपना फ़ैसला सुनाना था। मुक़दमे के दोनों पक्ष अपना–अपना बयान दे चुके थे।

आख़िर दूर से बिजूखा आहिस्ता–आहिस्ता आता हुआ दिखायी दिया। सबकी नज़रें उस तरफ़ उठ गयीं। वह वैसे ही मुस्कुराता हुआ आ रहा था। जैसे ही वह चौपाल में दाख़िल हुआ सब ग़ैर इरादी तौर पर उठ खड़े हुए और उनके सिर सम्मान में झुक गये। होरी यह दृश्य देखकर तड़प उठा। उसे लगा जैसे बिजूखा ने सारे गाँव का जमीर ख़रीद लिया है? पंचायत का इन्साफ़ ख़रीद लिया है। वह तेज़ पानी में बेबस आदमी की तरह हाथ–पाँव मारता महसूस करने लगा।

आख़िर सरपंच ने अपना फ़ैसला सुनायाँ होरी का सारा वजूद काँपने लगा। उसने पंचायत के फ़ैसले को क़बूल करते हुए फ़सल का चौथाई हिस्सा बिजूखा को देना मंज़ूर कर लिया और फिर खड़ा होकर अपने पोतों से कहने लगा।

"सुनो यह शायद हमारी ज़िन्दगी की आख़िरी फ़सल है। अभी थल खेत से कुछ दूरी पर है। मैं तुम्हें नसीहत करता हूँ। अपनी फ़सल की हिफ़ाज़त के लिए फिर कभी बिजूखा न बनाना। अगले बरस जब हल चलेंगे, बीज बोया जायेगा और बारिश का अमृत खेत से कोंपलों को जन्म देगा तो मुझे एक बाँस पर बाँधकर खेत में खड़ा कर देना। बिजूखा की जगह मैं तब तक तुम्हारी फ़सलों की हिफ़ाज़त करूँगा जब तक थल आगे बढ़कर खेत की मिट्टी को निगल नहीं लेगा और तुम्हारे खेतों की मिट्टी भुरभुरी नहीं हो जायेगी। मुझे वहाँ से हटाना नहीं – वहीं रहने देना। ताकि जब लोग देखें तो उन्हें याद आये कि बिजूखा नहीं बनाना – कि बिजूखा बेजान नहीं होता – आप से आप उसे ज़िन्दगी मिल जाती है और उसका वजूद उसे दराँती थमा देता है। और फ़सल के एक चौथाई पर उसका अधिकार हो जाता है।"

होरी ने कहा और फिर आहिस्ता–आहिस्ता अपने खेत की तरफ़ बढ़ा। उसके पोते और पोतियाँ उसके पीछे थे और फिर उसकी बहुएँ और उनके पीछे गाँव के दूसरे लोग सिर झुकाये हुए चल रहे थे।

खेत के क़रीब पहुँचकर होरी गिरा और ख़त्म हो गया। उसके पोते–पोतियों ने उसे बाँस से बाँधना शुरू किया और बाक़ी के सब लोग यह तमाशा देखते रहे। बिजूखा ने अपने सिर पर रखा शिकारी टोपा उतारकर सीने के साथ लगा लिया और अपना सिर झुका दिया।

सवा नैज़े पे सूरज

आबिद सुहैल

मेरी बड़ी बेटी सामने खड़ी मुस्कुरा रही थी। मैंने पूछा, "खेल चुकीं?"

"क्या खेलें?" उसने दोनों हाथ उठाकर हवा में उछाल दिये?

"कैरम क्यों नहीं खेलती?"

"आप कहेंगे, तुम लोग शोर करते हो? फिर शिगूफ़ा खेलने भी नहीं देती। सब गोटें गड़बड़ कर देती है। ख़ुद तो खेलना आता नहीं, हमें भी तो नहीं खेलने देती।"

"बच्ची है।" मैंने कहा "अपनी छोटी बहन का ख़याल तो करना ही चाहिए।" मैंने अपने हिसाब से सारा झगड़ा चुका दिया।

"तो हम कौन से बूढ़े हो गये हैं, हम भी तो बच्चे हैं", फौजिया ने सादगी और भोलेपन से कहा।

मैंने मुस्कुराकर उसकी तरफ़ देखा। सच, वह भी तो अभी बच्ची ही थी। उससे यह उम्मीद करना कि छोटे भाई-बहनों के झगड़े चुकाये, छोटी बहन कैरम की गोटों को खेल के दरम्यान बार-बार बिगाड़ दे तो ग़ुस्सा होने के बजाय उन्हें फिर से अपनी जगह रखकर उसे समझाये और मनाये – उसके साथ ज़रा ज़्यादती ही थी, इसीलिए मैंने कहा, "तो तुम दोनों लूडो क्यों नहीं खेलते?"

"सुबह तो खेला था।"

"तो और खेलो"

"और क्या खेलें?" वह भिनभिनाई, "सुबह जब सैफ़ हारने लगे तो ख़फ़ा होकर अलग बैठ गये। बोले आप हमेशा हरा देती हैं, ज़रूर बेईमानी करती हैं।"

"तो ऐसा करो" मैंने एक तरक़ीब सोची – "ख़ुद तो चार गोटों से खेलो और उसे दो गोटों से खेलने दो।"

"उससे क्या होगा?" फ़ौज़िया ने पूछा।

"होगा यह कि तुम अच्छा खेलती हो, तुम तो जीतोगी ही। इस तरह मुमकिन है, कभी सैफ़ भी जीत जाये, उसकी भी ख़ुशी पूरी हो जायेगी।"

"इसमें अच्छा खेलने की कौन-सी बात है" उसने कहा, "यह तो क़िस्मत की बात है, पासे में जो भी नम्बर आ जाये – बड़े छोटे-से उसको क्या मतलब है?"

"फिर भी"

"फिर भी क्या अब्बू – वह पासा डालें तो गिनकर उनकी गोटें भी आगे बढ़ाओ। इसका भी ख़याल रखो कि उनकी गोट न पिटने पाये, उस पर भी हार जायें तो मुँह फुलाकर बैठ जायें।"

सच पूछिये तो फ़ौज़िया की दलील में वज़न था और मैं सोच ही रहा था कि क्या जवाब दूँ कि इतने में सैफ़ मियाँ दूसरे कमरे से आ गये। उनकी आँखों में आँसू थे जो मुझे देखते ही बह निकले। फ़ौज़िया ने जब दलील को आँसुओं से हारते देखा तो वह ख़ुद भी रोने लगी।

थोड़ी देर बाद तीनों भाई-बहन फिर एक जगह मिलजुलकर खेलने लगे। खिड़की से झाँककर मैंने देखा तो आँगन के दूसरी तरफ़ किचन के पास वाले दालान में उन खिलौनों की, जो इम्तहान ख़त्म होने के बाद फिर बच्चों के क़ब्ज़े में आ गये थे, बारात सजी हुई थी। छोटी-छोटी ईंटों को चूल्हा बनाया गया था। जिस पर एक छोटी-सी पतीली में खाना पक रहा था। सामने गुड्डे-गुड़ियों का सोफ़ा-सेट सज़ा हुआ था। बीच में एक छोटी-सी मेज़ रखी थी। सोफ़े पर आमने सामने गुड्डे-गुड़िया बैठे हुए थे। उनके सामने मेज़ पर टीन की फूलदार प्लेटें रखी थीं। जिनमें बिस्कुट और ककड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े रखे थे। टीन की रंगीन केतली और चीनी की नन्ही-नन्ही प्यालियाँ-तश्तरियाँ करीने से मेज़ पर सजी थीं, फौजिया ने पतीली पर से ढक्कन हटाकर चम्मच से एक आलू निकाला और उसे दो उँगलियों से दबाकर देखा और बोली, "अभी कच्चे हैं," तो शिगूफ़ा ने गुड्डे-गुड़ियों की तरफ़ देखकर कहा,

"अभी खाने में थोड़ी देर है, तब तक आप लोग नाश्ता कीजिए।" मैं अपनी हँसी बमुश्किल ज़ब्त कर सका। वो अपने खेल में इस तरह खोये हुए थे कि उन्हें इस बात का अन्दाज़ा भी न हुआ कि मैं उन्हें देख रहा हूँ वरना फ़ौज़िया वहीं से कहती,

"अब्बू अल्लाह आप अन्दर जाइये, हम तो आपका खेल नहीं देखते।" मैं मुतइमइन होकर कमरे में चला आया। बीवी अपनी किसी रिश्तेदार के यहाँ गयी हुई थी जो यकायक बहुत बीमार हो गयी थीं। उस घर में दो बच्चों को खसरा भी निकल आया था इसलिए बच्चों को वहाँ नहीं ले गयी थीं। मेरे लिए तीनों बच्चों की अकेले देखभाल का यह पहला तजुर्बा था। इसीलिए शुरू में तो घबड़ाया था, कुछ उलझा भी था लेकिन अब ऐसा लग रहा था कि मेरी परेशानी बिला सबब थी। वैसे तो बीवी को गये अब तीन घण्टे हो चुके थे। उन्हें आने में अब ज़्यादा देर नहीं है।

यह सोचकर मैंने पलंग पर दराज होकर अख़बार पढ़ना शुरू कर दिया। अभी मैं बमुश्किल दो ही तीन चीज़ें पढ़ सका था कि सैफ़ मियाँ रोते हुए आये।

"अब्बू गुड़िया आपा बड़ी हैं अपनी गुड़िया को दो-दो प्यालियाँ चाय पिलाती हैं, जब मैंने अपने गुड्डे के लिये दूसरी प्याली चाय बनाने को कहा तो बोली जानते हो शक्कर कितनी महँगी है। आप तो कल कह रहे थे कि शक्कर सस्ती हो गयी है।"

मैंने इस बार भी हँसी मुश्किल से रोकी। फिर मैंने फ़ौज़िया को आवाज़ दी – "फ़ौज़िया"

"जी अब्बू"

"सुनो"

"आयी" कहते हुए वह आ बिराजी।

"क्यों जी तुम सैफ़ के गुड्डे के लिए चाय की दूसरी प्याली क्यों नहीं बना देतीं?"

"अब्बू आप जानते नहीं, यह बड़े हज़रत हैं, पहले बोले हमारा गुड्डा बिस्कुट और ककड़ी ज़्यादा खायेगा, उसे भूख लगी है। तुम अपनी गुड़िया को दो प्याली चाय पिला देना। मैंने बिस्कुट और ककड़ी अपनी गुड़िया को ज़रा-ज़रा-सी खिलायी, बाक़ी सब तो इनके गुड्डे को दे दिया, अब चाय भी दूसरी प्याली माँग रहे हैं।"

"लेकिन गुड्डे-गुड़िया तो खाते नहीं, वो बिस्कुट और ककड़ी हुए क्या?" मैंने पूछा।

"हुए क्या? ख़ुद खा गये" फ़ौज़िया बोली।

"तुमने भी तो दूसरी प्याली चाय पी ली – और बिस्कुट ककड़ी भी तो खायी थी तुमने" – सैफ़ रो दिया।

उसी क्षण शिगूफ़ा एक हाथ में खिलौने वाली तश्तरी, प्याली और दूसरे हाथ में बिस्कुट और ककड़ी के दो छोटे-छोटे टुकड़े लिये कमरे में दाख़िल हुई। वह इस तरह सँभल-सँभलकर चल रही थी कि अगर ज़रा भी तेज़ी से चली तो चाय की प्याली छलक जायेगी।

"अब्बू यह आपका हिस्सा है।"

उसने धीरे से कहा और बहुत सँभल के प्याली और तश्तरी तख़्त पर रख दी। छोटे-से टीन के चमचे से प्याली में, जो बिल्कुल ख़ाली थी, शक्कर चलाने लगी।

"भई इसमें चाय तो है ही नहीं," मैंने कहा,

"झूठ-मूठ" कहकर उसने प्याली मेरे मुँह से लगा दी।

"बड़े मज़े की है," मैंने कहा तो फ़ौज़िया भी मुस्कुरा दी, लेकिन मुझे अपनी तरफ़ घूरता देखकर उसने मुँह दूसरी तरफ़ कर लिया। सैफ़ अब भी रुआँसे थे।

असल में ये लोग सुबह से खेलते-खेलते थक चुके थे, आख़िर खेलने की भी हद होती है, स्कूलों में गर्मियों की छुट्टियाँ हुए पन्द्रह-बीस दिन हो चुके थे। शुरू में तो इन लोगों ने ख़ूब मज़े लिये, रंग-बिरंगी, हिन्दी, उर्दू और अंग्रेज़ी की चित्रकथाएँ जो मैंने मँगाकर रखी थीं, उन्हें एक-दो बार नहीं चार-चार बार पढ़ डाला। फिर कई दिन बग़ैर लड़े-झगड़े खेलते रहे। अब कई दिन से मुझसे रोज़ पूछा जा रहा था कि स्कूल खुलने में कितने दिन बाक़ी हैं, और हर खेल का ख़ात्मा भी लड़ाई पर हो रहा था।

एकदम मुझे ख़याल आया कि पास वाले मकान की बच्ची नाजो बहुत दिनों से नज़र नहीं आती और यह लोग भी उसके यहाँ नहीं गये। मैंने कहा, "अब तुम लोग नाजो के साथ नहीं खेलते।"

"जब से दंगा हुआ है, उसकी दादी आने ही नहीं देती हमारे यहाँ", फ़ौज़िया ने बताया।

"तो तुम लोग चले जाया करो।"

"अम्मी ने मना कर दिया है।"

ख़ाली चर्खी हाथ में थी और पतंग आसमान पर – मेरी समझ में कुछ नहीं आया तो मैंने कहा, "अच्छा अब तुम लोग सो जाओ।"

"अम्मी कब आयेंगी?" शिगूफ़ा ने पूछा।

"अब आती ही होंगी?" मैंने तसल्ली दी।

"जब अम्मी आ जायेंगी, तब सोयेंगे मज़े से।"

"नहीं – " मैंने नहीं की ई ज़रा खींचकर बनावटी ग़ुस्से से कहा।

"बस लेट जाओ, लू चलने लगी है, अब दालान में कोई नहीं खेलेगा।"

मेरे बदले हुए तेवर देखकर तीनों लेट गये, फ़ौज़िया और सैफ़ तख़्त पर और शिगूफ़ा मेरे पास मसहरी पर।

"आँखें बन्द" मैंने कहा तो तीनों बच्चों ने आँखें बन्द कर लीं और मैं फिर अख़बार पढ़ने लगा।

थोड़ी देर बाद खुसुर-पुसुर की आवाज़ सुनकर मैंने अख़बार आँखों के सामने से हटाया तो फ़ौज़िया और सैफ़ शरारत भरी नज़रों से मेरी तरफ़ देख रहे थे।

"सो जाओ – " मैंने ज़रा सख़्ती से कहा।

दोनों ने ख़ूब कसकर आँखें बन्द कर लीं लेकिन शरीर मुस्कुराहट उनके चेहरों पर अब भी खेल रही थी। फिर मैं अख़बार पढ़ने लगा और न जाने कब मेरी आँख लग गयी।

थोड़ी देर बाद मेरी आँख खुली तो तख़्त ख़ाली था। मसहरी पर शिगूफ़ा भी न थी। मैं कुछ देर तक इसी तरह लेटा रहा। शायद इसी इन्तज़ार में कि किसी की आवाज़ सुनायी दे तो मैं बुलाऊँ। लेकिन न किसी बच्चे की आवाज़ सुनायी दी, न

यह अन्दाज़ा हुआ कि वह कहाँ हैं। मैं धीरे-धीरे बिस्तर से उठा। सामने वाला दालान ख़ाली पड़ा था, खिलौने सोफ़ा-सेट सब इसी तरह सजे थे। अब मुझे ज़रा तशवीश हुई। लेकिन सदर दरवाज़ा अन्दर से बन्द देखकर मेरी तशवीश कुछ कम हुई। दूसरे कमरे का दरवाज़ा बन्द था। मैंने दराज से झाँका, तीनों बच्चे कमरे में मौजूद थे।

शिगूफ़ा फ़र्श पर चित्त पड़ी थी। उसका कुर्ता ऊपर तक उठा था और पेट पर पट्टी बँधी थी। जिसमें से ख़ून के छींटें झाँक रहे थे। मैं घबड़ा गया लेकिन पास वाली मेज़ पर लाल रोशनाई की दावात उल्टी पड़ी और सारा मेज़पोश रंगा देखकर मेरी घबड़ाहट तो दूर हो गयी लेकिन मामला क्या है, यह मेरी समझ में नहीं आया। शिगूफ़ा के पास ही तरकारी काटने वाली छुरी एक फटे से कपड़े पर रखी हुई थी, कपड़ा जगह-जगह से सुर्ख़ हो गया था। सैफ़ लकड़ी की एक खपच्ची जिसके एक सिरे पर कपड़ा लिपटा हुआ था, हाथ में पकड़े खड़ा हुआ था और फ़ौज़िया से कह रहा था –

"मिट्टी का तेल तो स्टोव में है लेकिन स्टोव मिल ही नहीं रहा हैं"

"वहीं होगा किचन में, आलमारी के नीचे देखो"

"अच्छा" कहकर सैफ़ ने दरवाज़ा खोला तो मुझे देखकर पहले तो हड़बड़ाये और फिर फ़ौरन ही कमरे में पलट गये। मैं भी कमरे में दाख़िल हो गया। मुझे देखकर शिगूफ़ा भी फ़र्श पर से उठ खड़ी हुई।

"यह क्या हो रहा है?" मैंने पूछा।

फ़ौज़िया ने मेरी तरफ़ देखा और पलक झपकाये बग़ैर बोली, "हम लोग शिया-सुन्नी लड़ाई का खेल खेल रहे हैं।"

काले नाग के पुजारी

सलाम बिन रज़्ज़ाक़

शहर के सारे फाटक बन्द हो चुके थे। सिक्योरिटी टावर्स पर स्याह वर्दी वाले सिपाही पहरा दे रहे थे। उनके लम्बे-लम्बे नैजों की नोकें आसमान की तरफ़ उठी हुई थीं। कुछ सिपाही अपने-अपने चिल्लों पर तीर चढ़ाये चौकस निगाहों से चारों तरफ़ का जायजा ले रहे थे, अगर उन्हें कोई भी जानदार शय चहारदीवारी या दरवाज़े की तरफ़ भागती दिखायी देती तो फ़ौरन दो-चार तीर एक तेज़ सनसनाहट के साथ चिल्लों से निकलते और भागने वाले व्यक्ति के जिस्म में पैबस्त हो जाते। अगर कोई शख़्स सख़्त जान होता और तीरों की चपेट से बच जाता तो शहर के फाटकों पर खड़े सिपाही अपने बड़े-बड़े जाल उस पर फेंकते और उसे फ़ौरन गिरफ़्तार करके एक ख़ास क़िस्म के बोरे में बन्द कर देते और वह बोरा किसी गोपन स्थान की तरफ़ रवाना कर दिया जाता। शहर की सड़कें सुबह से शाम तक स्याह पोश सिपाहियों के बूटों की खट-पट से गूँजती रहतीं और अजीब रहस्यमयी तरह की फुँकारे फ़िज़ाँ में सरसराती रहतीं। जैसे हवाएँ किसी भीतरी तकलीफ़ से सिसकियाँ भरती गुज़र रही हों। एक अजीब मातमी क़ैफ़ियत शहर के विस्तार पर छायी हुई थी। फरार होने के सारे रास्ते बन्द थे।

दास्तान गो बूढ़ा एक क्षण को रुका। ट्रेन अपनी पूरी रफ़्तार से आगे बढ़ रही थी। डिब्बे में सिर्फ़ सात मुसाफ़िर बाक़ी रह गये थे और बूढ़ा दास्तान गो अपने रहस्यमय वजूद की बिना पर प्राचीन समय की कहानियों का पात्र लग रहा था।

मुसाफ़िरों की ख़ौफ़ व हैरत से फैली हुई आँखें बूढ़े के झुर्रियों भरे चेहरे पर टिकी थीं। बूढ़ा चन्द लम्हों तक उसी तरह ख़ामोशी से खिड़की के बाहर अँधेरे में घूरता रहा, फिर खँखारकर बोला। "शहर में सिर्फ़ दो क़िस्म के लोग रहते थे। एक वो जो काले नाग के पुजारी थे और दूसरे वो जो सिर्फ़ काले नाग के लिए चारे के तौर पर इस्तेमाल होते थे। काले नाग के पुजारी मज़बूत फ़ौलादी दीवारों के पीछे बड़ी सुरक्षित और सुकूनभरी ज़िन्दगी गुज़ार रहे थे जबकि बाहर लोगों की ज़िन्दगी अजाब

बनी हुई थी।"

सड़कें, फुटपाथ और गलियाँ हर जगह सड़े-गले इन्सानी जिस्मों के ढेर पड़े हुए थे, जो महज इसलिए ज़िन्दा मालूम होते थे कि अभी उनकी साँस चल रही थी। लोग हर वक़्त जनाज़े और अर्थियाँ उठाये जुलूस की शक्ल में सड़कों पर से गुज़रते हुए नज़र आते। झुकी हुई गरदनें और लटके हुए चेहरे लिये लोग धीरे-धीरे इस तरह क़दम उठाते, जैसे उन्हें मौत की सज़ा सुनायी गयी हो। यह सिलसिला दिन रात जारी रहता। शहर की सारी सड़कें क़ब्रिस्तान और श्मशानों पर जाकर ख़त्म हो जाती थीं, जिनके फाटकों पर बड़े अक्षरों में "स्वागतम्" लिखा होता था। बाज़ारों और दुकानों में कटे-फटे इन्सानी अंग सजाये जाते थे। चायख़ानों में ख़ून से भरी प्यालियाँ छलछलाती और खनकती रहती थीं। दवाई और इंजेक्शनों की हर शीशी पर लाल रंग में लिखा होता "मौत"।

सबकुछ इस तरह उलट-पलट गया था कि लोग हमेशा यह महसूस करते रहते जैसे वो सड़कों पर सिर के बल चल रहे हों। लोग जब ज़िन्दगी के अजाब को झेलते-झेलते थक जाते तो सुकून की ख़ातिर ऐसी इबादतगाहों में पनाह लेते जहाँ सारे उसूल खण्डहर बन चुके थे और मेहराबों पर मकड़ियों ने जाले तान दिये थे। क़रीब-क़रीब सभी इन्सानों के मुँह पर स्याह पट्टियाँ बँधी हुई थीं। अगर दो-चार लोग कोशिश करके आपस में बातें भी करते तो उनकी गुफ्तगू कुछ इस तरह की होती –

"शब्दों के मलबे में अर्थ की तलाश बेमतलब है।"

"अर्थहीनता का ज़हर ज़िन्दगी के रग-रग में फैल चुका है।"

"सारे मूल्य सिर के बल खड़े हैं।"

"मनुष्य ने हमेशा नफ़रत बोई है, नफ़रत ही काटेगा।" इत्यादि।

दास्तान गो बूढ़ा यकबयक ख़ामोश हो गया।

डिब्बे में बैठे हुए लोग अपनी ही ख़ामोशी के बोझ तले दबे बूढ़े की तरफ़ उत्सुकता से देख रहे थे। जब थोड़ी देर तक बूढ़ा कुछ न बोला तो एक शख़्स ने भर्रायी हुई आवाज़ में पूछा।

"बाबा क्या ये सब आपने अपनी आँखों से देखा था?"

बूढ़े ने धीरे-धीरे गरदन उठायी। चन्द लम्हों तक उस शख़्स को ख़ाली-ख़ाली नज़रों से घूरता रहा, फिर बोला,

"हाँ, मैंने सबकुछ अपनी नज़रों से देखा था।"

बूढ़ा खिड़की से बाहर अँधेरे में नज़रें गड़ाये अपने-आप से बड़बड़ा रहा था।

"आज भी वो सारे दृश्य मेरी आँखों के सामने घूम जाते हैं। मैं देख रहा हूँ कि ट्रेन की पटरी पर यहाँ से वहाँ तक अनगिनत इन्सानों को लिटा दिया गया है। उनके हाथ पीठ पर बँधे हैं। आँखों पर पट्टियाँ कसी हुई हैं। इतने में स्याह रंग की

एक ट्रेन जिसके इंजन पर काले रंग की तस्वीर बनी है, दनदनाती हुई आती है और इन्सानी जिस्मों पर से इस तरह गुज़र जाती है कि तमाम इन्सान दो हिस्सों में तक़सीम हो जाते हैं और फिर यह होता है कि उनके कटे-फटे अंगों से ख़ून के फव्वारे फूट पड़ते हैं और ख़ून के एक-एक क़तरे से एक नया आदमी जन्म लेता है। इन्तेहाई लागर और मरा-मरा सा। देखते ही देखते एक तरफ़ से भीमकाय ट्रक धड़धड़ाते आ धमकते हैं, जिनमें वैसे ही स्याहपोश सिपाही तीर कमान और थैले लिये बैठे हैं जैसे क़िले की चहारदीवारी पर पहरा देने वाले थे। फिर वो लोग ट्रक में बैठे-बैठे ही एक अजीबोग़रीब छड़ी निकालते हैं जो मछली पकड़ने की बंसी से मिलती-जुलती है। उसके एक सिरे पर धागा लटक रहा है, जिसमें एक पुर्जा फँसा हुआ है। पुर्जे पर लिखा है, "ज़रूरत है"। पुर्जे की तहरीर अँधेरे में रौशनी की तरह चमकती है। लोग इस तहरीर को पढ़ते ही पुर्जे की तरफ़ लपकते हैं और जो भी उस पुर्जे को छूता है, उससे चिपक जाता है। फिर स्याहपोश सिपाही उन्हें पकड़कर अपने ख़ास क़िस्म के थैलों में बन्द कर देते हैं और थैला ट्रक में एक तरफ़ को लुढ़का देते हैं। जब ट्रक भर जाता है तो ड्राइवर उसे एकदम से स्टार्ट करके लोगों की भीड़ को रौंदता-कुचलता आगे बढ़ जाता है। दर्दनाक चीख़ों से चारों दिशाएँ काँपने लगती हैं।"

बूढ़ा एकबारगी चुप हो गया। पर लोगों से ज़्यादा देर तक चुप नहीं रहा गया। एक शख़्स ने विचलित होते हुए पूछा,

"वो ट्रक किसके होते थे?"

बूढ़े की सफ़ेद घनी पलकें आहिस्ता-आहिस्ता ऊपर को उठी और उसके होंठ हिले।

"उन ट्रकों पर इन्सानी खोपड़ी का निशान बना होता था और खोपड़ी के ऊपर काला नाग कुण्डली मारे बैठा रहता।"

"उन मरियल आदमियों को कहाँ ले जाया जाता था?"

"उन्हें लौह दीवारों के उस पार ले जाया जाता जहाँ काले नाग के पुजारियों का डेरा था। काले नाग के पुजारी सीलबन्द थैलियों को देखकर बहुत ख़ुश होते और ट्रक वालों को उनकी ख़िदमत के बदले क़ीमती तोहफ़े पेश करते। तोहफ़े लेकर ट्रक वाले तो लौट जाते। फिर काले नाग के पुजारियों के इशारे पर सीलबन्द थैले खोले जाते जिनमें से वही मरियल आदमी बाहर निकलते, जिन्हें देखकर काले नाग के पुजारी आनन्द से भर उठते। फिर उनके इशारों पर उनमें से एक-एक आदमी को सामने पिंजरे में ढकेल दिया जाता जिसमें एक भयानक काला नाग फुँकारता रहता। ज्यों ही मरियल आदमी को पिंजरे में फेंका जाता काला नाग उस आदमी पर टूट पड़ता और दिल दहला देने वाली चीख़ों से फ़िज़ाँ थर्राने लगती और काले नाग के पुजारी अपनी मोटी तोंदों पर हाथ फेरते बड़े सुकून से गरदन हिलाते रहते। गोया जो

कुछ हो रहा है वह उनकी इच्छा के एकदम अनुरूप था।"

काले नाग की फुँकारें तेज़तर होती जातीं। वह उछल-उछलकर उस मरियल आदमी की तरफ़ लपकता और अपनी तेज़ ज़हरीली ज़बान से उसके जिस्म के किसी न किसी हिस्से को चाटकर पलट जाता। रफ़्ता-रफ़्ता मरियल आदमी की चीख़ें मद्धिम पड़ जातीं। उसका मचलना-तड़पना भी बन्द हो जाता और उसके होंठों से कराहें निकलती रहतीं। काला नाग उसके जिस्म से बराबर ख़ून चूसे जाता फिर उसकी रफ़्तार भी सुस्त पड़ जाती। गालिबन उसका पेट भर चुका होता। फिर यों होता कि काला नाग कुण्डली मारकर एक तरफ़ बैठ जाता। अति सन्तुष्टि के नशे में उसकी आँखें बन्द हो जातीं। दूसरी तरफ़ उसका शिकार अब सिर्फ़ गहरी-गहरी साँसें लेता रहता। फिर काले नाग के पुजारी अपने ग़ुलामों को इशारा करते। ग़ुलाम मरियल आदमी के अर्द्धमुर्दा जिस्म को घसीटकर पिंजरे से बाहर निकालते और सड़क पर फेंक आते – जहाँ वह अपने ही जैसे हज़ारों लोगों की भीड़ में शामिल हो जाता।

इस खेल के बाद काले नाग के पुजारियों के चर्बीले चेहरे यातना देने की अपार ख़ुशी से तमतमाने लगते – उनकी आँखें उस शरीर बच्चे की तरह चमकने लगतीं, जिसने अभी-अभी अपनी गुलेल से किसी नन्ही-सी फाख़्ता को निशाना बनाया हो।"

इतना कहकर बूढ़ा फिर ख़ामोश हो गया। उसका चेहरा किसी पत्थर की सिल की तरह सख़्त और सपाट था। डिब्बे में बैठे लोगों का ख़ौफ़ कुछ और गहरा हो गया। एक शख़्स ने लरजती हुई आवाज़ में पूछा –

"बाबा, क्या उस शहर में कोई क़ानून नहीं था?"

"क़ानून?" बूढ़ा धीरे से बोला, "क़ानून हमेशा ज़बरदस्त की लाठी की तरह होता है। जिससे बलवान अपने से कमज़ोर लोगों को भेड़-बकरी की तरह हाँकता रहता है। उस शहर में भी सिर्फ़ काले नाग के पुजारियों का क़ानून चलता था, जिसकी हिफ़ाज़त स्याह पोशाक वाले सिपाही करते थे।"

"तो क्या वो करोड़ों लोग सड़कों और फ़ुटपाथों पर इसी तरह सिसक-सिसककर मरते रहे?"

"हाँ – मौत उनका मुक़द्दर बन चुकी थीं और ज़िन्दगी उनके लिए अजाब से कम नहीं थी। कभी-कभी वो मरियल और जर्जर हड्डियों के ढाँचे जत्था बनाकर काले नाग के पुजारियों के अड्डों पर धावा बोल देते थे मगर लौह दीवारों के पास ड्यूटी दे रहे स्याहपोश सिपाही उन्हें बल्लम और बर्छियों पर रख लेते और खन्दकों को लाशों से पाट देते। फिर एक अर्से तक कोई उन फ़ौलादी दीवारों का रुख़ न करता।" बूढ़े ने ख़ामोश होकर अपने गिर्द बैठे हुए लोगों पर नज़र डाली। नीम उजाले-नीम अँधेरे में सभी के चेहरे ख़ौफ़ व दहशत से पीले पड़ गये थे। बूढ़ा थोड़ी

देर तक ग़ौर से एक-एक चेहरे को देखता रहा, फिर धीरे से बोला,

"मगर काले नाग के पुजारियों का कारोबार ज़्यादा अर्से तक नहीं चल सका और वो एक दिन ख़ुद भी काले नाग का शिकार हो गये।"

"क्या?" डिब्बे में बैठे लगभग सभी लोग ख़ुशी से चीख़ पड़े? "काले नाग के पुजारी मारे गये!"

"हाँ" – बूढ़े दास्तानगो की रहस्य भरी भारी आवाज़ किसी अन्धे कुएँ की प्रतिध्वनि की तरह सुनायी दी।

"काला नाग शहर के सारे लोगों का ख़ून पी चुका था और उसकी प्यास दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी, फिर यह हुआ कि एक दिन स्याह वर्दी वाले सिपाही काले नाग के लिए ताजे मनुष्यों का शिकार न जुटा सके। तब काले नाग ने अपनी राक्षसी प्यास से परेशान होकर अपने पुजारियों पर हमला कर दिया और अपने ज़हरीले दाँत उनकी गरदनों में गाड़ दिये। पुजारी हाथ-पैर पटककर छटपटाते रहे। काला नाग उनका लहू पीता रहा। फिर एक अजीब बात यह हुई कि पुजारियों की मौत के बाद काला नाग भी फ़ौलादी दीवारों से अपना सिर पटक-पटककर ख़त्म हो गया। इस तरह उस शहर के करोड़ों लोगों को इस भयानक खेल से निजात मिल गयी।"

बूढ़ा इतना कह पाया था कि ट्रेन की तेज़ सीटी सुनायी दी और सन्नाटे का कलेजा दूर तक छिदता चला गया। गाड़ी किसी स्टेशन पर रुक रही थी। बूढ़ा चौंककर खड़ा हो गया।

"ओहो मुझे इसी स्टेशन पर उतरना है।"

उसने जल्दी से अपना मैला झोला बग़ल में दबाया और डिब्बे में बैठे हुए लोगों से रुख़सत लेकर प्लेटफार्म पर उतर गया। मुसाफ़िरों के चेहरों पर दोबारा ख़ुशी और सन्तोष की लहर दौड़ गयी। वो लोग आपस में बूढ़े की दास्तान पर विचार-विमर्श करने लगे।

मैं चुपके से उठा और उस बूढ़े के पीछे ही गाड़ी से नीचे उतर गया।

बाहर चारों तरफ़ सन्नाटा था। स्टेशन की इमारत और प्लेटफार्म, यहाँ से वहाँ तक अँधेरे में डूबे हुए थे। बूढ़ा सिर झुकाये एक तरफ़ को चला जा रहा था। मैंने झिझकते हुए बूढ़े को आवाज़ दी, "बाबा..."

बूढ़ा ठिठका – ठिठककर मुड़ा – मैं लम्बे-लम्बे डग भरता उसके क़रीब पहुँचकर रुक गया। फिर उसकी चुभती हुई निगाहों से बचने के लिए उसके मैले झोले पर नज़रें गड़ाये हुए पूछा –

"दरअसल बात यह है बाबा, क्या काले नाग के पुजारी सचमुच मारे गये?"

बूढ़े ने चौंककर गरदन उठायी। चन्द लम्हों तक मुझे घूरता रहा फिर थोड़े अन्तराल के बाद मुझसे पूछा –

"तुम्हारा क्या ख़याल है?"

"मुझे आपके आख़िरी बयान पर सन्देह है?"

अचानक बूढ़े का चेहरा सफ़ेद पड़ गया। उसकी आँखों से बेपनाह पीड़ा झलकने लगी। उसने गहरी निराशा से जवाब दिया।

"तुम्हारा सन्देह सही है, मैंने सिर्फ़ डिब्बे में बैठे लोगों का डर दूर करने के मक़सद से झूठ बोला था। वरना हकीकत में काले नाग के पुजारी आज भी ज़िन्दा हैं और उनका ख़ूनी कारोबार उसी तरह जारी है।"

इतना कहकर वह बूढ़ा मुड़ा और धीरे-धीरे क़दम उठाता एक तरफ़ को चलने लगा।

मैं अँधेरे में ग़ायब होती उसकी रहस्य भरी छाया को घूरता रहा।

मैंने ग़ौर किया – फ़िज़ाँ में भयावह फुँकारें अब भी सरसरा रही थीं।

नीरो

साजिद रशीद

आग दिलों और घरों में दब चुकी है मगर धुआँ अब भी उठ रहा है। फ़ौज गश्त लगा रही है। हालात क़ाबू में हैं और शहर में कर्फ़्यू लगा हुआ है।

आठवीं मंज़िल की खिड़की से शहर कितना शान्त नज़र आता है। दूर तक धुन्ध लैम्प-पोस्ट ऐसे सिर झुकाये खड़े हैं जैसे सारी घटनाओं के लिए वे स्वयं ज़िम्मेदार हों। सड़कें बेजान और गलियाँ वीरान पड़ी हैं। सन्नाटा इतना गहरा है कि नीचे गश्त करते फ़ौजी जवानों के बूटों की धमक, आठवीं मंज़िल के इस फ़्लैट की बन्द खिड़की के शीशों से टकरा रही है। शीशे के दूसरी ओर वे चारों नौजवान सोफ़ों पर पसरे हुए हैं। उनके बीच तिपाई है। तिपाई के नीचे बीयर और स्कॉच की ख़ाली बोतलें पड़ी हैं। तिपाई पर एक अधख़ाली बोतल और बियर से भरा हुआ मग रखा है। पण्डित रविशंकर अमेरिका में प्रोग्राम दे रहे हैं इसीलिए 'अकाई' के स्टीरियो पर 'बोनी एम' गला फाड़ रहे हैं। तेज़ संगीत से दीवारें तक झनझना रही हैं और उन चारों के पैर संगीत की लय पर हिल रहे हैं।

"यार क्या गजब का संगीत है।" उनमें से एक, जिसकी हल्की-सी दाढ़ी है अपनी पतलून की क्रीज़ को ठीक करते हुए सिर हिलाकर बोला।

"अमेरिका से एक फ्रेण्ड ने प्रेजेण्ट में भेजा है यह रिकार्ड। बोनी एम का बिल्कुल लेटेस्ट रिकार्ड है।" वह जिसने जींस पहन रखी है रहस्योद्‌घाटन के अन्दाज़ में बोला।

"ओह आई सी" दाढ़ी वाले ने भवों को उचकाकर कन्धों को झटककर अमरीकन अन्दाज़ में कहा।

"यह अमेरिका और रूस की पालिटिक्स कोई नया मोड़ लेने वाली है। ये साले फिर एशियन कण्ट्रीज को लड़ायेंगे।" चश्मेवाले ने बियर पीते हुए अपनी चिन्ता व्यक्त की।

“छोड़ो यार, अपना एशियन कण्ट्रीज से क्या वास्ता है।” जींसवाले ने हाथ झटककर कहा। “हाँ तो मैं कह रहा था कि यह ‘बोनी एम’ का लेटेस्ट है। इसके बाद भी सुना है कि एक और मार्केट में आया है। मैं अपने फ्रेण्ड को ट्रंककाल करने वाला हूँ कि फ़ौरन भेज दे।”

“जब इसके बाद भी एक रिकार्ड मार्केट में आ चुका है तो फिर यह लेटेस्ट कैसे हुआ?” दाढ़ी वाले ने ठोड़ी खुजाकर आक्षेप किया।

“यार ऐट लीस्ट इण्डिया में तो लेटेस्ट है।”

“हाँ यार, यह साला इण्डिया तो बैलगाड़ी है। उधर फारेन में वीडियो आये ज़माना हो गया और इधर अभी तक कलर टी.वी. तक नहीं आया।” दाढ़ी वाले ने शिकायती स्वर में कहा।

“कुछ भी हो। मैं वीडियो ज़रूर मँगवाऊँगा।” जींसवाले ने फ़ैसलाकुन अन्दाज़ में कहा।

“अरे यार कोई प्राब्लम नहीं होगा। मेरा एक कजिन कस्टम में है।”

“हाँ यार, अपने देश में भ्रष्टाचार बहुत बढ़ गया है पुलिस तो पुलिस...।” इतना कहकर चश्मे वाले ने बियर की चुस्की ली।

“भ्रष्टाचार। यह तो अच्छी बात है। अपने को जो चीज़ ड्यूटी लगने के बाद डबल रेट में मिलती है वही कुछ दे दिलाकर अगर सस्ते में छूट जाती है तो बुरा क्या है? इट्स बेटर फार अस।” दाढ़ी वाले ने जोश में आकर वकालत की।

नीचे फ़ौज के जवान पूरी ज़िम्मेदारी से गश्त लगा रहे हैं। उनके भारी बूटों की आवाज़ सन्नाटे को तोड़-तोड़ देती है। जर्जर बिल्डिंगों की अँधेरी तंग कोठरियों जैसे घरों में लोग दुबके बैठे हैं। वे अपनी साँसों की आवाज़ तक पर चौंक पड़ते हैं।

“हा हा हा।” किसी अश्लील लतीफ़े पर उन यारों ने क़हक़हा लगाया।

“यार यह प्ले ब्वॉय के जोक साले एकदम नये होते हैं।” चौथा जो अब तक ख़ामोशी से पी रहा था हँसते हुए बोला। लतीफ़ा भी इसी ने सुनाया था।

“कमाल है यार, अपनी कण्ट्री कोई ओरिजनल चीज़ बना ही नहीं सकती। सोचने की बात है कि अभी तक अपने इधर एक गैस लाइटर तक नहीं बन सका है।” जींसवाले ने फिर मुँह बिचकाया।

“अरे यह क्या है, हमारे यहाँ का किसान अभी तक बैल और हल की जान को पड़ा हुआ है।” चश्मे वाले ने कहा, “किसानों को चाहिए कि...।”

“व्हाट नानसेंस यह बहन...गैस लाइटर से किसान का क्या लिंक है?” दाढ़ी वाले ने ‘डनहिल’ को लाइटर से सुलगाकर धुआँ बिखेरते हुए कहा।

“आजकल डनहिल का क्या रेट चल रहा है?” चौथे ने अपनी जेब से रॉथमैन्स का पैकिट निकालते हुए पूछा।

“बीस रुपया पैकिट।”

"साली पचास सरकारें बदल जायें, क़ीमतें गिरने वाली नहीं। बस बढ़ती ही चली जायेंगी।"

"आजकल मंत्रिमण्डल में फिर गड़बड़ चल रही है। अगले महीने तक...।" चश्मेवाले ने कहना चाहा।

"यार, इसके अन्दर का पत्रकार कभी चैन से नहीं बैठता।" चौथे ने कहा। "भाई, यह तुम्हारे अख़बार का ऑफिस नहीं है।"

"हाँ, यार यह अपने बीच बिल्कुल टेलीप्रिण्टर लगता है। खट-खट-खट दुनिया भर की ख़बरें उगलता रहता है।" दाढ़ी वाले की इस समीक्षा पर सबके सब खिलखिलाकर हँस दिये।

"प्लीज, डोंट डिस्कस पॉलिटिक्स", दाढ़ीवाले ने बेजारी से कहा।

"हॉल्ट" एक दहाड़ गूँजी है।

"ठाँय।" दूर कहीं गोली चली है। खपरैलों में सहमे कबूतर परों को फड़फड़ाकर उड़ गये हैं और कौवे शोर मचाने लगे हैं।

"लगता है कहीं गोली चली है।" चश्मे वाले ने बियर के मग को तिपाई पर रखते हुए कहा।

जींस वाले ने उठकर स्टीरियो का स्पूल बदला और "लव टू लव यू बेबी" की धुन पर स्वयं ही थिरकने लगा, और चौथा हिप पाकिट से माऊथआरॅगन निकालकर बजाने लगा।

"क्या सेक्सी आवाज़ है। अपनी ऊषा अय्यर भी इसका मुक़ाबला नहीं कर सकती है।" जींसवाले ने अपने गिलास में शराब उड़ेलते हुए कहा।

"अरे तुम भी किससे तुलना करने लगे। इसकी आवाज़ तो हेनरी मिलर के किसी भी उपन्यास पर भारी है।" दाढ़ी वाले ने आँखें नचाकर कहा।

"तुम हेनरी मिलर की क्या बात करते हो।" चौथे ने झुककर राजदाराना स्वर में कहा।

"कल मैंने हेराल्ड रॉबिन्स का एक उपन्यास पढ़ा। उसमें एक पेज का डिसक्रिप्शन ऐसा है कि मुर्दे को सुना दो तो वह भी जीने की आरजू करने लगे।"

"सच।" जींस वाले की आँखें चमक उठीं।

"बाई गॉड, ऐसा गजब का उपन्यास मैंने तो आज तक नहीं पढ़ा।"

"यार, तुम मुझे वह किताब कल ही ला दो।"

फ़ौजी जवानों ने ठोकरों और रायफ़लों के कुन्दों के वार से दरवाज़ा तोड़ा है और अब तक कमज़ोर-सा बूढ़ा उनके घेरे में खड़ा बार-बार अपने धुँधलाते चश्मे को साफ़ कर रहा है। कमरे में चारों ओर कपड़े और किताबें बिखरी पड़ी हैं।

"ग्रीज" के नये रिकार्ड के झनझनाते संगीत से कमरे की एक-एक ईंट जैसे काँप रही है। दीवार पर चिपके ट्रवोल्टा, ब्रूसली और एलविस प्रेस्ली जैसे उन्हें घूर

रहे हैं। सिगरेट का धुआँ कमरे में धीरे-धीरे भटक रहा है और वे चारों अब ताली की ताल पर नाच रहे हैं।

"सूट का मैंने बिल्कुल नया डिज़ाइन देखा है।" दाढ़ी वाले ने जींस वाले को सम्बोधित किया।

"कहाँ?" वह उत्सुकता से कुछ झुक गया।

"पिंकी कल न्यूयार्क का एक फ़ैशन मैगज़ीन लायी थी। उसी में देखा था। ब्यूटीफूल। बस जी चाहा तुरन्त सिलवा लूँ।"

"अभी पिछले हफ़्ते ही तो तुमने कोई नया सूट सिलवाया है न।" चश्मे वाले ने सिगरेट को ऐश्ट्रे में मसलते हुए कहा।

"हाँ यार, वह कपड़ा ठीक नहीं है। पैंट की फॉल ठीक से नहीं गिरती है।" चश्मे वाला शब्द "गिरती" पर चौंका और आँखें मिचमिचाकर बोला।

"यू नो "स्काई लैब" गिरने के बाद भी अमेरिका...।"

"यार, कभी-कभी लगता है कि यह पॉलिटिक्स पहनता, पॉलिटिक्स पीता और पॉलिटिक्स ओढ़ता है।" दाढ़ी वाले ने हँसकर चोट की।

"अब तुम ऐसा करो कि चुनाव लड़ ही लो।" जींस वाले ने चश्मे वाले से कहा, "डैडी हर चुनाव पर दूसरी पार्टियों को फण्ड तो देते ही हैं। तुम्हारे फण्ड में चार-छह हज़ार ज़्यादा दिलवा दूँगा।" वे सब ठहाका मारकर हँस पड़े।

मकान में घुसकर फ़ौजी जवानों ने लड़के पर हाथ डालना चाहा मगर वह पता नहीं कैसे इतने तनाव में साहस जुटाकर भाग निकला था। एक रायफ़ल के मुँह से शोला निकला और लड़का बिजली के खम्भे की धुँधली रोशनी के दायरे में उलटकर ढेर हो गया है। गाढ़ा लाल-लाल ख़ून सड़क पर फैलता जा रहा है।

"तुममें से किसी ने "रिटर्न ऑफ़ ड्रैगन" देखी?" चौथे ने पूछा।

"हाँ।" तीनों ने एक स्वर होकर कहा।

"मज़ा आ गया दोस्त। ब्रूस ली का जवाब नहीं।"

"क्या मर्द आदमी को मार डाला सालों ने।"

"मुझे तो इसके पीछे षड्यन्त्र नज़र आता है।"

"बिल्कुल षड्यन्त्र था।" और फिर चौथे ने ब्रूस ली के जन्म से लेकर हत्या तक की सारी कहानी बड़ी भावुक अन्दाज़ में सुना डाली। उन चारों के चेहरे ऐसे लटक गये जैसे ब्रूस ली से उनकी गहरी दोस्ती रही हो।

"अगर हत्यारों में से एक भी मिल जाये तो बास्टर्ड का कचूमर निकाल दूँ।" एक ने ग़ुस्से से नथुने फड़काते हुए कहा। उसकी आँखों में ग़ुस्से से शराब से या दुख से पानी तैरने लगा था।

गाढ़ा ख़ून सड़क पर फैलकर जम रहा है और वे उसे वहीं छोड़कर दूसरे संदिग्ध लोगों की खोज में निकल गये हैं। मृत्यु यातना में तड़पते उसके गले से ऐसी

खरखराहट निकल रही है जैसे वह कोई इन्सान नहीं, जिबह किया हुआ जानवर हो, ज़ोर-ज़ोर से साँस लेने के कारण नथुनों और मुँह से ख़ून उड़ रहा है।

"बहुत पी चुके अब रमी हो जाये।" चौथे ने अपना गिलास ख़ाली करके मेज़ पर पटकते हुए कहा।

"नहीं यार, बहुत अच्छी किक लगी है, रमी वमी ठीक से होगी नहीं।" जींस वाले ने सोफ़े पर फैलते हुए कहा।

"तुम पिछले सण्डे रेस कोर्स गये थे?" उसने चश्मे वाले को सम्बोधित किया जो सोफ़े पर ठोड़ी टिकाकर ऊँघने लगा था।

"हाँ", उसने पट से आँखें खोल दीं

"'खरतूम' का क्या रिजल्ट रहा?"

"चौथे नम्बर पर था शायद, मैंने तो "ब्लैक पैंथर" पर लगाया था।"

"कितना?"

"आठ सौ रुपए।"

"फिर?" वह कुछ आगे झुक आया।

"बस साला ज़रा-सा फ़ोटो फ़िनिश में मार खा गया।" चश्मे वाला अपनी रान पर हाथ मारकर बोला।

"ओह नो!"

"हाँ साले जॉकी ने हरामीपन किया था। दिखाने को तो वह घोड़े पर छड़ी बरसा रहा था लेकिन छड़ी घोड़े की गरदन पर पड़ने की बजाय उसकी अपनी पिण्डली पर पड़ रही थी।"

"बास्टर्ड। और तुम हार गये।"

चश्मे वाले का चेहरा तमतमा उठा।

"हाँ यार, वह आठ सौ तो हारा ही उधर आसपास जो लोग थे उनमें मैं ब्लैक पैंथर पर ढाई सौ रुपए की बेट लगा चुका था वे भी गये।"

सड़क पर एक जीप आकर रुकी। उनमें से तीन फ़ौजी जवान उतरे, बिजली के खम्भे से झड़ती रोशनी में मृत्युयातना में पड़े उस लड़के को देखा जिसके नथुनों और मुँह से अब भी ख़ून के छींटे उड़ रहे हैं। उन्होंने एक सरसरी नज़र उस पर डाली और सामने की एक अँधेरी गली में खो गये। उनके बूटों की धमक धीरे-धीरे डूब गयी... किसी औरत की तेज़ चीख़ सन्नाटे को किसी नये कपड़े की तरह चीरती चली गयी है।

"फिर तुमने क्या किया?"

"करता क्या टैक्सी करके चुपचाप घर चला आया।" चश्मे वाले ने खिसियानी हँसी के साथ उत्तर दिया।

"अरे तुम्हें तो उस हरामख़ोर जॉकी का मुँह तोड़ देना चाहिए था।" जींस वाले

ने तिपाई पर ज़ोर से मुक्का मारा। गिलास बज उठे। वह अपना हाथ सहलाते हुए बड़बड़ाने लगा।

ये आवाज़ें बन्द कमरे में भी चली आती है। दाढ़ी वाले ने चीख़ की गूँज पर बुरा-सा मुँह बनाते हुए कहा। "तुम्हें कम से कम इस कमरे को तो साऊण्ड प्रूफ करा लेना चाहिए।" तीनों ने उसका समर्थन किया।

बूटों की धमक पर रह-रहकर उभरने वाली चीख़ की गूँज ने ख़ामोशी में दरार डाल दी थी। वे चारों झल्लाकर उठे। अब नशा सिर चढ़कर बोल रहा था।

नीचे वह अब तक धुँधली रोशनी में पड़ा जिबह जानवर की तरह डकार रहा है।

जीप के ब्रेक चरचराए हैं। दो फ़ौजी जवान मुँह में सिगरेट दबाये धड़धड़ाकर उतरे हैं। और जीप झटके से निकल गयी है। उन्होंने सबसे पहले अपने सामने पड़ने वाले एक मरियल कुत्ते पर ठोकरों की बौछार कर दी है। कुत्ता टियाऊँ-टियाऊँ करता भागा जिस पर वे दोनों खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं।

वे चारों लिफ़्ट से आँधी की तरह नीचे आये और तूफ़ान की तरह जापानी टोयेटा कार में बैठकर "झन" से निकल आये। उन दोनों फौजियों की हँसी को ब्रेक लग गया। उन्होंने सिर्फ़ इतना देखा कि दो लाल बत्तियाँ दूर होती जा रही हैं। उनकी नज़रें फिर कुत्ते को खोजने लगीं।

वे हँस रहे थे, ताली बजाकर गा रहे थे और माउथ आर्गन बजा रहे थे। टोयेटा और नशा दोनों नब्बे की स्पीड में थे।

अचानक दाँयी-बाँयी गलियों से दो जीपों ने ब्रेक की चरचराहट से टोयेटा का रास्ता रोक लिया। जींस वाले ने इतनी सफ़ाई से ब्रेक लगाया कि जीपों से टकराने में बाल भर का फ़ासला रह गया। दोनों जीपों से फ़ौजी जवान रायफ़लें लिये खटाखट उतरे और टोयेटा को चारों ओर से घेर लिया। लैम्प पोस्ट की पीली कमज़ोर रोशनी में फ़ौजी उनके चेहरों को ठीक से नहीं देख पा रहे थे। एक ने जेब से टॉर्च निकालकर जलायी और रोशनी का दायरा टोयेटा में बैठे हुए उन चारों पर रेंगने लगा। उन्होंने खिड़कियों में सिर डाला और नाकें सिकोड़कर लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगे। उन चारों ने बुरा-सा मुँह बनाया और चौथे ने पतलून की जेब से कर्फ़्यू पास एक झटके से निकालकर टॉर्चवाले जवान की तरफ़ बढ़ा दिया। उन सबने एक साथ झुककर सरसरी अन्दाज़ में पास को देखा, टोयेटा को देखा, उनके अमरीकन तराश-खराश वाले कपड़ों को देखा और फिर रोशनी के दायरे में चमकती उनकी लाल आँखों में झाँककर टॉर्चवाला जवान बोला।

"सॉरी फॉर ट्रबल। बट इट्ज अवर ड्यूटी।" उन चारों ने लापरवाही से सिर हिलाया और टोयेटा को पीछे ले जाकर चक्कर काटा और "जूऊऊऊ" से धुआँ उड़ाते निकल गये।

"सर उनके पास कर्फ़्यू पास है तो क्या हुआ? इन हालात में...।"

एक जवान ने अपने अफ़सर से कहना चाहा।

"उन्हें इतनी गम्भीरता से मत लो। वे पिये हुए ज़रूर हैं लेकिन उनसे कोई नुकसान नहीं होगा।" अफ़सर ने इत्मीनान से मुस्कुराकर कहा और जेब से सिगरेट की पैकिट निकालकर जीप की ओर बढ़ गया।

वे चारों शहर को नंगा और आतंकित छोड़ आये थे। वे "हॉल्ट" की दहाड़, भारी बूटों की धमक और अँधेरे में बिजली की चमक जैसी चीख़ों से बहुत दूर निकल आये थे।

वह अब तक मृत्यु यातना में अपने नथुनों और मुँह से ख़ून के छींटे उड़ा रहा है। ख़ून सड़क पर फैलता जा रहा है।

जैसे-जैसे टोयेटा आगे बढ़ती शहर अपने में सिमटता चला जाता। सुबह के आसार थे। मगर आकाश में रोशनी का धुँधलका अभी फैला नहीं था। शहर में लैम्प पोस्ट अब भी क़तरा-क़तरा रोशनी टपका रहे थे, और वह चारों हँस रहे थे, सीटियाँ बजा रहे थे, तालियाँ पीट रहे थे, गाना गा रहे थे, और बियर के लम्बे-लम्बे घूँट भर रहे थे।

उन्होंने देखा एक दूध वाला साइकिल पर चला आ रहा है। साइकिल के कैरियर पर दूध के कैन टँगे हैं। उनकी आँखों में शरारत चमकी और जब टोयेटा दूध वाले के क़रीब पहुँची तो उन चारों ने ज़ोर-ज़ोर से "हू ऊऊ" की भयानक आवाज़ निकाली, दूध वाले का दिल जैसे उछल पड़ा। हाथ हैण्डिल पर और पैर पैडल पर काँपे और वह साइकिल लेकर सड़क पर आ गिरा। दूध के कैन गिरकर खुल गये। दूध वाले का सिर फट गया। काली सड़क पर दूध और ख़ून एक दूसरे में मिलकर दूर तक फैलते चले गये। वे खिड़की से सिर निकाल-निकालकर यह देखकर कहकहे लगाने लगे। किसी ने माउथऑर्गन छेड़ा तो किसी ने गाना शुरू कर दिया और दूर आतंक में सिमटा हथेली जैसा शहर भभककर जल उठा था और गोलियों की तड़तड़ाहट से सारा आकाश गूँज गया था। टोयेटा उनकी हँसी के साथ अँधेरे की ओर उड़ी चली जा रही थी।

ख़ालिद की ख़तना

ग़ज़नफ़र

जो तक़रीब (समारोह) टलता आ रहा था, आख़िर तय पा गया। तारीख़ भी सबको सूट कर गयी थी। पाकिस्तान वाले ख़ालू और ख़ाला भी आ गये थे और सउदी अरब वाले मामू और मुमानी भी। मेहमानों से घर भर गया था। भरा हुआ घर जगमगा रहा था। दरो दीवार पर नये रंगो रेग़न रौशन थे। छतें चमकीले काग़ज़ के फूल पत्तों से गुलशन बन गयी थीं। कमरों के फ़र्श आइना बने हुये थे। आँगन में चमचमाती हुई चाँदनी तन गयी थी। चाँदनी के नीचे साफ़ सुथरी जाज़िम बिछ चुकी थी।

बाहर के बरामदे में देगें चढ़ चुकी थी। बासमती चावलों की बिरयानी से ख़ुशबुएँ निकल रही थीं। कोरमे की देगों से गर्म मसालों की लपटें हवाओं से लिपटकर दूर-दूर तक फैल रही थीं।

धीरे-धीरे मुहल्ला-पड़ोस की औरतें भी आँगन में जमा हो गयीं। बच्चों की रेल पेल बढ़ गयी। रंग बिरंगे लिबास फ़िजा में रंग घोलने लगे। सोने चाँदी के गहने खन-खन, छन-छन बोलने लगे। परफ्यूम के झोंके चलने लगे। दिलो दिमाग़ में ख़ुशबुएँ बसने लगीं। मेकअप जलवा दिखाने लगा। चेहरों से रंगीन किरणें फूटने लगीं। अब्रक़ से सजी आँखों की झिलमिलाहटें झिलमिल करने लगीं। सुर्ख़-सुर्ख़ होंठों की मुस्कुराहटें खिलखिला पड़ीं। माहोल में रंग, नूर, निगहत तीनों रच बस गये। जगमगाता हुआ घर और जगमगा उठा।

अब्बू अम्मी बेहद ख़ुश थे कि ख़ुशियाँ सिमटकर उनके क़दमों में आ पड़ी थीं। दिलों में बेपनाह जोशो-ख़रोश था कि जोशे ईमानी उछालें मार रहा था। आँखों में नूर भरा हुआ था कि नूरे नज़र सुन्नते इब्राहीमी (पैग़म्बर इब्राहीम की परम्परा) से सज्जित होने जा रहा था। चेहरे पर आभा ही आभा थी कि लख़्ते जिगर (जिगर के टुकड़े) की मुसलमानी को ओज व चमक मिलने वाली थी। साँसों में केसर की सुगन्ध थी कि तमन्नाओं के चमन में बसन्त आ गया था।

तक़रीब का आख़िरी मरहला शुरू हुआ। मेहमान बरामदों व कमरों से

निकलकर आँगन में आ गये। चाँदनी के नीचे बैठे हुए लोग खड़े हो गये।

फ़र्श के बीचोबीच ओखली रख दी गयी। ओखली पर फूलदार चादर बिछ गयी। थाल ताज़ा फूलों के सेहरे से सज गया। मलमल का कढ़ा हुआ कुरता पैकेट से बाहर निकल आया।

बुज़ुर्ग नाई ने अपनी बुग़ची खोल ली, उस्तरा बाहर आ गया। कमानी तन गयी, राख की पुड़िया खुल गयी। ख़ालिद को पुकारा गया, मगर ख़ालिद मौजूद न था। बच्चों से पूछताछ की गयी। सबने नफ़ी (नहीं) में सिर हिला दिया। अब्बू अम्मी की फ़िक्र बढ़ गयी, तलाश जारी हुई। अब्बू और मैं ढूँढ़ते हुए कबाड़ वाली अँधेरी कोठरी में पहुँचे। टॉर्च की रौशनी में देखा तो ख़ालिद एक कोने में देर तक दौड़ाये गये किसी मुर्गे के तरह दुबका पड़ा था।

"ख़ालिद बेटे तुम यहाँ हो और सब लोग उधर तुम्हारा इन्तिज़ार कर रहे हैं। आओ चलो तुम्हारी मम्मी परेशान हो रही है।"

"नहीं अब्बू मैं ख़तना नहीं कराऊँगा।" ख़ालिद मुँह बिसोरते हुए बोला।

ख़ालिद से ख़तने की बात छिपायी गयी थी, मगर शायद कुछ देर पहले उसे किसी ने यह बात बता दी थी।

"ठीक है मत कराना, मगर बाहर तो आ जाओ।"

अब्बू ने बड़े प्यार से यक़ीन दिलाया। मगर ख़ालिद दीवार से इस तरह चिमटकर बैठा था। जैसे दीवार ने किसी शक्तिशाली चुम्बक की तरह उसे जकड़ लिया हो। हमने उसका एक हाथ पकड़कर बाहर खींचने की कोशिश की। मगर उसका दूसरा हाथ दीवार से इस तरह चिपका हुआ था जैसे वह कोई साँप हो, जिसका अगला हिस्सा बिल में जा चुका हो और दुम हमारे हाथ में। न जाने कहाँ से उस छोटे-से बच्चे में इतनी ताक़त आ गयी थी। बड़ी ज़ोर आवरी के बाद बहुत मुश्किल से उसे कोठरी से बाहर लाया गया।

"अम्मी-अम्मी मैं ख़तना नहीं कराऊँगा।" उसकी आँखों में आँसू आ गये।

"अच्छी बात है न कराना लेकिन यह नया कुर्ता तो पहन लो। देखो न सारे बच्चे नये-नये कपड़े पहने हुए हैं और यह देखों यह सेहरा कितना अच्छा है। तुम्हारे सिर पर बहुत सजेगा लो इसे बाँधकर दूल्हा बन जाओ। ये सब लोग तुम्हें दूल्हा बनाने आये हैं। तुम्हारी शादी भी तो होगी न..."

"अम्मी आप झूठ बोल रही हैं। मैं सब जानता हूँ मैं कुरता नहीं पहनूँगा। मैं सेहरा नहीं बाँधूँगा।"

"यह देखो, तुम्हारे लिये कितने सारे रुपये लाया हूँ," अब्बू ने कड़कड़ाते हुए दस-दस के ढेर सारे नोट ख़ालिद के आगे बिछा दिये।

आसपास खड़े बच्चों की आँखें चमक उठीं।

"अच्छा यह देखो मैं तुम्हारे लिए क्या लाया हूँ?" पाकिस्तान वाले खालू ने

इम्पोर्टेड टॉफ़ियों का डिब्बा खोल दिया।

बच्चों की ज़बानें होंठों पर फिरने लगीं। सउदिया वाले मामू आगे बढ़कर बोले।

"देखो ख़ालिद यह कार तुम्हारे लिए है, बग़ैर चाबी के चलती है, यूँ..."

ताली की आवाज़ पर कार इधर-उधर दौड़ने लगी। मगर ख़ालिद की आँखें कुछ न देख सकीं। उसकी नज़रें क़साब से डरे हुए किसी जानवर की तरह पुतली में सहमी हुई, स्थिर पड़ी रहीं। अब्बू, अम्मी, ख़ालू, मामू प्यार, पैसा, टॉफ़ी, कार सबकुछ देकर थक गये। ख़ालिद टस से मस नहीं हुआ।

झुँझलाकर अब्बू ज़बरदस्ती पर उतर आये, ख़ालिद की पैण्ट खोलकर नीचे खिसकाने लगे मगर ख़ालिद ने खुली पैण्ट के दोनों सिरों को कसकर पकड़ लिया। आँखों से आँसुओं के साथ लबों से रोने की आवाज़ें भी निकलने लगीं। ख़ालिद के आँसुओं ने अम्मी की आँखों को गीला कर दिया।

"मत रोओ मेरे लाल, मत रोओ, तुम नहीं चाहते हो तो हम ज़बरदस्ती नहीं करेंगे। तुम्हारा ख़तना नहीं करायेंगे।"

अम्मी ने रुँधी हुई आवाज़ में ख़ालिद को दिलासा दिया और अपने आँचल में उसके आँसू ज़ब्त कर लिये। कुछ देर तक अम्मी ख़ामोश रही। फिर ख़ालिद के सिर पर हाथ फेरते हुए बोलीं "पिछले साल तो फूफी के घर कामरान के ख़तना के वक़्त तुम ख़ुद ज़िद कर रहे थे कि अम्मी मेरा भी ख़तना करा दीजिये मगर आज तुम्हें क्या हो गया है? तुम इतने डरपोक क्यों बन गये? तुम तो बहुत बहादुर बच्चे हो। तुमने अपने ज़ख़्म का ऑपरेशन भी हँसते-हँसते करा लिया था। इसमें तो ज़्यादा तकलीफ़ भी नहीं होती।"

"अम्मी मैं ख़तना कराने से नहीं डरता।"

"तो...,"

"अब्बू आप ही ने तो एक दिन कहा था कि जिनका ख़तना होता है, बदमाश उन्हें जान से मार देते हैं।"

ख़ालिद के शब्द अब्बू के साथ-साथ सबके सरों पर फालिज की तरह गिरे। सबकी ज़बानें ऐंठ गयी। चहकता हुआ माहौल चुप हो गया। जगमगाहटें बुझ गयीं। मुस्कुराहटें मुरझा गयीं। बच्चों की उँगलियाँ अपने पायजामों में पहुँच गयीं।

सबकी आँखों में दंगे के दौरान तलाशियों का मंज़र उभर आया, जिस्म नंगे हो गये। चाकू सीने में उतरने लगे। माहौल का रंग उड़ गया। नूर पर धुन्ध का गुबार चढ़ गया। ख़ुशबू बिखर गयी। नाई का उस्तरा भी कुन्द पड़ गया, राख पर पानी फिर गया।

पाकिस्तान वाले ख़ालू ने माहौल के बोझलपन को तोड़ते हुए ख़ालिद से कहा, "ख़ालिद बेटे अगर तुम ख़तना नहीं कराओगे तो जानते हो क्या होगा...?"

ख़ालिद ने हैरानी से उन्हें देखा।

"...तुम्हारा ख़तना न देखकर तुम्हें ख़तने वाले बदमाश मार डालेंगे।"

"सच अब्बू," खालि़द सिर से पाँव तक लरज़ गया।

"हाँ बेटे तुम्हारे ख़ालू सच कह रहे हैं।"

"तो ठीक है मेरा ख़तना करा दीजिये।"

झट उसके हाथों से पैण्ट के सिरे छूट गये, पैण्ट कूल्हे से नीचे सरक आयी। ख़ालिद ख़तने के लिए तैयार था। मगर उसकी रज़ामन्दी के बावजूद किसी ने भी उसके सिर पर सेहरा नहीं बाँधा, कोई भी हाथ कुरता पहनाने आगे नहीं बढ़ा।

तकलीफ़ से भरी हुई ख़ामोशी जब नाक़ाबिले बरदाश्त हो गयी तो पाकिस्तान वाले ख़ालू ने आगे बढ़कर ख़ालिद को इसी हुलिये में ओखली के ऊपर बिठा दिया।

तक़रीब का आग़ाज़ हो गया, मगर नाई के थाल में पैसे नहीं गिरे। नाई ने मुतालिबा भी नहीं किया।

ख़ामोशी से उसने मुसलमानी (लिंग) में राख भरी कमानी फिट की, चिमटे में चमड़े को कसा और उस पर लरज़ता हुआ उस्तरा रख दिया, जैसे ख़तना नहीं, क़त्ल करने जा रहा हो।

ज़हरा

मोहसिन ख़ान

ज़हरा ने बुर्क़े की नक़ाब ज़रा ऊपर सरकाई तो वो चीज़ें जो उसे धुँधली-धुँधली बे-आब सी नज़र आ रही थीं, अपने वास्तविक आकारों और रंगों के साथ साफ़ नज़र आने लगीं। बड़े-बड़े से बा-रौनक पार्क ऊँची, और शानदार इमारतें जिनकी बुलन्दी पर निगाहें डालने के लिए उसे पीछे की तरफ़ झुकना पड़ता। चमकती हुई गाड़ियाँ, जिन्हें औरतें और लड़कियाँ भी चला रही थीं। एक लड़की तेज़ स्पीड से स्कूटर चलाती हुई ज़हरा के रिक्शे के क़रीब से इस तरह गुज़र गयी, जैसे कोई चिड़िया परों को फैलाती और समेटती हुई फ़िज़ा में गुम हो गयी हो। लड़की के ख़ूबसूरती से तराशे गये बाल कन्धों पर उस लौ की तरह फड़फड़ा रहे थे जो तेज़ हवा में चिराग़ से उड़ जाने के लिए बैचेन-सी हो जाती है। उसका दुपट्टा उसकी पुश्त पर किसी परचम की तरह लहरा रहा था। ज़हरा को मामू की बात याद आ गयी। वह अक्सर कहा करते, "अब पहले वाला ज़माना नहीं रहा कि लड़कियाँ चहारदीवारी में क़ैद होकर बैठ जायें, अब लड़कियाँ ज़िन्दगी की दौड़ में मर्दों के कन्धे से कन्धा मिलाकर काम कर रही हैं।"

ज़हरा की नज़रों के सामने ऐसी अनोखी चीज़ें भी आयीं, जो उसने पहले नहीं देखीं थी – एक स्वप्न-सा था, जिसकी निरन्तरता टूट ही नहीं रही थी। वह तो एक-एक चीज़ को ठहर-ठहर के ग़ौर से देखना चाहती थी मगर यह उसके इख़्तियार में कहाँ था।

जब रिक्शा सँकरे रास्ते से निकलकर चौड़ी सड़क पर आया तो उसने देखा – एक पार्क में ख़ूब बड़ा-सा पंखा लगा हुआ है, जिसके लम्बे-लम्बे पर आहिस्ता-आहिस्ता चक्कर काट रहे हैं। उसने नक़ाब से दोनों आँखें बाहर की ओर सुखद आश्चर्य से उस जहाज़ी पंखे को देखने लगी। फिर जमील की तरफ़ सवालिया नज़रों से देखकर ख़ुशी के उत्साह में दबे स्वर से चीख़ी।

"हाय भाई जान, इतना बड़ा पंखा!"

जमील ने ज़रा बदलकर तिरछी निगाह से उसकी तरफ़ देखा तो वह समझ गयी कि भाई जान को मेरा इस तरह चहकना अच्छा नहीं लगा। उसने नक़ाब चेहरे पर बराबर की और सहमकर बैठ गयी।

"बेवक़ूफ़..." थोड़े अन्तराल के बाद जमील ने कहा। "तुमको बोलना कब आयेगा?"

उसे जमील की डाँट पर नागवारी का अहसास ज़रूर हुआ, मगर इतना भी नहीं, जैसी कि उसकी आदत है, पुरानी तोशक के धागों की तरह एक से दूसरी और दूसरी से तीसरी बात निकालती चली जाती और तनाव से इतना भर जाती कि चादर ओढ़कर लेटने को जी चाहने लगता। वह जानती थी कि "बेवक़ूफ़" जमील का तक़ियाकलाम है। ग़ुस्से की तो बात ही और थी वह तो अक्सर छोटी-छोटी-सी बातों पर टोकते वक़्त कह दिया करते "बेवक़ूफ़।" मगर उनकी अदायगी के अन्दाज़ से उसका अर्थ बदल जाया करता था। कभी-कभी वह इस अलंकरण को किसी तीखे वाक्य में टाँक दिया करते, "तुझे कुछ नहीं आयेगा" या "तू कुछ नहीं समझेगी।" वह इस तीखे संवाद और गहरे तक आहत करने वाली भविष्यवाणी पर मुस्कुरा देती लेकिन जब थकान में डूबी होती तो ज़रा-सी कडुवाहट भी उसे देर तक बदमज़ा किये रखती।

"मैं हमेशा बेवक़ूफ़ और नासमझ रहूँगी।" उसने सोचा, "एक जवान लड़की को अपने जवान भाई से इस तरह चहककर बात नहीं करनी चाहिए और फिर यह भी कोई बात हुई। यहाँ तो न जाने कितनी चीज़ें ऐसी होंगी जिनके बारे में मुझे कुछ नहीं मालूम, भाई जान मुझे इन सब चीज़ों के बारे में कहाँ तक बतायें। ये सब तो मुझे ख़ुद ही सोचना चाहिए, कि क्या बातें पूछने वाली है और क्या नहीं। भाई जान मुझे कितना डाँटते रहते हैं, इसके बावजूद मैं ऐसी हरकत क्यों कर बैठती हूँ।"

बस में भी वह एक नादानी कर बैठी थी।

जिस वक़्त वह खिड़की के पास बैठी बाहर के दृश्य देख रही थी बेख़याली में नक़ाब चेहरे पर से उड़कर पीछे की तरफ़ हो गयी। जमील ने शायद उसका खुला हुआ चेहरा देख लिया था। उसकी तरफ़ झुककर सख़्त लहजे में उन्होंने कहा था।

"खिड़की के पास बैठने का बहुत शौक़ है?"

वह जमील का इशारा समझ गयी थी, इसलिए उसने जल्दी से चेहरा ढाँपकर नक़ाब का सिरा मज़बूती से थाम लिया था। लेकिन चेहरा छिपा लेने के बावजूद उसे ऐसा लग रहा था कि जैसे वह तमाम मुसाफ़िरों के सामने बेपर्दा हो गयी हो। एक तो बस में वह अकेली बुरके वाली थी, जिसकी वजह से सब लोग कनखियों से उसकी तरफ़ देख रहे थे। दूसरे यह ख़याल कि "अगर भाई जान की बात किसी ने सुन ली होगी तो वह क्या सोचेगा। यही न, कि भाईजान मुझे इसी तरह

डाँटते-डपटते रहते होंगे और यह कि बुर्का मैं डर के मारे ओढ़ती हूँ... मुझे इस खुली हुई खिड़की के सामने बैठना ही नहीं चाहिए था।"

खिड़की में शीशा भी नहीं था, जिसे खींच कर वह हवा को अन्दर आने से रोक देती। जमील की इस घुड़की के बाद वह देर तक दुख और शर्मिन्दगी के अहसास में डूबी रही। लेकिन फिर हमेशा की तरह यह क़ैफ़ियत उसके भीतर कहीं ग़ायब हो गयी।

"इसे विण्ड टरबाइन कहते हैं..." जमील ने कहा।

"...इससे बिजली बनती है।"

उसने कनखियों से जमील को देखा, "भाई जान ने अब, इतनी देर के बाद जवाब दिया। अगर वह पहले ही बता देते तो क्या हो जाता। भला पंखे से बिजली कैसे बनती होगी। पहले तो बिजली से पंखा चलता था और अब पंखे से बिजली बनेगी – अल्लाह मियाँ ने भी क्या-क्या चीज़ें बनायी हैं। उसका कारख़ाना बहुत बड़ा है।"

उसे अब्बा की बात याद आ गयी।

एक शानदार इमारत के माथे पर बड़ी-सी रंगीन तस्वीर झूमर की तरह टँगी हुई थी। तस्वीर के नीचे अंग्रेज़ी में कुछ लिखा हुआ था, "शायद यह सिनेमा हॉल है।"

ज़हरा ने सोचा। इमारत के बाहर एक तरफ़ मर्द लाइनों में खड़े थे। दूसरी तरफ़ औरतें – जब रिक्शा इस इमारत के क़रीब से गुज़रा तो उसने उस बड़ी-सी रंगीन तस्वीर को ध्यान से देखने की कोशिश की। तसवीर स्पष्ट भी न हो सकी थी कि उसने मुँह फेर लिया। स्याह नक़ाब के पीछे उसका चेहरा सुर्ख़ हो गया। इससे पहले उसने सिर्फ़ एकबार ऐसी तस्वीर देखी थी। वह जमील का बिस्तर तह कर रही थी, जैसे ही उसने तकि़या उठाया, एक तस्वीर ज़मीन पर गिर गयी। तस्वीर देखकर उसका दिल कितनी ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा था। उसने काँपते हाथों से तस्वीर तकि़ये के नीचे रख दी थी और उलटा-सीधा बिस्तर तहा कर उलटे पाँव कमरे से निकल भागी थी। इस घटना के बाद वह कई दिनों तक जमील से आँखें चुराती रही। जैसे वह तस्वीर जमील के नहीं बल्कि ख़ुद उसके तकि़ये से बरामद हुई हो।

"यह इतना बड़ा-सा फ़ोटो चौराहे पर किसलिए लगाया गया होगा।" उसने सोचा।

"जब चौराहे पर ऐसा फ़ोटो लगा हुआ है तो सिनेमा हॉल के अन्दर जो फ़िल्म दिखायी जाती होगी, वह कैसी होती होगी। कौन देखता होगा, यह सब। उसने चोर आँखों से जमील की तरफ़ देखने की कोशिश की। जमील उस वक़्त किसी और तरफ़ देख रहे थे। अगर रिक्शा इतनी तेज़ी से आगे न बढ़ जाता तब भी वह इस फ़ोटो को न देखती। भला मैं क्यों देखने लगी, ऐसी बेहूदा फोटुओं को।"

जब अज़रा दूसरी बार ससुराल से लौटी थी तो उसने ज़हरा से बताया था कि

एक ऐसी भी फ़िल्म होती है, जिसमें कुछ नहीं छिपाया जाता, सबकुछ दिखला दिया जाता है।

"क्या तुमने वह फ़िल्म देखी है।" ज़हरा ने अज़्रा से पूछा था।

"हाँ – क्यों नहीं, कई बार देखी है।"

अज़्रा ने इतनी आसानी से बता दिया था, जैसे कोई बात ही न हो, जैसे कह रही हो। "हाँ मैं आइना देखती हूँ।"

फिर अज़्रा फ़िल्म के बारे में सबकुछ खोलकर बताने लगी, मगर ज़हरा ताब न ला सकी। अज़्रा से हाथ छुड़ाकर मुँह छिपाती और लपकती-झपकती कमरे में चली गयी। उस क्षण उसका दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था और शरीर का एक-एक अंग जैसे उसे लज्जा में गहरे डुबो देने के लिए बैचेन हो गया था।

ज़हरा को अज़्रा की बात पूरी सच नहीं मालूम होती। वह सोचती – अज़्रा अपनी बातों को लच्छेदार बनाने के लिए ऐसी बातें भी कह जाती है जो शायद किसी के गुमान में भी न हो। ज़हरा का जहन इन बातों को क़ुबूल तो न करता पर उसके अचेतन में एक अचीन्ही-सी कसक बाक़ी रह जाती जो धीरे-धीरे अक़ुलाहट या इच्छा का आकार ले लेती।

कलेजे में उबाल-सा उठा। उसने नक़ाब मुँह में ठूँसकर साँस रोक लिया। जमील के पास बैठकर और इतनी भीड़ से गुज़रते हुए खाँसना उसे अच्छा नहीं लगा। मगर वह साँस कब तक रोके रहती, यह उसके बस में कहाँ था। खाँसी आ ही गयी। गले से कलेजे तक ज़हर फैल गया। सुबह फजिर की नमाज़ के लिए जब उसने ठण्डे पानी से वज़ू किया था तो खाँसी का एक लम्बा दौरा पड़ा था। फिर देर तक खाँसने के बाद उसने थूका तो चिड़िया की कलेजी जैसी कोई लाल गाढ़ी चीज़ ज़मीन से चिमट गयी थी। उसने पूरे थूक को ही मिट्टी के नीचे दबा दिया था और बिस्तर पर पड़कर देर तक हाँफती रही थी। अम्माँ ने सलाम फेरकर उसे आवाज़ दी तो वह जल्दी से उठ गयी थी ताकि अम्माँ उसकी क़ैफ़ियत भाँप न लें।

"अम्माँ ने कितनी जल्दी रवाना कर दिया था, सुबह-सुबह चली जाओ वरना चहल-पहल शुरू हो जायेगी और जो भी मिलेगा वह यही पूछेगा – बहन को कहाँ लिए जा रहे हो। जैसे बहन न हुई, चिकवे की बकरी हो गयी।"

बाद में वह किसी चीज़ को ग़ौर से देख ही न सकी, खाँसी के दौरान उसने जिन चीज़ों की झलकियाँ देखीं, वो धुँधली और थरथराती हुई मालूम हुईं।

"ख़ैर अगर वापसी पर अँधेरा न हो गया तो इन्हें दुबारा देख लेंगे।" उसने सोचा।

रिक्शा एक मोड़ पर रुक गया। यह एक साफ़-सुथरा इलाक़ा था। यहाँ ख़ामोशी थी, मगर गाँव की-सी ख़ामोशी नहीं। बल्कि एक शालीन मौन। खुला-खुला-सा बँगला, पोर्टिको में खड़ी हुई क़ीमती गाड़ियाँ, सुर्ख़ लिबास पहने

हुए गुलमोहर के दरख़्त – जैसे ये सबकुछ इसी ख़ामोशी की व्यवस्था के लिए था। ज़रा दूर पर एक ऊँची इमारत थी, बहुत ऊँची इमारत। उसने सिर उठाकर उस बुलन्द व बाला इमारत को उसके समूचेपन को देखने की कोशिश की। "उफ़, इतनी ऊँची।" उसने सुखद आश्चर्य से सोचा, "इसकी आख़िरी मंज़िल पर जाकर कितनी दूर तलक देखा जा सकता होगा।" मगर, वह विस्मित हुई, "इस पर लोग किस तरह चढ़ते होंगे, क्या उन्हें डर भी नहीं लगता होगा। बारिशें होती हैं, नहीं।" फिर कुछ क्षणों के बाद उसने सोचा, "कब तक खड़ी रहेगी, एक न एक दिन तो गिर ही जायेगी।"

जमील ने रिक्शेवाले को पैसे दिये, फिर एक क्षण उसे देखा और कहा,

"अब उतरोगी या रिक्शे पर बैठी ही रहोगी"। वह धम से कूद पड़ी। बुर्का पैरों में उलझ गया। रिक्शे का हुड न पकड़ लेती तो मुँह के बल गिर जाती। जमील तिरछी निगाह से उसको देखते हुए उस इमारत में दाख़िल हो गये, जो किसी बड़े डॉक्टर की क्लीनिक थी, बरामदे की सीढ़ियों पर एहतियात के साथ क़दम रखती हुई, वह भी क्लीनिक में दाख़िल हुई।

"यहाँ बैठ जाओ।" जमील ने एक ख़ाली कुर्सी की तरफ़ इशारा किया। वह कहना मानने वाले बच्चों की तरह जल्दी से बैठ गयी ताकि रिक्शे पर जो ग़लती हो गयी थी, उसकी पूर्ति हो जाये। जमील ने अन्दर जाकर कम्पाउण्डर से कोई बात की फिर उससे यह कहकर बाहर चले गये कि अभी आता हूँ। उसने लम्बी साँस ली और कुर्सी की टेक लगा ली।

क्लीनिक में ज़्यादातर औरतें, लड़कियाँ और बच्चे बैठे थे। उनमें से कुछ के सिमटे हुए शरीर, मुर्झाये चेहरे और स्याह गढ्ढों से झाँकती हुई बेचमक आँखें उनकी बीमारी का संकेत कर रही थीं। लेकिन कुछ की बीमारी प्रकट नहीं हो रही थी। एक तन्दुरुस्त औरत जो शायद किसी मरीज़ को लेकर आयी थी, मुँह पर रूमाल रखे इस तरह बैठी हुई थी जैसे ज़रा-सी असावधानी से बीमारी उसके मुँह में दाख़िल हो जायेगी। किनारे की कुर्सियों पर बैठे दो मर्द अख़बार पढ़ रहे थे। दो-तीन बरामदे में टहल रहे थे।

"औरतें एक जगह चैन से बैठी रह सकती हैं, मगर मर्द नहीं बैठे रह पाते – कितनी गर्मी है।" उसने सोचा। माथे और कनपटियों पर पसीना जमा होकर चींटियों की तरह रेंगता हुआ गरदन की तरफ़ आता और गरदन में लिपटे हुए दुपट्टे में जज़्ब हो जाता। उसने नक़ाब से पसीना पोछा, तो उसका जी बुरा हो गया।

"नक़ाब में कैसी बू आ रही है। बुर्का बहुत दिनों से धुला भी नहीं। आख़िर कोई कहाँ तक धोये, क्या-क्या करे। वैसे ही रोज़ इतना काम होता है, मैं थककर चूर हो जाती हूँ। अम्माँ बेचारी मेरा कितना हाथ बटाती हैं, जब से मेरी बीमारी ज़ाहिर हुई है, कोई ऐसा काम नहीं करने देतीं, जिससे तकलीफ़ बढ़ जाये। वज़न तो उठाने

ही नहीं देतीं। मैंने सिल उठायी नहीं कि वह आँखें फाड़ के चीख़ी – आख़िर तुम चाहती क्या हो, ऐसा रोग और इतनी बड़ी सिल – जाड़ों भर अम्माँ ने मुझे बरतन नहीं धोने दिये। इसीलिए तो हाथों की जिल्द पहले से कुछ अच्छी हो गयी है। मगर उनकी सख़्ती और पीलापन दिन ब दिन बढ़ती ही जा रही है।" उसने हाथ नक़ाब के अन्दर करके ग़ौर किया – छिपकली के पेट की सी पीली-पीली उँगलियाँ उसे अच्छी नहीं लगीं।

"जब अज़रा की शादी हुई थी और उसके हाथों में मेंहदी लगी थी तो उसके गदराये हुए हाथों की उँगलियाँ कितनी अच्छी लग रही थीं। जो भी लड़की आती उसके हाथ अवश्य देखती। अब उसने नाख़ून बढ़ा लिये हैं और तरह-तरह की नेल पालिश लगाये रहती है। मैं नाख़ून बढ़ा लूँ तो मेरे घर में कोई मेरे हाथ का पानी भी न पिये। नाख़ून तो ख़ैर बढ़ाना भी नहीं चाहिए। खाया-पिया सब हराम। अज़रा तो आटा तक गूँधती है और सबलोग उसकी पकाई हुई रोटी खाते हैं। उसकी तो ख़ैर बात ही दूसरी है। वह तो पता नहीं क्या-क्या करती है। शादी से पहले भी तो वह कितनी आज़ादी से रहती थी। जो मन चाहता पहनती, ओढ़ती, जिसके घर जाना चाहती, चली जाती। उन बातों पर हँसती रहती, जिन पर नहीं हँसना चाहिए। मगर उसके घर में उसे कोई कुछ नहीं कहता। आदिल से उसकी कितनी लड़ाइयाँ होती थीं। मगर वह हार नहीं मानती थी। अपनी बात मनवाकर ही छोड़ती। शादी के बाद थोड़ा-सा बदल गयी है मगर अब भी घर आती है तो कोई न कोई हंगामा खड़ा कर देती है।"

और एक उसका घर है कि जैसे घर न हुआ मदरसा हो गया। ज़रा-सी ग़लती हुई नहीं कि डाँट पड़ी। किसी तरफ़ से अम्माँ की आवाज़ आती।

"ज़हरा दुपट्टा ठीक करो।"

कभी अब्बा प्यार भरे लहजे में कहते।

"बेटी इतनी ज़ोर-ज़ोर से न बोला करो, आवाज़ का पर्दा भी ज़रूरी है।"

कभी जमील झुँझलाते।

"बेवक़ूफ़ – तुझे समझ कब आयेगी।"

नाराज़गी किसी से हो ग़ुस्सा उस पर उतर रहा है। ज़हरा क्या बीमार बिल्ली थी कि जिसके पास से गुज़री वह दूर-दूर, फिट-फिट करने लगा। अब्बा तो ख़ैर अपनी व्यस्तताओं और ज़िम्मेदारियों में अक्सर उसे भूल जाते मगर जमील तो जैसे उसकी निगरानी के लिए ही पैदा हुए थे।

"यहाँ क्यों खड़ी हो – इतनी तेज़-तेज़ क्यों चलती हो – दरवाज़े पर क़दम न रख देना – बेवक़ूफ़।"

जबसे जमील को नौकरी मिल गयी थी, वह सुबह शहर चले जाते और रात गये लौटते। इस दरम्यान उसे एक इत्मीनान का सा अहसास रहता।

मगर कुछ दिनों बाद अदील पर-पुर्जे निकालने लगा। वही जमील की सी खासियतें उसमें पैदा होती जा रही थीं। हालाँकि अदील ज़हरा से दो बरस छोटा था। लेकिन वह उस पर हावी रहता। अदील की बेजा बातों पर वह अक्सर उससे उलझ बैठती मगर जीत न पाती। अब्बा तो ख़ैर उसकी हिमायत करते मगर अम्माँ अदील की हाँ में हाँ मिलाती।

"ठीक ही तो कहता है, लड़की जात को सख़्ती में नहीं रखा जायेगा तो छुट्टे साँड़-सी मारी फिरेगी। शकीला को देखो, ज़्यादा ढील का क्या नतीजा निकला। घर वाले आँखों पर पट्टियाँ बाँधकर बैठ सकते हैं, पर ससुराल वालों को क्या पड़ी थी कि वो ग़लत-सही सब बरदाश्त करते। और सच पूछो तो कोई जान-बूझकर मक्खी नहीं निगलता। अब मायके में एक बच्ची के साथ पड़ी सड़ रही है।"

"और सुरैया बाजी" वह सोचती – "सुरैया बाजी के माँ-बाप ने तो उन्हें बहुत सख्तियों में रखा। वह तो कभी बे बाजनूं नहीं नाचीं। ससुराल में सबकी ख़ूब ख़िदमतें की। हूँ से हूँ नहीं की, फिर सुरैया बाजी मैके में पड़ी क्यों सड़ रही हैं, पहले सुरैया बाजी कितनी अच्छी लगती थीं, जैसे अल्लाह मियाँ ने उन्हें अपने हाथ से बनाया हो। जब हँसती थीं तो लगता था, जैसे उजाला हो गया हो। और अब हँसती हैं तो लगता है जैसे रो रही हों।"

"बेचारी सुरैया बाजी – और हाँ, उसे ख़याल आया – यहाँ मक्खियाँ तो दिखलायी नहीं दे रही हैं। अच्छा ही है, जो नहीं है। कमबख़्त होतीं तो बैठना दूभर कर देती। शहर में होती भी कम हैं, पता नहीं क्यों, यहाँ गन्दगी जो नहीं होती। मच्छर भी नहीं होते होंगे। या होते ही होंगे, यहाँ रहने वाले ही जानें। यह लेयो!"

उसे हँसी आ गयी। एक मक्खी फ़र्श पर बैठी हाथ मल रही थी। एक आदमी ज़रा-ज़रा देर के बाद अख़बार के पन्ने पलटता और कनखियों से उसकी तरफ़ देखने लगता। उसे बड़ी नफ़रत महसूस होती। "अब इसकी तरफ़ देखूँगी भी नहीं।" उसने सोचा।

"जब कोई मर्द इस तरह घूर के देखता है तो जी चाहता है, उसकी आँखें फोड़ दूँ। पता नहीं भाईजान कहाँ गये, यहाँ इतनी गर्मी में बैठकर करते भी क्या।" किसी पेड़ के नीचे खड़े सिगरेट पी रहे होंगे। अब वह सिगरेट बहुत पीने लगे हैं। बहुत दिन पहले जब भाईजान छिप-छिपकर सिगरेट पीते थे और मैं उनके कमरे में जाती थी, तो वहाँ अजीब-सी बिसान्द-सी आती रहती थी। फिर एक दिन उनका बिस्तर तहाते वक़्त उनके तक़िया के नीचे सिगरेट की डिबिया मिली थी। मैंने उसे सूँघा था तो कैसा जी मतलाने लगा था। उस दिन मैं समझ गयी थी कि उनके कमरे में बिसान्द-सी क्यों बसी रहती है। अज़रा मुझसे भाई जान के बारे में पूछा करती थी। कमरे में क्या करते हैं, सिगरेट पीते हैं या नहीं, उनकी बक्स में तुमको कभी किसी लड़की की फ़ोटो तो नहीं मिली। शुरू में उसे सबकुछ बता दिया करती थी, मगर

बाद में जब अम्माँ ने सख़्ती से मना कर दिया कि घर की कोई बात अज़रा को मत बताया करो तबसे मैं उसके सवालों पर या तो चिढ़ जाती या ग़लत-सलत जवाब दे दिया करती। मगर अज़रा को पता नहीं कैसे वे सारी बातें जैसे अपनेआप मालूम हो जातीं, जो मुझे भी मालूम नहीं होती थीं। बहुत दिनों तक तो मैं यह अन्दाज़ ही नहीं कर सकी कि वह भाईजान के बारे में क्यों पूछा करती है। मगर धीरे-धीरे बातें समझ में आ गयी। फिर भाईजान भी बदलने लगे। पहले अज़रा घर आती तो उन्हें जैसे ख़बर ही नहीं होती थी। अपने काम में लगे रहते थे। मगर बाद में यह हुआ कि इधर अज़रा घर में आयी नहीं कि भाईजान को प्यास लगने लगी। वह अपने कमरे से निकलते, घड़ौंची के पास जाकर कटोरे में पानी उड़ेलते। पानी कटोरे से छलककर ज़मीन पर ज़रूर गिरता और घड़े में ऐसी आवाज़ पैदा होती, जैसे टूट गया हो। अम्माँ बावर्चीख़ाने में जल-भुन रही होतीं। वहीं से चीख़तीं – "घर में एक कोरा घड़ा बचा है, उसे भी तोड़ डालो।" भाईजान को तो जैसे कुछ सुनायी ही नहीं देता। वह कटोरा लबों से लगाते और पलकों को ख़ूब ऊपर उठाकर अज़रा को देखते। उस वक़्त वह ज़रा-सा पानी पीते और छलकाते ज़्यादा। फिर बचा हुआ पानी छपाक से ज़मीन पर फेंककर कटोरे को घड़े पर औंधा कर ख़ूब गहरी साँस लेते। जैसे ज़्यादा पानी पी गये हों। फिर भाईजान कमरे में जाते वक़्त अज़रा को ख़ूब डूबकर देखते। अज़रा भी चोर निगाहों से उन्हें देखती। मैं अनजान बनकर इधर-उधर देखने लगती। फिर अम्माँ की आवाज़ आती – "कहाँ मर गयी ज़हरा।" मैं दौड़ती हुए अम्माँ के पास जाती। अम्माँ मुझे घूरकर देखती और कहतीं – "अब तुमको दुनिया जहान की कोई ख़बर है कि नहीं।" मैं जल्दी कोई काम करने लगती, फिर अम्माँ दबी ज़बान से पूछतीं – "अज़रा क्या पूछ रही थी?" "कुछ भी नहीं", मैं जवाब देती। "फिर वही कुछ भी नहीं"। वह दाँत पीसकर हलक़ से आवाज़ निकालतीं, "इतनी देर से मुँह से मुँह जोड़े ख़ामोश बैठी थीं?" फिर हमेशा की तरह कहती, "ख़बरदार जो उससे कोई बात बताई, जलते चिमटे से ज़बान खींच लूँगी।"

अम्माँ भी ख़ूब हैं। भला मेरे घर में ऐसे कौन से ख़ज़ाने छिपे हुए हैं, जिनके बारे में मैं अज़रा से बता देती और ऐसे कौन से राज थे जिनके खुल जाने से तूफ़ान आ जाता हो। हाँ अब जो मेरे सीने में एक राज पल रहा है, वह तो किसी के बताये बग़ैर भी एक न एक दिन खुल ही जायेगा।

कुछ देर के बाद जमील वापस आ गये। उनके चेहरे पर परेशानी के आसार थे। जैसे वह किसी तकलीफ़ में मुब्तला हों। पीछे हाथ बाँधे वह कुछ देर तक टहलते रहे फिर ज़हरा से ज़रा एक फ़ासले पर बैठ गये। "भाईजान मेरे बराबर वाली कुर्सी पर भी तो बैठ सकते थे।" उसने सोचा।

"अज़रा की शादी के बाद भाई जान ज़्यादा बुझे-बुझे रहने लगे हैं।"

अब क्लीनिक में चन्द मरीज़ रह गये थे। ज़हरा को जिसकी शक्ल से

नफ़रत-सी हो गयी थी, वह आदमी जा चुका था और वह औरत भी जा चुकी थी जिसकी जम्पर के दामन पर रेशम की कढ़ाई का ख़ूबसूरत डिज़ाइन बना हुआ था। ज़हरा ने उस डिज़ाइन को मुख़्तलिफ कोणों से देखा था, मगर फ़ासले की वजह से वह समझ नहीं सकी थी कि डिज़ाइन मशीन से बनाया गया था या हाथ से।

"ख़ैर", उसने सोचा "घर जा के वैसा ही डिज़ाइन बनाऊँगी ज़रूर।"

एक लम्बी जम्हाई से उसकी कनपटियाँ चिटख-सी गयीं और दर्द की लहरें जबड़े को चीरती-फाड़ती गुज़र गयीं।

"तौबा है, यहाँ बैठे-बैठे तो जैसे पूरी उम्र ही बीत जायेगी। कैसा जी घबड़ा रहा है। सुबह से कुछ खाया भी तो नहीं – एक प्याली चाय के साथ आधी चपाती खाकर चल पड़ी थी। यह भी नहीं कि भाईजान कोई चीज़ ले ही आयें और कहें कि तुमको भूख लग रही होगी। बाहर हवा चल रही थी। ऊँचे और घने पेड़ों की शाखाएँ इस तरह झूम रही थीं जैसे उन्हें ख़ूब ज़ोर की हँसी आ रही हो।"

"यह गुलमोहर के पेड़ हैं।" उसने सोचा। "कितने ढेर सारे फूल लगे हैं इनमें और एक पेड़ मेरे घर में लगा हुआ है। गुड़हल का पेड़ – कमबख़्त में फूल हैं न पत्तियाँ। लुण्ड मुण्ड। दिन रात सड़े हुए गुड़हल टपकते रहते हैं – कव्वे और मैनाएँ हगती रहती हैं।"

मोहल्ले के लड़कों को भी कहीं और ठिकाना नहीं मिलता। जब नज़र उठाओ दीवारों पर उबकते-फाँदते दिखलायी देते हैं। जब तेज़-तेज़ हवाएँ चलती हैं तब कच्चे गुलहड़ आ-आ के कैसे बदन से लगते हैं जैसे किसी ने चुटकी ले ली हो। अब्बा को जब गुड़हल लगता है वह बिलबिला जाते हैं और सिर ऊपर उठाकर कहते हैं जी भरके कर लो हरामीपन। बहुत जल्द तुम्हारा नामोनिशान मिटा दूँगा। अब्बा की इस बात पर सब कैसे मुँह छिपा-छिपाकर हँसते हैं।

उसने नक़ाब से पेशानी का पसीना पोंछा और चेहरे पर लटकती हुई बालों की लट ऊपर करते हुए सोचा "मेरे बाल कितने खुश्क और सख़्त हो गये हैं। सर्दियों में तो अम्माँ नहाने नहीं देती थीं। अब गर्मियाँ आ गयी हैं, रोज़ नहाया करूँगी। किस कद्र घुटन है।" उसका जी चाहा बुर्क़ा उतारकर किनारे रख दे और पंखे के नीचे फ़र्श पर बैठकर ख़ूब लम्बी-लम्बी साँस ले। इतनी लम्बी कि फेफड़े हवा से भर जायें। कभी-कभी इस बुर्क़े से बहुत उलझन होने लगती है। जैसे कोई सज़ा भुगत रही हूँ। जब अज़रा की शादी हो गयी तो उसने बुर्क़ा उतार के सात तहों में रख दिया और अब ऐसी दनदनाती फिरती है, जैसे कभी बुर्क़ा ओढ़ा ही न हो, इस गली से उस गली। उस गली से इस गली। कोई उसको टोकता भी नहीं। टोके तो अपनी बहू-बेटियों की नस्लें गिनवाये। कोई मुझसे कहे कि बुर्का उतार दो तो मैं कभी न उतारूँ। बदन के उभारों को सबके सामने उछालती फिरूँ – "तौबा है।" मुझे तो सोचकर ही शर्म आती है।

अब के कम्पाउण्डर ने नाम पुकारा तो ज़हरा के सामने बैठा हुआ एक नौजवान चौंककर कम्पाउण्डर की तरफ़ देखने लगा। दूसरा आदमी उठकर अन्दर चला गया। नौजवान कुर्सी की पुश्त पर सिर टेककर फिर ऊँघने लगा। अब वहाँ जमील और ज़हरा के अलावा टी.बी. का रोगी यही नौजवान बचे रह गये थे जो इन्तज़ार की शिद्दत से और सूखता जा रहा था।

"अगर भाईजान क़रीब न बैठे होते तो ज़रा देर के लिए नक़ाब ऊपर कर लेते। कुछ तो मुँह में हवा लगती। ऐसे सूखे-सड़े मर्दों के सामने नक़ाब पलट देने में क्या हर्ज़। एक बार मामू ने कहा था – "अब बुर्क़े का रिवाज़ ख़त्म होता जा रहा है। भई मैंने तो अपनी किसी बेटी को बुर्क़ा नहीं ओढ़वाया, और अब कौन ओढ़ाता है। दुनिया कहाँ से कहाँ पहुँच गयी। लड़कियाँ नौकरियाँ कर रही हैं, पुलिस और फ़ौज में भर्ती हो रही हैं और एक आप लोग हैं अपनी लड़कियों को बुर्क़ों में लपेटे बैठे हैं।"

"अजी हाँ – नौकरियाँ कर रही हैं, पुलिस और फ़ौज में भर्ती हो रही हैं। और क्या-क्या कर रही हैं, कुछ यह भी ख़बर है आपको?" अब्बा ने चिढ़कर जवाब दिया।

"आप लोग तो हमेशा बुरे पहलू पर ही नज़र रखते हैं।" मामू ने कहा।

"हाँ – हाँ ठीक है, हम लोग जो बेहतर समझते हैं, वही करते हैं, आप अपनी बेटियों का बुर्का उतरवाइये या नंगा नचाइये, मेरी बेटी जिस तरह रह रही है, उसी तरह रहेगी।"

अब्बा ने ख़ूब ग़ुस्से से मामू को देखते हुए कहा।

"मैं अपनी बेटियों को नंगी नचाता हूँ..."

मामू की आवाज़ हलक़ में फँस गयी।

"और नहीं तो क्या..." भाई जान को भी ग़ुस्सा आ गया।

"...आप कौन होते हैं, हमारे मामलात में दखल देने वाले?"

"जमील तुम ख़ामोश रहो", अम्माँ ने माथे पर हाथ रखते हुए कहा।

"क्यों ख़ामोश रहूँ।" भाई जान ने ज़ोर से कहा तो अम्माँ ख़ामोश हो गयी। वह कभी भाई जान से ज़बान नहीं लड़ाती कि जवान लड़कों से ज़बान लड़ाना अपनी इज़्ज़त ख़ाक में मिलाना है। मामू चुपचाप चले गये। वह दिन और आज का दिन उन्होंने हमारे घर में क़दम नहीं रखा। अब की ईद में नहीं आये। अम्माँ ने जाकर माफ़ी तलक माँगी मगर वह यही कहते रहे – अपनी बेटियों को नंगा नचाने वाले शरीफ़ घरानों में नहीं जाया करते। जब मामू घर आते थे तो कितना अच्छा लगता था।

कम्पाउण्डर ने ज़हरा का नाम पुकारा तो उसके दिल में धड़कन तेज़ हो गयी और जिस्म थरथराने लगा। जैसे अक्सर नींद में चौंककर थरथराने लगता था और

दिल की धड़कन तेज़ हो जाया करती थी। पसीजे हुए पैंरों में सैण्डिल जमाती हुई वह जमील के साथ डॉक्टर के चैम्बर में गयी।

"भाईजान बैठ जायें तो मैं भी बैठूँ।" उसने सोचा।

"बैठिये..." डॉक्टर ने कुर्सी की तरफ़ इशारा करते हुए बहुत नरम लहजे़ में कहा। वह कुर्सी पर बैठ गयी। डॉक्टर के क़रीब एक ख़ूबसूरत लड़की बैठी थी। लड़की का चेहरा-मोहरा डॉक्टर से काफ़ी मिलता था। दोनों ने सवालिया नज़रों से उसकी तरफ़ देखा।

"नक़ाब ऊपर कर लो..." जमील ने कहा। उसने नक़ाब हटा दी।

"जी..." डॉक्टर ने जमील की तरफ़ देखते हुए कहा। जमील ने उसकी बीमारी के बारे में कुछ बातें अपने तौर पर बतायीं, लेकिन कुछ बातें ऐसी थीं, जो वह नहीं जानते थे, मसलन सीने में किस तरह का दर्द होता है, किस वक़्त ज़्यादा दर्द होता है, रात को नींद कितनी देर में आती है, आती भी है या नहीं। सुबह से शाम तक ख़ून के कितने थक्के नाली में बह जाते हैं, खाने का मज़ा कैसा होता है और... बहुत-सी बातें जो दूसरा नहीं बता सकता था, सिवाये उसके जो ख़ुद इस रोग की चपेट में हो।

"अब यही देखो..." उसने सोचा "...भाई जान बता रहे हैं मगर बीमारी को डेढ़ साल हो गये।

"आप बताइये" डॉक्टर ने ज़हरा से कहा।

"अब मैं भाई जान के सामने कैसे बताऊँ," वह उलझन में पड़ गयी।

"हाँ-हाँ कहिये," डॉक्टर ने तसल्ली दी।

वह ख़ुद को सँभालकर, उखड़े लहजे़ में हाल बताने लगी। कुछ ऐसी कै़फ़ियतें थीं, जिन्हें वह ख़ुद नहीं बता पा रही थी।

हाल सुनने के बाद डॉक्टर उसके पास आकर जाँच करने लगा। उसकी असिस्टेण्ट भी पास आ गयी। जाँच के दौरान असिस्टेण्ट लड़की को डॉक्टर अंग्रेज़ी में कुछ बताता जा रहा था। "आपके घर में किसी को टी.बी. है", डॉक्टर ने जमील से पूछा।

"जी नहीं", जमील ने जवाब दिया।

"फैमिली में किसी और को..."

"नहीं किसी को भी नहीं।"

"ई लेयो, भाई जान को याद ही नहीं..." ज़हरा को ख़याल आया।

"...दादी को शायद टी.बी. ही तो थी, तभी तो दिन-रात खाँसती रहतीं और सूखकर काँटा हो गयी थीं।"

"इससे पहले किसी को दिखाया था," डॉक्टर ने पूछा।

"जी हाँ..." जमील ने जवाब दिया। "...क़स्बे के सरकारी अस्पताल में कुछ

दिन इलाज हुआ था।"

डॉक्टर ने सहायक लड़की की तरफ़ देखा, फिर दोनों के होंठों पर मज़ाक़ उड़ाने जैसी मुस्कुराहट फैल गयी। "जब केस बिगड़ जाता है तब आप लोग पेशेण्ट को लेकर शहर की तरफ़ भागते हैं..." डॉक्टर ने नाराज़गी भरे लहजे़ में कहा।

"...फिलहाल कुछ दवाएँ लिख रहा हूँ, ये खिलाइये, एक्सरे और ब्लड टेस्ट की रिपोर्ट लेकर एक हफ़्ते के बाद आइएगा। इनको लाने की ज़रूरत नहीं।"

"डॉक्टर साहब यह परहेज नहीं करतीं।" वह शर्मा गयी।

डॉक्टर ने सरसरी नज़रों से ज़हरा को देखते हुए कहा,

"परहेज नहीं करतीं तो मत कीजिए, मगर दवा ज़रूर खाइये,... दवा तो खा लेंगी।"

"जी" उसने सिर को जुम्बिश दी।

"परहेज भी कर लीजिये तो जल्दी ठीक हो जाइयेगा।" फिर डॉक्टर बहुत नर्मी से परहेज के बारे में बताने लगा। डॉक्टर का उस अन्दाज़ में बातें करना और हिदायतें देना उसे बहुत अच्छा लगा। जैसे वह बातें न कर रहा हो, लोरी दे रहा हो।

"यह बिल्कुल मामू जान की तरह बातें कर रहा है"। उसे मामू जान याद आ गये।

क्लीनिक से निकलने के बाद जमील ठिठककर रुक गये।

"तुम बाहर चलो मैं आता हूँ।" उन्होंने ज़हरा से कहा और अन्दर चले गये। वह बाहर आकर गुलमोहर के फूल देखने लगी। सुर्ख़ फूलों से लदी हुई गुलमोहर की शाखें तेज़ हवा से उसी तरह झूम रही थीं।

कुछ देर के बाद जमील बाहर आ गये। उसने सवालिया नज़रों से उनकी तरफ़ देखा। जमील का चेहरा किसी गहरी चिन्ता से बोझल था। लगता है कि डॉक्टर ने उसकी बीमारी के बारे में कोई ऐसी बात इन्हें बता दी है।

क्लीनिक से पैथालॉजी जाते वक़्त एक फ़िक्र में उलझी रही। बस यही एक ख़याल कि डॉक्टर ने पता नहीं, भाईजान से क्या बताया होगा। आख़िर कुछ देर के बाद उसने पूछ ही लिया।

"डॉक्टर साहब क्या कह रहे थे।"

"कुछ नहीं" जमील ने इत्मीनान के साथ जवाब दिया।

"...कहेगा क्या – एक्सरे और ख़ून की रिपोर्ट देखने के बाद ही कुछ बता सकेगा। अब एक हफ़्ते के बाद फिर आना पड़ेगा।" जमील ने अपने से बात करने जैसे अन्दाज़ में कहा।

वह जमील के जवाब से सन्तुष्ट नहीं हुई। हमेशा की तरह एक ख़याल उसे देर तक परेशान करता रहा। जब कम्पाउण्डर ने उसकी उँगली में सुई चिभोई तो चिन्ता की अनुभूति तकलीफ़ की तह में उतर गयी। उसने उँगली पर नज़र डाली।

कम्पाउण्डर उसकी उँगली से इस तरह ख़ून निचोड़ने की कोशिश कर रहा था, जैसे भूखी बकरी के थन से दूध दुह रहा हो। उसने मुँह फेर लिया। जमील सहारा न देते तो वह चकराकर गिर जाती। ख़ून देने के बाद वह कुर्सी पर बैठ गयी। जमील ने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर स्प्रिट लगायी। जमील के हाथों के अचीन्हे से स्पर्श ने उसके तन में झुरझुरी-सी पैदा कर दी। "मैं लगा लूँगी" उसने कहा। जमील ने स्प्रिट में भीगी हुई रूई उसे दे दी। वह आहिस्ता-आहिस्ता उँगली पर स्प्रिट लगाने लगी।

कम्पाउण्डर दुबारा उसके पास आया, "अन्दर आइये" उसने कहा। वह जमील के साथ दूसरे कमरे में गयी। "यह हटा दीजिये" कम्पाउण्डर ने बुर्क़े की तरफ़ इशारा किया। ज़हरा ने सवालिया नज़रों से कम्पाडण्डर को देखा। जमील ने उसकी क़ैफ़ियत भाँपते हुए उससे कहा।

"बुर्क़ा उतारकर मुझे दे दो, एक्सरे होगा" उसने बदहवासी के साथ बुर्क़ा उतारकर जमील की तरफ़ बढ़ा दिया।

"दुपट्टा भी दे दो।" जमील ने उसकी गरदन की तरफ़ इशारा किया। उसने पसीने से भीगा हुआ दुपट्टा गरदन से खोलकर जमील को दे दिया।

जिस वक़्त वह एक्सरे मशीन के सामने एकदम सीधी और ख़ामोश खड़ी थी, जमील दीवार पर टँगा कैलेण्डर देख रहे थे। उनके हाथ पीछे की तरफ़ थे। दुपट्टे का एक सिरा उनके हाथ से छूटकर पंखे की हवा से फ़र्श पर थरथरा रहा था। एक्सरे मशीन आप्रेटर ने गहरे तटस्थ भाव से उसके हाथ बराबर करते हुए कहा, "बस इसी तरह खड़ी रहियेगा।" उसने नज़रें झुका लीं और इस तरह शंकित हो गयी, जैसे बेरूह बदन ताबूत में रख दिया गया हो। लेकिन दिमाग़ में बातों और यादों के आने-जाने का सिलसिला चल ही रहा था।

"अम्माँ बीमारी से ज़्यादा इन बातों से घबराती हैं इसीलिए तो मामूली बीमारियों को ख़ातिर में नहीं लातीं, नानी तो इतना घबराती थीं कि कभी अस्पताल ही नहीं गयीं। बुढ़ापे में उनको कैसी-कैसी तकलीफ़ें उठानी पड़ीं। तख़्त पर बैठ रही थीं, टाँग में कील लग गयी। पूरी टाँग सड़ती चली गयी। सबने लाख कहा, "किसी डॉक्टर को दिखला दो। मगर नहीं मानीं। उल्टे मशविरा देने वालों का मुँह नोच लेतीं – तुम लोग मुझे बेग़ैरती का जामा पहनाना चाहते हो, ग़ैर मर्दुओं को टाँग दिखलाऊँ, न बाबा न, यह दिन दिखाने से पहले ख़ुदा मुझे उठा ले तो अच्छा। मामू बहुत दिनों तक हाल कह-कहकर दवा लाते रहे। मगर ठीक होना था न हुई और एक दिन बीमारी उन्हें लेकर चली गयी। सब लोग कहते हैं कि नानी को हड्डी की टी.बी. हो गयी थी। यह हड्डी की टी.बी. कैसे हो जाती है। लोग तो यह भी कहते हैं कि औरतों के सीने में कैंसर की गिल्टियाँ पड़ जाती हैं और उनके उभार काट दिये जाते हैं। ऐ अल्लाह – हर औरत को ऐसी बीमारियों से

बचाइयो।"

"साँस रोक लीजिये" एक्सरे मशीन आप्रेटर ने कहा, उसने जल्दी से साँस रोक ली।

एक्सरे के बाद जब वह जमील के साथ बाहर आयी तो जमील ने उसे कुछ उदासीन भाव से देखते हुए पूछा – "तुमने कभी सिनेमा हॉल में फ़िल्म देखी है।"

हवा का जैसे बहुत नर्म ठण्डा झोंका आया और उसके पूरे जिस्म को छूकर चला गया। उसने ख़ुशी भरी हैरानी से जमील को देखा। उस वक़्त उनके होंठों पर प्यार भरी मुस्कुराहट थी। उसने आश्चर्य से सोचा, "भाईजान इस तरह पूछ रहे हैं, कब देखी। जब से हाजी अहमद चचा के यहाँ टी.वी. आया है एक आध बार थोड़ी बहुत देख ली है, वह भी छिप-छिपकर।"

"नहीं" उसने जवाब दिया।

"देखोगी?" जमील के लहज़े में बहुत नर्मी और आँखों में अजीब तरह की चमक थी।

उसे फ़िल्म देखने का कोई ऐसा शौक़ नहीं था, बस एक उत्सुकता-सी थी। हम भी देखें कि सिनेमा हॉल में फ़िल्म कैसी लगती है। उसका जी चाहा कह दे, हाँ देखूँगी। लेकिन फिर ख़याल आया, अम्माँ ने चलते वक़्त कितनी नसीहतें दी थीं, कहीं घूमने न लगना, जो देर हो जाये, फरमाइश न करने लगना और देखो – उन्होंने भाई जान से कहा था, इसे भीड़ में अकेले मत छोड़ देना, हाथ पकड़े रहना। उजाले-उजाले लौट आना रात मत करना।

"...देर हो जायेगी तो अम्माँ बहुत ख़फ़ा होंगी। भाईजान से तो शायद कुछ न कहें मगर मेरी ख़बर ले लेंगी। और अभी पहुँचकर बरतन भी तो धोने हैं। सुबह झाड़ू नहीं दी थी। अम्माँ को फुसर्त न मिली होगी झाड़ू देने की तो जाकर झाड़ू भी देना होगी, अगर मगरिब से पहले पहुँच गये।"

"क्या ख़याल है।" जमील ने पूछा।

"देर हो जायेगी, अम्माँ डाँटेंगीं।" उसने जवाब दिया

"अम्माँ से कह देंगे, डॉक्टर के यहाँ देर हो गयी।" जमील ने मुस्कुराते हुए उसे बेफ़िक्र करना चाहा।

"ऊँहूँ..." उसने इन्कार किया।

"ख़ैर तुम्हारी मर्ज़ी है... अच्छा चलो किसी रेस्टोरेण्ट में बैठकर लस्सी पीते हैं।"

"खाँसी आयेगी।" उसने असहमति ज़ाहिर की।

"हूँ... यह तो है" जमील ने कहा, "फिर तुम ही बताओ क्या खाओगी।"

"आज भाईजान इतनी अपनाइयत से बात क्यों कर रहे हैं..." उसे हैरत का अहसास हुआ।

"...फ़िल्म भी दिखलाना चाहते हैं, पहले तो कभी ऐसी बात नहीं करते थे।"

बहरहाल, सच तो यह है कि जमील की नर्मी और मोहब्बत ने उसके अन्दर एक ऐसी कै़फ़ियत जगा दी थी कि जिसके बाद भूख का अहसास रह गया था, न प्यास का। नक़ाब के पीछे उसके सूखे होंठों की पपड़ियाँ चिटकीं और आँखें नम हो गयीं।

"कुछ भी नहीं खाऊँगी, बस जल्दी से घर चलिये।" उसने काँपते स्वर में कहा।

"अच्छा तो थोड़े से सेब ख़रीद लेते हैं, बस में खा लेना" जमील ने फ़ैसला देने जैसे अन्दाज़ में कहा।

उसे हँसी आ गयी। "अब मैं बस में सबसे छिपाकर सेब खाऊँगी" आज भाई जान कितने बदले-बदले नज़र आ रहे हैं।

वापसी के सफ़र में जमील ने कहा, "खिड़की की तरफ़ बैठ जाओ।"

"इधर हवा आती है" उसने कहा। हालाँकि उस वक़्त बहुत उमस थी। उसके इन्कार से जमील के चेहरे पर किसी तरह की प्रतिक्रिया प्रकट नहीं हुई। वह एक इत्मीनान के साथ खिड़की के पास बैठ गये।

"यह सेब पकड़ो।" उन्होंने पालिथिन उसकी तरफ़ बढ़ाई और सिटकनी दबाकर शीशे का फ्रेम ऊपर चढ़ा दिया – मुँहज़ोर हवा तो जैसे शीशे के उस तरफ़ तौले खड़ी थी, भर्रा मारकर अन्दर आ गयी।

भाई जान जिस रास्ते से गये थे उसी रास्ते से वापस आये। वही ख़ूब ऊँची इमारत – वही बड़ी-सी पार्क, गन्दी तस्वीरों वाला सिनेमा हॉल, आहिस्ता-आहिस्ता चलता हुआ बड़ा-सा पंखा और वही सब चीज़ें जो जाते वक़्त देखी थीं। अब अगर कोई मुझसे कहे कि डॉक्टर के यहाँ अकेली चली जाओ तो मैं बड़े आराम से चली जाऊँगी। पहले बस से उतरकर रिक्शे पर बैठूँगी। रिक्शेवाले से कहूँगी – मुझे वहाँ ले चलो। कहाँ... हाँ निराला नगर।

ख़ूब ऊँची-सी इमारत के पास। फिर रास्ते में सब चीज़ों को ख़ूब ध्यान से देखती रहूँगी। अगर कोई भी चीज़ कम हो गयी या कोई नयी चीज़ नज़र आ गयी तो समझूँगी कि रिक्शेवाले की नीयत में फितूर आ गया है। शोर मचा दूँगी... फिर जब रिक्शा उस ऊँची-सी इमारत के पास पहुँच जायेगा तो दाहिने हाथ वाली गली से ज़रा दूर तक पैदल चलूँगी। भाई जान ने रिक्शेवाले से किसी और रास्ते की बात की थी। मगर वह दूर का रास्ता था। इसीलिए भाई जान उससे नहीं गये थे... मगर ये सब सोचना तो आसान है, मगर करना मुश्किल... शायद मैं न जा सकूँ।

जिस वक़्त वो लोग बस से उतरकर गाँव की तरफ़ जा रहे थे, सूरज पेड़ों की हरी शाखों में अटका हुआ था, और परिन्दे बसेरे के लिए उतरने लगे थे। परिन्दों की चहचहाहट के साथ ज़लज़ले की सी, मानूस आवाज़ फ़िज़ाँ में गूँज रही थी। उसने आँखें ऊपर कीं। दूर... आसमान की तरफ़ सुरमई धुएँ से आड़ी तिरछी पगडण्डी-सी बन गयी थी।

"चलो अच्छा हुआ जो उजाले-उजाले पहुँच गये। अम्माँ भी खुश हो जायेंगी". .. उसने सोचा, ...अब इतनी दूर तलक पैदल चलना पड़ेगा। यहाँ के रिक्शेवाले भी कमबख़्त सूरज डूबने से पहले ही चले जाते हैं। आज सारी रात पिण्डलियों में ऐंठन होगी, नींद नहीं आयेगी।

धूल से अटा हुआ, ऊँचा-नीचा रास्ता तय करने के बाद जब वह गन्दी नालियों से दामन बचाती हुई अपनी गली से गुज़र रही थी, अचानक एक मोड़ से तमीज़न बुआ नमूदार हुईं। बेनियाज़ी के साथ वही पुरानी चाल चलती हुई। तमीज़न बुआ के सिरपर बड़ा-सा थाल रखा हुआ था। थाल पर ढके हुए कामदार दुपट्टे के पल्लू उनके कन्धों पर झूल रहे थे।

तमीज़न बुआ ने थाल पर हाथों की गिरफ़्त मज़बूत की और पलकें ख़ूब ऊपर उठाकर उसकी तरफ़ देखा। अगर वह जमील के साथ न होती तब भी तमीज़न बुआ उसे पहचान लेतीं।

"सलाम तमीज़न बुआ..."

"जीती रहो।" तमीज़न बुआ ने लरजती-काँपती आवाज़ में दुआ दी फिर सवालिया नज़रों से उसको देखते हुए पूछा।

"कहाँ से आये रही हो..."

उसका कलेजा धक से हो गया। क्या जवाब दे, उलझन में पड़ गयी। जमील ज़रा आगे बढ़कर रुक गये थे। उन्होंने तिरछी निगाह से तमीज़न बुआ को देखा और तीखे लहज़े में जवाब दिया।

"काम से गये थे।"

तमीज़न बुआ हड़बड़ा गयीं, जाते-जाते उन्होंने अपने को बचाने जैसे अन्दाज़ में कहा।

"जरीना बिटिया की मँगनी का जोड़ा लिये जाये रही हूँ।" तमीज़न बुआ के आगे बढ़ जाने के बाद जमील ने तिरछी नज़र से उसकी तरफ़ देखते हुए कहा,

"सलाम करने की क्या ज़रूरत थी..."

वह सहम गयी, कुछ पछतावा-सा महसूस करते हुए उसने सोचा,

"भाईजान सही कह रहे हैं, मुझे सलाम नहीं करना चाहिए था। ख़ामोशी से आगे बढ़ जाती तो तमीज़न बुआ को शायद पता ही नहीं चल पाता कि बुर्क़े में कौन था, मगर अब तो..."

उसी वक़्त अम्माँ ने उन्हें देख लिया। इत्मीनान में डूबी हुई लम्बी साँस लेकर उन्होंने कहा, "ख़ुदा का शुक्र है, तुम लोग आ गये, वरना अँधेरा होने ही वाला था।" उसने तेज़ क़दमों से आँगन पार किया और दालान में पहुँचकर तख़्त पर ढह गयी। अम्माँ जमील के पीछे उनके कमरे में इस तरह गयीं जैसे उन्हें कोई बहुत राजदारी की बात पूछनी हो।

"अम्माँ को पहले मुझसे मेरा हाल पूछना चाहिए था, और वह पहुँच गयी भाई जान के पास। अम्माँ भी बिल्कुल हौला खब्ता है।"

इतनी दूर पैदल चलने के बाद उसकी पिण्डलियाँ फड़क रही थीं और दिल की धड़कन बढ़ गयी थी। उसने आँखें मूँछ लीं कि कुछ देर के लिए अपनेआप को भूल जाये लेकिन थकान के अहसास ने उसके जहन को बेदार कर दिया था। वह एक ज़रा आँख मूँदती कि शहर के हंगामा भरे रास्तों में देखी हुई चीज़ें और अलग-अलग तरह की आवाज़ें उसके बन्द होते पपोटों को जुदा कर देतीं।

"शहर में कितना शोर था और यहाँ कितनी ख़ामोशी है," उसने सोचा। कुछ देर के बाद अम्माँ जमील के कमरे से निकलकर हौले-हौले उसके पास आयीं, और किसी गहरे दुख में डूबी-सी तख़्त पर उसके पास बैठ गयीं।

"बुर्का तो उतार दो, बहुत गर्मी है..." अम्माँ ने कहा।

"...तुमने सुबह से कुछ खाया भी नहीं होगा।"

उसने कोई जवाब नहीं दिया, आँखें खोले ऊपर देखती रही।

"इन लोगों के साथ कहीं जाओ तो खाने-पीने को भी तरसा देते हैं, चाय बना लाऊँ या एक प्याली दूध ले लो।"

"ऊँ-हूँ..." उसने सिर को नहीं में हिलाया।

अम्माँ ने उसकी पेशानी पर अपनी ठण्डी हथेली रखी और दम साध लिया।

"हरारत हो गयी है, देखो बुखार बढ़ न जाये।... ज़िम्मेदारी का कोई अहसास ही नहीं। साहबजादे दवा लाना ही भूल गये। तुमने भी याद नहीं दिलाया, आ जाती तो आज ही से शुरू कर देती। अब कल शाम को लेके लौटेंगे, परसों सुबह से जाकर कहीं शुरू होगी... बिल्कुल वही आदतें हैं बाप की जैसी। घर में मरीज़ का दम निकल रहा हो और वह हाथ पर हाथ रखे बैठे रहेंगे।"

"अब अम्माँ दिमाग़ के कीड़े गिरा देंगी..." उसने हताश होते हुए सोचा।

"... यह ज़रा-ज़रा-सी बातों को इतना फेरती हैं, इतना फेरती हैं कि बात का बतंगड़ बना देती हैं। इसीलिए तो अब्बा और भाई जान की डाँट खाती हैं।"

मगर उस वक़्त अम्माँ शायद उसकी बीमारी की वजह से ख़ामोश हो गयीं। उन्होंने उसकी पेशानी पर पड़ी बालों की लट ऊपर की। दुपट्टे से पसीना पोंछा और पाँयती से पंखा उठाकर झलने लगीं। सुकून के अहसास से उसकी आँखें मूँद गयी। लेकिन ज़रा देर के बाद पंखे की रफ़्तार धीरे-धीरे सुस्त पड़ने लगी। उसने कनखियों से अम्माँ की तरफ़ देखा। अम्माँ की आँखें उसके चेहरे पर गड़ी हुई थीं। वह उसमें जाने क्या ढूँढ़ रही थीं। उनका चेहरा ऐसा हो गया था जैसे वह देर के बाद आग के सामने से उठी हों। आँखों के डोरे सुर्ख़ हो रहे थे और होंठ आहिस्ता-आहिस्ता थरथरा रहे थे।

उसी वक़्त अदील बाल उछालता हुए एक बेफ़िक्री के साथ घर में दाख़िल

हुआ। अम्माँ को ज़हरा के पास इस तरह बैठा देखकर ठिठक गया और फिर धीरे चलते हुए तख़्त के पास आया।

"पानी पियोगी।" उसने पूछा।

"बहन को पानी दो," अम्मी ने रुँधे गले से कहा।

अदील जल्दी से पानी ले आया।

"बाजी पानी"

कोरे घड़े का, खारा मगर ठण्डा पानी उसने तीन बार ठहर-ठहर के पिया। ख़ाली ग्लास अदील की तरफ़ बढ़ाया, "और।"

अदील फिर उसी रफ़्तार से जाकर पानी ले आया, उसने दूसरा ग्लास भी तीन बार ठहर-ठहरकर ख़ाली कर दिया। पानी से पेट भर गया मगर प्यास नहीं बुझी। वह दोबारा लेट गयी। उसी वक़्त अब्बा खँखारते हुए आ गये। ख़ास अन्दाज़ में नपे हुए क़दम रखते हुए छतरी बन्द करते हुए उन्होंने चिन्तित होते हुए उसकी तरफ़ देखा। फिर छतरी को खूँटी में टाँगकर उसके पास आये।

वह जल्दी से उठकर बैठ गयी।

"क्या बात है," अब्बा ने पूछा।

"थक गयी है", अम्माँ ने उसी दुखी लहजे में कहा।

"हूँ..." उन्होंने कुछ सोचा, फिर एक लम्हे बाद बोले,

"...गर्मी भी तो बहुत है, बहन चो... बारिश हो तो कुछ सुकून मिले। तू खड़ा-खड़ा मुँह क्या ताक रहा है। बहन के पंखा क्यों नहीं झल देता..." अब्बा ने अदील को हुक्म दिया।

"... ले पहले यह कमीज़ धूप में फैला दे।"

अदील ने कमीज़ धूप में फैलायी और पसीने से चिपचपाते हुए हाथों को सूँघता हुआ तख़्त के पास आया। पसीने की गन्ध से उसका जी मतलाने लगा। उसने अपनी कमीज़ के दामन से हाथ साफ़ किये और अम्मी के हाथ से पंखा लेकर जल्दी-जल्दी झलने लगा।

इस नाजबरदारी से ज़हरा को उलझन होने लगी। उसका जी चाहा, सब लोग उसे अकेला छोड़ दें और उससे बेनियाज़ हो जायें। उसने बुर्क़ा बदन से खसोटकर दूर फेंका। तभी अम्माँ उठकर दूसरे दालान में चली गयीं।

"अब अम्माँ दालान से निकलकर चोरों की तरह कोठरी में जायेंगी और वहाँ कपड़े निकालने के बहाने एक बक्स खोलेंगी, फिर दूसरा खोलेंगी। कोई कपड़ा निकालेंगी। उसे फैलायेंगी फिर आहिस्ता-आहिस्ता तहा कर दोबारा बक्स में रख देंगी और वह देर तक यही करती रहेंगी।"

वह जानती थी कि जब भी अम्माँ को कोई दुख सताता है तो वह दबे पाँव क़दमों से कोठरी में जाकर देर तक आँसू बहाती रहती हैं। उसने पहलू बदलकर

कोठरी में देखने की कोशिश की। कोठरी के दरवाज़े का एक पट खुला हुआ था, मगर अन्दर अँधेरा था। वह अन्दर का मंज़र आँखों में भरने की कोशिश कर रही थी कि तभी सदर दरवाज़े की तरफ़ डयोढ़ी में किसी के क़दमों की आहट उभरी।

"अज़रा बाजी आ रही हैं", अदील ने कहा।

उसने चौंककर देखा। सामने अज़रा बच्चों की सी चाल चलती हुई आ रही थी, उसके होंठों पर वही जानी पहचानी मुस्कुराहट और आँखों में चमक थी। थकान और ऊब का जो अहसास उस पर हावी था, अज़रा को देखने के बाद चुस्ती और सुकून में बदल गया। वह जल्दी से उठकर बैठ गयी। अब्बा कमर में धोती बाँध के पायजामा उतार रहे थे। बैचेनी को दबा-दबाकर वह तख़्त पर से उतरी और थोड़ा मोहताज अन्दाज़ में चलती हुई अज़रा के क़रीब चली गयी। अगर अब्बा सामने न होते तो वह बच्चों की तरह दौड़कर अज़रा से लिपट जाती।

"आज मैंने तुमको याद किया और तुम आ गयीं, कब आयीं।"

उसने अज़रा को ऊपर से नीचे तक देखते हुए कहा। नयी डिज़ाइन के कपड़े उस पर बहुत सज रहे थे। अब उसका रंग भी तो पहले से निखर आया था।

"आज दोपहर ही को आयी हूँ। मैं उसी वक़्त तुमसे मिलने आयी थी मगर तुम मिली ही नहीं। कहाँ गयी थीं?" एक ही साँस में बोलते हुए अज़रा ने उत्सुकता ज़ाहिर की।

उसका कलेजा तो जैसे हलक़ में आकर अटक गया। अब वह अज़रा को क्या बताती। बात बनाना वह जानती न थी। वह असमंजस की कै़फ़ियत में खड़ी थी कि अम्माँ कोठरी से निकलीं, ऐसे मौक़ों पर उनकी छठी इन्द्रिय फ़ौरन जाग जाया करती थी। वह बिल्ली की सी चाल चलती हुई उसके पास आयी और फुसफुसायी।

"सुनो ज़हरा।" उन्होंने रहस्य भरे अन्दाज़ में उसे देखा और दालान की तरफ़ चली गयी।

उसे अम्माँ का यह तरीक़ा पसन्द नहीं आया, "भला अज़रा के पास से इस तरह बुलाने की क्या ज़रूरत थी, वह क्या सोचेगी।"

"अज़रा बैठो मैं अभी आती हूँ।" उसने अज़रा से कहा और न चाहते हुए भी दालान में चली गयी, जहाँ अम्माँ आँखें फाड़ इस तरह खड़ी थीं, जैसे कोई हादसा होने वाला हो।

"देखो – यह बड़ी डाइन लड़की है, अपनी माँ की तरह रस्सी का साँप बना देने वाली... यह टोह लेने आयी है। तुमसे बहुत-सी बातें पूछेगी। मगर ख़बरदार जो तुमने उसको कोई बात बताई। किसी बात का जवाब मत देना, होंठ पर होंठ रखे बैठी रहना, ख़ुद ही चली जायेंगी... समझ गयी।"

अम्माँ ने उसकी तरफ़ ऐसे देखा जैसे उससे इक़रार करवा लेना चाहती हो।

उनकी बातें सुनकर उसकी त्यौरियाँ ही चढ़ गयीं। लेकिन फिर उसने आँखें झुका लीं।

"और ज़रा अपना हुलिया तो ठीक करो।" अम्माँ ने कहा और बावर्चीख़ाने की तरफ़ चली गयी... कमबख़्त बैल का करना और स्याही का आना।

ज़रूर कुछ देर तक पशोपेश के आलम में खड़ी रही फिर तेज़ी से जाकर चारपाई पर लेट गयी और दुपट्टे से मुँह ढाँपकर दहाड़ें मारकर रोने लगी। कुछ देर बाद अँधेरा हो गया और मगरिब की अजान हुई। वह जल्दी से उठी और लम्बी साँस लेकर सोचा,

"आज मुझे क्या हो गया है, मगरिब की अजान हो रही है और घर में अँधेरा है... कमबख़्त मारी बिजली जाने कब आयेगी।"

वह फुर्ती से आँगन में आयी, ठिठककर सिर पर दुपट्टा डाला, उसके कोने से आँखों में बाक़ी रह जाने वाली नमी को खुश्क किया और मामूल के मुताबिक़ चिराग़ जलाने बावर्चीख़ाने की तरफ़ चली गयी।

लकड़बग्घा रोया

सैयद मोहम्मद अशरफ़

कप्तान पुलिस से लकड़बग्घा ज़िन्दा पकड़ लाने के इस कारनामे पर शाबासी और इनाम लेना है। इस ख़्वाहिश के नशे में वह हुजूम ऐसा बेहवास हुआ कि ये भी नहीं सोचा कि उनका बँगला आबादी से परे जंगल के रास्ते में है और जंगल देखकर उसकी वहशत भड़क भी सकती है और यही हुआ।

लकड़बग्घे को लिये हुए वह हुजूम अभी पुलिस कप्तान के बँगले के रास्ते में ही था और बँगले की चहारदीवारी थोड़ी ही दूर रह गयी थी तो जाने उसके अन्दर कहाँ से इतनी ताक़त आ गयी कि वो एक लम्हे पर रुका, गरदन में पड़ी ज़ंजीर खिंची और तन कर रह गयी। मुँह पर बँधे जाबे के अन्दर गुर्राहटें आपस में गड्ड-मड्ड होने लगीं, तब ज़ंजीर थामे व्यक्ति मुसीके ने अपनी पूरी ताक़त से ज़ोर लगाया। लकड़बग्घे के अगले पंजे ज़मीन से उठे और पिछले पंजों पर थमा उसका शरीर थोड़ा आगे सरक आया और उतने हिस्से की ज़मीन पर उसके पंजों के निशान ऐसे बन गये जैसे किसी ने ज़मीन पर दो लाठियाँ रखकर ताक़त से खींच दी हों।

पिछले पंजों का दम लगाकर रुका, अगले पंजे फ़िज़ा में बुलन्द किये और पूरे बदन की कूवत को रीढ़ की हड्डी और बाजुओं के जोड़ों में भरकर छलाँग लगा दी। ज़ंजीर थामे व्यक्ति की मज़बूत गिरफ़्त में फँसी ज़ंजीर उसकी हथेलियों को लहुलूहान करती हाथ से निकल गयी। हुजूम के मुँह से एक चीख़ निकली और कुछ बेतरतीब जुमले। वो आगे ही आगे दौड़ रहा था और ज़ंजीर उसके साथ खिसक रही थी। देहात से आने वाली सड़क पर पुलिस की एक जीप शोर मचाती हुई आ रही थी। आगे जीप और पीछे ऊधम मचाता हुजूम। वो एक लम्हे को ठिठका और कप्तान के बँगले के गेट पर खड़े वर्दीधारी सिपाही की ख़ाकी पतलून से टकराता हुआ गुलाब की क्यारियों को पार करके गरदन-गरदन खड़े गेहूँ के खेत में घुस गया, फिर गुम हो गया।

पुलिस कप्तान ने ड्राइंगरूम से सटे अपने ऑफ़िस में बैठे-बैठे दरवाज़े से बाहर, बरामदे में खड़े उस व्यक्ति को देखा जो कुर्ता पायजामा पहने था, जिसकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी, जिसकी गरदन और चेहरे पर डण्डों की मार के ताज़ा निशान थे और जिसके होंठों पर पपड़ी जमी हुई थी। कन्धों पर रायफ़ल लटकाये दो सिपाही उसके बाज़ू पकड़े उसे घेरे खड़े थे।

सूरज डूब चुका था लेकिन रोशनी इतनी कम भी नहीं थी कि पुलिस कप्तान उस व्यक्ति के माथे पर लिखे अँधेरे को पढ़ न सकें। उन्होंने कुर्सी पर पहलू बदला। गले में कोई चीज़ अटकती हुई महसूस हुई। खखारकर गला साफ़ किया और अपने व उस आदमी के दरम्यान खड़े थाना कंचन गढ़ी के थानेदार की वर्दी को आँखों ही आँखों में ऊपर से नीचे तक देखा और आवाज़ में अफ़सराना रुआब पैदा करते हुए पूछा – "हेड कांस्टेबिल रामऔतार कितनी देर में आ पायेगा" थानेदार की एड़ियाँ आपस में मिलीं, मुट्ठियाँ टाँगों से चिपककर नीचे की तरफ़ खिंचीं, होंठों पर एक तजुर्बेकार मुस्कुराहट आयी।

"ड्राइवर से कह दिया था कि सरकार आँधी की तरह जीप ले जाये और तूफ़ान की तरह वापस लाये। दीवान जी थाने पर न हों तो घर से उठा लाये। सिविल पहने हों तो वर्दी पहनने में समय न ख़राब करें। वर्दी उठा लायें। रास्ते में जीप के अन्दर ही बदल लें। जीप आती ही होगी हुज़ूर।"

"हूँ" और यह कहकर उन्होंने उस शख़्स के पीछे खेतों पर फैलती तारीकी में आँखें जमा दीं और जब निगाहें वापस खींचीं तो देखा कि बरामदे के नीम अँधेरे माहौल में लिपटे उस शख़्स का सीना आहिस्ता-आहिस्ता हिल रहा था और आँखों से बेआवाज़ आँसू बह रहे थे। उन्हें फिर गले में कोई चीज़ अटकती हुई महसूस हुई।

दुविधा भरी आवाज़ में थानेदार से पूछा – "क्या आपको बिल्कुल यक़ीन है कि ये नायक के गिरोह का आदमी है?" अपनी आदत के मुताबिक़ थानेदार ने शरीर को थोड़ा-सा झटका देकर ख़ुद को अटेंशन ज़ाहिर किया और पहले से भी ज़्यादा आत्मविश्वास के साथ बोला, "आप चिन्ता न करें हुज़ूर! बिल्कुल सही आदमी मारा जा रहा है।" फिर कुछ रुककर, कुछ सोचकर बोला। इस बार उसकी आवाज़ में फुसफुसाहट थी।

"अगर छोड़ दिया गया तो कल ही ये ज़मानत करा लेगा और परसों आपके पास इलाक़े से वायरलेस मेसेज आ जायेगा कि फलाँ गाँव में डकैती पड़ गयी और तीन आदमी मारे गये और फिर ऊपर से आई.जी. साहब की डाँट आयेगी, तो सरकार आप ख़ूब ग़ौर कर लें।"

और तब कप्तान पुलिस ने सोचा कि कंचन गढ़ी का थानेदार सच कह रहा है। क्योंकि अगर यह झूठ भी बोल रहा है तब भी अपनी बात को सच साबित करने भर की ताक़त और योग्यता इसमें मौजूद है। अगर मुखबिर की यह सूचना सही भी

है कि थानेदार कंचन गढ़ी इस मुल्जिम श्याम सुन्दर को सिर्फ़ इसलिए मरवाना चाहता है कि कंचन गढ़ी का प्रधान इस काम के लिए थानेदार को पाँच हज़ार रुपये दे चुका है तब भी मैं क्या कर सकता हूँ? अगर मैं मुल्जिम श्याम सुन्दर को छोड़ भी दूँ तो ये बिल्कुल सही है कि कल ही इसकी ज़मानत हो जायेगी और परसों थाना कंचन गढ़ी से दो कोस दूर ग्राम लालपुर के उन तीन आदमियों को थानेदार मरवा डालेगा जिनके क़त्ल के लिए एम.एल.ए. श्री रामधर दस हज़ार नगद और तरवत थाने की थानेदारी दिलाने का वायदा कर चुके हैं और फिर रात के तीन बजे वायरलेस पर तैनात सिपाही मेरे कमरे के अन्दर जूते उतारकर आयेगा और हाथ में थामी स्लिप पढ़ेगा – ग्राम लालपुर में रात दो बजकर पैंतालिस मिनट पर डकैती पड़ी। पुलिस ठीक समय पर पहुँच गयी। डाकू सामान नहीं ले जा सके। मुठभेड़ में डाकुओं के हाथ गाँव के तीन आदमी मारे गये। डाकू एक देशी तमंचा और कुछ ख़ाली कारतूस छोड़कर भागने में सफल हो गये।"

"और जब ये मैसेज हेडक्वार्टर पहुँचेगा तो आई.जी. साहब की डायरी में फिर मेरा नाम लिखा जायेगा और जून वाले तबादलों में हो सकता है किसी बेकार-सी पोस्टिंग पर मुझे दे मारें। और जब बेकार-सी पोस्ट मिलती है तो न इतना बड़ा घर होता है जिसमें साल भर का गल्ला उगाया जा सके और न सिपाहियों की इतनी बड़ी फ़ौज और न वो दबदबा। साथ के अफ़सरान चुपके ही चुपके आँखों में कैसा मज़ाक़ उड़ाते हैं?"

"मेरे कहने का मतलब ये था," उन्होंने कुर्सी से पीठ लगाकर मुइमईन लहजे में कहना शुरू किया "कि क्या हेड कांस्टेबुल रामऔतार को इसका तजुर्बा भी है?"

"हुज़ूर!" थानेदार की आवाज़ में गहरा विश्वास था क्योंकि वो अपने अफ़सर की हार को पढ़ चुका था।

"हुज़ूर! दीवान जी रामऔतार पिछले कप्तान पुलिस श्री वर्मा के समय में अकेले ही पाँच बार यह काम कर चुका है। बहुत विकट जवान है।"

"मगर क्या ये मुनासिब होगा कि मुल्जिम यानी इस डकैत को हमारी ही कोठी में मारा जाये।"

"सरकार! इसमें एक राजनीति है। मुक़दमा यूँ बनेगा कि मुल्जिम अपने गिरोह के साथ कप्तान पुलिस की कोठी पर रात के समय पहुँचा जहाँ थानेदार कंचन गढ़ी इलाक़े की डकैती और मर्डर की चर्चा करने गये हुए थे। गिरोह इस बात की टोह लेना चाहता था कि कप्तान पुलिस ने क्या आदेश दिये हैं? क्योंकि कप्तान साहब ने पूरे इलाक़े को क्लीयर करने के आदेश दिये थे। इसलिए अचानक कप्तान साहब पर जानी हमला हुआ। मुल्ज़िमान भागे। उनके पीछे-पीछे थानेदार कंचन गढ़ी और दीवान रामऔतार भागे। बाक़ी लोग असलहा और कुछ ख़ाली कारतूस और जूते छोड़कर भागने में सफल हो गये। परन्तु हमला करने वाले श्याम सुन्दर उर्फ शामू

को दीवान रामऔतार ने मुठभेड़ में मार गिराया।"

इतना कहकर थानेदार रुका। कप्तान पुलिस ने देखा कि अँधेरे में उसके दाँत चमक रहे थे जैसे... "हो सकता है डी.आई.जी. साहब हेड कांस्टेबुल रामऔतार को इस बहादुरी के लिए पाँच सौ रुपये इनाम भी दे दें।" उसके दाँत फिर चमके।

उसके दाँतों की चमक और मुल्जिम के चेहरे पर फैली हुई धुँधलाहट के परिप्रेक्ष्य में गेहूँ के खेत बिल्कुल धुन्ध में डूबे हुए थे।

"किरमिच के जूतों और देशी कट्टे का इन्तज़ाम हो गया?"

"जी हाँ हुज़ूर! सिपाही बलदेव के पास झोले में सारा सामान मौजूद है।"

जीप ने मोड़ काटा। बरामदे के पास जाकर ब्रेक लगे और हेड लाइट बुझ गयी।

पुलिस दीवान रामऔतार वर्दी पहने उतरा। खट-खट करता चला और मुल्जिम श्याम सुन्दर को एक नज़र देखता हुआ कप्तान पुलिस के सामने आकर जूते बजाकर, सैलूट करके अटेंशन खड़ा हो गया।

"आराम से," कप्तान पुलिस ने आदत के मुताबिक़ कहा।

"बाहर बड़ी भीड़ है। देहात वाले लकड़बग्घा पकड़कर लाये थे वो छूट गया है और साहब की कोठी के अन्दर ही है" रामऔतार ने बदन ढीला छोड़ते हुए कहा।

"क्या दीवार फलाँग कर आया है?" कप्तान पुलिस ने आश्चर्य से पूछा।

"नहीं हुज़ूर, पहरे के सिपाही ने बताया है कि मेन गेट से घुसा है।"

"लकड़बग्घे की हिम्मत देखिये, हुज़ूर मेन गेट से घुस गया।' थानेदार कंचन गढ़ी के दाँत फिर चमके।

कप्तान पुलिस कुर्सी से आधे उठ चुके थे। इस वाक्य पर क्षण भर को ठिठके, फिर सीधे खड़े होकर बोले।

"मैं देखता हूँ कि भीड़ कोठी के अन्दर न आ जाये।"

"आप बैठें सरकार, भीड़ मैं सँभालता हूँ।" थानेदार बोला –

"नहीं!" कप्तान पुलिस ने तक़रीबन झिड़कने वाले अन्दाज में इस तरह कहा जैसे अफ़सर कहते हैं। क्योंकि पद और अनुभव ने उन्हें इतना सिखा दिया था कि जिस कार्य से किसी को कोई आर्थिक हानि न पहुँचे उस बारे में लहज़ा कितना ही सख़्त क्यों न हो मातहत बुरा नहीं मानते और बुरा मान भी जायें तो उसकी कोई हानिकारक प्रतिक्रिया भी नहीं होती। और फिर ऐसे मौक़े पर लहज़े को कर्कश करने से अफ़सरी के अहं की भी तुष्टि होती है।

"आप इस काम को निबटाइये" उन्होंने मुल्जिम की तरफ़ देखते हुए कहा। ये सुनकर मुल्ज़िम का बदन काँपने लगा। उन्होंने मुल्ज़िम की आँखों की तरफ़ ग़ौर से देखा। क्योंकि उसका चेहरा मलगजी रोशनी में था इसलिए वह उसकी आँखें देख सके। वह एक झटके के साथ कमरे से बाहर निकल गये। गेट पर पहरे का सिपाही भीड़ को रोके खड़ा था और चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था "चिन्ता न करो। दीवार

बहुत ऊँची है। निकल नहीं पायेगा।"

"इसके हाथ बाँधकर कोठी के पीछे ले चलो। दीवान जी! रायफ़ल लोड कर लो। सिपाही! खेत के पास जाकर उसे दौड़ाओ। चिन्ता न करो दीवार बहुत ऊँची है। ये भाग नहीं पायेगा।"

"मैं बहुत प्रसन्न हूँ कि आप लोगों ने जीदारी से काम लेकर इस ख़ूनी लकड़बग्घे को ज़िन्दा पकड़ लिया।" कप्तान पुलिस ये कहकर रुके और फाटक से लगी भीड़ पर एक नज़र डालकर ये सोचकर दिल ही दिल में बहुत ख़ुश हुए कि उनके बोलते ही भीड़ ऐसे ख़ामोश हो गयी थी कि जैसे साँप सूँघ गया हो।

"अब आप लोग शोर न करें, बाहर ही बाहर दीवार के सहारे लाठियाँ लेकर खड़े हो जाइये। अगर लकड़बग्घा भागने की कोशिश भी करे तो उसे बाहर मत निकलने दीजिये। ये ख़ूनी अब बचकर नहीं जा सकता। दीवार के पास एक-एक गज की दूरी पर जम जाइये।"

भीड़ दायें तरफ़ की दीवार के बराबर खड़ी होने के लिए आगे बढ़ी।

"और देखो रामऔतार दीवान जी!" थानेदार कंचन गढ़ी ने देशी शराब की बोतल का काग खोलकर बोतल उसे देते हुए कहा।

"जब ये दस गज भाग ले तो फायर कर देना। सिपाही! तुम थैले से किरमिच के जूते निकाल लो। जहाँ से यह भागे वहाँ जूते डाल देना। ख़ाली कारतूस और कट्टा भी वहीं गिरा देना।"

ढीले-ढीले क़दम रखना, सिपाहियों के पंजों के मज़बूत शिकंजों में कसा मुल्जिम वहाँ तक चला जहाँ तक सिपाही उसे ले गये। गेहूँ के खेत की मेड़ आ गयी थी।

"रामऔतार! ये भागकर कोठी के उधर वाले हिस्से के खेतों की तरफ़ न जा सके ध्यान रहे।" थानेदार बोला –

"आप चिन्ता न करें सरकार, रामऔतार अनाड़ी नहीं है। अब ये बचकर कहाँ जायेगा।" रामऔतार ने बोतल ख़ाली करते हुए कहा और बोतल को पास खड़े सिपाही के थैले में घुसेड़ दिया जिसमें से अभी-अभी किरमिच के जूते, ख़ाली कारतूस और देशी पिस्तौल निकालकर ज़मीन पर बिखरा दिये गये थे।

दीवान रामऔतार ने रायफ़ल बोल्ट की।

"अब आप बाउण्ड्री की दीवार के पास होशियारी से खड़े हो जाइये।" कप्तान पुलिस ने चिल्लाकर कहा – और धीमे से पास खड़े पहरे के सिपाही से बोले।

"लकड़बग्घा कोठी के उधर वाले हिस्से की तरफ़ न भाग सके, ध्यान रखना – रायफ़ल लोड कर लो।"

अचानक ठण्डी हवा का एक तेज़ झोंका आया और कप्तान पुलिस की रीढ़ की हड्डी को ठण्डा करता हुआ गेहूँ के उन खेतों में घुस गया जहाँ लकड़बग्घा छिपा

हुआ था। तेज़ हवा से हिले पौधों में रास्ता बनाता, चट-चट करता लकड़बग्घा लगभग कम घने वाले खेत के हिस्से में निकल आया – गुलाब के किसी पौधे के काँटों में उलझकर मुँह पर बँधा जाबा पहले ही कहीं गिर चुका था, रुककर कानों को खड़ा करके उनकी नोकें मिलायी और उन नोकों के सिरे चहारदीवारी की तरफ़ कर दिये जिसकी दूसरी तरफ़ से अभी-अभी इन्सानी आवाज़ें सुनायी दी थीं, अचानक उसे अपने पीछे कुछ सरसराहट-सी सुनायी दी। बदन को मोड़े बग़ैर सिर्फ़ गरदन घुमाकर देखा तो परछाइयाँ थोड़ी ही दूरी पर खड़ी थीं और खेत में कुछ देखने की कोशिश कर रही थीं और इन्सानी आवाज़ में कुछ बोल रही थी।

मुल्जिम ने सुना कि थानेदार कंचनगढ़ी ने एक अजीब-सी आवाज़ में कहा था – "कमर पर लात मारकर इसे भगाओ रामऔतार।"

रामऔतार राइफ़ल सँभाले, गाली बकता उसकी तरफ़ बढ़ा। मुल्जिम का चेहरा उनकी तरफ़ नहीं था इसलिए कान जान बन गये थे। उसने बहुत साफ़ तौर से सुना कि थानेदार और दीवान जी व रामऔतार के मुँह से जानवर जैसी आवाज़ निकल रही थी। कमर पर लात पड़ने के कारण मुल्जिम आगे की ओर झटके से गिरते-गिरते बचा और पूरी ताक़त से भाग पड़ा। इस आशा पर कि शायद चहारदीवारी फलाँग सके। लकड़बग्घे ने मुड़कर उन परछाइयों की तरफ़ देखा।

कप्तान पुलिस ने रिवाल्वर वाले हाथ से सिपाही को इशारा किया। सिपाही ने रायफ़ल हथियाई। लकड़बग्घा गरदन घुमाकर चट-चट करता पूरी ताक़त से गेहूँ के पौधों में उलझता, भागता, दीवाल तक जा पहुँचा। "फायर" कप्तान पुलिस पूरी ताक़त से चीख़े।

जाड़ों की अँधेरी सुनसान अर्धरात्रि कई फायरों की आवाज़ से गूँज उठी। दरख़्तों पर बसेरा लेते परिन्दे घबराकर उड़े और देर तक आवाज़ करते रहे। वो देर तक दरख़्तों की डालियों, पत्तों से उलझते रहे।

रामऔतार ने फूँक मारकर रायफ़ल का धुआँ साफ़ किया और खेतों में फड़कते मुल्जिम को एक नज़र देखा।

पहरे के सिपाही ने दोबारा बोल्ट किया और भागते हुए लकड़बग्घे पर फिर फायर किया।

इस बार भी निशाना चूका – लकड़बग्घा दीवाल के पास पहुँचकर एक पल को ठिठका और पूरी क़ूवत से चहारदीवारी को फलाँगने के लिए छलाँग लगा दी।

कप्तान पुलिस तेज़ी से मुड़े और फाटक से निकलकर दीवाल से पीछे जाकर देखा – लाठियाँ लिये हुए लोग उस पर जुटे हुए थे और वो पीठ के बल पड़ा तड़प रहा था।

उन्होंने एक नज़र लकड़बग्घे को देखा, चेहरे का पसीना पोंछते तेज़ी से पीछे मुड़े और भागकर अन्दर आकर पहरे के सिपाही को आदेश दिया, "जाकर देखो!

लकड़बग्घा मरा कि नहीं – गेट के अन्दर किसी को मत आने देना, ख़बरदार!"

रिवाल्वर जेब में ढूँढ़ते हुए, भागते क़दमों से वह अपने ऑफ़िस में आये; कुर्सी पर ख़ुद को गिराकर आँखें बन्द करके उन्होंने ख़याल किया कि जब लकड़बग्घे पर फायर हुआ था तो कोठी के उस तरफ़ भी फायर की आवाज़ सुनायी दी थी – उनके गले में साँस घुटती हुई सी महसूस हुई थी। आँखें खोलीं। सामने थानेदार कंचनगढ़ी, दीवान रामऔतार और दोनों सिपाही सावधान खड़े थे।

"रामऔतार" – उन्होंने बहुत थमी आवाज़ में पूछा।

"क्या मरते दम वह रो रहा था?"

"हाँ सरकार" – ऑफ़िस में प्रवेश करते हुए पहरे के सिपाही ने कहा जिसके चेहरे पर दहशत और परेशानी के आसार थे और साँसें ज़ोर-ज़ोर से चल रही थी।

'हाँ सरकार वह रो रहा था, मरते-मरते रो रहा था। गाँव वाले कह रहे थे कि जंगली जानवरों को उन्होंने कभी रोते नहीं देखा। मैंने ख़ुद अपनी आँखों से देखा सरकार! वह रो रहा था, उसका सीना ज़ोर-ज़ोर से हिल रहा था और आँखों से आँसुओं की धार बेआवाज़ बह रही थी।'

कप्तान पुलिस कुर्सी से उठे, मेज़ पर चढ़े और चारों हाथों-पैरों से मेज़ पर खड़े होकर, छत की तरफ़ गरदन उठाकर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगे।

मत रो सालिक राम

मुशर्रफ़ आलम ज़ौक़ी

जिस वक़्त कॉमरेड नूर मोहम्मद अस्पताल लाया गया, उसकी लगभग आधी साँस उखड़ चुकी थी। जिस्म का कोई भी हिस्सा साबुत नहीं बचा था। दिमाग़ का आधा गोश्त तक बाहर आ गया था। उसके बचने की उम्मीद बहुत कम रह गयी थी। और जिस वक़्त कॉमरेड नूर मोहम्मद को स्ट्रेचर पर लिटाकर इमरजेंसी वार्ड में दाख़िल किया गया, वार्ड से बाहर आसमान को घूरती हुई दो आँखें थीं, दो अजीब-सी आँखें, न ये आँखें सहमी थीं, न इनमें ख़ौफ़ की झलक थी, बल्कि इन आँखों पर आसानी से किसी को भी पागल होने का शुबहा हो सकता था।

यह सालिक राम था। दरम्याना कद। दुबला-पतला जिस्म। अन्दर तक धँसे हुए गाल। साँवला चेहरा। पतली-पतली टाँगें। एक मैला-सा कुर्ता-पाजामा और आधी घिसी हुई चप्पल पैर में डाले। सिर के बाल उलझे हुए। दाढ़ी बेतरतीबी से बढ़ी हुई। फिर यूँ हुआ कि उसके बदन में तेज़ी से हरकत हुई। दोनों हाथ आपस में इल्तजा करने के अन्दाज़ में उठ गये। गले से भिंची-भिंची रोने की आवाज़ निकली और वह आस-पास खड़े लोगों के सामने जा-जाकर हाथ जोड़कर कहने लगा, 'तुम लोगों ने नूर मोहम्मद को क्यों मारा भाई? मैं सच कहता हूँ, वह मुसलमान नहीं था। मेरी बात का यक़ीन करो लोगों ...वह सिर्फ़ इन्सान था। एक इन्सान।"

"चलो-चलो," किसी ने जुमला कसा, "कोई पागल है।"

सालिक राम ने घूरकर देखा... अन्दर से नफ़रत की एक तेज़ लहर उठी... उसने कुछ बोलने की कोशिश की तो उसे लगा, उसके मुँह से कुत्ते जैसी भिंची-भिंची चीख़ें निकल रही हों... दाँत नुकीले और सख़्त हो गये हों... वह किसी की तरफ़ भी लपक सकता है, किसी को भी काट सकता है। अचानक उसके गले से एक घड़घड़ाती हुई चीख़ निकली। इससे पहले कि दूसरे लोग मुत्वजे हों, वह तेज़ी से भागता हुआ गेट खोलकर बाहर निकल गया।

सालिक राम जिस वक़्त बाहर आया, उसके ज़ेहन में तेज़-तेज़ आँधियाँ उठ रही

थीं। वह सबकुछ देख रहा था... मंज़र साफ़-साफ़ थे। एक छोटा-सा घर। चारपाई बिछी है। खाट पर नंगे बदन उसका बाप बैठा है। सिर मुँडा हुआ है। पीछे बालों की एक चोटी लटक रही है।

"सालिक राम!" बर्फ़ जैसे सर्द अल्फ़ाज़ उसके कानों में उतरे, "स्नान कर लिया, सालिक राम...मन्दिर हो आये..." फिर श्लोकों का जाप शुरू होता। बीच-बीच में, रसोई में खाना पकाती अम्माँ को गालियों का थाल परोसा जाता, "क्यों रे...अभी तक खाना नहीं बना? कभी-कभी शक लगता है कि तेरी ब्रहमन की जात भी है कि नहीं..."

अन्दर ही अन्दर सुलग उठता सालिक राम... कच्ची मिट्टी की धुलाई से, ज़मीन से सोंधी-सोंधी ख़ुशबू उठ रही होती। उठकर वह अम्माँ के पास रसोई में आ जाता। अम्माँ की रोती आँखों को देखकर सोचता, भगवान की पूजा-अर्चना सब बेकार है। जब मन ही साफ़ न हो... ओसारे में तिलक पाण्डे और कहाँ सालिक राम। यह नाम का चक्कर भी अजीब है, किसी भी बात में समझौता न करने वाले बाबू ने धर्म की राह में उसके इस हरिजन नाम से समझौता कर लिया था। हुआ यूँ कि तिलक पाण्डे को जब बहुत दिनों तक कोई औलाद नहीं हुई तो कहते हैं कि एक पहुँचा हुआ साधु उनके दरवाज़े आया था। अलख निरंजन! भिक्षा माँगी और तिलक पाण्डे की फ़रियाद सुनकर बोला, "घबरा न, ब्रह्मन-पुत्र। बच्चा होयेगा मगर उसका नाम हरिजन के नाम पर रखना। समझ गया न बच्चा।"

नाम में क्या रखा है। यूँ सालिक राम ने उस माहौल में अपनी आँखें खोलीं, जब घर की एक-एक चीज़ में धर्म साँप की तरह कुण्डली मारकर बैठा था। बाबूजी सुबह-ही-सुबह भिक्षा माँगने निकल जाते। फिर दोपहर ढले या शाम ढले वापस आते। जब सालिक राम थोड़ा बड़ा हुआ तो वह भी जाने लगा।

तिलक पाण्डे के घर से चन्द फर्लांग की दूरी पर एक मुसलमान का घर है। वहाँ से गुज़रते हुए एक बार सालिक राम को देखकर उसका हमउम्र एक लड़का ज़ोर से ठहाका मारकर हँस दिया था। लड़के ने सालिक राम के नंगे सिर और पीछे लटकती चुटली को देखकर कहा, "तेरे सिर पर पूँछ।"

सालिक राम ग़ुस्से में बोला, "म्लेच्छ कहीं का!"

लड़के की हँसी अचानक ग़ायब हो गयी। उसने सालिक राम को बड़ी ग़ौर से देखा। ग़ुस्से में भरा हुआ सालिक राम दनदनाता हुआ घर पहुँच गया। घर पहुँचकर छोटे-से आईने में उसने अपनी शक्ल देखी और उसके सामने उसकी उम्र के वे सारे लड़के घूम गये जो चेहरे-मोहरे और पहनावे से कैसे सुन्दर दिखते थे। और एक वह है – पैरों में खड़ाऊँ की खट-खट। बार-बार खुल जाने वाली धोती। झूलता हुआ कुर्ता। मुण्डा सिर। बाहर निकली हुई चुटली। उसे घिन आ रही थी ख़ुद से। नफ़रत महसूस हो रही थी... जैसे उसे एक अच्छी-भली दुनिया से काटकर किसी क़ैदख़ाने

में क़ैद कर दिया गया हो। मगर किसी भी तरह की बग़ावत के लिए लफ़्ज़ कहाँ थे उसके पास! लफ़्ज़ों के घुँघरू तो तिलक पाण्डे ने पैदा होते ही उसके नन्हे-मुन्ने पाँव से खींचकर तोड़ दिये थे।

सालिक राम जैसे आग की गर्म-गर्म भट्ठी में तप रहा था... उस रात, काफ़ी देर तक उसे नींद नहीं आयी। सुबह होने तक वह अपनी सोच पर एक नये फ़ैसले की मुहर लगा चुका था। तिलक पाण्डे हमेशा की तरह सबेरे उठ गये। नहा-धोकर, पूजा-अर्चना से फारिग होकर आवाज़ लगायी, 'सालिक राम!"

सालिक राम को जैसे इसी आवाज़ का इन्तज़ार था। आगे बढ़ा और अपना फ़ैसला सुना दिया, "आज से मैं आपके साथ नहीं जाऊँगा।"

"क्या?" तिलक पाण्डे की आँखों में हैरत थी। वह उसे ग़ौर से देख रहे थे। जिस मुए ने कल तक बोलना नहीं जाना था, आज इन्कार का लफ़्ज कैसे सीख लिया। और सालिक राम ने अटक-अटककर अपनी बात एकदम से सामने रख दी, "मैं पढ़ना चाहता हूँ। मैं पढ़ूँगा। मैं ये सब नहीं करूँगा। मुझे ये सब अच्छा नहीं लगता।"

तिलक पाण्डे के दिमाग़ में एक साथ जैसे हज़ारों मिसाइलें छूट गयीं। वह उठे, आगे बढ़े और सालिक राम के बदन पर तड़ातड़ तमाचों की बारिश कर दी।

सालिक राम अब भी रोते हुए चिल्ला रहा था, "मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता। मैं ये सब नहीं करूँगा। मुझे ये चुटली भी अच्छी नहीं लगती। मैं बाल बढ़ाऊँगा। स्कूल जाऊँगा।"

फिर एक लम्बा अर्सा गुज़र गया। तिलकधारी ने जैसे हार मान ली। बूढ़े हो गये थे। इन्कलाब के इस नये तेवर के आगे झुक गये। बड़ी मुश्किल से सालिक राम बी. ए. कर सका। इस बीच वह धीरे-धीरे धर्म, अकीदे जैसी चीज़ों से कटता रहा था। इधर तिलकधारी ने दुनिया को ख़ैरबाद कहा, उधर सालिक राम ज़माने की ज़रूरतों को पूरा करने में लग गया। वक़्त बदला था। ज़मीन, पानी, मिट्टी, हवा – सबमें नफ़रत के जरासीम घुल गये थे। उसने बदले-बदले भारत का कुछ "अंश" तो बाबूजी में तलाश किया था और कुछ वक़्त के थपेड़ों में देखा। यहाँ तो नफ़रत के अन्धड़ थे। बदबूदार लफ़्ज़ थे। चेहरे पर फ़र्क़ की रेखाएँ थीं।

"सालिक राम, स्नान कर लिया? मन्दिर हो आये?" ...वह बरसों पीछे छूटी आवाज़ की जद में होता... और सालिक राम यह भी देख रहा था – मोहब्बत, मेल-मिलाप की कहानियाँ तारीख़ के पन्नों में खोयी जा रही हैं। मुल्क़ के हाशिए पर जब सुर्ख़-सुर्ख़ ख़ून फैल जाता तो सालिक राम अपने अन्दर छिपे उस चुटली वाले सालिक राम का जायजा ज़रूर लेता, जो नफ़रत के उस अन्धड़ से बड़ी मुश्किल से बाहर निकल सका था। अब सालिक राम की परचून की एक

छोटी-सी दुकान थी, लेकिन शहर की सांस्कृतिक सरगर्मियों में भी उसकी दिलचस्पी थी।

उस एक दिन मुसलमान लौंडा उसकी दुकान पर बैठा बता रहा था, "अरे यार! उसे जानता है न! नूर मोहम्मद! साला अपने मज़हब से फिर गया है। मज़हब-वजहब को नहीं मानता। ईद-बक़रीद जुमे की नमाज़ भी नहीं पढ़ता है।"

"ऐसा?" सालिक राम को ताज्जुब हुआ।

मुसलमान लौंडे ने धीमी सरगोशी में बताया, 'किसी से कहना मत। साला कम्युनिस्ट हो गया है। पक्का कमनिस्ट।"

कम्युनिस्ट!

एक पल के लिए सालिक राम को लगा, जैसे उसने किसी भयानक हादसे की कोई ख़बर सुन ली हो। मुसलमान है, लेकिन नमाज़ नहीं पढ़ता। मस्जिद नहीं जाता। कम्युनिस्ट हो गया है। बचपन की अधमैली तसवीर निगाहों में मचल उठी। तेरे सिर पर पूँछ... और उस चुटलीवाले सालिक राम ने चिढ़ाया था... मलेच्छ कहीं का... मुसलमान लौंडे के चले जाने के बाद सालिक राम को अचानक जाने क्यों नूर मोहम्मद से मिलने की ख़्वाहिश हुई। नूर मोहम्मद का नाम वह किसी-न-किसी बहाने बराबर सुनता रहा था, मगर उससे मिले एक मुद्दत हो गयी थी।

उस दिन वह अपने एक दोस्त के हमराह कम्युनिस्ट पार्टी के दफ़्तर गया था। दफ़्तर में थोड़ी-सी भीड़-भाड़ थी और उस भीड़ में रवाँ-दवाँ बोलता हुआ एक शख़्स नज़र आया जिसके हाथ में बैण्डेज बँधा था और जो एक छोटी-सी बच्ची का हाथ थामे था। बच्ची किसी अनजाने ख़ौफ़ से सहमी हुई थी।

सालिक राम ने बैण्डेज वाले नौजवान को ग़ौर से देखा और वह अधमैली-सी तसवीर निगाहों में नाच उठी – नूर मोहम्मद?

"हैलो कॉमरेड!" एक नौजवान ने नूर मोहम्मद से हाथ मिलाया। नूर मोहम्मद ने भी अपना बैण्डेज वाला हाथ आगे कर दिया।

"ये सब कैसे हुआ?"

नूर मोहम्मद खिलखिलाकर हँस पड़ा। बहुत सादी-सी हँसी थी उसकी।

उसके दोस्त ने बताया, "अपना कॉमरेड भी अजीब इन्सान है। दुनिया में कोई भी मरता हो। किसी का भी घर जलता हो। कॉमरेड की आँखों में आँसू देख लो। आज तहरीक से वाबस्तगी तो बेमानी-सी शै हो गयी है दोस्त – नारेबाज़ी की फ़िज़ा में साँस लेने वाले भला ज़िन्दगी की गहराई में क्या उतर सकेंगे! कमिटमेण्ट क्या होता है, देखना हो तो नूर मोहम्मद को देखो। अपने कॉमरेड को।"

सालिक राम ने एक बार फिर अजीब नज़रों से नूर मोहम्मद के हँसते हुए चेहरे का जायजा लिया। और एकदम से अपना हाथ उसकी तरफ़ बढ़ा दिया, "सलाम, कॉमरेड! दुआ करता हूँ तुम्हारी सेहत के लिए।"

नूर मोहम्मद खिलखिलाया, "क्यों! मेरी सेहत को क्या हुआ! अच्छा-भला हूँ।"

सालिक राम को कम्युनिस्ट पार्टी से कोई लगाव न था, मगर नूर मोहम्मद की वजह से पार्टी दफ़्तर के चक्कर शुरू हो गये थे। उसे यह अच्छा लगा था। झूठ-फ़रेब और बनावट की दुनिया से दूर। फिर नूर मोहम्मद की ज़िन्दगी की कितनी हकीकतें उसके सामने रौशन होती चली गयीं। नूर मोहम्मद का बड़ा भाई डॉक्टर था। एक बहन प्रोफ़ेसर है। बाप एजुकेशन के महकमे में डिप्टी डायरेक्टर थे, मगर ख़ुद नूर मोहम्मद ने किसी की नौकरी क़बूल नहीं की। वह चाहता तो बहुत कुछ कर सकता था, मगर उसने पूरे तौर पर ख़ुद को पार्टी के लिए वक्फ कर दिया। अब वह है और उसकी पार्टी है। सर्विस ऑफ़ इन्कम बिलकुल ही नहीं और वह बच्ची। वह छोटी-सी बच्ची फसाद की देन है। शहर से पच्चीस किलोमीटर दूर गाँव में फ़िरक़ावाराना फ़साद में लड़की के घर वाले शहीद हो गये रिलीफ़ के काम के लिए नूर मोहम्मद भी वहाँ का दौरा करने गया हुआ था। लड़की हिन्दू थी। जब कोई उसे रखने को तैयार नहीं हुआ तो उसे नूर मोहम्मद ने अपने पास रख लिया। नूर मोहम्मद ने शादी नहीं की थी। उसकी वजह वह यह बताता था कि शादी के बाद वह पार्टी को अपना वक़्त देने के क़ाबिल न रहेगा।

पार्टी दफ़्तर के स्टोर रूम को उसने एक साफ़-सुथरे कमरे की शक्ल दे दी थी। सालिक राम उस दिन अचानक वहाँ पहुँच गया तो क्या देखता है कि दरवाज़ा खुला है, वह बच्ची उसके पास बैठी है और कॉमरेड उस छोटी-सी निकेता को पढ़ा रहा है, "पढ़ो! मन्दिर-मस्जिद दंगे करवाते हैं। ख़ुदा एक अनदेखी ताक़त का नाम है और जो चीज़ देखी नहीं गयी, उसका क्या मानना...।"

पता नहीं वह कितनी देर से और क्या-क्या तालीम दे रहा था। सालिक राम इतना ही सुन सका। वह सन्न से था। चप्पल की आवाज़ सुनकर कॉमरेड नूर मोहम्मद चौंका। चेहरे पर मुस्कुराहट आ गयी।

"अरे सालिक राम! आ जाओ।"

निकेता ने नमस्ते की।

सालिक राम ने शक की निगाहों से नूर मोहम्मद को देखा।

"ये क्या पढ़ा रहे थे?" उसके चेहरे पर नाराज़गी थी, "क्या मैं यह समझूँ कि तुम इस बच्ची के ज़ेहन में एक नामालूम-सा ज़हर भर रहे हो।"

नूर मोहम्मद ने ठण्डी साँस ली, "नहीं, ज़हर बाहर निकाल रहा हूँ।"

सालिक राम ने देखा, नूर मोहम्मद का चेहरा अचानक बदला था। आँखों से चिनगारियाँ निकलीं।

"उसे सच बता रहा हूँ। सच, सालिक राम! इसलिए नहीं, जैसा तुम समझ रहे हो, एक लावारिस बच्ची मुझे मिल गयी है और मैं जिस शक्ल में चाहूँ, उसे बदल

सकता हूँ। दंगों ने उसके माँ–बाप छीन लिए। सिर्फ़ निकेता ही इसकी मिसाल नहीं है। यह मोहमल–सा सवाल है कि निकेता का क़ुसूर क्या था। या उसके माँ–बाप ने क्या गुनाह किये थे। मौक़ापरस्तों ने मौक़ा पाया। घर लूटा। घर जलाया और एक बच्ची को लावारिस बना दिया। ये सब तुम्हारा मज़हब करा रहा है, सालिक राम, तुम्हारा मज़हब! तुम जिसके ढोल पीटते रहते हो। मस्जिदों को आबाद करते हो। मन्दिरों में शंख बजवाते हो। वही तुम्हारा मज़हब, जिसे इन सियासी भेड़ियों ने मोहर बना रखा है।"

नूर मोहम्मद के चेहरे पर आक्रोश था, "बरसों की तहज़ीब, तमद्दुन, सबको तुम्हारे इन मज़हबी झगड़ों ने ख़त्म कर दिया। मिसाली मिलाप–मोहब्बत अब तो बस एक खोखला ढाँचा बच गया है सालिक राम, जिसमें मन्दिर और मस्जिद क़ैद हैं। हम–तुम कहाँ बाक़ी हैं। ये बच्ची बची है, इससे पूछो तो मज़हब के नाम पर इसका चेहरा बदल जाता है। कल को यही हाल रहा न, तो नयी तहज़ीब के बच्चे तुम्हारे मज़हब से नफ़रत करेंगे, सालिक राम। और तुम बस त्रिशूल भाँजते रहना!"

हँसमुख चेहरे वाले नूर मोहम्मद का पहली बार इतना ख़ौफ़नाक चेहरा देखा था सालिक राम ने। इस बीच सिर्फ़ इतना हुआ कि निकेता उठी, पास वाले स्टूल पर रखे घड़े से गिलास में पानी डाला, पानी लाकर उसके सामने पेश किया और एक तरफ़ सिमटकर चुपचाप बैठ गयी।

सालिक राम ने सिर उठाया। धीरे से कहा, "कॉमरेड नूर मोहम्मद! सड़कों पर अगर ख़ून बहता है तो इसमें मज़हब का क्या क़ुसूर। सियासी भेड़िए अगर मज़हब को अपना मोहरा बनाते हैं तो धर्म का क्या दोष। तुम इस बच्ची के अन्दर ज़हर भर रहे हो।"

"नहीं, इस उम्र के बच्चे–बच्चियाँ कल इसी नतीजे पर पहुँचेंगे। मैं सिर्फ़ उस सोच को कुरेद रहा हूँ।"

पार्टी–दफ़्तर में लोगों के आने का वक़्त हो गया था, इसलिए सालिक राम वहाँ ज़्यादा देर तक नहीं बैठा, 'लेकिन नूर मोहम्मद की आवाज़ बार–बार उसके ज़ेहन पर शबख़ून भर रही थी – कल इस उम्र के तमाम बच्चे–बच्चियाँ...

सालिक राम की कनपटी गर्म हो गयी।

सालिक राम उस दिन अपनी दुकान में ग्राहकों को सौदा दे रहा था कि वही मुसलमान लौंडा अशरफ आ धमका, "नयी ख़बर सुनते हो।"

तराजू के पलड़े को ग़ौर से देखते हुए सालिक राम ने थोडी–सी मुण्डी उठायी, "कोई नयी ख़बर है क्या?"

"बिलकुल ताजी।" अशरफ़ ने धमाका किया, "जानते हो नूर मोहम्मद ने जिस बच्ची को अपने यहाँ रखा है, उसे लेने उसका चाचा आया था।"

"फिर?"

“बच्ची ने जाने से बिलकुल इन्कार कर दिया। बात काफ़ी बढ़ गयी। हंगामे भी हुए। पार्टी-दफ़्तर का मामला था। सारे लोग नूर मोहम्मद के ही साथ थे। चाचा बकता-झकता लौट गया, लेकिन धमकियाँ देता हुआ गया। कह रहा था, वह सबको देख लेगा। साले अधर्मी। नास्तिक। कम्युनिस्ट बनते हैं साले। अपना धर्म तो भ्रष्ट है ही, बच्ची का धर्म भी भ्रष्ट कराते हैं।”

अशरफ ज़ोर-ज़ोर से हँस रहा था, “तुम देख लेना, यह साला नूर मोहम्मद अपनी करनी से मारा जायेगा। साला मुसलमान के घर पैदा होकर कम्युनिस्ट बनता है। अम्माँ कही हैं कम्युनिस्ट की क़ब्र में कीड़े पड़ते हैं। मरते वक़्त मिट्टी भी नसीब नहीं होती।”

सालिक राम किसी और सोच में डूबा हुआ था। दुकान पर छोटे-से एक बच्चे को बिठाकर वह पार्टी-दफ़्तर निकल गया। दफ़्तर में आज निकेता वाला मुद्दा ही ज़ेरे-बहस था। नूर मोहम्मद ने निकेता को पास ही बिठा रखा था।

एक बुज़ुर्ग ने समझाया, “बात बढ़ाने से फ़ायदा ही क्या है, नूर मोहम्मद! निकेता को चाचा के हवाले कर दो।”

“मैं चाचा के पास नहीं जाऊँगी।” निकेता की आँखें सुर्ख़ हो रही थीं।

बुज़ुर्ग ने बच्ची की बात काटते हुए कहा, “बच्ची की परवरिश एक मुश्किल काम है, कॉमरेड! और तुम्हें कोई तजुर्बा भी नहीं। कई दुश्वारियाँ भी आ सकती हैं।”

“मैं नहीं जाऊँगी!” निकेता ने फिर चीख़कर कहा।

नूर मोहम्मद एक झटके से उठा। उसके चेहरे पर हल्की-सी शिकन थी। “बच्ची की परवरिश पार्टी की देख-रेख से ज़्यादा मुश्किल काम तो नहीं। यह तजुर्बा ही सही। जब निकेता कहती है कि वह नहीं जायेगी तो वह मेरे साथ ही रहेगी।”

सालिक राम ने देखा, नूर मोहम्मद की उस बात पर वहाँ खड़े कई कॉमरेडों के चेहरे तन गये थे। उसने धीरे से सोचा – क्या इसलिए कि वह लड़की हिन्दू है और उसे चाचा के पास भेजने का मशवरा देने वाले भी। उसने सिर्फ़ देखा और देखता रहा, कहा कुछ भी नहीं। निकेता चाचा के साथ क्यों नहीं गयी, कुछ ही देर बाद नूर मोहम्मद की वही पुरानी मुस्कुराहट इसका जवाब दे रही थी।

“सीधी-सी बात है, सालिक राम! दंगे मन्दिर-मस्जिद करवाते हैं, लड़की के ज़ेहन में यह बात बैठ गयी है। वह मेरे पास ख़ुद को ज़्यादा महफ़ूज़ समझती है।”

लेकिन दरअसल मामला तो अब उठ रहा था। जैसे धीरे-धीरे यह बात पार्टी-दफ़्तर से निकलकर, चिमिगोइयों का लिबास पहनने लगी थी। धीरे-धीरे यह बात फैलने लगी कि एक मुसलमान शख़्स फसाद में मारे गये एक हिन्दू ख़ानदान की लावारिस बच्ची की परवरिश कर रहा है। बात आगे बढ़ी तो पार्टी-दफ़्तर में धमकियाँ पहुँचने लगी। नूर मोहम्मद अपनी बात पर अड़ा था। निकेता अपनी मर्ज़ी से जाना चाहे तो उसे कोई इन्कार नहीं।

और निकेता का जवाब था – उसका चाचा हिन्दू है। मन्दिर-मस्जिद दंगे करवाते हैं। वह यहीं नूर मोहम्मद के पास रहेगी।

लेकिन नूर मोहम्मद भी तो मुसलमान है।

"नहीं।" निकेता बस इतना ही जवाब देती और वही पुरअसरार क़िस्म की चुप्पी साध लेती। न मुँह में हँसी, न चेहरे पर ज़रा-सी मुस्कुराहट।

पार्टी-दफ़्तर में इस धमकी का असर पड़ा।

अगर दफ़्तर गुस्से में आकर जला दिया गया तो पार्टी का बहुत नुकसान हो जायेगा। क़ीमती कागज़ात तक बरबाद हो जायेंगे।

किसी ने समझाया, "तुम्हारा यहाँ रहना ख़तरे से ख़ाली नहीं। अगर बच्ची को साथ रखने की ज़िद है तो यह जगह ख़ाली कर दो।"

नूर मोहम्मद अचानक चौंक उठा। ग़ौर से उस बूढ़े पार्टी वर्कर का चेहरा देखा – इतने ग़ौर से कि बूढ़ा कॉमरेड एकदम से घबरा गया।

नूर मोहम्मद के अन्दर जैसे किसी ने ज़बरदस्त सन्नाटा भर दिया था। उसने पूरी ज़िन्दगी पार्टी के नाम वक्फ कर दी थी, इसीलिए उसने कहीं सर्विस नहीं की। शादी नहीं की। डॉक्टर भाई और एडवोकेट बहन उसका ख़र्च पूरा करते हैं। ये मोहताजी तो उसने सिर्फ़ और सिर्फ़ पार्टी के लिए क़बूल की थी। लेकिन वह यह क्या सुन रहा है।

टन...टन... ज़ेहन पर जैसे कोई लगातार हथौड़ा मार रहा था – तुम यह जगह ख़ाली कर दो, नूर मोहम्मद! तुम यह जगह छोड़ दो... आओ, निकेता!

नूर मोहम्मद ने निकेता का हाथ थाम लिया। बूढ़े पार्टी वर्कर ने चौंककर नूर मोहम्मद की तरफ़ देखा।

"तुम मेरी बात का बुरा तो नहीं मान गये, कॉमरेड।"

"नहीं तो," नूर मोहम्मद मुस्कुराया, 'बिल्कुल नहीं। यूँ भी किराया लगाकर इस कमरे के दो सौ रुपये आसानी से मिल सकते हैं। क्यों कॉमरेड?"

फिर वह रुका नहीं निकेता का हाथ थामकर तेज़ी से बाहर निकल गया।

सालिक राम एक बार फिर सन्न से था। दुकानदारी में दिल नहीं लग रहा था। कान बज रहे थे। ज़ेहन में आँधियाँ चल रही थीं, लेकिन नूर मोहम्मद भी तो मुसलमान है... नहीं... अगर इन्सान कहूँ तो... जिसे आज के दौर में एक सतही, बेहकीकत-सा लफ़्ज़ बना दिया गया है... इन्सान? कैसे होते हैं? जैसे हज़ारों घोड़े उसके फ़िक्र के मैदान को रौंदते हुए बढ़ रहे थे।

उसने देखा, एक कमरे का छोटा-सा घर है। दो बच्चे बैठे हुए हैं और नूर मोहम्मद ट्यूशन पढ़ा रहा है। ट्यूशन पढ़ाते अचानक उसने नज़र उठायी है। चौंक गया है।

"सालिक राम! कब आये? बैठो। जाओ लड़को, बाद में आ जाना।"

लड़कों के चले जाने के बाद नूर मोहम्मद ने मुस्कुराते हुए निकेता की तरफ़ देखा। फिर वही मुस्कुराहट चेहरे पर सजाकर बोला, "पार्टी के अलावा भी मेरी एक ज़िम्मेदारी बढ़ गयी है। ये..." उसने निकेता की तरफ़ इशारा किया, 'ट्यूशन पढ़ा रहा हूँ आजकल! कुछ आमदनी हो जाती है।"

लफ़्ज़ों में दर्द सिमट आया था, लेकिन वह उस दर्द का इज़हार नहीं करना चाहता था।

"हम नाम देकर रिश्तों को बाँट देते हैं सालिक राम, आख़िर मैं निकेता की परवरिश क्यों नहीं कर सकता? क्या सिर्फ़ इसलिए कि मेरा नाम मुसलमान का है। ज़िन्दगी के मफहूम (अर्थ) को हम अब भी ग़लत रास्तों में तलाश करते हैं और पहचान ढूँढ़ते रहते हैं।"

उसके चेहरे पर कर्ब-ही-कर्ब (पीड़ा) था। निकेता का मामला अब क़ानूनी रंग इख़्तियार कर गया है।

फिर क्या होगा।

नूर मोहम्मद ने एक बोझिल साँस ली, 'मन्दिर-मस्जिद मामले की तरह इसमें भी मज़हब का रंग है। ज़ाहिर है तुम्हारा मज़हब जीत जायेगा और मैं हार जाऊँगा।"

उसके चेहरे पर एक ज़हरीली मुस्कुराहट उभरी थी, 'तुम रथयात्राएँ निकालते हो, पदयात्राएँ करते हो। और तुम्हारे रहनुमा नफ़रत की रोटियाँ तक़सीम करते जाते हैं। मुझे आने वाले वक़्त और कल के हिन्दोस्तान से डर लगता है। ख़ैर, छोड़ो। चाय पिओगे? पास ही होटल है, मैं चाय का आर्डर देकर आता हूँ।"

नूर मोहम्मद बाहर निकल गया। सालिक राम के पास इतना मौक़ा काफ़ी था कि तज्जसुस के परिन्दे को आज़ाद करके वह निकेता से थोड़ी-सी बातचीत कर सके।

"निकेता!" उसे अपनी आवाज़ बहुत कमज़ोर-सी लगी।

निकेता ने नज़र उठाकर उसकी तरफ़ देखा।

"निकेता! तुम सचमुच चाचा के पास नहीं जाना चाहतीं?"

"नहीं, वहाँ सब धर्म को मानने वाले लोग हैं," वह किसी बुज़ुर्ग की तरह बोल रही थी, "और धर्म इन्सान का दुश्मन है। धर्म दंगे करवाता है। ख़ुदा एक अनदेखी सच्चाई है और जो चीज़ देखी ही नहीं गयी, उसका क्या मानना। मुल्क़ में आज जो कुछ हो रहा है, वह सब धर्म के ठेकेदार..."

सालिक राम को उसकी आँखों में बुढ़ापा उतरा हुआ लगा, जैसा निकेता ने अपना सबक कुछ इस तरह याद कर लिया हो कि अब कभी नहीं भूलेगी। सालिक राम के दिल में उथल-पुथल-सी मच गयी। उसके लफ़्ज गूँगे थे। वह ग़ौर से उस

बच्ची का चेहरा पढ़ रहा था, जो इस लहूलुहान भारत में, वक़्त के थपेड़ों में खोकर, कहीं बहुत ज़्यादा जवान और तजुर्बेकार हो गयी थी।

तभी नूर मोहम्मद चाय के दो गिलास लेकर आ गया। उसका चेहरा ख़ौफ़ज़दा था, 'चाय पीकर यहाँ से सीधे घर चले जाओ, सालिक राम। बाज़ार में टेंशन है।"

निकेता ने ख़ौफ़ज़दा निगाहों से नूर मोहम्मद की तरफ़ देखा और नूर मोहम्मद चाय का गिलास काँपते हाथ में उठाकर कमरे में टहलने लगा।

यह कैसा मुल्क़ है? इस मुल्क़ में क्या हो रहा है? कॉमरेड नूर मोहम्मद नहीं रहा... वह सरपट भाग रहा है... पागलों की तरह... वह जैसे इस मौजूँ पर कुछ भी सोचना नहीं चाहता। ज़ेहन की नसें जैसे अचानक ही कस जायेंगी। फिर चटक जायेंगी।

लेकिन कॉमरेड नूर मोहम्मद का वह जर्द-जर्द-सा चेहरा सालिक राम की निगाहों से ओझल नहीं होता। हर बार जैसे मुस्कुराता हुआ वह शख़्स साँप की तरह कुण्डली मारकर सामने ही बैठ जाता। मुझे दिलों की तक़सीम से डर लगता है, सालिक राम! आने वाले वक़्त और कल के हिन्दोस्तान के तसव्वुर (कल्पना) से...।

दूर तक ख़ून के छींटे-ही-छींटे हैं और उनमें एक लहुलूहान तसवीर बची है कॉमरेड नूर मोहम्मद की।

सालिक राम... ज़ेहन के दरवाज़े को मुँहज़ोर घोड़े अब तक रौंद रहे हैं... सालिक राम, तुम एक बेमुरवूत मुल्क़ की पैदावार हो, सालिक राम!

और सालिक राम को लगता है, अगर उसके वश में होता तो वह इस मुल्क़ से नफ़रत करता। हाँ, उस मुल्क़ से जहाँ वह जन्मा है – ज़ोरदार नफ़रत। एक छोटा-सा बच्चा जब किसी बात पर नाराज़ होता है तो वह अपना सारा ग़ुस्सा अपनी माँ पर निकालता है। उसे भी मुल्क़ पर ग़ुस्सा करने का हक़ है।

उसके वजूद पर जैसे कोई मोटी-सी सिल रख दी गयी थी। शहर जब लहू की सुर्ख़ियाँ लिख रहा था, यही नूर मोहम्मद था जो जान की परवाह न करते हुए लोगों को बचाने में मसरूफ़ था। मगर उसे क्या मिला – सिवा एक मुसलमान समझे जाने के और क्या मिला उसे। और निकेता... निकेता को तो उसी रोज़ वह पार्टी-दफ़्तर छोड़ आया था। शायद उसने अनजाने ख़तरे की बू सूँघ ली थी।

सालिक राम... सालिक राम... एक बार फिर भयानक सन्नाटे में हैं। उसके गले से घड़घड़ाने जैसी आवाज़ निकलती है; ठीक वैसे जैसे कुत्ते पत्थर मारने पर निकालते हैं।

सालिक राम सरपट भाग रहा था और भागते हुए वह सिर्फ़ एक ही सवाल की जद में था।

आख़िर दंगाइयों ने नूर मोहम्मद को क्या समझकर मारा है?

नूर मोहम्मद तो मुसलमान नहीं था। नूर मोहम्मद तो कम्युनिस्ट था। फिर उसे मारनेवालों ने...

वह सरपट भाग रहा है।

और अब वह पार्टी–दफ़्तर में था। पार्टी–दफ़्तर में एक गहरा सन्नाटा छाया हुआ था। बीच में धीरे–धीरे सिसकियाँ भरती निकेता खड़ी थी। क़ानूनी पेचीदगियों में उलझी निकेता। बहुत सारी आँखें सवालिया निगाहों से निकेता को घूर रही थीं।

इसका क्या होगा? कहाँ जायेगी यह? क्या चाचा के पास?

अचानक सालिक राम के बदन में हरकत हुई। उसने ग़ौर से निकेता को देखा, फिर धीरे–धीरे उसकी तरफ़ बढ़ने लगा – और आगे बढ़कर उसका हाथ थाम लिया।

'निकेता, तुम मेरे साथ चलोगी?"

निकेता की सिसकियाँ अचानक रुक गयीं। उसने सालिक राम की तरफ़ अजीब नज़रों से देखा।

"सालिक राम, मैं तुम्हारे साथ चल सकती हूँ... अगर तुम धर्म को..."

और बहुत सारे लोगों की तरह सालिक राम ने भी देखा, निकेता किसी टेप की तरह शुरू हो गयी थी – "धर्म इन्सान का दुश्मन है। धर्म दंगे करवाता है... ख़ुदा एक अनदेखी सच्चाई है... और जो चीज़ देखी नहीं गयी, उसका क्या मानना... मुल्क़ में आज जो कुछ भी हो रहा है, वह सब धर्म के ठेकेदार...।"

सिंगारदान

शमोएल अहमद

फ़साद में रण्डियाँ भी लूटी गयी थीं...

बृजमोहन को नसीमजान का सिंगारदान हाथ लगा था। सिंगारदान का फ्रेम हाथी दाँत का था जिसमें 'क़द्दे-आदम' शीशा जड़ा हुआ था और बृजमोहन की लड़कियाँ बारी-बारी से शीशे में अपना अक्स देखा करती थीं। फ्रेम में जगह-जगह तेल, नाख़ून पालिश और लिपिस्टिक के धब्बे थे जिससे उसका रंग मटमैला हो गया था और बृजमोहन हैरान था कि इन दिनों उसकी बेटियों के लच्छन...

ये लच्छन पहले नहीं थे... पहले भी वो बालकनी में खड़ी रहती थीं लेकिन अन्दाज़ ये नहीं होता था... अब तो छोटी भी चेहरे पर उसी तरह पाउडर थोपती थी और होंठों पर गाढ़ी लिपिस्टिक जमाकर बालकनी में ठट्ठा करती थी।

आज भी तीनों की तीनों बालकनी में खड़ी आपस में इसी तरह चुहलें कर रही थीं और बृजमोहन चुपचाप सड़क पर खड़ा उनकी गतिविधियाँ देख रहा था। यकायक बड़ी ने एक भरपूर अँगड़ाई ली। उसके जोबन पर उभार नुमायाँ हो गया। मँझली ने झाँककर नीचे देखा और हाथ पीछे करके पीठ खुजाई। पान की दुकान के क़रीब खड़े एक नौजवान ने मुस्कुराकर बालकनी की तरफ़ देखा तो छोटी ने मँझली को कोहनी से ठोंका दिया और फिर तीनों की तीनों हँसने लगीं... और बृजमोहन का दिल एक अनजाने ख़ौफ़ से धड़कने लगा... आख़िर वही हुआ जिस बात का डर था... आख़िर वही हुआ...

ये ख़ौफ़ बृजमोहन के दिल में उसी दिन घर कर गया था जिस दिन उसने नसीमजान का सिंगारदान लूटा था। जब बलवाई रण्डीपाड़ें में घुसे थे तो कोहराम मच गया था। बृजमोहन और उसके साथी दनदनाते हुए नसीमजान के कोठे पर चढ़ गये। नसीमजान ख़ूब चीख़ी-चिल्लायी थी। बृजमोहन जब सिंगारदान लेकर उतरने लगा था तो उसके पाँव से लिपटकर गिड़गिड़ाने लगी थी :

"भैया... ये मौरूसी (ख़ान्दानी) सिंगारदान है... इसको छोड़ दो... भैया"

लेकिन बृजमोहन ने अपने पाँव को ज़ोर का झटका दिया था।

"चल हट... रण्डी..."

और वो चारों खाने चित गिरी थी। उसकी साड़ी कमर तक उठ गयी थी। लेकिन फिर उसने फ़ौरन ही ख़ुद को सँभाला था और एक बार फिर बृजमोहन से लिपट गयी :

"भैया...ये मेरी नानी की निशानी है... भैया"

इस बार बृजमोहन ने उसकी कमर पर ज़ोर की लात मारी। नसीमजान ज़मीन पर दोहरी हो गयी। उसके ब्लाउज के बटन खुल गये और छातियाँ झूलने लगीं। बृजमोहन ने छुरा चमकाया :

"काट लूँगा"

नसीमजान सहम गयी और दोनों हाथों से छातियों को ढँकती हुई कोने में दुबक गयी। बृजमोहन सिंगारदान लिए नीचे उतर गया।

बृजमोहन जब सीढ़ियाँ उतर रहा था तो ये सोचकर उसको लज़्ज़त मिली कि सिंगारदान लूटकर उसने नसीमजान को गोया उसे ख़ानदानी सम्पत्ति से महरूम कर दिया है। यक़ीनन ये मौसमी सिंगारदान था जिसमें उसकी परनानी अपना अक्स देखती होगी, फिर उसकी नानी और उसकी माँ भी इसी सिंगारदान के सामने बन-ठनकर ग्राहकों से आँखें लड़ाती होंगी। बृजमोहन ये सोचकर ख़ुश होने लगा कि भले ही नसीमजान इससे अच्छा सिंगारदान ख़रीद ले लेकिन ये मौरूसी चीज़ तो अब उसे मिलने से रही... तब एक पल के लिए बृजमोहन को लगा कि आगज़नी और लूटमार में संलग्न दूसरे बलवाई भी यक़ीनन अहसास की इस लज़्ज़त से गुज़र रहे होंगे कि एक फ़िरक़े को उसकी विरासत से महरूम कर देने की साज़िश में वो पेशपेश है।

बृजमोहन जब घर पहुँचा तो उसकी बीवी को सिंगारदान भा गया। शीशा उसको धुँधला मालूम हुआ तो वो भीगे हुए कपड़े से पोंछने लगी। शीशे में जगह-जगह तेल के गर्द आलूद धब्बे थे। साफ़ होने पर शीशा झिलमिल कर उठा और बृजमोहन की बीवी ख़ुश हो गयी। उसने घूम-घूमकर अपने को आईने में देखा। फिर लड़कियाँ भी बारी-बारी से अपना अक्स देखने लगीं।

बृजमोहन ने भी सिंगारदान में झाँका तो क़द्दे-आदम शीशे में उसको अपना अक्स मुक्कमल और दिलफ़रेब मालूम हुआ। उसको लगा सिंगारदान में वाकई एक ख़ास बात है। उसके जी में आया कुछ देर अपनेआप को देखे... लेकिन यकायक नसीमजान रोती-बिलखती नज़र आयी –

"भैया... सिंगारदान छोड़ दो... मेरी परनानी की निशानी है... भैया..."

"चल हट रण्डी..." बृजमोहन ने सिर को ग़ुस्से में दो-तीन झटके लिए और सामने से हट गया।

बृजमोहन ने सिंगारदान अपने बेडरूम में रखा। अब कोई पुराने सिंगारदान को पूछता नहीं था। नया सिंगारदान जैसे सबका महबूब बन गया था। घर का हर फर्द ख़्वामख़्वाह ही आईने के सामने खड़ा रहता। बृजमोहन अक्सर सोचता कि रण्डी के सिंगारदान में आख़िर क्या रहस्य छुपा है कि देखने वाला आईने से चिपक–सा जाता है। लड़कियाँ जल्दी हटने का नाम नहीं लेती हैं और बीवी भी रह–रहकर ख़ुद को विभिन्न कोणों से घूरती रहती है...यहाँ तक की ख़ुद वो भी... लेकिन उसके लिए देर तक आईने का सामना करना मुश्किल होता। फ़ौरन ही नसीमजान रोने–बिलखने लगती थी और बृजमोहन के दिल–ओ–दिमाग़ पर धुआँ–सा छाने लगता था।

बृजमोहन ने महसूस किया कि आहिस्ता–आहिस्ता घर में सबके रंग–ढंग बदलने लगे हैं। बीवी अब कूल्हे मटकाकर चलती थी और दाँतों में मिस्सी भी लगाती थी। लड़कियाँ पाँव में पायल बाँधने लगी थीं और नित नये ढंग से बनाव–सिंगार में लगी रहती थीं। टीका, लिपिस्टिक और काजल के साथ वो गालों पर तिल भी बनातीं। घर में एक पानदान भी आ गया था और हर शाम फूल और गजरे भी आने लगे थे। बृजमोहन की बीवी सरेशाम पानदान लेकर बैठ जाती। छालियाँ क़तरती और सबके संग ठट्ठा करती और बृजमोहन तमाशाई बना सबकुछ देखता रहता। उसको हैरत थी कि उसकी ज़बान गुंग क्यों हो गयी है... वो कुछ बोलता क्यों नहीं...? उन्हें तम्बीह क्यों नहीं करता..?

एक दिन बृजमोहन अपने कमरे में मौजूद था कि बड़ी सिंगारदान के सामने आकर खड़ी हो गयी। कुछ देर उसने अपनेआप को दायें–बायें देखा और चोली के बन्द ढीले करने लगी। फिर बायाँ बाज़ू ऊपर उठाया और दूसरे हाथ की उँगलियों से बग़ल के बालों को छूकर देखा, फिर सिंगारदान की दराज से लोशन निकालकर बग़ल में मलने लगी। बृजमोहन जैसे सकते में था। चुपचाप बेटी की नक़्लोहरकत देख रहा था। इतने में मँझली भी आ गयी और उसके पीछे–पीछे छोटी भी :

"दीदी... लोशन मुझे भी दो..."

"क्या करेगी...?" बड़ी इतराई।

"दीदी ये बाथरूम में लगायेगी..." छोटी बोली।

"चल हट..." मँझली ने छोटी के गालों में चुटकी ली और तीनों की तीनों हँसने लगीं।

बृजमोहन का दिल किसी अनजाने ख़ौफ़ से धड़कने लगा... इन लड़कियों के तो सिंगार ही बदलने लगे हैं... इनको कमरे में अपने बाप की मौजूदगी का भी ख़याल नहीं है... तब बृजमोहन अपनी जगह से हटकर इस तरह खड़ा हुआ कि उसका अक्स सिंगारदान में नज़र आने लगा। लेकिन लड़कियों के रवैए में कोई फ़र्क़ नहीं आया। बड़ी उसी तरह लोशन मलने में डूबी दीदे मटकाती रही।

बृजमोहन को महसूस हुआ जैसे घर में अब उसका कोई वजूद नहीं है। तब

यकायक नसीमजान शीशे में मुस्कुराई–

"घर में अब मेरा वजूद है..."

और बृजमोहन हैरान रह गया... उसको लगा वाक़ई नसीमजान शीशे में बन्द होकर चली आयी और एक दिन निकलेगी और घर के चप्पे-चप्पे में फैल जायेगी।

बृजमोहन ने कमरे से निकलना चाहा। लेकिन उसके पाँव जैसे ज़मीन में गड़ गये। वो अपनी जगह से हिल नहीं सका। वो ख़ामोश सिंगारदान को ताकता रहा और लड़कियाँ हँसती रहीं... सहसा बृजमोहन को महसूस हुआ कि इस तरह ठट्ठा करती लड़कियों के दरमियान कमरे में इस वक़्त उनका बाप नहीं एक भड़वा खड़ा है...

बृजमोहन को अब सिंगारदान से ख़ौफ़ महसूस होने लगा और नसीमजान अब शीशे में हँसने लगी... बड़ी चूड़ियाँ खनखनाती तो वे हँसती... छोटी पायल बजाती तो वो हँसती और बृजमोहन को अब...

आज भी जब वो बालकनी में खड़ी हँस रही थीं तो वो तमाशाई बना सबकुछ देख रहा था और उसका दिल किसी अनजाने ख़ौफ़ से धड़क रहा था।

बृजमोहन ने महसूस किया कि राहगीर भी रुक-रुककर बालकनी की तरफ़ देखने लगे हैं। यकायक पान की दुकान के क़रीब खड़े नौजवान ने कुछ इशारा किया। जवाब में लड़कियों ने भी इशारे किये तो नौजवान मुस्कुराने लगा। बृजमोहन के जी में आया कि वह नौजवान का नाम पूछे। वह दुकान की तरफ़ बढ़ा लेकिन नज़दीक पहुँचकर ख़ामोश रहा। दफ़अतन उसको महसूस हुआ कि वो नौजवान भी उसी तरह दिलचस्पी ले रहा है जिस तरह लड़कियाँ ले रही हैं... तब ये सोचकर उसको हैरत हुई कि वो उसका नाम क्यों पूछना चाहता है...? आख़िर उसके इरादे क्या हैं...? क्या वो उसको लड़कियों के दरमियान ले जायेगा...? बृजमोहन के होंठों पर लम्हे भर के लिए एक रहस्यमयी मुस्कुराहट रेंग गयी। उसने पान का बीड़ा गले में दबाया और जेब से कंघी निकालकर दुकान की शीशे में सोंटने लगा। इस तरह बालों में कंघी करते हुए उसको थोड़ी राहत का अहसास हुआ। उसने एक बार कनखियों से नौजवान की तरफ़ देखा। वो एक रिक्शेवाले से आहिस्ता-आहिस्ता बातें कर रहा था और बीच-बीच में बालकनी की तरफ़ भी देख रहा था। जेब में कंघी रखते हुए बृजमोहन ने महसूस किया कि वाक़ई उसकी नौजवान में किसी हद तक दिलचस्पी ज़रूर है। गोया ख़ुद उसके संस्कार भी... ऊँह... ये संस्कार-वंस्कार से क्या होता है? ये उसका कैसा संस्कार था कि उसने एक रण्डी को लूटा... एक रण्डी को... किस तरह रोती थी... भैया... भैया मेरे... और फिर बृजमोहन के कानों में नसीमजान के रोने-बिलखने की आवाज़ें गूँजने लगीं...बृजमोहन ने गुस्से में दो-तीन झटके सिर को दिये... एक नज़र बालकनी की तरफ़ देखा, पान के पैसे अदा किये और सड़क पार करके घर में दाख़िल हुआ।

अपने कमरे में आकर वह सिंगारदान के सामने खड़ा हो गया। उसको अपना

रंग–रूप बदला हुआ नज़र आया। चेहरे पर जगह–जगह झाइयाँ पड़ गयी थीं और आँखों में कासनी रंग घुला हुआ था। एक बार उसने धोती की गिरह खोलकर बाँधी और चेहरे की झाइयों पर हाथ फेरने लगा। उसके जी में आया कि आँखों में सुरमा लगाये और गले में लाल रूमाल बाँध ले। कुछ देर तक वो अपनेआप को उसी तरह घूरता रहा फिर उसकी बीवी भी आ गयी। उसने अंगिया पर ही साड़ी लपेट रखी थी। सिंगारदान के सामने वह खड़ी हुई तो उसका आँचल ढलक गया। वो बड़ी अदा से मुस्कुराई और आँख के इशारे से बृजमोहन को अंगियाँ के बन्द लगाने के लिए कहा।

बृजमोहन ने एक बार शीशे की तरफ़ देखा। अंगिया में फँसी हुई छातियों का अक्स उसको लुभावना लगा। बन्द लगाते हुए नागहाँ उसके हाथ छातियों की तरफ़ रेंग गये।

"उई दैया..." बृजमोहन की बीवी बल खा गयी और बृजमोहन की अजीब कैफ़ियत हो गयी। उसने छातियों को ज़ोर से दबा दिया। "हाय राजा... उसकी बीवी कसमसाई और बृजमोहन की रगों में ख़ून की गर्दिश अचानक तेज़ हो गयी। उसने एक झटके में अंगिया नोचकर फेंक दी और उसको पलंग पर खींच लिया। वो उससे लिपटी हुई पलंग पर गिरी और हँसने लगी।

बृजमोहन ने एक नज़र शीशे की तरफ़ देखा। बीवी के नंगे बदन का अक्स देखकर उसकी रगों में शोला–सा भड़क उठा। उसने यकायक ख़ुद को कपड़ों से एकदम अलग कर दिया। तब बृजमोहन की बीवी उसके कानों में आहिस्ता से फुसफुसायी :

"हाय राजा... लूट लो भरतपुर..."

बृजमोहन ने अपनी बीवी के मुँह के कभी 'उई दैया' और 'हाय राजा' जैसे शब्द नहीं सुने थे। उसको लगा ये शब्द नहीं सारंगी के सुर हैं जो नसीमजान के कोठे से बुलन्द हो रहे हैं और तब... और फ़ज़ा कासनी हो गयी थी... शीशा धुँधला गया था... और सारंगी के सुर गूँजने लगे थे।

बृजमोहन बिस्तर से उठा। सिंगारदान की दराज़ से सुरमेदानी निकाली। आँखों में सुरमा लगाया। कलाई पर गज़रा लपेटा और गले में लाल रूमाल बाँधकर नीचे उतर गया और सीढ़ियों के क़रीब दीवार से लगकर बीड़ी के लम्बे–लम्बे कश लेने लगा।

डूँगरवाड़ी के गिद्ध

अली इमाम नक़वी

इस अनहोनी पर दोनों ही हैरान रह गये। गैर-इरादी तौर पर उन्होंने स्ट्रेचर ज़मीन पर रखा। हैरत से लाश को देखा, फिर एक-दूसरे को। आँखों ही आँखों में एक दूसरे से बहुत से सवालात किये। काफी देर तब उसकी आँखों के ढेले घुमते रहे और जब वे थमे तो अनजाने ही दोनों कन्धे उचके। अचानक दोनों ने गले की रगों पर ज़ोर देकर जबड़ों को दायें-बायें खींचा और फिर उनकी नज़रों ने डूँगरवाड़ी (पारसी शमशान) के घने दरख़्तों की परिक्रमा की।

दूर-दूर तक एक गिद्ध का पता नहीं था – और यह बिल्कुल पहली बार हुआ था। दो घण्टे पहले इत्तिलाई घण्टी बजी थी। पन्द्रह मिनट बाद ही डूँगर बगली (मैयत का नहलाने-कफ़नाने की जगह) नम्बर दो के ख़ुद्दाम (सेवादार) लाश उन दोनों के सुपूर्द कर रहे थे। लाश को बावली की हद में लेने के बाद दोनों ने किवाड़ बन्द किये थे। फिर दरवाज़े की खिड़की खोलकर आनेवालों से मरनेवालों के सगे-सम्बन्धियों की बाबत मालूम करने के बाद फ़िरोज़ भाटीना से पूछा था – "साब लोग बख़्शीश आप्या...?"

जवाब में खुद्दाराम ने मुस्कुराते हुए दस-दस के दो नोट भाटीना के तरफ़ बढ़ा दिये थे। उसने एक नोट डगले की जेब में डाला और दूसरा अपने साथी हुर्मुज़ की तरफ़ बढ़ाते हुए खिड़की बन्द कर दी।

"ए ख़ुदा..." हुर्मुज़ ने सिर उठाकर ऊँचे-ऊँचे दरख़्तों की घनी शाखों से झाँकते आसमान की तरफ़ देखा। फिर आँखों से भाटीना को इशारा किया। दोनों ने झुके स्ट्रेचर को उठाया और बावली की तरफ़ चल पड़े।

"फ़िरोज़!" चलते-चलते हुर्मुज़ अपने साथी से मुख़ातिब हुआ।

"बोलने!"

"अपन कब तलक... ये काम करेगा...?"

"चल-चल, मगज ना दही कर, चल-चल।"
"यार, अपन का वास्ते यही काम रह गयेला है?"
"सूँ विचार छे?" (क्या विचार है?)
"कुछ पन नथी। हूँ ख़ाली पूछूँ छ्यूँ।" (कुछ नहीं। मैं सिर्फ़ पूछ रहा हूँ)
"आनेस्ट?"
"कसम ज़रतुश्त की।" उसने आसमान की तरफ़ सिर उठाकर कसम खायी। दो पल दोनों ख़ामोश रहे। फिर भाटीना बोला – "देख हुर्मुज़! पारसी पंचायत अपून को पाला। आपनो नसीब सालो खोटो हतो। (अपना नसीब साला खोटा था।) समझा क्या... अभी तू बता।"
"एकच स्टोरी छे बप्पा... कुछ जास्ती फ़र्क़ नहीं। पर सच्ची बोलूँ – अभी अपून कंटाल गया। एकदम साला कंटाल गया।"
और फिर उसकी बातों का सिलसिला अधूरा रह गया था। बावली आ गयी थी। हुर्मुज़ के पैर की एक ही ठोकर से बावली का दरवाज़ा खुल गया था और दूसरे ही पल दोनों लाश के सिरहाने और पाँयती खड़े थे। दही में लिपा लाश का चेहरा बिल्कुल सफ़ेद था। हुर्मुज़ ने लाश का सिरहाना ज़रा-सा ऊँचा किया। भाटीना ने कफ़न खींच लिया। फिर बारी-बारी दोनों ने लाश के पैर छुए। हाथों को आँखों और सीने से लगाया और खड़े हो गये। गुप्तांगों को छिपाने के लिए बस एक रूमाल कस्ती से लाश की कमर पर बाँध दिया गया था, जिसे उन्होंने ज्यों का त्यों रहने दिया, और फिर वे दोनों लौट गये थे। अपने कमरे में पहुँचकर दोनों मेज़ के आसपास पड़ी कुर्सियों पर बैठ गये। थोड़ी देर बाद हुर्मुज़ ने शराब की बोतल मेज़ पर रख ली थी और दोनों अपना-अपना गिलास भर रहे थे। चकली का एक टुकड़ा मुँह में रखने के बाद फ़िरोज़ भाटीना बोला –
"हुर्मुज़।"
"बोला।"
"सूँ लाइफ।"
"केम थया?" (क्या हुआ?)
"बगली... एक...दो...तीन...चार. बेल...साला... और"
"और?"
"हाँ और।"
"और मय्यतो... मय्यतो... (और मौत... मौत...)
"जो तो पारसी ना लाइफ।" (देख तो, पारसी की ज़िन्दगी।)
"लाइफ?"
"आस्तो।" (हाँ)
"क्या हुआ?"

"ऐनी जवानी सुपरफास्ट, अने बुढ़ापो मालगाड़ी माफ़िक चले।"

"खरद बोलो बप्पा, खरद बोलो।"

"सच्ची, एकदम खरा।"

फिर वे दोनों काफी देर तक 'खरद-खरद' की तक़रार करते रहे, पीते रहे; और कुछ देर बाद सुबक रहे थे। कोई घण्टे भर बाद फिर घण्टी बजी। अब बगली नम्बर चार से लाश आने वाली थी।

"वाह ख़ुदा-ए-ज़रतुश्तन, दारू नाबन्दोबस्त केदा।" (वाह ज़रतुश्त के ख़ुदा ने शराब का इन्तज़ाम किया)।

"हादड़ी चल, चल।"

दोनों बावली ने सदर दरवाज़े की तरफ़ बढ़े थे। एक मर्तबा फिर दरवाज़ा खुला था। ख़ाली स्ट्रेचर बाहर रख दिया गया था और कुछ देर बाद बगली नम्बर चार की लाश उनकी सुर्पुदगी में थी। आने वाले ख़ुद्दाम में से एक ने फिर एक मर्तबा दस-दस के दो नोट उनकी तरफ़ दिये थे, जिन्हें इस मर्तबा हुर्मुज़ ने आगे बढ़कर वसूल किया। दरवाज़ा बन्द किया गया। स्ट्रेचर उठाया गया और दोनों बावड़ी की तरफ़ बढ़ने लगे।

"हुर्मुज़।"

"बोल।"

"एक दिन आपरो भी एमिच जावनी न।" (एक दिन हम भी इसी तरह जायेंगे न।)

चलते-चलते हुर्मुज़ रुक गया। गरदन घुमाकर उसने फ़िरोज भाटीना को देखा, फिर किसी क़दर दुरुस्त लहज़े में उससे पूछा – "आ स्वां तमे केम केदा?" (ये सवाल तुमने क्यों किया?)

"मरदा तो सब ना पड़शे।" (मरना तो सबको पड़ेगा।)

"खराज बोले। पन मारा विचार अमना मरवाना नयीं।" (सब कहा, लेकिन मेरा विचार अभी मरने का नहीं।)

"विचार? सूँ कहे बप्पा।"

"चुप कर साला। हम लोग एटला लाइफ मा जोया सूँ? लाश, लाश, लाश अने पक्षी। जास्ती और जास्ती, वह साला सतारा रोड़ ना दारू! नौसादरवाला दारू। दस-दस रुपये का नोट। हूँ पूछूँ... लाइफ ऐना नाम छे?" (चुपकर साला। हम लोगों ने इतनी ज़िन्दगी में क्या देखा – लाश, लाश और गिद्ध। ज़्यादा से ज़्यादा वह साली सतारा रोडवाली दारू, नौसादरवाली। दस-दस रुपये के नोट। मैं पूछता हूँ – ज़िन्दगी इसी का नाम है?)

जवाब में फ़िरोज़ कुछ न बोला। वो तो बस हुर्मुज़ को देख रहा था।

"बोल बप्पा, आच छे जीवन" (बोल भाई, यही है ज़िन्दगी?)

"सू कहूँ, हूँ तो एटला जामूँ – आवे तो जावा पड़शे। हूँ जाऊँ तो मारा ठिकाना बीजू कोई आवे, तू जाये तो..." (क्या कहूँ, मैं इतना जानता हूँ – आयेगी तो जाना ही पड़ेगा। मैं जाऊँगा तो मेरी जगह कोई और आ जायेगा, तू जायेगा तो...)

"चुप साला भैन... हरामी...डुक्कर!" हुर्मुज़ चीख़ पड़ा था।

"बोम न मार बप्पा, जीवन न बात छोड़। मय्यत हाथ मा छे।" (चीख़ ना भाई, ज़िन्दगी की बात छोड़ कि मय्यत हाथ में है।)

और दोनों खामोशी से बावली तक पहुँचे थे। और जब बावली का दरवाज़ा खुला तो...

इस अनहोनी पर दोनों ही हैरान रह गये। गैर-इरादी तौर पर उन्होंने स्ट्रेचर ज़मीन पर रखा। हैरत से लाश को देखा, फिर एक-दूसरे को। आँखों ही आँखों में दोनों ने एक दूसरे से सवालात किये। काफी देर तक उनकी आँखों के ढेले घूमते रहे। और जब वो थमे तो अनजाने ही दोनों के कन्धे उचके... और फिर उनकी नज़रों ने डूँगरवाड़ी के घने दरख़्तों की परिक्रमा शुरू की। दूर-दूर तक एक भी गिद्ध का पता न था और ये बिल्कुल पहली मर्तबा हुआ था। गिद्ध ग़ायब थे और लाशें मौजूद। वरना होता तो ये आया था कि लाश पहुँची, हुर्मुज़ और फ़िरोज़ बावली से लौटे, बीस-पच्चीस मिनटों में लाश गिद्धों के मेंदों में मुन्तक़िल हुई। उन्होंने गिद्धों को लौटते देखा तो बावली पर पहुँचकर एसिड से ढाँचे पर छिड़काव किया और ढाँचा पाउडर बनकर बावली की गहराइयों में उतरता चला गया। नीचे बहुत नीचे-जाने कहाँ। कभी ये भी होता – कोई लाश ही न आती। उस रोज़ गिद्धों की ख़ातिर पंचायत बकरा ख़रीदकर हुर्मुज़ और भाटीना के सुपुर्द कर देती। कहीं ऐसा न हो कि गिद्ध मजबूर होकर उड़ जायें, लेकिन ये तो बिल्कुल ही अनहोनी बात थी। दोनों फटी-फटी आँखों से एक दूसरे को देखते रहे, काफी देर उसी आलम में खड़े रहने के बाद उन्होंने दूसरी लाश भी बावली के जाल पर रख दी। फिर एक-दूसरे की तरफ़ सवालिया नज़रों से देखा। "सूँ विचार छे – कै़कबाद ने कहीं आऊँ।" (क्या ख़याल है – कै़कबाद के कह जाऊँ।)

"हाँ जा।"

उसने अपने कमरे में पहुँचकर हंगामी घण्टी के स्विच पर उँगली रख दी। डूँगरवाड़ी के दफ़्तर में दीवार पर लगा हुआ सर्ख बल्ब जलने-बुझने लगा। क्लर्क हैरान होकर दफ़्तर से निकले। और बल्ब तो बगलियों के भी जलने लगे थे। दफ़्तरों ने तिलावत (पाठ) रोक दी। बगलियों में घुमते हुए कुत्ते सहमकर इधर-उधर दुबक गये। नयी आने वाली लाशों के रिश्तेदार, सोगवार बेचैन होकर बगलियों से निकल आये। हर तरफ़ एक सवाल था – क्या हुआ? कै़कबाद दौड़ा-दौड़ा गया और फिर आसमान की तरफ़ देखता हुआ पलटा। सबने उसे घरे लिया। "सूँ थ्याँ!" का शोर बुलन्द हुआ। जवाब में कै़कबाद ने ऐलान किया – "गिद्ध चले गये।"

"गिद्ध चले गये?"

"गिद्ध चले गये?"

"मगर काए को?"

"कुछ तो पन होयेगा!"

"मगर क्या होयेगा?"

पारसी पंचायत के सेक्रटरी ने कै़कबाद का फ़ोन रिसीव किया था और उसकी पेशानी पर सलवटों का जाल उभर आया था। सारी बात सुनकर उसने रिसीवर क्रेडिल पर रखने के बाद इण्टरकॉम पर डायरेक्टर को इत्तला दी। फ़ौरन ही अर्जेण्ट-मीटिंग कॉल की गयी। बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स के सामने मसला पेश हुआ। लेकिन सवाल तो अपनी जगह क़ायम था – गिद्ध कहाँ गये?

"क्या कहाँ – गिद्ध चले गये?" पुलिस-कमिश्नर के लहजे़ में हल्के-से विस्मय की मिलावट थीं।

"हाँ, हमारे गिद्ध चले गये। पारसी पंचायत के चेयरमैन ने एक-एक लफ़्ज पर ज़ोर देते हुए तसदीक की। फिर बड़ी तवज्जों से पुलिस-कमिश्नर की बात सुनता रहा। इसके चेहरे पर एक रंग आ रहा था, एक जा रहा था। काफ़ी देर तक बात सुनता रहा, फिर दूसरी तरफ़ से सिलसिला टूट जाने पर उसने भी रिसीवर क्रेडिल पर रख दिया। दूसरे तमाम डायरेक्टर्स उसी तरफ़ सवालिया नज़रों से देख रहे थे। उसने अपनी और पुलिस-कमिश्नर की गुफ़्तगु का खुलासा बयान किया। हर शख़्स थोड़ा-थोड़ा इतमीनान और ख़ासी परेशानियाँ समेटकर मीटिंग हॉल से वापस आया। सेक्रेटरी ने डूँगरवाड़ी फ़ोन किया। कै़कबाद ने तमाम मोहतरम दस्तूरों तक और हाजरीन तक चेयरमैन और पुलिस-कमिश्नर तक की गुफ़्तगु का खुलासा किया। दस्तूरों से बात बगली के खुद्दाम के जरिये फ़िरोज़ भाटीना और हुर्मुज़ तक पहुँची। भाटीना ने तमाम बात ग़ौर से सुनी, फिर आसमान की तरफ़ देखने लगा। घने दरख़्तों की खिड़कियों के आसमान साफ़ नज़र आ रहा था। न कौवे थे। न चीलें और न ही गिद्ध।

और फिर वे दोनों ही चौक पड़े थे। इत्तलाई घण्टी बज रही थी। बगली नम्बर तीन से लाश आ रही थी। एक मर्तबा फिर वे दरवाज़े पर खड़े थे। लाश आयी। इस बार खुद्दाम ने पचास-पचास के दो नोट भाटीना की तरफ़ बढ़ा दिये। लाश अन्दर कर लेने के बाद भाटीना ने मुँह बनाते हुए हुर्मुज़ को मुख़ातिब किया –

"हुर्मुज़!"

"बोल बप्पा।"

"सब पारसी आजिच क्यों मरता?"

हुर्मुज़ ने उसके सवाल का कोई जवाब न दिया। वह आसमान की तरफ़ देख रहा था।

"एक तो पक्षी नथी। अने लाश ऊपर लाश आवे।" (एक तो गिद्ध नहीं फिर लाश पर लाश आ रही है।) "पन पक्षी गया किधर?"

पुलिस–कमिश्नर बोला – "बद्दा पक्षी, खड़की, रवीवार पेठ अने सोमवार पेठ मा छे।"

"सा माओ?" (किसलिए)

"अरे वो साला हिन्दू–मुसलमान भिड़ी गयो। उधर राइट हुआ। साला वो लोग पुलिस बैन जला दिया। एम्बूलेंस को आंगार लगाया। रास्ता ऊपर लाशिच लाश छे और अपना गिद्ध उधर मज़ा मारता। और वह, पुलिस–कमिश्नर बोलता...साला रस्ता साफ़ होयेंगा तो गिद्ध आपो–आप वापस आयेंगा।"

"रस्ता साफ़ भी होयेंगा तो क्या... गिद्ध वापस आयेंगा... यह इण्डिया... साला इधर तो रोज़ राईट होता है। रोज़ अंगार लगता। रोज़ मानस मरता। फिर... फिर क्या साला... गिद्ध वापस आयेंगा।

भाग दो

(पाकिस्तान)

थल

अहमद नदीम क़ासमी

कहते हैं कि जब थल में रेल की पटरी बिछाई जा रही थी तो यूँ होता था कि हमेशा की तरह वहाँ रोज़ाना आँधी आती थी और बिछी हुई पटरी पर जगह जगह रेत के टीले चढ़ बैठते थे। उस ज़माने के एक बूढ़े मुंशी जी पटरी बिछाने की अजीब अजीब कहानियाँ सुनाते थे। वो कहते थे कि एक बार पटरी हज़रत पीर के मज़ार के रकबे में से गुज़ार दी गयी। मज़ार का मुतवल्ली अंग्रेज़ से डरता था, इसलिए उसे ख़ानबहादुर का खिताब भी मिला हुआ था। मगर हज़रत पीर अंग्रेज़ से क्यों डरते? सो उसी रात को यूँ हुआ कि जिन्नों-भूतों की एक फ़ौज आयी और फ़ौलाद की पटरियों को गन्ने की तरह चूसकर चली गयी। सुबह को जब अंग्रेज़ इंजीनियर काम पर आया, तो हर तरफ़ पटरियों के चूसे हुए छिलके उड़ रहे थे। तब उस जगह मीठे चावलों की सात देगें पकाकर ग़रीबों में बाँटी गयीं और रास्ता बदल दिया गया। इसीलिए तो रेल इतना बड़ा मोड़ काटकर अगले स्टेशन पर पहुँचती थी।

उसी अंग्रेज़ के बारे में मुंशी जी यह भी बताते थे कि वह थल की आँधियों से बहुत परेशान था और उसने उधर विलायत में अपनी सरकार को लिखा था कि पटरी बिछाने के लिए यह कैसा इलाक़ा मुझे दिया गया है कि आँधी के बाद सारा जुग़राफिया (भूगोल) ही बदल जाता है। यहाँ तो रेत के टीले बाक़ायदा सफ़र करते हैं। सो, मेरी कुछ मदद कीजिए। इस पर विलायत की सरकार ने दिल्ली की सरकार को लिखा और दिल्ली की सरकार ने किसी पहुँचे हुए पीर से एक तावीज़ हासिल किया जो पटरी के आस-पास की बबूल में लटका दिया जाता। उसके बाद आँधी आती, तो रेत के टीले पटरी को छूते तक न थे। मगर मालूम होता है हज़रत पीर उस पीर से भी बड़े पीर थे। इसीलिए कहते हैं, जब एक बार बहुत तेज़ आँधी आयी तो एक टीला बबूल में लटकते हुए तावीज की परवाह किये बग़ैर पटरी पर चढ़ गया। फिर दिल्ली से एक और तावीज मँगाया गया और जब पहले तावीज की जगह उसे बबूल में लटकाया गया तो अचानक सर्र र र र र.. की आवाज़ आयी। रेत के

टीले को आग लग गयी और वह राख की चुटकी बनकर उड़ गया। यानी, थल में जब तक पटरी बिछती रही, उस इलाक़े के हज़रत पीर और दिल्ली के पीरों का आपस में सख़्त मुक़ाबला होता रहा और हज़रत पीर के जिन्न भूत तो आज भी सरगर्म हैं। पिछले दिनों अल्लाजिवाया अपनी भैंस समेत गाड़ी के नीचे आकर कट गया था, तो उसकी वजह सिर्फ़ यह थी कि वह बात बात पर रेल का टिकट कटा लेता था। बड़े बूढ़ों ने उसे बहुत समझाया कि रेलगाड़ी में इतना ज़्यादा सफ़र न किया करो, हज़रत पीर ख़फ़ा हो जायेंगे, मगर वह न माना और फिर एक पटरी पर चरती हुई भैंस को रेलगाड़ी से बचाने दौड़ा, तो भैंस के साथ ख़ुद भी इंजन के पहियों के साथ लिपटा चला गया। लोगों ने पहियों से लिपटी हुई उसकी चमड़ी बेलचों से उधेड़ी।

दरअसल जब पटरी खोशाब की तरफ़ से कन्दयाँ की जानिब बढ़ी थी, तो थल के बड़े-बूढ़ों ने साफ़-साफ़ कह दिया था कि अब पुराने रिवाज़ बदल जायेंगे और लोग हल चलाने के बजाय नौकरियाँ करने लगेंगे। गाँव उजड़ जायेंगे और किसी को किसी का लिहाज़ नहीं रहेगा। सो, यही हुआ। मगर साथ ही कुछ और भी हुआ। यह पटरी बिछाने के लिए उस गाँव से एक सौ के क़रीब मज़दूर लिए गये और उन्होंने थोड़े ही अरसे में इतना रुपया कमाया कि किसी ने अपनी ज़मीन में कुआँ ख़ुदवाया किसी ने कच्चा कोठा गिराकर पुख़्ता मकान बनवा लिया और किसी ने ज़मीन ख़रीद ली थी और वह जो फ़सलों के पकने के ज़माने में दूर-दूर के गाँवों में रोज़ाना मज़दूरी पर बड़े-बड़े ज़मीनदारों के खेत काटता और गहाई करता और अनाज ढोता था, उसी ज़माने में एक छोटा-सा किसान बन गया और बिरादरी में उसे पूछा जाने लगा।

मिसरी ख़ाँ कच्ची जवानी में था, जब उसके बाप ने वफात पायी इसलिए रेल की पटरी के सिलसिले में उसे बाप की बतायी हुई बहुत-सी बातें याद थीं। मसलन् यही कि बेटा! यह जो हमारे गाँव से एक कोस के फ़ासले पर रेलें धाँ धाँ... करती गुज़र जाती है तो यह कभी न गुज़रती अगर हम पटरी न बिछाते। अंग्रेज़ साहब ने तो ज़मीन को नाप-बापकर हमें पटरी बिछाने का हुक्म दे दिया था और फिर दिन भर बैठा चुरुट पीता रहता था या सीटी बजाता रहता था। यहाँ से वहाँ तक यह पटरी हमीं ने बिछायी है। इस पटरी के एक एक चप्पे पर हमारे पसीने के और कभी-कभी हमारे ख़ून के क़तरे टपके हैं। इसलिए एह बड़ी मनहूस पटरी है। ख़ुदा हज़रत पीर की बरकत से सबको लोहे की इस बला से बचाये।

मिसरी बचपन से रेलगाड़ी को देख रहा था। गाड़ी अभी दूर होती थी, तो कुछ ऐसी आवाज़ें आने लगती थीं जैसे गाँव से कोई एक कोस नीचे एक दैत्य बैठा सौ-सौ हाथ के पाटों वाली चक्की पीस रहा है। तब गाँव के लड़के लपककर छत पर चढ़ जाते थे। फिर रेलगाड़ी गाँव से एक कोस के फ़ासले पर से गुज़रती तो

लड़के एक दूसरे को बताते कि यह गाड़ी वहाँ से चलती है जहाँ दुनिया ख़त्म होती है। गाँव की औरतों में यह भी मशहूर था कि जिसने एक बार रेलगाड़ी में सफ़र किया वह हमेशा के लिए मुसाफ़िर बन गया। उस पर उन जिन्नों और भूतों का साया है जो एक दफ़ा हज़रत पीर साहब का इशारा पाकर पटरी को गन्ने की तरह चूसकर चले गये थे। थल के वही लोग उस गाड़ी में सफ़र करने का हौसला रखते है जो हज़रत पीर के मज़ार वाले मुतवल्ली से तावीज लाते हैं। उसी गाँव के ख़ान बेग ने एक दफ़ा ख़ाली हाथ सफ़र किया, तो उम्र भर बेचारा कहीं टिक न सका। यहाँ से वहाँ रोज़ी रोज़गार के लिए भागा फिरा और आख़िर उधर चिनाब पार करके शहर चयोंट में किसी सेठ की हवेली मे मज़दूरी कर रहा था। जब सिर पर ईंटे लादे एक सीढ़ी पर चढ़ा और ऊपर पहुँचा तो पाँव फिसल गया। पहले ख़ुद गिरा, ऊपर ईंटें गिरी और टूट टाटकर मर गया। उसकी मौत की ख़बर फैली, तो हज़रत पीर के मज़ार के मुतवल्ली को जलाल आ गया था और उन्होंने कहा था, "मेरे तावीज के बग़ैर रेलगाड़ी में और बैठो बदबख़्तो (बुरी क़िस्मतवालो)! हज़रत पीर तो अपने मुनकिरों (न मानने वालो) के साथ ऐसा ही करते हैं।

मिसरी ने रेलगाड़ी को दूर से भी देखा था और नज़दीक से भी देखा था। उस पर ढेले भी फेंके थे, उसके आने से पहले पटरी पर कंकड़ भी रखे थे, जो गाड़ी गुज़र जाने के बाद चूना बन जाते थे। उसने रेलगाड़ी की खिड़कियों में अजीब-अजीब चेहरे भी देखे थे। बड़े बड़े तुर्रों और लम्बे-लम्बे पट्टों वाले लोग। औरतें, जिनके कानों में चुल्लू-चुल्लू भर सोने की बालियाँ होती थी। बच्चे, जिन्होंने उस पर गँडेरी और मूँगफली के छिलके फेंके थे। और जब एक बार किसी बच्चे ने ग़लती से एक पूरी गँडेरी फेंकी जो आधी गँडेरी चूसकर बाक़ी आधी माँ के लिए बचा लाया। रेलगाड़ी से वह इस हद तक वाक़िफ़ था। इससें आगे कुछ मालूम न था कि गाड़ी में कैसे चढ़ते हैं, कैसे बैठते हैं और वह अन्दर से कैसी होती हैं वह चलती है तो सवारियों को कैसा लगता है? वह रुकती कैसे है? और रुकती है तो चलती कैसे है? और इतना बहुत-सा धुआँ क्यों छोड़ती है? एक बार उसने अपने बाप से ज़िद भी की थी कि मुझे रेलगाड़ी की सैर कराओ, जबकि इतने बहुत से बच्चे उसमें सफ़र करते हैं और उन्हें कुछ नहीं होता तब उसके बाप ने उसे समझाया था कि ये बच्चे हज़रत पीर के इलाक़े के नहीं होते। और हज़रत पीर के इलाक़े के बच्चे दरबार शरीफ़ से तावीज लेकर सफ़र करते हैं। वरना खिड़कियों में से गिर पड़ते है और उन्हें गीदड़ खा जाते हैं।

बड़े होकर भी मिसरी को कहीं जाने की ज़रूरत ही नहीं पड़ी। यह गाँव ही उसकी दुनिया थी। और इससे बाहर की दुनिया में जिन्न और भूत थे चुड़ैलें और पिछलपाइयाँ थी, देव और जादूगर थे। और मियाँवाली और खोंशाबे के से बड़े-बड़े शहरों में आदमख़ोर बसते थे जो भोले-भाले देहातियों को भूनकर खा जाते थे।

मिसरी सिर्फ़ एक बार अपने गाँव से बाहर गया। उसका बाप बीमार हुआ तो उधर उत्तर की तरफ़ सोनसकेसर इलाक़े के एक गाँव चिट्टा में एक सयाने से इलाज का इरादा किया। वह मिसरी को भी अपने साथ लेता गया। मगर उस तरफ़ रेल नहीं जाती थी। सुबह से शाम तक वह अपने बाप के साथ पैदल चलता रहा। और फिर वहाँ, चिट्टा में, उसके बाप के एक पुराने दोस्त के बेटे ख़ुदाबख़्श ने उसे बताया कि मौलवी जी कहते हैं, क़यामत आने से पहले खर-ए-दज्जाल (दज्जाल का गधा) ज़ाहिर होगा और तुम्हारे थलों में जो रेलगाड़ी चलती है उसे जो चीज़ खींचती है वही खर-ए-दज्जाल है।

मिसरी अपने थलों की रेत और आँधियों और चने के इक्का-दुक्का पौधों वाली फ़सलों और बेरंग सूरतों वाले मकानों और उनके सहनों में काले भुजंग तनों वाले और अंगुल-अंगुल भर लम्बे सफ़ेद काँटों वाले कीकरों की दुनिया में बहुत मुतमईन था। मगर वहाँ चिट्टा में उसने पहली बार महसूस किया कि दुनिया तो बड़ी ख़ूबसूरत है। चिट्टा के बिल्कुल सामने सोनसकेसर के क़दमों में कितने ही कोस तक लम्बी चौड़ी झील चमक रही थी। चिट्टा के उत्तर में लहलहाते हुए खेत थे। हवा में खुनकी और पहाड़ों पर उगी हुई ऊँची लचकती घास की ख़ुशबू थीं। सुबह की अजान के साथ ही घर-घर से दही बिलोने की आवाज़ें आती थीं और लोगों की आँखों में चमक और चेहरों पर लाली थी। उस वक़्त उसने सुना था कि उसका गाँव भी यही सोनसकेसर की किसी पहाड़ी पर आबाद होता, तो कितने मज़े आते। एक बार फ़सल बोने के बाद वह कभी-कभार वहाँ हो आया करता और बाक़ी वक़्त चौपाल में बैठकर गप्पें हाँकता और गाता। ख़ुदाबख़्श की तरह उसके पट्टों में भी हर वक़्त तेल लगा रहता और वह भी हर तीसरे चौथे रोज़ नाई से दाढ़ी मुँडवाता और कबड्डी के मुक़ाबले और बैलों के मेले और शादियों पर कंजरियों और नटों को देखने जाता। चिट्टे की मिट्टी से लिपी हुई दीवारों और सीढ़ी दर सीढ़ी मकानों ने उसे मोह लिया था। उसने सोचा था कि ख़ुदा करे कि उसका बाप ज़िन्दा रहे लेकिन अगर वह मर गया तो वह थल में अपनी ज़मीन बेचकर सोनसकेसर चला जायेगा और फिर उधर थलों का रुख़ नहीं करेगा, जहाँ धूप हर वक़्त तन्दूर तपाये रखती है और हवा मुँह पर रेत के चाँटे मारती है और कीकर के दरख़्तों और चने के पौधों के सिवा हरियाली का कहीं निशान तक नज़र नहीं आता।

मिसरी बाप के साथ अपने गाँव वापस आया तो चन्द रोज़ उसके दिल में यही गुदगुदी रही मगर फिर उसका बाप मर गया और उसे उस रेतभरी ज़मीन से इश्क़ हो गया जहाँ उसके बाप ने टीलों के रास्ते रोके थे और आँधियों से लड़ाई लड़ी थी। क्या हुआ, अगर थल में दिन को मृगमरीचिकायें चमकती थीं और रात को हवाएँ रोती थीं और आसमान पर से हर वक़्त मिट्टी बरसती रहती थी। क्या हुआ अगर गाँव के मकानों पर लिपी हुई मिट्टी धूप में जल-जलकर सुर्ख़ हो गयी थी और रेत

के तेज़ छींटे मारती हुई हवाओं ने दीवारों में चेचक के से दाग पैदा कर दिये थे। आख़िर उसकी तीन पुश्तों की क़ब्रें उस गाँव के क़ब्रिस्तान में थीं और उसी के आसपास के टीलों पर खड़े होकर उसके परदादा ने भी उसके बाप की तरह आसमान पर बादल ढूँढ़े थे और बदले में आँधियाँ पायी थीं।

और फिर क्या सोनसकेसर के उन कीकरों का कोई जवाब था जो आँगनों में अपने स्याह तनों पर खड़े तेज़ हवाओं में गूँजते थे। ये दरख़्त जब पीले फूलों से लदकर महकते थे तो कैसे भले लगते थे। जब लोग सुबह को उठते थे तो उनके बिस्तर उन पीले फूलों से भरे होते थे और कोई पीने के लिए घड़े से पानी निकालता था तो उसमें भी एक आध पीला फूल आ जाता था। तब गाँव की एक न एक लड़की ज़रूर अगवा हो जाती थी। बड़े बूढ़े कहते थे कि कीकर की ख़ुशबू में जिन्न होता है और यह जिन्न सिर्फ़ कुँवारे कुँवारियों को नज़र आ सकता है और जिसे नज़र आता है उसे इश्क़ हो जाता है और एक भगा ले जाता है और दूसरी भाग जाती है।

यह कीकरों के फूलने का ही मौसम था जब मिसरी गाँव की एक लड़की को अगवा करके सोनसकेसर के पहाड़ों की तरफ़ भाग गया था। लड़की ने तो रेलगाड़ी में भागने की तजवीज़ की थी मगर मिसरी जानता था कि अगर वह गाड़ी में बैठा तो हज़रत पीर उसे पकड़ा देंगे। सो वह ख़ुदाबख़्श की ढोक में छह महीने तक छुपा रहा। वह उस वक़्त अपने गाँव वापस आया जब लड़की के बाप ने ख़ुदाबख़्श से वादा किया कि वह गाँव जाकर ऐलान करेगा कि उसने तो मिसरी से अपनी बेटी की शादी कर दी है। उसने ऐसा ही किया और यूँ अपनी कटी हुई नाक उठाकर फिर से अपने चेहरे पर चिपका ली। और उसने गाँववालों से ग़लत नहीं कहा था। मिसरी ने चिट्टे में क़दम रखते ही पहला काम यह किया था कि मौलवी साहब और ख़ुदाबख़्श के लाये हुए दो गवाहों की मदद से नश्शों के साथ निकाह पढ़वा लिया और जब वह वापस आया तो नश्शों के पेट में उसका बच्चा था। और ज़ाहिर है कि वह हलाली बच्चा था।

उन्होंने अपने बच्चे का नाम शकूर ख़ान रखा, मगर लोग उसे मिसरी ख़ान के बेटे के हिसाब से शक्कर ख़ान कहते थे और ख़ुद नश्शो और मिसरी उसे मीठा कहकर बुलाते थे।

मीठा जब ज़रा-सा बड़ा हुआ तो एक बार वह अपने हमजोलियों के साथ रेलगाड़ी को नज़दीक से देखने चला गया। उस रोज़ उसके पास एक पैसा भी था, जिसे उसने सब बच्चों को दिखाया। फिर एक बच्चे ने उसे बताया कि अगर रेल की पटरी पर पैसा रख दिया जाये और उसके ऊपर से पूरी गाड़ी गुज़र जाये तो यह पैसा चाक़ू का लम्बा-सा फल बन जाता है। मीठे के लिए यह बड़ी अजीब बात थी कि एक पैसे का सिक्का आनन-फानन चार आने का चाक़ू बन जाता है। सो, जब पटरियाँ धीमें स्वरों में गुनगुनाने लगी और बच्चों को पता चल गया कि रेलगाड़ी

हज़रत पीर के मज़ारवाला बड़ा मोड़ काट रही है तो मीठे ने अपना पैसा पटरी पर रख दिया। मगर जब गाड़ी क़रीब आयी और पटरियाँ झनझनाने लगी तो पैसा आहिस्ता-आहिस्ता रेंगता हुआ नीचे गिर पड़ा। मीठे की नज़रें अपने पैसे पर गड़ी हुई थी सो जब पैसा गिरा तो वह बोला 'ओह!' और पैसे को फिर से पटरी पर रखने के लिए झपटा। वह तो भला हो बड़ी उम्र के एक लड़के का, कि उसने लपककर मीठे को अपने बाज़ू में समेट लिया। और फिर उनसे एक ही गज के फ़ासले से इंजन दनदनाता हुआ और धड़धड़ाता हुआ गुज़र गया और गाड़ी के पहिए भागने लगे-एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात...

बड़ा लड़का गर मीठे को रोक न लेता तो वह अब तक कीमा बन चुका होता। यह बात बच्चों के आसपास काम करने वाले किसानों से गलियों में जाती हुई औरतों तक पहुँची, तो कुछ से कुछ हो गयी और जब नश्शो तक पहुँची तो यूँ पहुँची कि तुम्हारा मीठा रेलगाड़ी के नीचे आकर कट गया है और उसका आधा धड़ गाड़ी अपने साथ ले गयी और आधा वहीं पड़ा है।

रोती पीटती और भागती हुई नश्शो को देखकर गलियों और खेतों से लोग दौड़े आये। फिर नश्शो समेत सबने दूर से देखा कि बच्चे वापस आ रहे हैं और उनमें मीठा भी है जिसने एक लकड़ी का घोड़ा बना रखा है और वह कूदता और दुलतियाँ झाड़ता और हिनहिनाता आ रहा है। नश्शों इसके बावजूद उसी तेज़ी से भागती रही। फिर वह मीठे से लिपट गयी और यूँ तेज़-तेज़ वापस जाने लगी जैसे मीठे को रेलगाड़ी से उसी ने बचाया है और जैसे उसकी पकड़ ढीली हुई, तो पटरी मीठे को अपनी तरफ़ खींच लेगी।

उसी रोज़ गाँव के चन्द नौजवानों ने तय किया कि मियाँवाली जाकर मवेशियों की मण्डी देखी जाये। मिसरी भी तैयार हो गया कि अब तक उसने मियाँवाली का शहर नहीं देखा था। वहाँ जाने की उसे कभी ज़रूरत ही नहीं पड़ी। फिर जब किसी ने कहा कि रेलगाड़ी से जायेंगे और रेलगाड़ी से आयेंगे तो मिसरी ने उनका साथ देने से इन्कार कर दिया। किसी ने कहा, हम ऐसे भी पागल नहीं हैं हम तो हज़रत पीर के दरबार से तावीज़ लेकर जायेंगे। इस पर किसी ने कह दिया कि ज़ंग की वजह से महँगाई बढ़ गयी है और मुतावल्ली ने रेट बढ़ा दिये हैं। फिर मिसरी बोला, "मैं तो उस बला पर सवार नहीं हो सकता जो आज ही मेरे बेटे को निगलने चली थी। इस गाँव के एक सौ आदमियों ने रेल की पटरी बिछाने में हिस्सा लिया है इसलिए हज़रत पीर इस गाँव से सबसे ज़्यादा ख़फ़ा है। मैं तो रेल की गन्दी मौत नहीं मरना चाहता। मैं तो आराम से कलमा शरीफ़ पढ़कर मरूँगा।"

मीठा गाँव के मदरसे में पहली जमात में पढ़ता था। जब अफ़वाह उड़ी कि सिन्धु नदी से दरिया बराबर चौड़ी नहर निकाली जायेगी और यह थल सरगोधा और लायलपुर की तरह लहलहा उठेगा और यहाँ बाग़ लगेंगे और कारख़ाने खुलेंगे और

बाइस्कोप चलेंगे और सड़कें बनेंगी, जिन पर मैं सैर करने आयेंगी और थल का जो आदमी सबसे ज़्यादा पढ़ा लिखा होगा, डिप्टी कमिश्नर बना दिया जायेगा।

दूसरे रोज़ मिसरी ख़ान और नश्शो अपने मीठे को साथ लेकर खेत देखने गये थे जहाँ इक्का-दुक्का पौधे यूँ ही खड़े थे जैसे रूठे हुए बच्चे हैं जिन्होंने मुँह पर मिट्टी मल रखी है और उन्हें ज़रा-सा छेड़ा गया तो बिलख-बिलखकर रोने लगेंगे। मिसरी और नश्शो ने तय किया कि नहर आने पर वे वहाँ माल्टे और सन्तरे का बाग़ लगायेंगे। वहीं उन्होंने यह भी तय किया कि वे मीठे को इतना पढ़ायेंगे, इतना बहुत-सा पढ़ायेंगे कि सरकार ख़ुद आयेगी और हाथ बाँधकर मिसरी और नश्शो से कहेगी कि हमें एक हज़ार माहवार के बदले में अपना बेटा दे दीजिये, इसे हम डिप्टी कमिश्नर बनाना चाहते हैं। फिर ऐसी प्यारी-प्यारी बातें सोचकर नश्शो को रोना आ गया और उसने मीठे को अपने से चिमटा लिया और देर तक चिमटाये रखा और जब मिसरी ने मीठे को उससे अलग किया तो उसने हैरान होकर कहा, "बाबा! माँ के सीने पर कान रखकर सुनो। ऐसा लगता है, रेलगाड़ी आ रही है।"

इस पर दोनों ख़ूब-ख़ूब हँसे थे। मगर फिर मिसरी एकदम संजीदा होकर बोला, "नश्शो! डिप्टी कमिश्नर लोग तो रेलों में बैठते होंगे।" और नश्शो ने दोनों मुट्ठियाँ बन्द करके और अँगूठों के नाख़ूनों को चूमकर अपनी आँखों पर रखते हुए कहा था, "हज़रत पीर के दरबार से तावीज ले आऊँगी, चाहे सौ रुपये में मिले।" यूँ सारा प्रोग्राम तय हो गया।

जिस तरह मिसरी के बाप ने थल में रेल की पटरी बिछाने के लिए मेहनत की थी उसी तरह मिसरी ने थल में नहरों का जाल बिछाने के लिए मेहनत की और मीठे के बाज़ू पर हज़रत पीर के मज़ार के मुतवल्ली का तावीज बाँधकर उसे गाँव के क़स्बे में और क़स्बे से शहर में भिजवा दिया। इस सिलसिले में भी वह रेल के सफ़र से महफ़ूज़ रहा। इलाक़े का कोई न कोई आदमी उधर जा रहा होता तो वह मीठे को उसके साथ कर देता। यूँ मीठे ने बारह जमातें पढ़ लीं।

उस दौरान थल से रेत के टीले ग़ायब हो गये। मृगमरीचिकाओं की जगह खेत लहलहाने लगे। जहाँ चने के इक्का-दुक्का डरे-डरे पौधे उगते थे वहाँ धान की चमकती हुई फ़सलें झूमने लगीं। जहाँ बच्चे आधी गँडेरी चूसकर आधी माँ के लिए बचा लाते थे वहाँ गन्ने के जंगल से उग आये। हर तरफ़ सड़कें दौड़ गयीं और आँधियों ने अपने रुख़ बदल दिये। मिसरी अपनी ज़मीन पर माल्टों, सन्तरों का बाग़ तो न लगा सका, मगर इतनी भरपूर फ़सलें उगाने लगा और इतना मस्त रहने लगा कि कभी-कभी नश्शो को छेड़ने के लिए कहता, नश्शो! मैं तो फिर से जवान हो गया हूँ। मेरा तो जी चाहता है कि एक बार फिर तुम्हें सोनसकेसर की तरफ़ भगा ले जाऊँ। और नश्शो कहती, मैं तो वहाँ एक दिन के लिए भी न जाऊँ। अभी कुछ दिन पहले ही तो चिट्टेवाला ख़ुदाबख़्श तुमसे अनाज और भूसा उधार माँग ले गया

है। अब तो उसी जन्नत के लोग थल के इस दोजख में मज़दूरियाँ करते फिरते हैं।

गाँव का प्राइमरी स्कूल अब मिडिल स्कूल बन चुका था। उसी के एक मास्टर ने मिसरी को मशवरा दिया कि वह अपने बेटे को सिविल इंजीनियरिंग स्कूल भेज दे और जब उसे मालूम हुआ कि मिसरी तो बेटे के डिप्टी कमिश्नर बनने के ख़्वाब देख रहा है तो उसने मिसरी को समझाया कि हर अदमी अपनी जगह डिप्टी कमिश्नर होता है। मैं इस स्कूल का डिप्टी कमिश्नर हूँ। तुम्हारा बेटा ओवरसियर बन गया, तो वह सड़कों और नहरों का डिप्टी कमिश्नर होगा। बात मिसरी की समझ में आ गयी और उसने ऐसा ही किया और जब सिविल का इम्तेहान पास करने के बाद मीठा मलिक अब्दुल शकूर के नाम से कहीं भक्कर के आसपास नौकर हो गया, तो वह अपने माँ बाप को हर महीने पचास रुपये और कपड़ों के पार्सल और अंग्रेज़ी टानिक भेजने लगा। हर आते जाते के हाथ वह कुछ न कुछ भिजवा देता था। सन्दूक, मेज़, कुर्सियाँ, एक बड़ा-सा आइना, जिसमें नश्शो और मिसरी एकसाथ अपने चेहरे देख लेते थे।

एक बार छुट्टी पर आया तो अपने बाप के लिए चतराल का एक कम्बल और माँ के लिए लेडी हैमिलटन का नया सूट लाया। उस रोज़ मिसरी ने अपने हाथ से नश्शों की कनपटियों पर मेंहदी लगायी और जब उसने सूट पहन लिया तो किसी बहाने से अन्दर ले गया और उससे लिपट गया और हँसने लगा। और जब नश्शो ने उसे अलग किया तो वह यह देखकर हँसने लगी कि वह तो रो भी रहा है। "बच्चे न बनो।" उसने मिसरी को समझाया, "अब तो हमारा नमाज़ पढ़ने का ज़माना आ गया है।"

मीठे की छुट्टी ख़त्म होने से एक रोज़ पहले शाम के खाने के बाद मिसरी और नश्शो ने उसे बताया कि उन्होंने मीठे के लिए बड़े ज़ोर का एक रिश्ता ढूँढ़ लिया है। "वह जो नम्बरदार की बेटी है न, जानते हो न हलीमा को?" मगर बेटे ने एक चुप्पी साध ली और जब मिसरी और नश्शो बोल चुके तो वह उठा और बोला, शादी मेरी अपनी ज़िन्दगी का मामला है, वह मैं अपनी पसन्द से करूँगा। आप मेरी शादी की फ़िक्र न किया कीजिए।

अजीब बेलिहाज़ छोकरा है। मिसरी ने उसे आँगन से बाहर जाते हुए ग़ुस्से से देखा और नश्शो से कहा, हम उसकी शादी की फ़िक्र नहीं करेंगे तो क्या उसका बाप करेगा।

नश्शो को बेटे के सिलसिले में अपनी ज़िन्दगी का पहला सदमा हुआ था। वह बोली, इन पटरियों और रेलों और सड़कों और मोटरों ने सारी दुनिया को बेलिहाज़ कर दिया है। देखते नहीं हो, अब जो इन गलियों में नंगे सिर फिरते हैं और अपने बड़ों के सामने कुत्तों की तरह मुँह फाड़फाड़कर हँसते हैं।

और मिसरी ने सोचा कि वाक़ई लोग कितने बेलिहाज़ हो गये है। जो क़र्ज़ा लेता

है लौटाता नहीं है, जो लौटाता है वह एहसान धरता है। माँ-बाप की इजाज़त के बग़ैर जौहराबाद में बाइस्कोप देखने चले जाते हैं। लोग हज़रत पीर के दरबार से ताबीज़ लिए बग़ैर ही रेलगाड़ी में उड़े फिरते हैं। थल आबाद तो हो गया है, लेकिन लोग उजड़ गये हैं। जैसे मैं उजड़ गया हूँ कि बेटा कहता है कि मैं ख़ुद शादी कर लूँगा।

दूसरे दिन मिसरी और नश्शो पंजे झाड़कर मीठे के पीछे पड़ गये। तल्ख़ी इतनी बढ़ी कि इशारों-इशारों में यह तक कहने की कोशिश की कि आपने भी तो माँ बाप की इजाज़त के बग़ैर शादी कर ली थी। इस पर नश्शो जारों कतार रोने लगी और मिसरी ने मीठे को चन्द गालियाँ थमा दी। मगर इतना ज़रूर हुआ कि जाने से पहले मीठे ने वादा किया वह इस बारे में सोचेगा और महीने के अन्दर-अन्दर उन्हें ख़बर कर देगा। मिसरी ने उसे रूख़्सत करते हुए उसका बाज़ू टटोला और पूछा – हज़रत पीर के दरबार का ताबीज़ कहाँ बाँधते हो? और मीठा हँसकर बोला, वह मैंने एक दोस्त को दे दिया जो रेलगाड़ी में सफ़र करने से डरता था। फिर मीठा चला गया और मिसरी रात भर डरावने-डरावने ख़्वाब देखता रहा, जिनमें गाड़ी गरजती हुई आती थी और मीठे को बीच में से दो करती हुई कहकहे मारती गुज़र जाती थी।

अजब बेलिहाज़ छोकरा निकला। मिसरी ने सुबह उठकर कहा, हम तो ख़ैर उसके माँ-बाप थे, बदबख्त ने हज़रत पीर का भी लिहाज़ न किया और इतना भी न सोचा कि इस गाड़ी को हज़रत पीर की बद्दुआ है।

फिर एक दिन मिसरी को मीठे का ख़त मिला कि सात तारीख़ को दो महीने की ट्रेनिंग के लिए वरसिक जा रहा है। इसलिए यूँ कीजिएगा कि सात तारीख़ की शाम को गाड़ी पर कन्दयाँ में मुझसे मिल लीजिये। एक तो आपने-अम्माँ ने मुझे जो हुक्म दिया था उसके बारे में कुछ अर्ज़ करूँगा, दूसरे मैंने आपके लिए एक रेडियो ख़रीदा है जिसके लिए न बिजली की ज़रूरत होती है न बैटरी की, बस वह मसाला जिसमें चोर बत्तियाँ जलती है, उसमें डाल दिया जाता है और मज़े की बात यह है कि जहाँ आप चाहें उठा ले जायें। चौपाल पर खेतों में सड़कों पर चौराहों में, जहाँ चाहें बजाते फिरें। आप ज़मीनों पर जायें, तो लेते जायें न ले जायें तो अम्माँ का दिल बहला रहेगा। आप कन्दियाँ में मुझसे मिलेगे तो यह रेडियो भी पेश करूँगा।

पहले तो दोनों ख़ुशहाली के नशे में मस्त एक दूसरे की तरफ़ अजीब-अजीब नज़रों से देखते रहे फिर मिसरी चौंककर बोला, अरे आज ही तो अंग्रेज़ी महीने की सातवीं है।

वह यह कहते हुए उठ खड़ा हुआ मगर फिर फ़ौरन ही बैठ गया – नश्शो मैं इस वक़्त यहाँ से चलूँ तो कन्दयाँ मैं वक़्त पर नहीं पहुँच सकूँगा। मुझे तो गाड़ी में जाना होगा।

तो क्या हुआ? नश्शो बोली – अभी हज़रत पीर के दरबार में जाती हूँ और ताबीज़ ले आती हूँ। पन्द्रह-बीस रुपये की रक़म भी कोई रक़म है।

पन्द्रह-बीस, मिसरी हैरान रह गया। रेल की पटरी बिछी थी तो ताबीज़ एक आने में मिलता था। फिर कुछ सोचकर बोला – अजीब बेलिहाज़ दुनिया है। नश्शो ने उसे डाँट दिया – पता है, तुमने बेलिहाज़ किसे कहा?

और मिसरी काँप गया। उसने फ़ौरन कानों पर हाथ लगाये और होंठों में कुछ बड़बड़ाने लगा। पैसे की फ़िक्र में उसने कुफ़्र बक दिया था। वह भी सारी दुनिया की तरह चुपके से कितना बदल गया था। नश्शो के जाने के बाद तो वह बाक़ायदा रो दिया और उसकी वापसी तक तौबा-तौबा करता रहा।

नश्शो दस रुपये में ताबीज़ ले आयी। मिसरी को धुले हुए कपड़े पहनाये उसके तलेवाली जूती ऊपर टोकरी में से उतारी। उसकी कलफ लगी मलमल की पगड़ी बकस में से निकली। मगर मिसरी के हवास उड़े हुए थे। वह बार-बार कुर्ते की नीचेबाज़ू से बँधे ताबीज़ को टटोलता कि कहीं उसकी गुस्ताख़ी से ख़फ़ा होकर हज़रत पीर के जिन्न भूत उतार तो नहीं ले गये। नश्शो ने उसे बहुत तसल्लियाँ दीं और आख़िर रेलवे स्टेशन तक उसके साथ जाने और उसे गाड़ी में बिठाने को तैयार हो गयी।

रेलवे स्टेशन गाँव से कोई तीन कोस दूर था। मियाँ बीवी वहीं पहुँचे तो गाड़ी आने में कुछ देर थी। दोनों एक दरख़्त के नीचे बैठे तय करते रहे कि अगर मीठे ने हाँ कह दिया तो कातिक में शादी हो जानी चाहिए। और अगर उसने नहीं कह दी कि ज़माना बड़ा बेलिहाज़ हो रहा है तो फिर क्या होगा? नहीं। नश्शो ने कहा उसे नहीं कहना होता तो तुम्हें कन्दयाँ में क्यों बुलाता और हमारे लिए रेडियो क्यों ख़रीदता। वह हमारा हलाली बेटा है। 'नहीं' बिल्कुल नहीं कहेगा। फिर दोनों इस मसले पर भी ग़ौर करते रहे कि जब रेडियो बजेगा और गाँव के बच्चे उनके यहाँ जमा होने लगेंगे तो उन्हें कैसे टाला जायेगा? और अगर कोई रेडियो माँगने आ निकला, तो उसे क्या जवाब देना मुनासिब होगा?

फिर दूर से गाड़ी की सीटी सुनायी दी और मिसरी हड़बड़ा के उठ खड़ा हुआ और अपने बाज़ू पर ताबीज़ टटोलने लगा। गाड़ी आकर रुकी और मिसरी के गाँव का एक मुसाफ़िर उतरा तो वह हैरान होकर मिसरी से पूछने लगा कि तुमने रेलगाड़ी का सफ़र करने का हौसला कैसे कर लिया? नश्शो ने जवाब दिया, हज़रत पीर की इजाज़त से जा रहा है, मीठे ने कन्दयाँ बुलाया है, रेडियो लाने।

मुसाफ़िर मीठे की तारीफ़ करने लगा और उस दौरान गाड़ी चल पड़ी। मिसरी घबराकर भागा। एक डिब्बे का डण्डा तो पकड़ लिया मगर पायदान पर पाँव न टिका सका। इसलिए झूल गया और तड़ से कुछ यूँ गिरा कि उसके एक पाँव का पंजा पटरी तक चला गया और उस पर से पहिए गुज़रने लगे। एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात...

गाड़ी रूक गयीं चीख़ती हुई नश्शो ने मिसरी के पास पहुँचकर उसे बच्चे की

तरह गोद में घसीट लिया। बहुत से लोग जमा हो गये। मिसरी ख़ाँ अपने दोनों हाथों में पाँव का वह पंजा पकड़े बैठा था जिसकी पाँचों उँगलियों पर से पहिए गुज़र गये थे और ख़ून बह रहा था।

फिर रेलवे का कोई अहलकार आया और बोला, अन्धे थे? देखकर क्यों नहीं चढ़े।

इस पर नश्शो तड़प उठी और चीख़ी, अन्धे होगे तुम, और तुम्हारे होते सोते और तुम्हारी नस्लें और तुम्हारी पीढ़ियाँ।

रेलवे का अहलकार कुछ बड़बड़ाता चला गया। नश्शो मिसरी के पास बैठ गयी। उनके गाँव के मुसाफ़िर ने पगड़ी का पल्लू फाड़कर बाँधनी चाही, मगर फिर गाड़ी चलने लगी।

यह तो फिर चल पड़ी। मिसरी ने हैरान होकर नश्शो की तरफ़ देखा।

जाने दो हरामज़ादी को। नश्शो ने उसका बाज़ू पकड़ लिया।

मगर मिसरी एक झटके से बाज़ू छुड़ाकर पटरी के साथ अपने ख़ून की लकीर खींचता हुआ और लंगड़ाता हुआ भागने लगा और चीख़ने लगा – ओए, रोको इसे, अपनी माँ को रोको, मैं कन्दयाँ जा रहा हूँ। मेरे पास टिकट है।

फिर रेलगाड़ी का आख़िरी पहिया भी सड़ाप से निकल गया और वह पिटे हुए आदमी की तरह मुँह खोले रह गया। नश्शो और दूसरे लोग भी उसके पास पहुँच गये और वह दूर जाती हुई गाड़ी की तरफ़ देखकर कहने लगा। कितनी बेलिहाज़ है यह उल्लू की पट्ठी। मेरे लिए ज़रा-सा रूकी रहती, तो इसका क्या बिगड़ जाता। इस सदी की हर चीज़ कितनी बेलिहाज़ है।

फिर जब वह दोनों हाथों से अपना ज़ख़्मी पंजा पकड़कर बैठ गया तो नश्शो ने उसके हाथ से पंजा अपने दोनों हाथों में ले लिया। वह रोने लगी और बोली

हज़रत की शान में वह बकवास क्यों की थी तुमने?

उस वक़्त मिसरी के चेहरे पर कुछ ऐसी लवट छा रही थी जैसे अभी थल को आबाद होने में सदियाँ लगेंगी।

भगवान दास दरखान

शौकत सिद्दीकी

कचहरी शुरू नहीं हुई थी। जिस कमरे में मुक़दमों की सुनवाई होती थी, अभी तक ख़ाली था। अलबत्ता सदर दरवाज़े की दहलीज़ के पास दो मुलाज़िम किवाड़ों से टेक लगाये फ़र्श पर फसकड़ा मारे बैठे थे। कमरे के ठीक बीचोबीच दीवार से ज़रा हटकर रंगीन खाट पड़ी थी। यह चौड़ा चकला पलंग था। उसके पाये ऊँचे-ऊँचे थे। उन पर रंग-रोगन से निहायत ख़ुशनुमा नक़्क़ाशियाँ बनी थीं। पलंग पर साफ़-सुथरी झलकती हुई सफ़ेद चादर बिछी थी पाँयती की तरफ़ दोहती थी। उस पर रंगीन धागों से आँखों को भानेवाली कशीदाकारी की गयी थी और हाशिया सुर्ख़ नोल का था। सिरहाने बड़े-बड़े मोटे तकिये रखे थे।

कमरे के आगे लम्बा बरामदा था। बरामदे के सामने चौड़ा अहाता था, जिसके पूरबी कोने में घने दरख़्तों का झुण्ड था। बरामदे में और दरख़्तों के नीचे किसान, बकरे और भेड़ों को लड़ानेवाले और अलग-अलग पेशों से ताल्लुक़ रखने वाले कामगार जगह-जगह छोटी-बड़ी टोलियों में बैठे थे। उनमें बड़ी तादाद ऐसे मर्दों-औरतों की थी, जिनके मुक़दमों की सुनवाई सरदार की कचहरी में चल रही थी या जिनकी सुनवाई अभी शुरू नहीं हुई थी। वे हँस रहे थे या अपने मुक़दमों के बारे में एक-दूसरे से विचार-विमर्श कर रहे थे। उनकी मिली-जुली आवाज़ों का शोर आहिस्ता-आहिस्ता उभर रहा था, जिसमें सरायकी के साथ-साथ कहीं-कहीं बलूची भी मिली हुई थी।

तमाम आवाज़ें एकाएक बन्द हो गयी। हर तरफ़ गहरी ख़ामोशी छा गयी। कचहरी के सदर दरवाज़े की दहलीज़ पर बैठे हुए दोनों मुलाज़िम घबराकर उठे और नज़रे झुकाकर मुस्तैदी से खड़े हो गये। देखते ही देखते दरवाज़े पर सरदार शहज़ोर ख़ाँ मज़ारी प्रकट हुआ। वह घुटनों से भी नीची लम्बी कमीज़ और पूरे बीस गज़ की घेरदार शलवार पहने हुए था। उसके उजले लिबास पर इत्र लगा था, जिसकी तेज़ ख़ुशबू से कमरे की फ़िज़ा महकने लगी। उसकी स्याह दाढ़ी ख़ूब घनी थी। मूँछें भी

घनी थीं और चढ़ी हुई थीं। आँखों से जलाल टपकता था। चेहरे पर रुआब और दबदबा था। पीछे, उसका कारदार चाकर ख़ाँ सरगानी और हवेली का मालिशिया था दोनों गरदनें झुकाये उसके पीछे-पीछे चल रहे थे।

सरदार को देखते ही मुलाज़िमों ने आगे बढ़कर उसके पैरों को हाथ लगाकर पैरनपून किया। ऊँची आवाज़ से दुआएँ दी। 'सई' सरदार सदा जीवें। सुखी-सेहत होंवे। ख़ैर-ख़ैरियत होवे। बाल-बच्चे सुखी सेहत होंवे। सब राज़ी बाज़ी होवे।

सरदार मज़ारी ने हौले-हौले गरदन हिलायी और उनकी तरफ़ देखे बग़ैर कहा – "ख़ैर-ख़ैर सलाये।" वह गरदन उठाये आहिस्ता-आहिस्ता आगे बढ़ा। रंगीन खाट के क़रीब गया। टाँगें समेटकर ऊपर पहुँचा। चाकर ख़ाँ सरगानी ने झुककर उसके पैरों से ख़स्से उतारे। सरदार तक़ियों से टेक लगाकर बैठ गया। उसने दोनों पैरों के पंजे जोड़कर एक दूसरे से मिलाये और घुटने उठाकर ऊँचे कर लिए। सरगानी के इशारे पर एक मुलाज़िम बढ़कर आगे आया। उसके हाथ में ख़ीरी थी। यह सफ़ेद मलमल का ढाई गज़ लम्बा टुकड़ा था, जिसे तह करके लगभग छह इंच चौड़ा कर लिया गया था। मुलाज़िम झुका और निहायत मुस्तैदी से ख़ीरी उसकी कमर और घुटनों के गिर्द लपेटकर बग़लबन्दी कर दी। फिर ख़ीरी के दोनों सिरे जोड़कर इस तरह दमोका लगाया कि आँखों के सिवा चेहरे का ज़्यादातर हिस्सा छुप गया।

बलूच नवाज़ सरायकी रईसों की परम्परा के मुताबिक़ जब इस तरह वेठ मारकर बैठ गया तो एक मुलाज़िम ने हुक्क़ा ताज़ा करके रंगीन खाट के क़रीब स्टूल पर रख दिया। सरदार ने हुक़्के की नै सँभाली और होंठों में दबाकर कश लगाने लगा। तम्बाकू की ख़ुशबू कमरे में फैलने लगी। मालिशिया फ़ौरन सरदार मज़ारी की पीठ के पास पहुँचा और तेज़ी के साथ उसके कन्धे और कमर हौले-हौले दबाने लगा।

कचहरी की कारवाई शुरू हुई, तो चाकर ख़ाँ सरगानी ने, जो पेशकार का फ़र्ज़ अदा कर रहा था, पहला मुक़दमा सुनवाई के लिए पेश किया। मुलाज़िम गड़रिया था और सरदार के सामने गरदन झुकाये सहमा हुआ खड़ा था। उसके ख़िलाफ़ यह इल्ज़ाम था कि उसकी रेवड़ की दो भेड़ें सरदार मज़ारी के एक खेत में घुस गयी थीं और मक्की के कई पौधों को नुक़सान पहुँचाया था। गड़रिया गिड़गिड़ाकर माफ़ी माँगता रहा, क़समें खाकर यक़ीन दिलाता रहा कि आइन्दा ऐसी ग़लती नहीं होगी; मगर उसकी एक न सुनी गयी। सरदार की नज़र में जुर्म की नौइयत संगीन थी। लिहाजा उसे जुर्माने में पाँच भेड़ें मालख़ाने में पहुँचाने के अलावा तीन महीने जेल में क़ैद रखने की सज़ा दी गयी।

चाकर ख़ाँ सरग़ानी ने दबी ज़ुबान से सूचित किया, "सई सरकार, जेल में जगह नहीं है।"

"जेल में जगह नहीं, तो मुजरिम को सुक्के खोह में डाल दिया जाये।" सरदार मज़ारी ने हुक्म सुनाया, "जब तक जेल में जगह नहीं है, सज़ा पानेवाले तमाम

क़ैदियों को सुक्के खोह में डाल दिया जाये।"

सुक्के खोह अन्धे कुएँ थे। ये चौड़े मुँहवाले ऐसे कुएँ थे, जो कभी सिंचाई के काम आते थे। मगर सूख जाने की वजह से न उनमें अब पानी था, न उसके निकलने की कोई सम्भावना थी। सरदार की निजी जेल जब क़ैदियों से भर जाती और उसमें कोई गुंजाइश न रहती, तो क़ैदियों को सुक्के खोह में बन्द कर दिया जाता। वे अन्धे कुएँ में उठते-बैठते, सोते, खाना खाते और वहीं पेशाब-पाख़ाने से फ़ारिग़ होते। न उन्हें किसी से मिलने की इजाज़त होती, न बात करने की। खाना-पानी निश्चित वक़्त पर सुबह-शाम रस्सी में बाँधकर पहुँचा दिया जाता। जाड़ा हो, गर्मी हो या बरसात, वे सुक्के खोह से बाहर न आते। अलबत्ता सर्दी के मौसम में क़ैदियों को एक कम्बल दे दिया जाता और वह भी उनके घरवाले मुहैया करते। क़ैदियों को जो खाना दिया जाता, चाहे वे सरदार की निजी जेल में बन्द हों या सुक्के खोह में, उसकी क़ीमत भी सगे-सम्बन्धी ही अदा करते। अगर क़ीमत अदा न होती, तो क़ैदियों को फ़ाक़ा करना पड़ता। अक्सर क़ैदी लगातार भूखों रहने से सिसक-सिसककर मर भी जाते। सुक्के खोह में साँप, बिच्छू और ऐसे ही ज़हरीले कीड़े-मकोड़े भी होते, जो कभी-कभी क़ैदियों की मौत की वजह बनते।

सरदार के फ़ैसला सुनाये जाने के बाद उस पर फ़ौरी तौर पर अमलदरामद शुरू हो गया। जुर्माने की अदायगी और सुक्के खोह में क़ैद करने की ग़रज़ से मुजरिम को खींचते हुए कचहरी से बाहर ले जाया गया। सरदार का फ़ैसला आख़िरी और अटल फ़ैसला था। उसके ख़िलाफ़ किसी भी अदालत में न उज्रदारी हो सकती थी न अपील।

चाकर ख़ान सरगानी ने दूसरा मुक़दमा पेश किया। मुक़दमा सरदार शहज़ोर ख़ाँ मज़ारी के सामने पहली बार पेश नहीं किया गया था, उसकी सुनवाई लगभग चार महीने से जारी थी। अब तक कई पेशियाँ पड़ चुकी थीं। मुक़दमा ख़ासा पेचीदा ओर निहायत संगीन था। लिहाजा़ सरदार मजा़री मसलेहत से काम लेते हुए उसे जानबूझकर तूल दे रहा था, कि गुज़रते वक़्त के साथ-साथ फ़रीक़ों के दिलों में पाया जानेवाला शदीद ग़म व ग़ुस्सा ठण्डा पड़ जाये और उसके फ़ैसले से हर फ़रीक़ इस तरह मुतमइन हो जाये कि दिलों से बैरभाव हट जाये ।

यह पानी के बँटवारे का पुराना झगड़ा था। नौइयत यह थी कि फ़रीक़ैन एक ही रूदकोही से अपनी फ़सलों के सिंचाई करते थे। रूदकोही के खड्ड में पानी का ज़ख़ीरा कम था और फ़सलों के लिए ज़रूरत ज़्यादा थीं। अंजाम यह हुआ कि पानी के बँटवारे पर झगड़ा पैदा हुआ। ऐसे झगड़े उन बारानी इलाक़ों में अक्सर होते हैं, जहाँ खेतों की रूदकोहियों से पानी दिया जाता है। डेरा ग़ाजी ख़ाँ और उसके आसपास के पहाड़ी इलाक़े में सिचाई की यह व्यवस्था बहुत पुरानी है। इतनी पुरानी कि सही-सही नहीं पता कि यह कैसे प्रचलित हुई और किसने प्रचलित की। सिंचाई

की इस व्यवस्था के तहत बारिश का पानी एक तरफ़ तो बरबाद होने से बचाया जाता है और दूसरी तरफ़ उसे खेती के लिए ज़्यादा उपयोगी बनाने की कोशिश की जाती है। होता यह है कि जब पहाड़ों पर बारिश होती, तो पानी ऊँची-नीची चोटियों और चट्टानों की बुलन्दियों से ढलान की तरफ़ निहायत तेज़ रफ़्तार से बहता है। मशहूर है कि उसके तेज़ धारे में ऐसी काट होती है कि अगर ऊँट उसकी ज़द में आ जाये, तो पैरों और कूचों की हड्डियाँ भी आरी की तरह काट देता है।

यह बरसाती पानी आन की आन में उफान और सैलाब की सूरत इख़्तियार कर लेता है। तेज़ और तीखे रेले में मुसाफ़िरों से भरी हुई बसें बह जाती हैं। फ़सलें बरबाद हो जाती हैं। इन्सान और मवेशी बह जाते हैं। पत्थर, मिट्टी और घास-फूस के बने हुए मकान ढह जाते हैं। हर तरफ़ जल थल हो जाता है। तबाही और बरबादी का बाज़ार गर्म हो जाता है। यही पानी, जो पहाड़ों और उसके दामन में बसनेवालों के लिए रहमत का पानी बन सकता है, ज़हमत और मुसीबत बन जाता है।

लेकिन वो जगहें जहाँ रूदकोहियाँ मौजूद हैं, इस तबाही से महफ़ूज़ रहती हैं। उन जगहों पर पानी के तेज़ बहाव का रुख़ मोड़ने के लिए ढलवान पर जगह-जगह मिट्टी और पत्थरों के मज़बूत और ऊँचे-ऊँचे पुश्ते बनाये गये हैं। इस तरह बारिश का पानी छोटी-बड़ी नालियों से बहकर उस ज़मीन को जलमग्न करता है, जिस पर खेती-बाड़ी होती है। मगर ऐसी बारानी ज़मीन पर आमतौर पर सिर्फ़ एक फ़सल होती है, जिसमें मक्की के इलावा ज्वार और बाज़रा पैदा होते हैं।

ऐसी रूदकोहियाँ (जल संग्रह का एक तरीक़ा) पहाड़ियों की तलहटी में जगह-जगह देखने में आती है। लेकिन झगड़ेवाली रूदकोहि से भिन्न थी, ज़्यादा उपयोगी और देर तक काम आनेवाली। अपनी नौइयत और उपयोगिता के एतबार से वह एक छोटे-से बाँध की तरह थी। उसका निर्माण इस तरह किया गया था कि बारिश के पानी की तेज़ धारा पुश्तों से टकराकर जब अपना रास्ता बदलती, तो नालियों से गुज़रती हुई ढलान के उस तरफ़ बहकर जाती, जहाँ ज़मीन खोदकर पानी का ज़ख़ीरा करने का निहायत मुनासिब इन्तज़ाम था। पानी का यह ज़ख़ीरा ज़मीन की सतह से कुछ बुलन्दी पर था और उसका हिस्सा एक विस्तृत गुफा के अन्दर दूर-दूर तक फैला हुआ था।

पानी का यह ज़ख़ीरा, जिसे स्थानीय बोली में खड्ड कहा जाता है, पहाड़ी चट्टानों के सख़्त और बड़े-बड़े पत्थर तोड़-फोड़कर निहायत जी तोड़ मेहनत से बनाया गया था, ताकि गर्मी के मौसम में पानी सुरक्षित रहे। खड्ड का पानी आम घरेलू इस्तेमाल के भी काम आता था। खड्ड से खेतों की सिंचाई करने के लिए जो नहरें और नालियाँ बनायी गयी थीं, वे ख़रीफ के इलावा कभी-कभी रबी की फ़सल की काश्त के वास्ते भी पानी मुहैया कराती थीं।

फ़रीक़ैन (वादी-प्रतिवादी) का ताल्लुक़ तमन मज़ारी के रस्तमानी और मस्दानी

क़बीलों से था। वो सुलेमान पहाड़ की दक्षिणी तलहटी में खेती-बाड़ी के साथ-साथ भेड़-चरवाही भी करते थे। साँझी रूदकोही से अपने खेतों को पानी देते थे। यह इलाक़ा बलूचिस्तान के बुक्ती क़बीलों के निवास स्थान, डेरा बुक्ती से लगा हुआ है, जो शहज़ोर ख़ाँ मज़ारी की एक बलूच बीबी को बाप की तरफ़ से विरासत में मिला था। इसलिए अब वह उस जागीर में शामिल था।

पानी के बँटवारे का झगड़ा बढ़कर धीरे-धीरे रस्तमानियों और मस्दानियों के दरमियान पुरानी क़बाइली दुश्मनी की शक्ल अख़्तियार करता गया। बदले की कारवाई के तौर पर मवेशी उठा लिये जाते, फ़सलों को नुक़सान पहुँचाने की कोशिश की जाती, रात को अँधेरे में चोरी-छिपे पानी के बहाव का रुख़ मोड़ दिया जाता, ज़ख़ीरा यानी खड्ड के मुँह से रुकावटें हटा दी जाती और अपने खेतों को ज़्यादा से ज़्यादा जलमग्न करने की ग़रज़ से पानी की चोरी की जाती।

कई बार लड़ाई-झगड़े हुए, मगर पिछले हफ़्ते ज़बरदस्त हथियारबन्द मुठभेड़ हुई। मुठभेड़ से पहले बाक़ायदा विरोधी फ़रीक़ को ललकारकर ख़बरदार किया गया था कि वह पूरी तैयारी के साथ मुक़ाबले पर आयें। इसलिए फ़रीकैन ने अपने-अपने क़बीले से ज़ंग-आज़माओं और सूरमाओं को इकट्ठा किया। रात भर जागते रहे। सलाह-मशवरा करते रहे। अपनी और दुश्मन की ताक़त और असलहों का अन्दाज़ लगाते रहे और उसकी रौशनी में प्रभावशाली ज़ंगी कारवाई करने के मंसूबे बनाते रहे।

रात आँखों में कटी। सूरज निकला। धूप पहाड़ों की चोटियों से फैलती हुई नीचे उतरने लगी। सुबह हो गयी। वे कमर कसकर बक्कल के स्थान पर पहुँच गये। वो निहायत जोशो-ख़रोश से नारे लगा रहे थे। ढोल बजा रहे थे। पगड़ियाँ उछाल रहे थे। हाथों में दबे हुए हथियारों को सरों से ऊपर उठाकर लहरा रहे थे। तरह-तरह से ख़ून को गरमा रहे थे। अपने हौसले बुलन्द से बुलन्दतर कर रहे थे। बलूचों की युद्ध संहिता में यह मुगदर मारना था।

वो कुछ देर तक आमने-सामने खड़े रहे। मुगदर खींचकर अपनी ताक़त और दुस्साहस का प्रदर्शन करते रहे; फिर तलवारें सूँतकर और कुल्हाड़ियाँ और दूसरे हथियार सँभालकर वो आगे बढ़े और दाढ़ियाँ दाँतों तले दबाकर भयानक ग़ुस्से के आलम में एक-दूसरे पर टूट पड़े। तलवार तलवार से और कुल्हाड़ी कुल्हाड़ी से टकरायी। गर्द के बादल उठे। फ़िज़ा धुआँ-धुआँ हो गयी। नारे बुलन्द से बुलन्दतर होते गये। शोर बढ़ता गया। हर तरफ़ ख़ून के छींटे उड़ने लगे।

ग़ज़ब का रन पड़ा। मगर बहुत ज़्यादा ख़ून-ख़राबे की नौबत न आयी। हुआ यह कि लड़ाई शुरू होते ही एक हिन्दू चीख़ता-चिल्लाता, दुहाई देता एक ओर से प्रकट हुआ और तेज़ी से दौड़ता हुआ क़रीब पहुँच गया। उसका नाम भगवानदास था। अधेड़-उम्र था। सिर और दाढ़ी के बाल खिचड़ी थे, मगर जिस्म मज़बूत था। क़द

ऊँचा था। पेशे के एतबार से वह दरखान था, यानी बढ़ई होने के साथ-साथ राजगीर का काम भी करता था और पड़ोस की बस्ती कोटला शेख़ में रहता था। उसके इलावा कोटला शेख़ में हिन्दुओं के चन्द और ख़ानदान भी आबाद थे जो खेती-बाड़ी करते थे, भेड़ चरवाही करते थे या भगवानदास दरखान की तरह मेहनत-मज़दूरी करते थे।

भगवानदास दरखान भाग-दौड़ करने के बाद बुरी तरह हाँफ रहा था। उसका चेहरा पसीने से शराबोर था। उसकी पगड़ी खुलकर गले में आ गयी थी। सिर के लम्बे-लम्बे बाल बिखरे हुए थे। हक्कल की इत्तिला सूरज निकलने से पहले ही उसे मिल गयी थी। इत्तला मिलते ही वह तारों की छाँव में घर से निकल खड़ा हुआ। उसने हक्कल के मुकाम पर जल्द से जल्द पहुँचने की कोशिश की और गिरते-पड़ते समय से पहुँचने में कामयाब भी हो गया। उसने निहायत दुस्साहस और बेबाक़ी का प्रदर्शन किया। अपनी जान की बाज़ी लगाकर वह बेधड़क लड़नेवालों की पंक्तियों में घुस गया। मेढ़ करने के लिए चीख़-चीख़कर दुहाई देता रहा। और उनके दरमियान चट्टान की तरह तनकर खड़ा हो गया। उसने दोनों हाथ बुलन्द किये। तलवारों और कुल्हाड़ियों के वार हाथों पर रोके। वह ज़ख़्मी हुआ और ज़ख़्मों से निढाल होकर गिर पड़ा।

उसने मार-धाड़ बन्द कराने के लिए यह हथियार आज़माया था, जिसे बलूची में मेढ़ कहा जाता है। भगवानदास दरखान हिन्दू था और चूँकि अल्पसंख्यक हैं, लिहाज़ा मुसलमान बलूच अपनी श्रेष्ठ क़बाइली परम्परा के मुताबिक़ उनकी जानो-माल का इस हद तक ख़याल रखते हैं कि उनको ऐसा समझा जाता है कि किसी को म्यार बनाने के बाद उसका ख़ून बहाना या किसी तरह की तकलीफ़ पहुँचाना बलूचों की क़बाइली अचार संहिता की दृष्टि से अत्यन्त घृणित और जवाबी कारवाई जैसा माना जाता है। इसलिए भगवानदास दरखान की कोशिश और दुस्साहस सनकियों-सा साबित हुआ। हंगामा करनेवाले ठण्डे पड़ गये। उठे हुए हाथ रुक गये। जो जहाँ था, वहीं रुक गया। लड़ाई फ़ौरन बन्द हो गयी। वैसे ही मेढ़ के लिए उस हिन्दू दरखान के अलावा अगर कोई सैयदज़ादा क़ुरान शरीफ़ उठाये साक्षात् फ़रीक़ैन के दरमियान आ जाता या क़बीलों की चन्द बूढ़ियाँ सिर खोले, बाल बिखराये, गले में चादर डाले ठीक लड़ाई के दौरान रणभूमि में पहुँच जातीं, तो उनके सम्मान में भी लड़ाई बन्द करने का ऐलान कर दिया जाता।

मेढ़ की दृष्टि से तात्कालिक ढंग पर ज़ंग बन्द हो गयी। भगवानदास दरखान की फ़ौरी तौर पर मरहम पट्टी की गयी और उसे कोटला शेख़ पहुँचा दिया गया। रस्तमानी और मस्दानी शूरवीर भी अपने-अपने ज़ख़्म लिए चले गये। मगर उनके चेहरों पर अभी तक भयानक क्रोध छाया हुआ था। आँखें शिकार पर झपटनेवाले बाज़ की तरह चमक रही थीं। ख़ून खौल रहा था। शूरवीरों का जोश सवा नैज़े पर

था। दोनों तरफ़ खींचातानी और ग़मो-ग़ुस्सा का वातावरण था। उस वक़्त सूरते-हाल निहायत संगीन हो गयी, जब तीसरे रोज़ सूरज डूबने से कुछ देर पहले मस्दानी क़बीले का एक ज़ख़्मी चल बसा। मृतक के घर में कुहराम मच गया। उसके भाइयों और क़बीले के दूसरे लोगों के सीनों में बदले की आग शिद्दत से भड़क उठी और मस्सत करने यानी ख़ून के बदले ख़ून की तैयारियाँ ज़ोर-शोर से होने लगीं। बदले की ऐसी कार्रवाई को लस्टदबीर कहा जाता है।

रस्तमानियों को जब उस लस्टदबीर का पता चला, तो उधर भी लोहा गरम हुआ। मरने-मारने की तैयारियाँ शुरू कर दी गयी। फ़ौरन डाह का बन्दोबस्त किया गया। इसके लिए यह तरीक़ा अपनाया गया कि एक ऐसे शख़्स को डाहडोक मुकर्रर किया गया, जिसका ताल्लुक़ एक तटस्थ क़बीले से था। डाहडोक क़द्दावर जवान था और मँझा हुआ ढोलकिया था। दिन चढ़े वह गले में ढोल डालकर निकला और ढोल बजाकर हर तरफ़ मुनादी करने लगा। वह पहले तड़ातड़ कई बार ढोल पर तमची से चोट लगाता और फिर बायाँ हाथ झटककर ख़ास अन्दाज़ में इस तरह थाप देता, जिसका स्पष्ट भाव यह था कि लड़ाई का ख़तरा सरों पर मँडरा रहा है। रणभेरी बजने वाली है। वह दिन ढले तक इसी तरह फ़रीक़ैन को ख़बरदार करता रहा।

डाह का ऐलान होते ही एक बार फिर दोनों तरफ़ जंग की तैयारियाँ होने लगीं। मगर कुछ ऐसे क़बीले भी थे, जो इस लड़ाई-झगड़े में अभी तटस्थ थे। उनका ताल्लुक़ बलचानी और सरगानी क़बीलों से था। वो ख़ून-ख़राबे के बजाय फ़रीक़ैन में सुलह-सफ़ाई कराने की ख़्वाहिश रखते थे। उन्होंने आपसी सलाह-मशवरे से 'मेढ़ मरका' यानी लड़ाई-झगड़ा ख़त्म कराने का मंसूबा बनाया। मृतक के क़बीले को अपने आगमन की ख़बर दी और सुलह कराने की ग़रज़ से पहुँच गये। उनके साथ क़बीलों के बुज़ुर्ग और प्रतिष्ठित लोग थे। इलाक़े का एक सैयदज़ादा था और जिस क़बीले के हाथों क़त्ल हुआ था उसके प्रतिष्ठित लोग भी थे।

बातचीत की शुरुआत हुई, तो फ़िज़ा में निहायत खिंचाव था। फ़रीक़ैन एक-दूसरे के ख़िलाफ़ संगीन इल्जाम लगा रहे थे। दुश्मनी के साथ-साथ मरहूम के भाइयों का रवैया निहायत बर्बरतापूर्ण था। ऐसा महसूस होता था कि 'मेढ़ मरका' का मंसूबा नाकाम हो जायेगा। सुलह-सफ़ाई की कोशिश बेकार जायेगी। सूरते-हाल सँभलने के बजाय बिगड़ने लगी। मगर प्रतिष्ठित लोगों और बुज़ुर्गों ने ठीक वक़्त पर हस्तक्षेप किया। बीच का रास्ता अपनाया। उत्तेजित और बिफरे हुए नौजवानों का ग़ुस्सा ठण्डा किया। मृतक के सगे-सम्बन्धियों को मस्सत करने से रोका। बदले की कारवाई के ख़तरनाक और दूरगामी नतीजों से ख़बरदार किया।

धीरे-धीरे तनाव कम होने लगा। चेहरों पर छायी हुई मलिनता और झुँझलाहट का ग़ुबार छँटने लगा। आँखों से निकलती हुई चिनगारियाँ बुझने लगीं। प्रतिष्ठित जनों की ख़्वाहिश थी कि ख़ून के बदले ख़ून के बजाय मरहूम के ख़ून की क़ीमत और

घायलों का तावान, आपसी रज़ामन्दी से निश्चित कर दिया जाये। लेकिन मृतक की माँ ज़रीना बीबी ख़ून की क़ीमत और तावान लेने के लिए तैयार न हुई। वह बेवा थी। उसके पाँच बेटे थे। एक के हलाक होने क बाद चार रह गये थे। चारों कड़ियल जवान थे। उनके कद ऊँचे और जिस्म मज़बूत थे। वो भी अपनी माँ से सहमत थे। वो बार-बार माँग कर रहे थे कि उनकी प्रतिशोध-भावना की आग सिर्फ़ इसी सूरत में ठण्डी पड़ सकती है कि सरों की पगड़ियाँ गरदनों में डालकर और मुल्जिमों की तरह नज़रें झुकाकर बाक़ायदा सबके सामने माफ़ी माँगी जाये। उनके कब़ीले के प्रतिष्ठित लोग भी यही चाहते थे। मगर विरोधी फरीक़ को यह माँग किसी तरह मंज़ूर न थी। यह उनके क़बीले की आन का खुला अपमान था।

देर तक बहसा-बहसी होती रही। कोई नतीजा न निकला। दोनों फ़रीक़ अपनी-अपनी जगह पर अड़े हुए थे। आख़िरकार यह तय हुआ कि चन्द रोज़ बाद फिर सिर जोड़कर बैठा जाये और सुलह कराने की नये सिरे से कोशिश की जाये। उस वक़्त तक लड़ाई-झगड़ा न होगा। मेढ़ यानी ज़ंगबन्दी का पूरी तरह लिहाज़ रखा जाये। किसी तरह की उत्तेजना का प्रदर्शन नहीं किया जाये।

तटस्थ क़बीलों के प्रतिष्ठित लोगों और बुज़ुर्गों ने जो मारधाड़ के बजाय सुलह और मेल-मिलाप के ख़्वाहिशमन्द थे, अपनी कोशिश बराबर जारी रखी। फ़रीक़ैन से लगातार राब्ता क़ायम रखा और ऐसा तरीक़ा अपनाना चाहा, जो दोनों के लिए क़बूल करने लायक़ हो। आख़िर वो इसमे कामयाब भी हो गये। बलूचों के क़बीलाई क़ानून के मुताबिक़ यह बिंज का तरीक़ा था। उसकी नौइयत यह थी, कि सज़ा के तौर पर मृतक के एक भाई से विरोधी क़बीले की किसी लड़की का रिश्ता तय कर दिया जाये, जो मेढ़ मरका के हिसाब से बिंज कहलाता था।

बिंज का दस्तूर सिर्फ़ बलूचों में ही नहीं, मुल्क़ के कुछ दूसरे इलाक़ों के क़बीलों और बिरादरियों में भी प्रचलित है और उसे सवार कहा जाता है।

बिंज होनेवाली लड़की, गुलज़री के बाप का नाम नूर बख़्श रस्तमानी था। वह खेती-बाड़ी के इलावा खजूर की फ़सल का ठेका लेनेवाला ज़मींदार भी था। नूरबख़्श रस्तमानी अपने क़बीले का ख़ुशहाल और अहम सदस्य समझा जाता था। पानी के बँटवारे के झगड़े का वह इस हैसियत से साफ़ तौर पर अहम किरदार था कि उसके खेतों का रकबा ज़्यादा बड़ा था और उसके खेत झगड़ेवाली रूदकोही से सटे हुए भी थे। हथियारबन्द लड़ाई में भी वह आगे-आगे था और बढ़-चढ़कर हमले कर रहा था। मृतक के सिर पर जो घातक घाव थे, चश्मदीद गवाहों के मुताबिक़, वह भी नूरबख़्श रस्तमानी की कुल्हाड़ी के वार से हुआ था।

नूरबख़्श रस्तमानी को प्रतिष्ठित लोगों और बुज़ुर्गों के दबाव के सामने खुलकर इन्कार करने की जुर्रत न हुई, मगर वह अपनी बेटी को बिंज बनाने के लिए किसी तरह तैयार न था। वह शदीद परेशानी में मुब्तिला था। उसकी बड़ी बहन शीरीं की

दुखभरी ज़िन्दगी उसके सामने थी। क़त्ल की एक वारदात के बाद क़बीले के सामूहिक फ़ैसले के मुताबिक़ शीरीं को भी बिंज बनने पर मजबूर कर दिया गया था। बिंज तय होने के बाद शीरीं का, मृतक के बड़े भाई के साथ निकाह पढ़ाया गया। वह बूढ़ा था और दमे का पुराना मरीज़ था। सिर और दाढ़ी-मूँछों के बाल सफ़ेद हो चुके थे। वह न सिर्फ़ शादीशुदा था, बल्कि उसकी दो बीवियाँ भी मौजूद थीं। शीरीं रुख़सत होकर अपने शौहर के घर पहुँची, तो उसने सिर्फ़ सुहागरात उसके साथ बितायी। वह भी इस तरह कि अपनी प्रतिशोध भावना की शान्ति के लिए। वह उसे मादरज़ाद नंगा करके रात भर तरह-तरह से यातनाएँ पहुँचाता रहा। ज़लील और बेइज़्ज़त करता रहा। सुबह होते ही उसे मैके भिजवा दिया गया। दुबारा न कभी बुलाया, न उससे मिला और न ही तलाक़ दी। शादी से पहले वह जवानी की उमंगों से भरी एक ख़ूबसूरत और बाँकी किशोरी थी। एक ही रात में वह जलकर राख हो गयी थी। उसका रंग-रूप धुँधला गया था। आँखों के कमल बुझ गये थे। चेहरे पर वीरानी छा गयी थी।

उस सदमे को वह कुछ अरसे तक तो बरदाश्त करती रही, फिर उसका मानसिक सन्तुलन बिगड़ गया। वह हर वक़्त ख़ामोश बैठी शून्य में घूरती रहती। न किसी से बोलती, न बात करती। पूछने पर भी कुछ न कहती। माँ को गुमान हुआ कि किसी तरह के डर से इसका दिल कमज़ोर हो गया है। इसलिए तैर रैच कराया गया। उस तरीक़े के इलाज के मुताबिक़ शीरीं को बिस्तर पर चित लिटाकर पीतल का कटोरा पानी से भरकर रख दिया जाता था। उसमें शीशा पिघलाकर डाल दिया जाता। यह क्रिया कई बार की गयी, लेकिन कोई फ़ायदा न हुआ।

शीरीं का दवा-इलाज बराबर होता रहा। दवा के साथ-साथ टोने और टोटके भी आजमाये जाते। इसलिए शामरज़ मँगवाया गया। यह हरे रंग का गोल पत्थर था, जिस पर विभिन्न रंगों के नन्हे-नन्हे बेलबूटे थे। उसमें सूराख़ किया गया और एक डोरी में पिरोकर शीरीं के गले में डाल दिया गया, ताकि कोई भूत-प्रेत और झपेट हो, तो उसका असर ख़त्म हो जाये। इसी मक़सद के लिए शीरीं के सिरहाने आसान परी रखा गया। यह भी हल्का कोयलानुमा बदबूदार पत्थर था। ख़ातून बीबी की मन्नत मानी गयी। पाक-साफ़ होकर तरह-तरह के खाने पकाये गये और ऐसी महफ़ूज़ जगह पर पकाये गये, जहाँ कोई मर्द न जा सके। खाना भी ग़रीब-ग़ुरबा और मुहताजों को इस तरह ख़ैरात में दिया गया, कि सामने बिठाकर खिलाया गया। उसमें किसी बच्चे, मर्द या गर्भवती औरत को बिल्कुल नहीं शामिल किया गया। ऐसी मन्नत को बीबी दस्ती कहा जाता है।

मगर न कोई मन्नत कारगर साबित हुई, न कोई दवा-दारू काम आया और न टोना-टोटका। शीरीं का पागलपन बढ़ता गया। न खाने का होश रहा, न पहनने का। कभी हँसती, कभी फूट-फूटकर रोती। कभी झुँझलाकर जिस्म के तमाम कपड़े

झर्र-झर्र फाड़ देती और बिलकुल नंगी हो जाती। पागलपन का शदीद दौरा पड़ता, तो आँखें लाल हो जातीं। चेहरे पर डर तैरने लगता। उसी डर की हालत में घर से बाहर निकल जाती। जिधर मुँह उठता। उधर चली जाती। बाप उस वक़्त तक ज़िन्दा था। वह बार-बार उसे पकड़कर वापस लाता। जब वह उसके पागलपन से बहुत अजिज़ आ गये तो घर में क़ैद कर दिया। पैरों में लोहे की ज़ंजीर डाल दी। हर वक़्त कड़ी निगरानी भी की जाती, ताकि वह घर से बाहर न जा सके।

एक रोज़ वह किसी तरह घर से निकल गयी। बाप को ख़बर मिली। वह घोड़े पर सवार होकर उसकी तलाश में निकला। आख़िर वह उस बस्ती से दूर एक वीरान रास्ते पर मिल गयी। आलम यह था कि लिबास तार-तार था और एक तरह से बिखरा हुआ पड़ा था। वह मादरज़ाद नंगी थी और रास्ते से हटकर जंगली झाड़ियों की ओट में पड़ी थी उसकी बुरी हालत देखकर पता चलता था कि किसी ने उसे अपनी हवस का शिकार बनाया है। यह उसकी बेटी शीरीं न थी, उसकी इज़्ज़त और मर्यादा शर्म से नज़रें झुकाये उसके क़रीब पहुँचा और अपनी पगड़ी सिर से उतारकर उसके जवान और नंगे शरीर पर डाल दी।

कुछ देर वह उसके पहलू में निढाल और खिन्नचित्त खड़ा रहा, फिर उसके सिरहाने बैठ गया। ममता ने जोश मारा, तो दिल भर आया। आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे। वह हौले-हौले बेटी का सिर थपकने लगा। बेटी ने आँखें खोलकर बाप को देखा और कराहती हुई उठकर बैठ गयी। उसने बाप से कोई बात न की। उसकी वीरान आँखों में न शर्म थी, न पश्चात्ताप। चेहरा बिलकुल सपाट था। एकाएक उसने बाप को ग़ुस्से से देखा और जिस्म पर लिपटी हुई पगड़ी खींचकर एक तरफ़ फेंक दी। बाप ने फ़ौरन पगड़ी उठा ली और उसका बदन ढाँप दिया। लेकिन वह बाज़ न आयी। पगड़ी हटाकर फिर अलग कर दी। बाप ने दोबारा उसका बदन ढाँपा।

कई बार ऐसा हुआ।

बाप के लिए उसका पागलपन असह्य हो गया। चेहरे पर झुँझलाहट के साये फैल गये। वह भी ग़ुस्से से पागल हो गया। उसने शीरीं के गाल पर तड़ाक से थप्पड़ मारा। दूसरा मारा, तीसरा मारा। उसका ग़ुस्सा कम होने के बजाय बढ़ता गया। वह लगातार लात-घूँसे चलाता रहा। यहाँ तक कि वह हाँफने लगा।

शीरीं ने आपत्ति नहीं की। वह न रोयी, न चिल्लायी; न उसने फ़रियाद की, न दुहाई दी। चुपचाप मार खाती रही। उसकी एक आँख सूज गयी थी। ज़ख़्मी होंठ से ख़ून रिस रहा था। वह ज़मीन पर ख़ामोश और बेहाल पड़ी थी। उसके सिर के बाल धूल में सने हुए थे। चेहरा भी धूल-सना होकर मटियाला हो गया था। मगर वह ज़्यादा देर तक उस हालत में न रह सकी। उसने करवट बदली और उठकर बैठ गयी। एक बार फिर उस पर पागलपन का दौरा पड़ा। उसने जिस्म से लिपटी हुई पगड़ी का एक कोना पकड़कर खींचा और उसे तार-तार कर एक तरफ़ घृणा के

साथ फेंक दिया।

बाप ने ग़ुस्से-भरी नज़रों से उसे देखा। पगड़ी उठायी और उसी से शीरीं के जिस्म को लपेटकर गठरी बनायी। उठाकर घोड़े पर डाला। ख़ुद भी सवार हुआ और घोड़ा सरपट दौड़ाने लगा। मगर वह अपने घर न गया। सुनसान और टेढ़े-मेढ़े रास्तों से गुज़रता हुआ एक वीरान लोप में पहुँचा। यह ऐसा, मुक़ाम था, जिसके तीन तरफ़ काले-काले पत्थरों की बंजर पहाड़ियाँ थीं। उनमें बसेरा करनेवाली चिड़िया भी काली-काली थीं। घोड़ा लोप में दाख़िल हुआ और उसकी टापें उभरी, तो चिड़ियों का एक झुण्ड भर्रा मारकर उड़ा और स्याह बादल की तरह फ़िजा में बिखर गया। बाप ने उनकी तरफ़ कोई ध्यान न दिया। घोड़ा एक पहाड़ी के दामन में रोका। नीचे उतरा। बेटी को घोड़े की पीठ से नीचे उतारकर पथरीली ज़मीन पर एक तरफ़ डाला। वह बिल्कुल गुमसुम थी। ख़ाली नज़रों से बाप के चेहरे को तक रही थी, मगर उसने मुड़कर बेटी की तरफ़ न देखा। कमर से बँधा हुआ खंजर निकला। बेटी की तरफ़ बढ़ा उसके धूल-सने बालों को एक हाथ से पकड़कर सिर झुकाया।

घुटनों के बल फ़र्श पर बैठा और खंजर से बेटी का गला काट डाला। ख़ून का फव्वारा उबला, जिसके छींटों से बाप का चेहरा भी ख़ून से तर हो गया।

खंजर से ज़िबह करने के बाद वह चन्द लम्हे तक बेटी के तड़पते हुए जिस्म को देखता रहा। उसकी घनी दाढ़ी और मूँछों के सख़्त बालों पर ख़ून के लाल क़तरे बिखरे हुए थे। आँखों के चिराग़ जल रहे थे, बुझ रहे थे। वह रुक-रुककर गहरी साँस भरता रहा। फिर उसने ख़ून-सना खंजर मज़बूती से पकड़ा और एक चट्टान से अड़ाकर पूरी ताक़त से अपने सीने में उतार दिया। वह निढाल होकर गिरा और धूल में लिथड़ा हुआ पथरीली ज़मीन पर फड़कने लगा।

नूरबख़्श रस्तमानी को इस भयानक घटना की सूचना एक चरवाहे से मिली। वह बदहवासी के आलम में घोड़ा दौड़ाता हुआ लोप में पहुँचा। सूरज लोप की पहाड़ियों की चोटियों पर जगमगा रहा था। उसकी रंगत सुर्ख़ पड़ती जा रही थी, जिससे स्याह पहाड़ियाँ भी हल्की लालिमा लिए हुए दीख रही थीं। ऊपर आसमान पर चीलों और गिद्धों का एक झुण्ड मँडरा रहा था। एक पहाड़ी की तलहटी में उसके बाप और बहन शीरीं के जिस्म क़रीब-क़रीब पड़े थे। लाल ख़ून जमकर स्याह पड़ गया था। दोनों मर चुके थे।

बाप का हाथ अभी तक खंजर के मूठ पर जमा हुआ था। गरदन एक तरफ़ ढुलक गयी थी। बहन की ज्योतिहीन आँखें खुली थी। वे पल-पल सुर्ख़ होते हुए आसमानों को तक रही थी। नूरबख़्श रस्तमानी की उम्र उस वक़्त सोलह बरस के लगभग थी। हालाँकि उसके सिर और दाढ़ी के बालों में अब कहीं-कहीं सफ़ेदी झलकने लगी थी, मगर उस दिल दहला देने वाले दृश्य को वह अब तक भुला न सका था।

नूरबख़्श रस्तमानी अपनी लाडली बेटी गुलज़रीं को बिंज बनाकर अपनी बड़ी बहन शीरीं की तरह, दिल हिला देने वाले उस रूप में किसी भी तरह नहीं देखना चाहता था, जिसे याद करके वह हमेशा तड़प उठता था। वह उदास और बहुत परेशान था। गुलज़रीं का रिश्ता अपने हमरूतबा एक ख़ुशहाल घराने के नौजवान से तय कर चुका था, जो लाहौर के एक कॉलेज में अपनी तालीम पूरी कर रहा था। रिश्ता तय करने के बाद वह दलोर के तौर पर पच्चीस हज़ार रुपये भी ले चुका था। यह वह रक़म थी, जो बलूचों के समाजी दस्तूर के मुताबिक़ लड़की के माँ-बाप उसके होने वाले शौहर से वसूल करते हैं। बहावलपुर और उसके आस-पास के इलाक़ों में भी यह रस्म आम है। अलबता दलोर की रक़म को सम्भा कहा जाता है।

गुलज़रीं अगर मेढ़ मरका की वजह से बिंज बन जाती है, तो नूरबख़्श को दोहरा नुक़सान होता। इस तरह उसकी बेटी न सिर्फ़ मृतक के वारिसों की प्रतिशोध-भावना की भेंट चढ़ जाती, बल्कि उसे दलोर के पच्चीस हज़ार रुपये भी वापस करने पड़ते।

इसलिए उसकी ख़्वाहिश थी कि गुलज़री ब्याहकर अपने होने वाले शौहर के पास चली जाये और उसके साथ हँसी-ख़ुशी ज़िन्दगी बरस करे और दलोर की पच्चीस हज़ार की रक़म ख़ून की क़ीमत के तौर पर मृतक के वारिसों को दे दी जाये। लेकिन पंचायत के मेढ़ मरका का फ़ैसला उसकी ख़्वाहिश के उलट होनेवाला था।

पंचायत बैठने में अभी दो रोज़ बाक़ी थे। नूरबख़्श ने आख़िरी कोशिश की। वह रातों-रात छुपता-छुपाता शाह मीर पहुँचा। चाकर ख़ाँ सरगानी से ख़ुफिया तौर पर मिला। उसे सूरते-हाल से आगाह किया। अपना दुख-दर्द बताया। गिड़गिड़ाया। पाँच सौ रुपये निकालकर सरदार के लिए नज़राना पेश किया और यह ख़्वाहिश ज़ाहिर की कि पंचायत के बजाय सरदार अपनी कचहरी में मुक़दमे का फ़ैसला करे और उसकी बेटी गुलज़रीं को बिंज होने से बचा ले।

चारक ख़ाँ सरगानी से मिलने के बाद नूरबख़्श फ़ौरन वापस चला गया।

सरगानी एकान्त में सरदार शहज़ोर ख़ाँ मज़ारी से मिला। नूरबख़्श रस्तमानी ने जो पाँच सौ रुपये नज़राने के दिये थे, पेश किये। नूरबख़्श की परेशानी बयान की और दबी ज़ुबान में यह भी बताया कि वह क्या चाहता है। चाकर ख़ाँ सरगानी किसी के लिए जान की बाज़ी लगा देनेवाला और वफ़ादार होने के साथ-साथ सरदार मज़ारी का राज़दार और सलाहकार भी था। इसलिए सरदार मज़ारी ने पूरी तफ़सील सुनने के बाद सूरते-हाल का जायज़ा लिया। सरगानी से सलाह-मशवरा किया और पंचायत में मेढ़ मरका का फ़ैसला होने से पहले ही मुक़दमा अपने हाथ में ले लिया।

मुक़दमे की सुनवाई शुरू हुए कई घण्टे गुज़र चुके थे। क्वार के महीने का तपता हुआ सूरज चढ़कर आसमान के बीचो-बीच पहुँच गया था। गर्मी बढ़ गयी थी।

कचहरी में मस्दानियों के दो इज़्ज़तदार लोगों के अलावा मृतक की बेवा माँ ज़रीना बीबी और उसके बेटे भी मौजूद थे। रस्तमानियों के इज़्ज़तदार लोगों के साथ-साथ नूरबख़्श भी अदालत में हाज़िर था।

कचहरी पर सन्नाटा छाया था। सब ख़ामोश थे। सरदार शहज़ोर ख़ाँ मज़ारी भी चुप था। वह नज़रें झुकाये सोच रहा था कि मुक़दमे को अब और तूल नहीं दिया जा सकता। पिछली पेशियों में फ़रीक़ैन बयान दे चुके थे। गवाहियाँ भी हो चुकी थीं। सबूत भी मुहैया किये जा चुके थे। फ़रीक़ैन और उनके गवाहों के बयानों पर जिरह भी की जा चुकी थीं। अब वह मरहला आ गया था कि सरदार मज़ारी को मुक़दमे का फ़ैसला सुनाना था। मगर वह फ़ैसला सुनाते हुए हिचकिचा रहा था। मुक़दमे की कार्रवाई की शुरुआत ही से अन्दाज़ा हो गया था कि उसे सोच-समझकर फ़ैसला सुनाना होगा। मुक़दमा बहुत पेचीदा और संगीन था। फ़ैसले की तीन ही साफ़ सूरतें थीं। और वह ये थीं कि मृतक के वारिसों को तैयार किया जाये कि ख़ून की क़ीमत के तौर पर नक़द रक़म वसूल कर ले और अगर वो इस पर राज़ी न हो, तो रस्तमानियों पर दबाव डाला जाये कि मस्दानियों की माँग की मुताबिक़ माफ़ी माँग लें। इसके अलावा नूरबख़्श रस्तमानी की बेटी गुलज़रीं को बिंज क़रार देने का तरीक़ा था, जो तटस्थ क़बीलों के प्रतिष्ठित लोगों और बुज़ुर्गों ने तजवीज़ किया था। लेकिन नूरबख़्श से नज़राने की सूरत में पाँच सौ रुपये लेने के बाद वह ऐसा नहीं करना चाहता था।

मगर वह जो भी फ़ैसला करता, किसी फ़रीक में इतनी जुर्रत न थी कि उसे क़बूल करने से इन्कार करता। वह सरदार था और उसका फ़ैसला आख़िरी फ़ैसला था, लेकिन फ़ैसला ज़बरदस्ती थोपने की सूरत में यह अन्देशा था कि मेढ़ मरका पर पूरी तरह अमल न होता और फ़रीक़ैन की लड़ाई और दुश्मनी ख़त्म होने के बजाय और बढ़ जाती। किसी बहाने छेड़छाड़ होती और एक बार फिर सशस्त्र संघर्ष होता। ख़ून-ख़राबा होता। कुछ मारे जाते, कुछ ज़ख़्मी होते। यह सूरते-हाल सरदार मज़ारी के लिए शर्म और बदनामी का बाइस होती। उसके इन्साफ़ पर धब्बा लगता। लिहाजा उसकी कोशिश यह थी कि ऐसा फ़ैसला करे, जिसे दोनों फ़रीक़ राज़ी-ख़ुशी मंज़ूर कर लें।

सरदार मज़ारी इस उधेड़बुन में मुब्तिला था और हुक्के की नै होंठों में दबाये आहिस्ता-आहिस्ता कश लगा रहा था। उसी वक़्त भगवानदास दरखान कचहरी में दाख़िल हुआ, मगर दरवाज़े ही पर ठिठककर रह गया। सरदार ने उसे देखा, तो पहली ही नज़र में पहचान गया।

पिछले जाड़ों का ज़िक्र है। सरदार मज़ारी ने बड़ी बेटी की शादी से पहले अपनी हवेली के सदर-दरवाज़े का नवीनीकरण कराया, तो फाटक के बदरंग और सड़े गले किवाड़ बदलकर नये बनवाये थे। इस काम के लिए चाकर ख़ाँ सरगानी ने

भगवानदास दरखान को लगाया था, जो अपनी हुनरमन्दी और महारत के लिए मशहूर था। उसकी रिहाइश का बन्दोबस्त भी हवेली के वसाख यानी मेहमानख़ाने के उस हिस्से में कर दिया गया था, जहाँ नौकर-चाकर और दूसरे ख़िदमतगार कोठरियों में रहते थे।

भगवानदास बहुत मेहनती और कार्यकुशल था। हमेशा अपने काम से काम रखता। सूरत निकलते ही वह औज़ार सँभालकर अपनी कोठरी से निकलता और सूरज डूबने तक काम में जुटा रहता। अलबत्ता मंगल को वह छुट्टी करता। सोमवार की शाम को वह कोटला शेख़ चला जाता और बुधवार की सुबह वापस काम पर चला आता। उसके इन रोज़मर्रा के कामों में कभी फ़र्क़ न आया। सरदार मज़ारी चाहता था कि हवेली के सदर-दरवाज़े की तामीर का काम जल्द से जल्द ख़त्म हो जाये। इसलिए एक बार उसने भगवानदास दरखान को रोकना चाहा, तो वह हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। आजिज़ी से बोला "साईं तू सरदार है, तू मुजस्सिम-शेर है। तेरा हुक्म सिर आँखों पे। पर मैं मंगलवार को इधर नहीं रह सकता। मंगलवार को मैं बस्ती में सिर्फ़ अपना मन्दिर बनाने का काम करता हूँ। कोई दूसरा काम नहीं करता।"

भगवानदास दरखान ने ठीक ही कहा था। उन दिनों उस पर एक ही धुन सवार थी। और वह थी कि कोटला शेख़ में मन्दिर की तामीर और यह काम भी वह तनो-तन्हा कर रहा था। कोई बाल-बच्चा भी नहीं था, न बीवी थी। वह उसकी दोस्त और हमदर्द थी। उसी के रोकने पर भगवानदास दरखान ने शरणार्थी बनकर बम्बई जाने का इरादा छोड़ दिया था, जहाँ उसका छोटा भाई और कई रिश्तेदार पहले ही पहुँच चुके थे। बीवी के मरने के बाद ज़िन्दगी में जो ख़ालीपन पैदा हो गया था, उसे भरने के लिए भगवानदास दरखान ने मन्दिर बनाने की ठानी और इस काम के लिए मंगल का दिन ख़ासतौर पर तय कर दिया। उसकी बीवी का इन्तिकाल मंगल ही को हुआ था। वह हफ़्ते में छह रोज़ मेहनत करता और जो कुछ बचता, उसे मन्दिर की तामीर पर लगा देता।

गरज कि सरदार शहज़ोर ख़ाँ मज़ारी ने उसे दोबारा रोकने की कोशिश नहीं की। भगवानदास पूरी लगन और तल्लीनता से सरदार-मज़ारी की हवेली में काम करता रहा। फाटक के ऊँचे-ऊँचे किवाड़ों की जोड़ी तैयार करने के साथ-साथ हवेली के सामने के हिस्से की तामीर का काम भी उसी ने अंजाम दिया। किवाड़ों की जोड़ी पर इस नफ़ासत और बारीक़ी से फूल-बूटे और ऐसी सज्जल मेहराबें बनायी कि हवेली की शान दोगुनी हो गयी। जो देखता वाह-वाह करता। सरदार मज़ारी उसके काम से इस क़दर ख़ुश हुआ कि रुख़सत करते वक़्त पचास रुपये बतौर इनाम दिये।

भगवान दरखान पहली बार सरदार मज़ारी की कचहरी में हाज़िर हुआ था। हालाँकि वह मुक़दमे का एक अहम गवाह था। फ़रीक़ैन ने अपने बयानों में उसका

ज़िक्र भी किया था, मगर किसी ने उसे बतौर गवाह पेश नहीं किया था।

सरदार मज़ारी टकटकी बाँधे उसे चन्द लम्हे तक तकता रहा, फिर हाथ के इशारे के क़रीब बुलाया। वह आगे बढ़ा और सँभल-सँभलकर क़दम उठाता हुआ सरदार के सामने पहुँच गया। दस्तूर के अनुसार दुआ-भरे जुमलों से ताबेदारी ज़ाहिर की। 'सई सरदार सदा जीवे। बाले-बच्चे सबकी ख़ैर हो।' वह सरदार के क़दमों की तरफ़ झुका मगर पैरनपून के लिए पैरों को हाथ न लगाया। झुका हुआ सिर उठाया और सीधा खड़ा हो गया। सरदार शहज़ोर ख़ाँ मज़ारी को उसका रवैया नागवार लगा, मगर अनदेखी से काम लिया। उसने ग़ौर किया, भगवानदास दरखान की दाढ़ी और मूँछों के बाल कुछ और सफ़ेद हो गये थे। वह अब कमज़ोर और निढाल नज़र आ रहा था। सिर पर ढीली-ढाली पगड़ी थी और गर्मी के बावजूद बदन पर मटमैली चादर लिपटी हुई थी। उसके माथे पर पसीने की बूँदे थीं और आँखें बुझी-बुझी थीं।

सरदार मज़ारी को उसी वक़्त याद आया कि वह मंगल का दिन था और उस रोज़ भगवानदास सिर्फ़ अपना मन्दिर बनाने का काम करता था। उसने हैरत से दरयाफ़्त किया, "दरखान! आज मंगल है। आज तू कैसे आ गया? तूने आज मन्दिर बनाने का काम नहीं करना?"

"न सई, मैं अब मन्दिर नहीं बनाता।"

"क्यों?" सरदार को और ज़्यादा हैरत हुई।

भगवानदास दरखान ने कोई जवाब नहीं दिया। ख़ामोशी से बायीं तरफ़ सिर झुकाया। गरदन के पास अड़सा हुआ चादर का कोना दाँतों से पकड़कर एक झटके से अलहदा कर दिया। चादर ढुलककर नीचे गिर गयी। भगवानदास ने अपने दोनों हाथ फैलाकर सामने कर दिये, जो कुहनियों तक कटे हुए थे।

"सई जो दरखान मन्दिर बनाता था, उसका मरन हो गया। जब दरखान ही न रहा तो मन्दिर कैसे बन सकता है?" उसने सर्द आह खींची, "मेरा मन्दिर बनाने का सफना (सपना) सफना ही रह गया। वह कभी पूरा न होगा।"

कचहरी पर सन्नाटा छा गया। हर शख़्स ख़ामोश था और हैरान एवं परेशान नज़रों से भगवानदास की कटी हुई बाँहों को देख रहा था, जिन्हें वह परकटे कबूतर की तरह हौले-हौले हिला रहा था। चन्द लम्हे गहरी ख़ामोशी छायी रही, फिर सरदार मज़ारी की आवाज़ उभरी, "भगवानदास, तेरे ये हाथ मस्दानियों और रस्तमानियों की लड़ाई में मेढ़ कराते हुए कट गये थे?"

"ना सई, कटे नहीं, ज़ख़्मी थे।" भगवानदास ने सफ़ाई दी, "जब बस्ती में ज़ख़्म ठीक नहीं हुए पकने और सड़ने लगे थे, तो मैं शहर जाकर सरकारी अस्पताल में भरती हो गया। वहाँ डॉक्टरों ने दोनों हाथ काट दिये। मैं अब तक अस्पताल ही में था। पिछले इतवार को कोटला शेख़ वापस पहुँचा था।"

"यह तो बहुत बुरा हुआ। ऐसा नहीं होना चाहिए था।" सरदार ने अफ़सोस

ज़ाहिर किया, "तेरे साथ बहुत ज़ुल्म हुआ।"

"ना सई, कोई जुलुम-शुलुम नहीं हुआ। जब लड़ाई-भिड़ाई होती है, तो ऐसा होता है। कोई मरता है, कोई ज़ख़्मी होता है।" भगवानदास ने मुड़कर मृतक की माँ की तरफ़ देखा, "मुझे तो यह दुख है कि मेढ़ कराने के लिए कुछ पहले पहुँच जाता, तो शायद जरीना बीबी का पुत्तर बच जाता। कई ज़ख़्मी होने से बच जाते।" फिर उसने थोड़े-से अन्तराल के बाद कहा, "सई मैं तो यह सोचकर कचहरी में आया था कि मेंढ़ मरका..."

"ठीक है, ठीक है।" सरदार ने उसे आगे कुछ कहने न दिया, "भगवानदास, तू नेक बन्दा है। तूने बहुत चंगा काम किया।" सरदार मज़ारी का चेहरा अचानक लाल हो गया। आँखों से जलाल टपकने लगा। उसने प्रलयंकारी दृष्टि से सामने खड़े मस्दानियों और रस्तमानियों को देखा। हाथ उठाकर भगवानदास दरखान की तरफ़ इशारा किया और तीखे लहजे़ में मस्दानियों को सम्बोधित किया –

"इसे देख रहे हो यह तुम्हारा म्यार है। इसकी जानो-माल की हिफ़ाज़त करना तुम्हारा फ़र्ज़ है। पर तुम दावा लेकर आ गये। तुमने यह नहीं सोचा कि तुम्हारे राजगीर पर क्या बीती। यही तुम्हारी म्यारदारी है? बोलो, जवाब दो।"

"सई सरदार, तू बिलकुल ठीक कह रहा है।"

मस्दानियों के एक प्रतिष्ठित आदमी ने अपने क़बीले का प्रतिनिधित्व करते हुए अपनी मजबूरी ज़ाहिर की, "सई हमसे भूल हो गयी, माफ़ी दे दे।"

सरदार ने रस्तमानियों की तरफ़ देखा, "तुमने अपने म्यार के लिए क्या किया? तुम्हारी म्यारदारी को क्या हो गया? तुम अपने जुर्म की सफ़ाई पेश करने आ गये। अपने गवाह भी लाये। सबूत भी दिये।" उसने एक बार फिर भगवानदास दरखान की तरफ़ हाथ उठाकर इशारा किया, "जुर्म की सफ़ाई तुम किस तरह पेश करोगे?"

"इस तरह काम नहीं चलेगा।" सरदार मज़ारी ने नज़रें घुमा-फिराकर मस्दानियों और रस्तमानियों की तरफ़ देखा, "म्यार पर जो ज़ुल्म हुआ है, माफी माँगने से उस संगीन जुर्म से मुक्ति नहीं हो सकती।" उसने ग़ुस्से से गरदन को झटका, "हरगिज नहीं हो सकती।"

कमरे में गहरा सन्नाटा छा गया। सब ख़ामोश थे। सहमे हुए थे। सरदार ने हुक्के की नै सँभाली। होंठों में दबायी और हौले-हौले कश लगाने लगा। उसका सेवक चाकर ख़ाँ सरगानी हाथ बाँधे, नज़रें झुकाये अदब के साथ खड़ा था। मालिशिया फुर्ती के साथ सरदार की कमर और बाँहों के पुट्ठे दबा रहा था। उसके हाथ तेज़ी से चल रहे थे।

सरदार मज़ारी ने हुक्के की नै एक तरफ़ की। खँखारकर गला साफ़ किया और भारी भरकम लहजे़ में फ़रीक़ैन को सम्बोधित किया, "भगवानदास दरखान के कचहरी में हाज़िर होने के बाद, क्योंकि मुक़दमे की नौइयत बदल गयी है, लिहाजा

इसके बारे में नये सिरे से सोच–विचार करना होगा। मुक़दमे की कारवाई कल भी जारी रहेगी। कचहरी अब बर्ख़ास्त की जाती है।"

सरगानी के इशारे पर एक मुलाज़िम फ़ौरन आगे बढ़ा। सरदार मज़ारी के क़रीब पहुँचा और उसकी कमर और घुटनों से लिपटी हुई ख़ीरी की गिरह खोलने लगा।

दूसरे रोज़, पहर दिन चढ़े मुक़दमे की कार्रवाई फिर शुरू हुई। मगर ज़्यादा देर जारी न रही। न किसी फ़रीक़ का बयान लिया गया, न कोई पेशी हुई, न जिरह। सरदार मज़ारी ने सिर्फ़ मुक़दमे का फ़ैसला सुनाया, जो बहुत ही छोटा था।

"चश्मदीद गवाहों की गवाहियों से रस्तमानियों के ख़िलाफ़ जुर्म साबित हो गया है। लिहाज़ा उनको हुक्म दिया जाता है कि वो पच्चीस हज़ार रुपये, बतौर ख़ून की क़ीमत मस्दानियों को अदा करें। ख़ून की क़ीमत नूरबख़्श रस्तमानी मुहैया करेगा। मगर ये पच्चीस हज़ार रुपये मृतक की माँ, ज़रीना बीबी को नहीं, बल्कि बतौर तावान भगवानदास दरखान को दिये जायें। नूरबख़्श रस्तमानी को एक हफ़्ते की मुहलत दी जाती है। अगर इस दौरान वह रुपया मुहैया न कर सके, तो उसे सुक्के खोह में डाल दिया जाये। उसे तब तक न रिहा किया जाये, जब तक वो भगवानदास दरखान को पूरा तावान अदा न कर कर दे।"

सरदार शहज़ोर ख़ाँ मज़ारी के इस फ़ैसले के ख़िलाफ़ न किसी फ़रीक़ ने ऐतराज़ किया, न विरोध। उनके चेहरों पर न किसी क़िस्म की झुँझलाहट थी, न मलिनता। उन्होंने ख़ामोशी से फ़ैसला सुना और कचहरी से बाहर चले गये।

भागभरी

हाजरा मसरूर

यह उन दिनों की बात है जब मैंने नयी-नयी प्रैक्टिस शुरू की थी। मेडिकल कॉलेज के ज़माने में मैंने अपनेआप पर रुपयों की कैसी-कैसी बारिश होते न देखी थी। अपने बड़े-बड़े प्रोफ़ेसरों की लम्बी-लम्बी कारें देख आदमी और सोच भी क्या सकता था। मगर जब डिग्री लेकर इस बाज़ार में आयी, तो मालूम हुआ कि गली के अन्दर घटिया से कमरे पर बोर्ड लगाकर बैठने से वही दौलत वापस आनी मुश्किल है, जो बेवा माँ के जेवरात बिक-बिककर फ़ीसों और किताबों पर ख़र्च हुई। आगे चलकर मैंने क्या रुख़ इख़्तियार किया यह एक अलग क़िस्सा है, जिसका ज़िक्र करना इस मौक़े पर ज़रूरी नहीं। हाँ तो उन दिनों जब पहली बार मुझे दूर दराज के एक गाँव में ज़चगी का एक केस करने की दावत मिली तो मैं काफ़ी ख़ुश हुई। बज़ाहिर मैंने मुँह बनाया और अपने तमाम मरीज़ों की परेशानियों का ज़िक्र किया, मगर जब सीधे-सादे मुच्छड़ सन्देशवाहक ने मेरा भाव एकदम बढ़ा दिया, तो मैं फ़ौरन तैयार हो गयी। दो सौ रुपये रोज़ कम नहीं होते। मैं हैरान रह गयी कि शहर की दूसरी चलती हुई डॉक्टरनियों से बचकर यह मेरे पल्ले कैसे पड़ गया।

मैंने जल्दी से अन्दर जाकर माँ से ज़िक्र किया, लेकिन जो ख़ुश होने की बजाय परेशान हो गयी। बोली, "हटाओ, दूर की बात है! जवान कुँवारी लाख डॉक्टर हो, फिर भी..." माँ की इस 'फिर भी' से मैं भी परेशान हुई। लेकिन फिर एक तरक़ीब समझ में आ गयी। मैंने अपने छोटे भाई से कहा कि वह दौड़कर साइकिल पर जाये और कॉलेज में कम से कम छह दिन की छुट्टी की दरख़्वास्त दे आये। और साथ ही मैंने घर की पुरानी नौकरानी माई को सफ़ेद शलवार कुर्ता पहनाकर बतौर नर्स साथ चलने पर आमादा कर लिया। जब वापस अपने दवाख़ाने के उजड़े कमरे में गयी तो यह बात भी फ़ौरन तय हो गयी कि नर्स को दस रुपये रोज़ मिलेंगे।

फिर मैंने पूछा कि "वहाँ ट्रेन या बस किस वक़्त जायेगी?"

"कार लाया हूँ।" जवाब मिला।

और मैं यह सोचकर परेशान हो गयी कि देहात से शहर तक पहुँचते-पहुँचते कार कहीं इतनी बेकार न हो गयी हो कि रास्ते में परेशानी उठानी पड़े। लेकिन जब मैं अपने दो मुहाफ़िज़ों के साथ माँ को दुआएँ पढ़ते छोड़कर निकली और गली तय करके सड़क पर आयी तो बिल्कुल नयी कैडिलक देखकर मेरे चेहरे का रंग ज़रूर बदल गया होगा। मैं पछतायी कि मैंने फ़ीस और ज़्यादा क्यों न माँगी।

रास्ते में मेरे छोटे भाई ने कुरेद-कुरेदकर यह मालूम किया कि हम जिला सरगोधा के एक जागीरदार के यहाँ जा रहे हैं। जागीरदारनी की ज़िद थी कि लाहौर से डॉक्टरनी बच्चा जनाने आये। बड़े अरमानों की पहली ज़चगी थी।

कई घण्टे के सफ़र के बाद हम लाहौर से एक दूसरी दुनिया में दाख़िल हुए। एक छोटे-से गाँव में एक बड़ी-सी हवेली हमारी मंज़िल थी।

बड़ी-सी बैठक के दरवाज़े पर पीली पड़ती धूप में एक दर्जन शिकारी कुत्तों को शाम का राशन बाँटा जा रहा था और दस बारह आदमी उन कुत्तों की ज़ंजीरों से लिपटे हुए थे। हमारे आने पर वे चौंके, लेकिन फिर कुत्तों की ज़ंजीरों पर जुट गये। उसी पीली धूप में, गद्देदार कुर्सी पर मेरे दो सौ रुपयों रोज़ के दाता मलिक गुलनवाज़ आलती-पालती मारे बैठे थे। सफ़ेद नीली सिल्क की तहमद और नीली सिल्क की कमीज़, सिर पर बग़ैर कुलाह की पगड़ी और कलाई पर बाज़। बाज़ मलिक के हाथ पर रखी हुई फाख़्ता के पर बिखेर-बिखेरकर ताज़ा ताज़ा गोश्त नोच रहा था। यह वक़्त बाज़ के रातिब का भी था। कैडिलक के उस मालिक का तसव्वुर मैं ख़्वाब में भी नहीं कर सकती थी, फिर भी उस माहौल से मैं काफ़ी डर-सी गयी थी।

"डॉक्टरनी साहब काफ़ी तकलीफ़ उठायी आपने। मैं आपको ख़ुश कर दूँगा।" मालिक ने गहरी नज़रों से देखते भारी आवाज़ में कहा।

घर के अन्दर दाख़िल होते हुए मुझे ख़याल आया कि मालिक साहब की सूरत उस बादशाह से मिलती थी जिसकी तस्वीर मैंने स्कूल के ज़माने में किसी किताब में देखी थी। माथे तक पेंच दरपेच बड़ी-सी पगड़ी, घनी मूँछें, कुर्सी पर आलती-पालती मारे और हाथ पर बाज़ बिठाये। बस, माँग क्या माँगता है, कहने की कसर थी।

ज़नानख़ाने का माहौल लिबास और सजावट की तब्दीलियों के अलवा ऐसा ही था, जैसा आमतौर पर हमारे पुराने ठाट के बड़े घरों में होता है। सहन में रंगीन पीढ़ियों पर काफ़ी से ज़्यादा औरतें तहमद और मोटी रेशमी किनारेवाली चादरें लपेटे फ़िक्रमन्द शक्लें बनाये बैठी थीं और एक खेस से ढँके हुए पलंग पर एक बूढ़ी फ़िक्रमन्द-सी बैठी नसवार सुड़क रही थीं मैंने अन्दाज़ा लगा लिया कि ये घर की बड़ी-बूढ़ी होंगी। सचमुच यही मालिक की वालिदा, बड़ी मालकिन थी। मुझे पूरी उम्मीद थी कि वह उठकर मेरा इस्तक़बाल करेंगी, लेकिन वह उम्मीद पूरी न हुई। मैं ठिठकती हुई पलंग के क़रीब रुक गयी।

बूढ़ी मालकिन ने मुझे ग़ौर से देखते हुए दुशाले का पल्लू सरकाकर गरदन से लेकर नाक तक डाल लिया और अब मैं उसकी तेज़ आँखें ही देख सकती थी, जो मुझे सख़्ती से घूर रही थी। मुझे इतना गुस्सा आया कि मैंने जी में दुआ की कि अल्लाह इन सब औरतों को प्रसव-पीड़ा होने लगे।

"मरीज़ कहाँ है?" मैंने अटक-अटककर पूछा। सब औरतें जंगली हिरनियों की तरह गरदनें उठा उठाकर मुझे हैरत से घूरने लगी।

"बीमार कहाँ है?" अबके मेरी भाई ने बहुत ही सख़्त लहजे़ में सवाल किया।

"अल्लाह का नाम लो। बीमार यहाँ कहाँ?" एक औरत ने दोनों तरफ़ छिदी हुई नाक की छिपारनुमा कीलें चमकाकर, बड़ी ही कर्कश आवाज़ में जवाब दिया। सबकी दुश्मनी भरी नज़रें मुझी पर जमी थीं।

मैंने समझा, मैं देर से पहुँची हूँ इसीलिए सबकी नफ़रत का निशाना हूँ। शायद बेचारी ख़त्म हो चुकी और मैं अफ़सोस में डूबी हुई दुबारा मालिक की सोफ़ों की ठुँसी हुई बैठक में पहुँच गयी।

"अफ़सोस है मालिक साहब, मैं मरीज़ा को नहीं देख सकी।" मैंने देखा कि इस फ़िकरे से मेरे भाई के चेहरे का रंग यूँ उड़ गया, जैसे उसे सदमा पहुँचा हो। ज़ाहिर है कि मेरे भाई को तालीम के लिए फ़ीस की ज़रूरत भी होती है मगर मालिक साहब के पीले हुए चेहरे पर मुस्कुराहट आ गयी।

ओ फ़्हो डॉक्टरनी साहब, मैंने अभी तक वालिदा से ज़िक्र नहीं किया था कि लाहौर से डॉक्टरनी बुलायी है।

यह कहकर मालिक साहब उठ खड़े हुए और मुझे अपने साथ आने का इशारा किया।

"मगर मालिक साहब अब अन्दर जाने से क्या फ़ायदा।" मैंने गरदन झुकाकर कहा।

"डॉक्टरनी साहब आप बुरा न मानें। दरअसल मेरी वालिदा रस्म-ओ-रिवाज़ के ख़िलाफ़ जाना पसन्द नहीं करती। इसीलिए मैंने पहले ज़िक्र करना मुनासिब नहीं समझा।" वह ज़रा शरमाकर बोले और मैं कुछ न समझकर उलझती हुई उनके साथ हो ली।

लेकिन घर के अन्दर पहुँचकर मालिक और बड़ी मालकिन में झक-झक शुरू हो गयी। वह बार-बार मेरी तरफ़ इशारा करके मुँह बनाती और बेटे से कहती, "बीमार, बीमार! हूँ बीमार कहती है।"

यह क़िस्सा मेरी समझ में नहीं आ रहा था। बाद में मालिक ने गहरी नज़रों से मुझे देखकर धीरे-से बताया, "बड़ी मालकिन को आपकी यह बात नागवार गुज़री कि आपने पहले-पहल की ज़च्चा को बीमार कह दिया, ज़चगी, आप जानती है मुबारक चीज़ है। वग़ैरह-वग़ैरह।

"वह सामने महल में है।" मालिक ने एक लम्बे कमरे के दरवाज़े की तरफ़ यूँ इशारा किया जैसे इच्छित मोती का पता दे रहे हों और मैं बजाय हँसने के और खिसयाकर रह गयी।

सिर्फ़ एक दरवाज़े वाले लम्बे-से अँधेरे कमरे में ज़च्चा को देखने के लिए मुझे खिड़कियों और रौशनदान ढूँढ़ने के लिए नज़रें दौड़ानी पड़ीं और फिर मायूस होकर मैंने उन औरतों की तरफ़ ध्यान दिया जो उस कमरे में मौजूद थी। एक सिड़ी बुढ़िया, होने वाली माँ का पेट पकड़े पलंग पर चढ़ी बैठी थी और उस जैसी कई औरतें उसके हाथ-पाँव और सिर दबा रही थीं। सबने मुझे इस तरह देखा कि मैंने ज़च्चा की बजाय महल की सजावट देखनी शुरू कर दी। कमरे के हर कोने में बिछे हुए रंगीन पलंग और ख़ूबसूरत खेस, दीवार पर क़िस्म-क़िस्म के बरतन, आईने और पंखे! 'तो यह महल है' मैंने सोचा।

ज़च्चा तीस-पैंतीस साल की औरत थी, जो अपने इलाक़े के तमाम ज़ेवरात पहने हुए थी। अगर उसको प्रसव पीड़ा न हो रही होती तो काफ़ी ख़ूबसूरत नज़र आती।

मैंने अपनी माई की तरफ़ देखते हुए कहा कि ज़च्चा को फ़ौरन उस ठुँसे हुए घुटे कमरे से किसी और जगह ले जाया जाये।

माई ने औरतों के सामने तजवीज़ रखी और हुल्लड़-सा मच गया। उँगलियाँ नाक और होंठों पर पहुँच गयी और हुल्लड़ में बड़ी मलकनी हाँफती हुई आ गयी।

मेरी तजवीज़ उनकी आम सहमति से रद्द हो गयी क्योंकि इस क़िस्म का कमरा ज़नानख़ाने का 'महल' कहलाता है और ज़रूरी है कि घर की बहू इसी जगह अपने बच्चे को जन्म दे।

"औरतें कमरा ख़ाली कर दें।" मेरी दूसरी तजवीज़ भी नामंजूर हो गयी क्योंकि ग़ैर औरत के हाथ में ज़च्चा को सौंप देना उनके हिसाब से हिमाकत थी, लिहाजा मैंने माई से कहा कि वह ज़च्चा के पाँयती खेस की ओट करें, ताकि मैं मरीज़ा का मुआयना कर सकूँ।

पहली ज़चगी थी। मरीज़ा ने बताया, "बड़ी मिन्नतों-मुरादों के बाद ये दिन पूरे हुए है, वरना पहले तो कभी नौ महीने पूरे ही न होते। एक फ़कीरनी कहती थी, एक जान रहेगी-माँ या बच्चा। मेमसाहब, दोनों को बचाओ। बड़ा ईनाम देंगे। ख़ुश कर देंगे।

मरीज़ा दर्द और ख़ौफ़ से सफ़ेद हो रही थी। मैंने उसे तसल्ली दी और कहा कि सब ठीक है। यह सुनकर कृतज्ञता से मरीज़ा के आँसू निकल आये और नाक बह आयी। रूमाल से उसके आँसू पोंछ चुकने के बाद नाक पोंछने में बड़ी दिक्कत हुई क्योंकि हीरे की बड़ी-बड़ी कीलों से नथुने ढँके हुए थे।

मैंने देने को तसल्ली दे दी, मगर यह क़िस्सा सुनकर ख़ुद परेशान-सी हो गयी।

पक्की उम्र की औरत की औलाद ज़रा मुश्किल से होती है और फिर ज़च्चा को दर्द भी बड़े बेतुके थे और बच्चे की दिल की हरकत सुस्त। मैंने अल्लाह मियाँ से दुआ की कि इज़्ज़त रख लेना, वरना वापसी के लिए कैडिलक तो क्या ख़ाक मिलेगी।

रात आ गयी। औरतें उसी तरह आपस में बोलती रहीं और बारी-बारी मरीज़ा का जिस्म दबाती रही। माई ने एक दफ़ा चुपके से कहा कि मैं भी मरीज़ा का पेट पकड़ लूँ, क्योंकि औरतें कहती हैं, यह डॉक्टरनी मुफ़्तख़ोरी है, हाथ धरे बैठी है। मैंने माई के हुक्म की तामील की।

जब मरीज़ा ज़ोर-से कराहने और होंठ काटने लगी, तो मैंने सब औरतों से बाहर निकल जाने को कहा। लेकिन कई औरतें लपकी और पलंग के पास दो ईंटें रख दी फिर सब मिलकर ज़च्चा को उठाने लगी, ताकि वह ईंटों पर उकड़ूँ बैठ जाये।

बिस्मिल्लाह ख़ैर अल्लाह। मरीज़ा उनके हुक्म की तामील कर रही थी और मैं सूरते हाल देखकर ख़ौफ़ से चीख़ पड़ी।

सब छोड़ दो। भाग जाओ यहाँ से। तुम सब इसे मार डालोगे।

औरतें इस दख़लअन्दाज़ी पर हुल्लड़ मचाने लगीं। माई ने मरीज़ा को बाजुओं से पकड़कर लिटा दिया और मजबूरन बग़ैर किसी ओट के बच्चे को सबके सामने पैदा करना पड़ा। बच्चा कमज़ोर-सी आवाज़ में रोने लगा।

मुबारक सलामत का शोर उठा और बाहर से जितनी औरतें अन्दर आ सकती थी आ गयी। बाक़ी दरवाज़े से अन्दर झाँकने की कोशिश करने लगी। मैं देख रही थी कि इस वक़्त ज़च्चा की हालत ख़राब है। मैंने ब्लीडिंग कम करने के लिए उसे इंजेक्शन कुहनियों के टहोकों के दरमियान दिया। सुई देखकर कई औरतें दर्द से कराह उठीं। ज़च्चा को गश आ गया था। अचानक बाहर बन्दूक़ों से फायर होने लगे और फिर ढोल नफीरियाँ बजने लगी। इसके बाद रस्मों और शगुनों का एक लम्बा सिलसिला शुरू हो गया और कई बार मेरा ध्यान ज़च्चा की तरफ़ से हट गया।

ज़ाहिर है कि मेरे लिए ये सारी चीज़े दिलचस्प थीं मगर यह अजीब बात थी कि उस घर में मौजूद तमाम लोगों का रवैया अभी तक मेरे लिए दोस्ताना नहीं था। हालाँकि मैंने कई रस्मों में दूसरी औरतों की देखा देखी रुपये भी दिये, चूँकि मुझे क़दम-क़दम पर ज़च्चा और बच्चा की ज़िन्दगी की ख़ातिर उनसे झगड़ना भी पड़ता था, इसलिए मेरी दिलजोई ऊपर ही ऊपर गयी।

रात भर ढोल बजी। ज़च्चा को पूरी नींद लेनी चाहिए थी क्योंकि उसे बुख़ार था। मगर वह उस हंगामे में इतनी दिलचस्पी महसूस कर रही थी कि मैं मजबूरन ख़ामोश रही। सुबह, जब मैं नाश्ते के लिए मालिक साहब के बुलावे पर बैठक में गयी तो मेरे भाई ने बताया कि बाहर भी रातभर आतिशबाज़ी छूटी और मलिक के सैकड़ों खेतिहरों ने नाच गाकर सुबह की। मालिक साहब को बच्चे की पैदाइश पर बड़े तोहफ़े मिले। मैं उन तोहफों वाली रस्म पर काफ़ी हैरान हुई।

लेकिन दूसरे दिन मेरी हैरानी शदीद ख़ौफ़ में तब्दील हो गयी, जबकि यह वाक़या हुआ।

एक तो सर्दी का ज़माना, उस पर से सवेरे से ही बादल आने शुरू हो गये। मैं नहाना चाहती थी, क्योंकि मुझे अपने जिस्म पर मनों गन्दगी लिपटी हुई मालूम हो रही थी। यह तो मैंने बिल्कुल तय कर लिया था कि इस घर में मेरी सबसे तनातनी है, इसलिए मैंने नहाने के लिए गरम पानी किसी से तलब न किया। रात भर की जगायी के बाद और बुखार की शिद्दत से थोड़ी नींद लेने के बाद ज़च्चा ने मेरी तरफ़ करवट ली और उसकी आँखें हीरे की कीलों के साथ चमकीं तो मैंने उससे कहा "क्या नहाने के लिए गरम पानी मिल जायेगा।"

"बिस्मिल्लाह ज़रूर नहाओ जी।" और फिर उसने मुस्कुराकर बच्चे को घेरे बैठी औरतों में से एक से कहा, "भागभरी से कहो कि मेमसाहब के लिए पानी गरम कर दें।"

ज़च्चा को इंजेक्शन देने के बाद मैंने माई से कहा कि सूटकेस से मेरे कपड़े निकाले।

"कपड़े तो जी, तुम्हें मेमसाहब, हम ईनाम में देंगे।" ज़च्चा ने मीठी अदा से मुस्कुराकर कहा।

और मुझे बहुत बुरा लगा। ख़ुदा जाने, वह गँवार मलकनी मुझे कोई दाई ख़िदमतगार समझती है, जो बेटा जनने की ख़ुशी में जोड़ा देगी।

"हम डॉक्टर हैं मलकनी, अपनी मुक़र्रर की हुई फ़ीस लेते हैं, जोड़े नहीं।" मैंने गुरूर से मुँह बनाकर जवाब दिया और वह हैरत से मुझे देखने लगी।

"मेमसाहब तुमने हमारी ख़िदमत की है। फिर हम सभी को कुछ देंगे। अल्लाह ने यह दिन दिखाया है।"

"अच्छा, अच्छा मेरी माई को दे देना। मैं तो..."

इतने में एक दस बारह साल की लड़की भदर-भदर अन्दर आ गयी। ख़ूबसूरत, तन्दुरुस्त, चम्पई-सा रंग, माथे पर महीन गुँथी हुई मेढ़ियों की मेहराब, कानों में चाँदी के बुन्दे। यह भागभरी थी।

"हम इसे भी जोड़ा देंगे, बेटा जो हुआ है।" ज़च्चा मुझे अपनी बात पर कायल करने पर तुली हुई थी।

और भागभरी मुझे देखकर एकदम शरमाने लगी।

"पानी रख दिया भागभरी? मेमसाहब को ग़ुस्लख़ाने ले जाओ।" ज़च्चा ने उससे कहा और मैं नहाने चली गयी।

नहाते हुए मैं झल्ला-झल्लाकर सोचती रही कि कैसे लोग हैं किसी की पोजीशन तक को नहीं जानते। जोड़ा देगी मुझे, हुँह।

जब मैं नहाकर, सिर पर तौलिया लपेटे निकली तो गीले बाल सुखाने के लिए

सहन में बैठकर आती जाती धूप में सियाने लगी। भागभरी ने किसी कोने से मुझे देखा और दौड़कर मिट्टी के कंकारोंवाली अँगीठी लाकर मेरे पास रख गयी। उस वक़्त भागभरी मेरे दिल को भा गयी।

घर में बड़ी चहल-पहल थी। औरतों पर औरतें उमड़ी चली आ रही थी। उस वक़्त फिर गाने बजाने का प्रोग्राम था।

अचानक मलिक साहब खाँसते-खाँसते जनानख़ाने की तरफ़ आये। मुझे गहरी गहरी नज़रों से देखा। ज़च्चा-बच्चा के बारे में एक-दो बातें दरयाफ़्त कीं और फिर बड़ी मालकनी की तरफ़ चले गये। चन्द मिनट बाद वह दुबारा बाहर चले गये।

"भागभरी! भागभरी! मलिक जी नहायेंगे, तौलिया बाहर गुस्लख़ाने में रख आ।" बड़ी मलकनी ने हुक्म दिया।

और भागभरी उसी तेज़ी से भदर-भदर भागती हुई मर्दाने गुस्लख़ाने की तरफ़ चल दी।

गाने बजाने की तैयारियों को देखकर मैं बोर होने लगी। मैं इत्मीनान से सो जाना चाहती थीं मेरे ख़याल में ज़च्चा को भी सुकून से सो जाना चाहिए था। लेकिन कोई बस न चला। मैंने उस वक़्त सोचा कि किसी पश्चिमी लेखक का कौल है कि "देहात सेहतबख़्श क़ब्र हैं।" मगर मेरे अल्लाह यह क़ब्रें कितनी शोर भरी हैं। कितनी ज़िद्दी हठीली लाशें। कितना साम्य है। मैं तो हूँ ही शहर का कीड़ा, मगर शर्त बदकर कह दूँ की शहर की मुर्ग़ी या कुत्ते तक को यहाँ ले आओ तो साधनावस्था में जाकर जान दें दे। मैं निहायत तल्ख़ी से सोचती रही और बस सोचती रही। मुझे अपने रोज़ के दो सौ रुपयों का ख़याल तक न आया और फिर जैसे साधनावस्था में झोंक दी गयी। दरअस्ल मुझे सख़्त नींद आ रही थी।

अचानक भागभरी रोती घुटती मेरे पास से गुज़री। उसका मुँह सुर्ख़ हो रहा था। एकाएक वह डगमगाई और ज़मीन पर गिर पड़ी। उसका नीला तहमद ख़ून के धब्बों से लाल हो रहा था। मैं दौड़कर उसे उठाने लगी। काँय-काँय शुरू हो गयी और एकदम बावर्चीख़ाने (रसोई) से एक औरत दौड़ती हुई आकर महीन सुरीली आवाज़ में रोने लगी। वह भागभरी की माँ थी।

भागभरी ने फ़ौरन आँखें खोल दी।

"माय! मलिक जी! मलिक जी! माय।" भागभरी ने माँ की तरफ़ हाथ फैलाकर कहा और आँखें बन्द कर ली। फिर माँ ज़ोर-ज़ोर से विलाप करने लगी।

ज़ाहिर है कि क्या हो चुका था। मैं, कुँवारी लड़की, दहशत से काँप रही थी। तमाम औरतें इकट्ठा हो गयीं। माई मुझे कँपकँपाती देखकर सहारे से ज़च्चावाले कमरे में ले आयी। अचानक सहन में बड़ी मलकनी की दबंग आवाज़ शोर करने लगी।

माई दोबारा टोह लेने बाहर चली गयी। मैं सुन्न-सी बैठी रही।

थोड़ी देर बाद ज़रा-सी ख़ामोशी छा गयी। ज़च्चा अब तक आँखें फाड़े बाहर की आवाज़ों पर कान लगाये हुए थी।

जब माई बाहर से आयी, तो उसने चुपके-चुपके क़िस्से को संक्षिप्त करके सुनाया कि बड़ी मलकनी भागभरी की माँ को रोक रही थी कि बच्चे वाले घर में रोना मत डालो। लेकिन वह अपनी बच्ची की हालत पर विलाप करती ही रही तो बड़ी मलकनी आपे से बाहर हो गयी, कि तेरी लड़की खुद मस्तानी हुई है। तौलिया रखकर वहाँ रुकी क्यों? मर्द है, क्या करें? और यह भी कहा कि बड़ी बेटी की इज़्ज़त की दुहाई देने आयी। वह दिन भूल गयी जब तेरा खाविन्द खेतों पर होता था और तू मलिक जी की बैठक में होती थी। भागभरी की माँ ने रो रोकर अपने बराबर वालियों से फ़रियाद की, तो बड़ी मलकनी और भी जल गयी कि देखें कौन है मरियम की बीवियाँ जिन्हें तू पुकार रही है। इस पर धीरे-धीरे ख़ामोशी हो गयी। भागभरी की माँ जब रोने से बाज न आयी तो मलकनी ने उसे धक्के मारकर घर से बाहर निकाल दिया। जाती हुई भागभरी को ले जाना चाहती थी मगर जवाब नहीं मिला, "नहीं जायेगी, आज काम बहुत है हवेली में। सब रिश्ते-नाते वाले जमा है। ऐसी कौन-सी मौत आ गयी है भागभरी को..."

"हाय, लौंडिया ख़ून से तरबतर है! तौबा मेरी! कैसे बेवक़ूफ़ लोग हैं। खामख़ाँ भागभरी की माँ को और ग़ुस्सा दिलाया। वह ऐसे ग़ुस्से में गयी है कि पुलिस लायेगी, देख लेना।"

माई ने 'समापन' के तौर पर एक ज़ोरदार आह खींची और सोच में डूब गयी।

मैंने डरते-डरते ज़च्चा की तरफ़ देखा। वह ख़ामोश और संजीदा लेटी हुई थी। उसके पहलू में उसका, मिन्नतों और मुरादों का पहला बच्चा, गण्डों और ताबीज़ों से गुँथा पड़ा था।

मैंने सोचा इन्सान के साथ शैतान क्यों लगा हुआ है? अब यह पहला बच्चा देखो और बाप के लिए जेल का दरवाज़ा खुला हुआ है। खै़र, चाहे मुझे ज़च्चा पर कितना ही रहम क्यों न आये, मैं तो सच्ची गवाही दूँगी। भले ही मुझे दो सौ रुपये रोज़ के न वसूल हों।

इसके बाद बाहर सहन में ज़ोर-ज़ोर से ढोल ढमकने लगे और किसी बोल के गीत गूँजने लगे।

मैं उस मौक़े पर ढोल की आवाज़ से हौल गयी। गीत के बोल सुनकर उदास लेटी हुई ज़च्चा को जैसे होश आने लगा। और उसने मेढियों से गुथा हुआ-सा आहिस्ता से बच्चे पर झुका दिया और उसे हौले से चूमकर रहस्यात्मक ढंग से मुस्कुराई। ऐसी एहतियात भरी मुस्कुराहट, जैसे वह मकड़ी के जालों जैसी हो और वह डर रही हो कि कहीं कोई तार टूट न जाये।

मैंने एक आह भरकर कहा "बच्चे की क़िस्मत भी कैसी है।"

"नसीबों वाला है, जीवे मेरा लाल।" ज़च्चा ने चौंककर जवाब दिया। मैंने सोचा, 'मुझे बच्चे के बारे में ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए थी। माँ का दिल बड़ी से बड़ी मुसीबत और तबाही की ज़िम्मेदारी भी अपने बच्चे पर नहीं डालेगा।' मगर फिर भी मैंने क़ानून के बारे में अपनी जानकारी सबकी सब उसके सामने उगल दी।

वह ताज्जुब और ख़ौफ़ से आँखें फाड़े मेरी बातें सुनती रही और फिर एक लम्बी साँस लेकर बच्चे को चूमने लगी।

बुख़ार से या न जाने क्या सोचकर ज़च्चा का चेहरा सुर्ख़ हो रहा था। मैं ख़ामोश हो गयी। हवेली की अँगनायी में ढोल के साथ गीतों के बोल लहराते रहे। एक औरत अन्दर आयी और उसने ज़च्चा पर झुककर कुछ कहा, जो मैं न सुन सकी।

मैंने ज़च्चा का टेम्परेचर लिया। बुख़ार और भी तेज़ हो गया था। बच्चे को भी बुख़ार था। मैं अब यहाँ से जल्द से जल्द छुटकारा पाना चाहती थी। होने को तो यह भी हो सकता था कि मैं दवाएँ देकर रुख़सत हो जाती, मगर मुझे अपने पाँव में एक ज़ंजीर-सी बँधी मालूम हो रही थी। ज़ाहिर है यह ज़ंजीर कौन-सी थी?

थोड़ी देर बाद वही औरत आयी, ज़रा पहले ज़च्चा से खुसुर-पुसुर कर गयी थी। अब उसके साथ भागभरी थी। भागभरी की आँखों में वह शर्म नहीं थी जो पहली बार इस कमरे में आते हुए उसकी आँखों में देखी थी। वह किवाड़ का सहारा लिए चुपचाप मेरी तरफ़ देख रही थी।

"मेमसाहब इसका भी इलाज करो।" ज़च्चा ने गिड़गिड़ाते हुए कहा और मैं उस देहाती जागीरदारनी की महानता के सामने सन्नाटे में आ गयी।

भागभरी की तकलीफ़ का जो भी इलाज मुमकिन था, मैंने किया। भागभरी उस वक़्त कितनी भावनाविहीन हो रही थी।

एक दिन और गुज़र गया। दूध उतरने की वजह से ज़च्चा का बुख़ार बहुत तेज़ हो गया। वह बार-बार अचेत-सी हो जाती। लेकिन उसी दिन मैं वापस चल दी। शायद मैं ज़च्चा की हालत देखकर एक दिन और रुक जाती लेकिन उसी दिन चल देने में मेरी माई का शदीद इसरार शामिल था।

क़िस्सा यूँ हुआ कि सुबह-सुबह अपने भाई के साथ क़ीमती सोफ़ों से ठुँसे दीवानख़ाने में मुर्ग़ और पराठों का नाश्ता कर रही थी और मलिक साहब मुझे ज़च्चा बच्चा की ख़ैरियत पूछ चुकने के बाद बाहर धूप ले रहे थे। उनके शिकारी कुत्तों को सुबह का रातिब बाँटा जा रहा था। क़रीब ही कहीं ढोल नफीरियाँ बज रही थी। और उस लम्हे में मैंने तय किया कि दो एक दिन और रहना चाहिए, पैसे बन रहे हैं।

इस लम्हे के बाद क़रीब के मकान की ओट से निकलकर भागभरी की माँ आती नज़र पड़ी। जाड़े की धूप में उसका स्याह तहमद, सुर्ख़ लम्बा कुर्ता और गहरी जर्द चादर चमक रही थी। वह धीमी चाल से चल रही थी। उसके सिर पर एक बड़ा थाल था, जो गोटे लगे सुर्ख़ दुपट्टे से ढका हुआ था उसके पीछे और भी कई औरतें

थी। वह भी कुछ न कुछ सिर पर उठाये हुए थीं। और मर्द भी थे। कुछ लोग नाच रहे थे और कुछ ढोल नफीरियाँ बजा रहे थे। भागभरी की माँ के नेतृत्व में यह जुलूस बिल्कुल क़रीब आ गया। रातिब पर झगड़ते हुए कुत्ते भौंकने लगे। ढोल की धम-धम और उचकते फाँदते मर्दों की हाव हू से मलिक साहब के हाथ पर बैठा हुआ बाज़ एकदम उड़ा और अपनी जगह पर आ बैठा।

और सबके बाद अकड़ते बरतते घोड़े की लगाम एक शख़्स की तरफ़ उछालकर थानेदार मलिक साहब की तरफ़ बढ़ा।

हवेली की ड्योढ़ी से औरतें सैलाब की तरह बाहर आ गयीं। बहुत-सी रेशमी कपड़ों वालियाँ दीवानख़ाने में भी घुस पड़ी। मेरा भाई घबराकर बाहर निकल गया और मैंने औरतों के हुजूम में धक्के खाते हुए देखा कि भागभरी की माँ ने थाल उतारकर मलिक साहब के क़दमों के क़रीब रख दिया।

"बच्चे के कपड़े आये हैं।" का शोर अन्दर से बाहर तक बरपा था। मैं एकदम माई को ढूँढ़ने अन्दर भागी। आँगन ख़ाली था। ज़च्चाख़ाने में ज़च्चा पलंग पर बैठी हुई थी और भागभरी की मेढियाँ उसके हाथ में थीं और उसका चेहरा बिल्कुल वैसा ही हो रहा था जैसे वह प्रसव पीड़ा से ग्रस्त हो। मुझे देखकर वह चौंक पड़ी।

"बदतमीज़ ने पानी बिस्तर पर गिरा दिया।" वह मुझसे मुख़ातिब हुई।

और उसका चेहरा यूँ शान्त और खिला-सा हो गया जैसे वह अभी-अभी बच्चा जनकर फारिग़ हुई हो। भागभरी के दोनों गालों पर उँगलियों के सफ़ेद निशान उभरे हुए थे और बिस्तर या कमरे में पानी का नाम तक न था।

मैंने जल्दी से माई को ढूँढ़कर उससे खुसुर-पुसुर की। उसने भी मेरे साथ बातें की और हम फ़ौरन चलने को तैयार हो गये। मुझे उन पलों में यूँ लग रहा था जैसे मैं अकेले घर में हूँ। ऐसे घर में, जिसकी दीवारें गिर चुकी हों।

घर पहुँचकर तीन दिन के छह सौ रुपये माँ के हाथ पर रखते ही बड़े ज़ोर की बहस शुरू हो गयी। सही या ग़लत? मतलब यह कि मैंने फ़ौरन चले आने में हिमाक़त की या नहीं। माँ कहती, बिल्कुल ठीक किया। भाई कहता, बिलावजह घबराकर भागीं।

इससे पहले कि इसका कोई फ़ैसला हो, मैं यह बता दूँ कि कुर्ता टोपी के जिस जुलूस की अगुवाई भागभरी की माँ कर रही थी, वह थानेदार के घर से आया था।

गाय

अनवर सज्जाद

एक रोज़ उन्होंने मिलकर फ़ैसला किया था कि अब गाय को बूचड़ख़ाने में दे ही दिया जाये।

"अब इसका धेला नहीं मिलता।"

उनमें से एक ने कहा था।

"इन मुट्ठी भर हड्डियों को कौन ख़रीदेगा।"

"लेकिन बाबा मुझे अब भी यक़ीन है। अगर इसका इलाज बाकायदगी से..."

"तुम चुप रहो जी। बड़े आये अक़्ल वाले।"

निक्का चुपकर के एक तरफ़ हो गया और बाबा अपनी दाढ़ी में अक़्ल को कुरेदता हुआ उसके बड़ों के साथ सिर जोड़कर बैठ गया था।

मैं अब ज़बान हिलाता हूँ तो यह बूचड़ बन जाते हैं। जिस रोज़ से मैंने अपने को पहचाना है उसी रोज़ से चितकबरी को भी जाना है और जिस रोज़ से ये लोग इसे बूचड़ख़ाने ले जाने की सोच रहे हैं उसी दिन से मैं हर लम्हा यतीम होता जा रहा हूँ। यतीम होता हूँ। मैं क्या करूँ? यह सब मुझ पर हँसते हैं कि मैं इसकी इतनी ख़िदमत क्यों करता हूँ।

"आप इसे बूचड़ख़ाने के बजाय अस्पताल क्यों नहीं भेज देते?" निक्के से नहीं रहा जाता।

"तुम नहीं समझते, यह ठीक नहीं हो सकती। इसके इलाज पर पैसा ख्वामख्वाह क्यों ख़र्च किया जाये?"

मैं नासमझ हूँ...अभी कल ही तो माँ ने धागे में पन्द्रहवीं गिरह लगायी थी।

"आप इलाज करा के देखें तो सही!"

"बड़ों की बातों में दखल न दिया करो।"

मेरा जी चाहता है कि मैं आप सब को बूचड़ख़ाने दे आऊँ।

फिर सबने मिलकर गाय की ज़ंजीर पकड़ी थी। लेकिन जैसे गाय को भी

सबकुछ मालूम था। वह अपनी जगह से एक इंच नहीं हिली थी। उन्होंने मार–मारकर उसका भुरकुस निकाल दिया था। निक्का एक तरफ़ खड़ा पथराई हुई आँखों से सबकुछ देख रहा था। समझने की कोशिश कर रहा था।

शाबाश मेरी चितकबरी, मेरी गाय, मेरी गऊ माता, हिलना नहीं, तुम नहीं जानती ये लोग तुम्हारे साथ क्या सुलूक करने वाले हैं, जाना नहीं, हिलना नहीं, वरना, वरना, नहीं तो...

गाय अपनी जगह पर अड़ी, मुड़–मुड़कर उसकी तरफ़ देखती रही थी। ज़रा हटकर गाय का बछड़ा खूँटे के साथ रस्सी से बँधा बेतआल्लुक बैठा था। हड्डियों पर लाठियों की बौछार उसे सुनायी नहीं देती थी। निक्के के कान भी बन्द हो रहे थे, रफ़्ता, रफ़्ता।

सारे बुज़ुर्ग हाँफते हुए फिर सिर जोड़कर बैठ गये थे। फिर फ़ैसला हुआ था कि अगर यह अब चल भी पड़ी तो मुमकिन है रास्ते में खम्भा हो जाये। इसलिए बेहतर यही है कि इसे ट्रक में डालकर ले जाया जाये। ट्रक में तो इसे उठाकर भी लादा जा सकता है।

अगले रोज़ ट्रक भी आ गया।

ट्रक की आवाज़ पर गाय ने मुड़कर देखा था। आँखें झपकी थीं और फिर खोली में मुँह डाल दिया था। जहाँ निक्का चारा डालकर अभी–अभी ट्रक को देखने गया था।

"आप लोग इसे वाक़ई..."

उसे यक़ीन नहीं आ रहा था।

"नहीं तो हम मज़ाक़ कर रहे हैं क्या?"

एक ने कहा था।

"बाबा, यह गाय मुझे दे दो। मैं इसे..."

"हकीम की औलाद।"

दूसरे ने कहा था।

"बाबा इसके बग़ैर मैं..."

"मजनूं का बच्चा।"

तीसरे ने कहा था।

चौथा–पाँचवाँ, "सारे बुज़ुर्ग साले एक से एक हैं और बाबा जो अपनी दाढ़ी को अक़्ल का गढ़ समझता है जाने इसे क्या हो गया है।"

"बेटे, ट्रकवाले को दस रुपये देकर भी हम बहुत फ़ायदे में रहेंगे।"

"आ, कमबख़्त सौदागर मुझसे लो रुपये। मुझसे यह लो, लेकिन मेरी मुट्ठी में इस वक़्त तो हवा है। जब, जब मैं बड़ा हो जाऊँगा..."

हा, हा, हा, हा,

"जब मैं कमाने लगूँगा।"

हा, हा, हा, हा

"तब तक तो चितकबरी की हड्डियों का सुरमा बन गया होगा। मैं-मैं क्या करूँ।"

इनमें से एक, गाय को लाने के लिए खोली की तरफ़ गया था। निक्का भी इसके पीछे-पीछे हो लिया। यूँ ही देखने के लिए बड़े ने इसकी ज़ंजीर खोली थी। गाय ने खोली में मुँह मार के दाँतों में पट्ठे दबाये थे, मुड़ के निक्के को देखा था और जाने के लिए खुर उठाया था।

"न, न, न।"

निक्का चीख़ा था।

"बको मत।"

गाय खड़ी हो गयी थी।

"हे, हे, हे,।"

बड़े ने ज़ोर लगाया था।

"न, चितकबरिये। न, न।"

"चुप भी रहोगे या खींचूँ ज़बान।"

निक्के ने ज़बान को क़ैद कर दिया था। बड़े ने फिर ज़ंजीर को झटका दिया था।

"चलो मेम साहब। ट्रक वाला तुम्हारे बाप का नौकर नहीं जो सारा दिन खड़ा रहे।"

गाय की आँखें बाहर को निकल आयी थीं। ज़बान क़ैद में फड़फड़ाकर रह गयी थीं। लेकिन वह हड्डियों का ढाँचा मात्र वहीं का वहीं था। निक्का मुस्कुराया, फिर फ़ौरन उदास हो गया था।

"यह तो बिक भी चुकी है। इसे जाना ही होगा। मुझे अब भी यक़ीन है कि अगर थोड़ी-सी रक़म लगाकर इसका इलाज बाकायदगी से किया जाये तो, तो... लेकिन मैं इन बुज़ुर्गों का क्या करूँ। काश! मैं हकीम ही होता। इस बछड़े को शर्म नहीं आती माँ के जिस्म पर नील पड़ रहे हैं और यह बाहर खड़ा उल्लू के पट्ठों की तरह देखे जा रहा है।"

ज़बान फड़फड़ाकर रह गयी थी।

फिर इनमें से एक को बड़ी अच्छी सूझी थी। उसने गाय की दुम पकड़कर इसे तीन-चार बल दिये थे। वह पीठ के दर्द से दूर भागी थी। इसने निक्के की तरफ़ देखकर क़हक़हा लगाया था। पीठ का दर्द गाय को हाँकता हुआ बिलकुल ट्रक के पास ले आया था। निक्के का दिल बहुत ज़ोर से धड़का था।

"डरफटे मूँ, लानत लिख लानत।"

ट्रक वाले ने गाय के चढ़ने के लिए ट्रक से ज़मीन पर तख़्ता लगा दिया था। गाय ने तख़्ते पर ख़ुर रखा।

"न चढ़ना।"

"इसकी ज़बान काट लो... यह गाय को बरगलाता है, डराता है।"

निक्का फिर मुँह बन्द करके पीछे हट गया था। गाय ने पहले तख़्त को देखा फिर निक्के की तरफ़।

"डरफटे मूँ, लानत लिख लानत।"

निक्के का सिर शर्म से झुक गया था।

"इसके अलावा मैं और क्या कर सकता हूँ।"

वह अभी तक नहीं डरी थी। फिर उसने मशकूक निगाहों से इधर-उधर देखकर बड़े ज़ोर से फुनकार मारी थी।

मेरी चितकबरी जानती है, जानती है कि वह तख़्ते पर क़दम रखकर ट्रक में चली जायेगी। लेकिन वह यह नहीं जानती, क्यों-क्यों वह चढ़ना नहीं चाहती।

उन सबने मिलकर पीठ पर लाठियाँ बरसाई थीं, गाय की टाँगें थिरकी थीं। लेकिन वह अपनी जगह से क़तई नहीं हिली थी। जब उन्होंने मिलकर दूसरा वार किया तो वह तकलीफ़ से दूर भागने को थी कि बाबा की दाढ़ी में अक़्ल ने जोश मारा था और उसने जमा कर उसके मुँह पर लाठी मारी थी। गाय फिर तख़्ते की तरफ़ मुँह करके सीधी हो गयी थी। बाबा ने हाँफते हुए कहा था।

"आओ बेटू।"

और सबने मिलकर फिर लाठियों का मेंह बरसा दिया था।

निक्का दूर खड़ा था। बिल्कुल बेतआल्लुक, बेहिस।

"यूँ बात नहीं बनेगी।"

एक ने अपनी साँस पर क़ाबू पाते हुए कहा था।

"तो फिर?"

वह ट्रक के साथ टेक लगाये खड़े सोच ही रहे थे कि जाने गाय को क्या सूझी थी। पलटकर एकदम भाग उठी थी और धूल उड़ाती हुई निक्के के क़रीब से बिलकुल अजनबियों की तरह गुज़र गयी थी।

निक्का, "जिस्म का मफलूज हिस्सा।"

"देखो, देखो, वह तो बायीं तरफ़।"

एक चौंका था।

"क़ुदरती बात है।"

बाबा ने अपनी दाढ़ी में उँगलियाँ फेरते हुए कहा था।

गाय अपने बछड़े को चाट रही थी। बाबा की आँखें मक्कार-सी मुस्कुराहट से चमक उठीं।

"इस बछड़े को यहाँ ले आओ... यह चाल तो हमें कल ही चल जानी चाहिए थी। ट्रक के पैसे भी बच जाते।"

निक्का, "मफलूज तजूद।"

उनमें से एक ने बछड़े की रस्सी पकड़ी थी। निक्के की ज़बान लरजी थी। गाय कुछ सोचती, क़दम उठाती, रुकती, चलती बछड़े के पीछे-पीछे इसके क़रीब से गुज़री थी तो आहिस्ता से निक्के की ज़बान से गाली फिसली थी। बछड़ा, तख़्ते पर चढ़ के पटौसिया मारता हुआ ट्रक में चला गया था। गाय तख़्ते के पास जाकर फिर रुकी थी। बड़ी हैरानी से बछड़े को देखकर आहिस्ता-आहिस्ता गरदन निकालकर निक्के को देखा था। एक ने फ़ौरन बग़ल से पट्ठों का गट्ठा निकाल के गाय के आगे कर दिया था। उसने चन्द डण्ठल दाँतों में ले लिये और फिर कुछ सोचकर ज़मीन पर गिरा दिये थे और अगला खुर तख़्ते पर रख दिया था फिर दूसरा खुर।

ख़ुदा मालूम निक्के को क्या हो गया था। एकदम इसके सारे जिस्म में ताज़ा-ताज़ा गर्म-गर्म लहू का सैलाब आ गया था। उसके कान सुर्ख़ हो गये और दिमाग़ बेतरह बजने लगा था। वह भागा-भागा घर में गया था और बाबा की दो नाली बन्दूक़ उतार के उसमें कारतूस भरे थे। इस जुनून में भागता हुआ बाहर आ गया था और कन्धे पर बन्दूक़ रखकर निशाना बाँधा था।

उसने खुली आँखों से देखा। बछड़ा ट्रक से बाहर गाय के गिराये हुए पट्ठों में मुँह मार रहा था। ट्रक में बँधी गाय बाहर मुँह निकालकर बछड़े को देख रही थी। उनमें से एक गाय को ले जाने के लिए ट्रक में बैठा था और बाबा एक हाथ से अपनी दाढ़ी में अक़्ल को सहलाता हुआ बाहर खड़े ड्राइवर से हाथ मिला रहा था।

फिर मुझे पता नहीं क्या हुआ। निक्के ने किसे निशाना बनाया। गाय को, बछड़े को, ड्राइवर को, बाबा को, या वह अभी तक निशाना बाँधे खड़ा है।

कोई वहाँ जा के देखे और आके मुझे बताए कि फिर क्या हुआ। मुझे तो सिर्फ़ इतना पता है कि एक रोज़ उन्होंने मिलकर फ़ैसला किया था कि...।

तितलियाँ ढूँढ़ने वाली

ज़ाहिदा हिना

नरजिस ने सफ़ेद सिर वाली अम्माँ को देखा जो सलाख़दार दरवाज़े के दूसरी तरफ़ बैठी थीं और जिनकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लगी हुई थी। भइया सिर झुकाये हुए था। उसका चेहरा नरजिस को दिखायी नहीं दे रहा था।

मेंहदी ताली बजाकर ज़ोर से हँसा, फिर उसने सलाखों के बीच से अपने दोनों हाथ बाहर निकाल दिये – "मम्मा मेरी टॉफ़ी", वह चहका। तब भइया ने अपना झुका हुआ सिर उठाया और मेंहदी के दोनों हाथ थाम लिये। नमकीन पानी की बूँदें मेंहदी के गर्दभरे हाथों को धोने की नाकाम कोशिश करने लगीं।

नरजिस ने दूसरे अच्छे बुरे नज़ारों की तरह इस मंज़र को भी अपने अन्दर रख लिया। उसके दिल को तसल्ली-सी हुई। अम्माँ नहीं रहेंगी तब भी मेंहदी के सिर पर हाथ रखने वाला तो रहेगा। भइया उसे जी जान से चाहता था। वह मेंहदी से भी प्यार करेगा। भइया ने रहम की अपील पर दस्तख़त करवाने के लिए कैसी-कैसी मिन्नतें उससे की थीं। लेकिन नरजिस के लिए बस यही मुमकिन न था। अपील का वक़्त गुज़र गया था और वह अकेली मौत के सामने थी।

अम्माँ उसका हाथ यूँ थामे हुए थी जैसे तैरने वाले डूबने वालों का हाथ थामते हैं। इस स्पर्श में बेबसी थी, जुदाई थी और बहुत गहरी वेदना थी। यह स्पर्श बाहर की दुनिया से उसका आख़िरी सम्पर्क था। वह दुनिया जो ख़ूबसूरती और बदसूरती से, अच्छों और बुरों से, मोहब्बत और नफ़रत से भरी हुई थी।

मेंहदी खिलखिलाता रहा। भइया से बातें करता रहा। कभी दो सलाखों के बीच से अपना नन्हा-सा चेहरा आगे निकालकर अम्माँ का मुँह चूम लेता तो कभी हाथ बढ़ाकर उनके सफ़ेद बालों में उलझ जाता।

अम्माँ इसी बात पर ख़ुश होतीं कि मेंहदी अब आज़ाद हो जायेगा। उसने सलाखों, हथकड़ियों, ज़ंजीरों और संगीनों के सिवा देखा ही क्या है। वह यहीं पैदा हुआ। यही बैरकें उसका सारा संसार है। अब वह स्कूल जायेगा, बाज़ार जायेगा, बाग़

में खेलेगा। भइया इसे झूले पर ज़रूर बिठाना।

"आपा तुम्हें ख़ुदा रसूल का वास्ता, चुप रहो," भइया बकने लगा, वह ख़ामोश हो गयी। वह अम्माँ और भइया की तकलीफ़, उनका अभिशाप समझती थी लेकिन उन्हें यह नहीं समझा सकती थी कि कभी इन्सान इसलिए मौत का चुनाव करता है ताकि दूसरे लोग ज़िन्दा रहें। मौत के प्याले में जब तक ज़िन्दगी के सिक्के न डालें जायें आदर्श हाथ नहीं आते।

वह और हुसैन एक साथ ही गिरफ़्तार हुए थे। फिर सूचना आयी कि जाँच के दौरान हुसैन ने आत्महत्या कर ली। वह जानती थी कि हत्यारे हत्या को आत्महत्या ही कहते हैं। हुसैन के ऊपर से उसकी आस्था एक क्षण के लिए भी नहीं डिगी थी। वह भी उसी की तरह जमीर का क़ैदी था और जमीर के क़ैदी आत्महत्या नहीं करते, रहम की अपीलें नहीं भेजते।

आख़िरी मुलाकात का वक़्त ख़त्म हुआ तो अम्माँ होश खो गयी। भइया सलाखों से चिमट गया। वह उसकी पेशानी चूम रहा था, उसके हाथों को प्यार कर रहा था, उसके बालों को छू रहा था।

फिर वो लोग चले गये, नहीं, वो लोग गये नहीं ले जाये गये। नरजिस का कैसा जी चाहा था, एक बार भइया को सीने से लगा ले। लेकिन यह मुमकिन न था। जेल के नियम इन्सानों ने बनाये थे। उनसे इन्सानी रिश्तों और भावनाओं के स्थलों की उम्मीद बेकार थी।

मम्मा चला गया तो मेंहदी बिलखने लगा। वह वहाँ जाना चाहता था, जहाँ की कहानियाँ अम्मी ने सुनायी थीं, लेकिन अम्मी तो उसे कहीं नहीं जाने देती थी। कल चले जाना, मम्मा तुम्हें कल ले जायेंगे। नरजिस मेंहदी के गाल चूमने लगी। वार्डन मरियम ने माँ और बेटे पर एक नज़र डाली और सिर झुका लिया। यह कैसी औरत थी जिसने मौत की सज़ा के ख़िलाफ़ रहम की अपील नहीं की थी, जिसने फाँसी घाट पहुँचकर एक भी आँसू नहीं बहाया था, चीख़ें नहीं मारी थीं। ख़ुदा से लेकर जेलर तक किसी को भी गालियाँ नहीं दी थी। यह अजीब औरत थी कि जब उसे क़ुरान दिया गया तो उसने उसे आँखों से लगाकर एक तरफ़ रख दिया और अपने बेटे को चूमती रही। मौलवी साहब ने आकर उसे नमाज़ पढ़ने और ख़ुदा के दरबार में तौबा-माफ़ी करने की ताकीद की तो वह मुस्कुराती रही। मौलवी साहब के जाने के बाद नमाज़ पढ़ने का कपड़ा उसने तह करके सिरहाने रख लिया और लेट गयी।

जनाना वार्ड कैसी-कैसी मुजरिम और मुलजिम औरतों से भरा हुआ था लेकिन नरजिस उनको अपनेआप जैसी नहीं लगती थी। पिछले चार सालों में उन बुरी औरतों ने उसे बहुत अच्छी तरह रखा था।

वह उनकी समझ से बाहर थी। इसलिए वे उसकी बहुत इज़्ज़त करती थीं, उसे प्यार करती थीं और उससे डरती थीं। उनकी समझ में नहीं आता था कि जब उसने

किसी की नाक चुटइया नहीं काटी, किसी के जानवर नहीं चुराये, कच्ची शराब और चरस नहीं बेची, किसी की हत्या नहीं की तो फिर उसे किन गुनाहों की इतनी बड़ी सज़ा मिली है।

"बीबी तुम्हें डर नहीं लगता?" फाँसी घाट में बदली के कुछ दिनों बाद मरियम ने उससे पूछा था।

"किस बात से डर?" नरजिस की आवाज़ में सन्तोष था।

"मौत से?"

"नहीं मौत पर जब अपना इख़्तियार हो तो उससे डर नहीं लगता। फिर मेंहदी भी तो है। वह मेरे बाद रहेगा और मैं उसमें रहूँगी। फिर जब वह चला जायेगा तो मैं उसके बच्चों में ज़िन्दा रहूँगी।"

मरियम ने उसके बाद नरजिस से कोई सवाल नहीं किया था। हाँ बैरकों में यह बात ज़रूर घूम गयी थी कि फाँसी घाट में जो बीबी बन्द है वह बहुत पहुँची हुई है। उसे बशारत हुई है कि वह अपने बाद भी रहेगी। हाथी के कलेजे वाली है। न होती तो दूसरी औरतों और दूसरे मर्दों की तरह चीखें़ मार रही होती, कपड़े फाड़ रही होती, मिन्नतें कर रही होती।

नरजिस ने महसूस किया था कि उसके सामने पहुँचकर लेडी वार्डनों की आँखें नीची हो जाती हैं। जेल के सुपरिण्टेडेण्ट को उसके कोठरी से जाने की जल्दी होती है और सुबह व शाम जब वह अपनी कोठरी से बाहर निकाली जाती है तो हर तरफ़ सन्नाटा छा जाता है। लड़ती हुई, शोर मचाती हुई औरतें ख़ामोश हो जाती हैं और सलाखों वाले दरवाज़ों से उसे यूँ देखती हैं जैसे वह उनमें से नहीं है, कहीं और से आयी है।

वह खाना, वह आख़िरी खाना (भोजन कितनी तैयारी से आया था)। उसे बड़े आर्टिस्टों की पेण्टिंग्स याद आयीं। मेंहदी उस खाने को देखकर किस हद तक ख़ुश हुआ था। आज बड़ा मज़ा आया। उसने माँ के गले में बाँहें डाल दी थीं।

"हाँ मेरी जान। सच कहते हो।" नरजिस ने उसे निवाला बनाकर देते हुए निगाहें झुका ली थीं। कहीं मेंहदी उन आँसुओं को न देख ले जो चिलमन से लगे बैठे थे।

फिर रात हो गयी। मेंहदी ऊँघने लगा लेकिन नरजिस उससे जी भरकर बातें करना चाहती थी। उसकी आवाज़ सुनना चाहती थी। वह उसे देर तक जगाना चाहती थी ताकि वो लोग सूरज निकलने से पहले जब उसे लेने आयें तो वह सो रहा हो।

नरजिस ने उसकी चमकदार आँखों को देखा, उसके सुन्दर माथे को देखा। यह हुसैन की आँखें थीं, यह हुसैन का माथा था, उसके बदन से हुसैन की ख़ुशबू फूटती थी, हुस्न की, ज़िन्दगी की, उम्मीद की ख़ूशबू।

हुसैन अब जब कि तुम कहीं नहीं हो तो क्या अब भी तुम कहीं रहते हो? ज़मीन और आसमान के दरम्यान? उसके ख़ून में भँवर पड़ने लगे। उसने मेंहदी को

अपने सीने से समेट लिया। “बहुत ज़ोर की नींद आ रही है अम्मी” मेंहदी ने फ़रियाद की। “मेरी जान, अभी कुछ देर में सो जाना, मुझसे थोड़ी-सी बातें कर लो।” नरजिस की आवाज़ काँपने लगी।

“कल सुबह मम्मा तुम्हें घर ले जायेंगे, वह तुम्हें कहानियाँ सुनायेंगे, बाज़ार ले जायेंगे, जाओगे न?”

“सच अम्मी, हमारे साथ आप भी बाज़ार चलेंगी न?” मेंहदी नींद को भूलकर उठ बैठा।

“मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगी बेटे”

“तो क्या आप इसी कोठरी में रहेंगी?”

“नहीं बेटे मैं तुम्हारे लिए तितलियाँ ढूँढ़ने जाऊँगी,”

गैलरी में आहट हुई, नरजिस ने सिर उठाकर देखा।

वार्डेन मरियम सलाखें थामे दोनों को देख रही थी।

“अम्मी कल तितलियाँ ढूँढ़ने जायेंगी” मेंहदी ने ख़ुश होकर मरियम को बताया।

“हाँ राजा, अम्मी से ख़ूब बातें कर लो, ख़ूब प्यार कर लो” मरियम की आवाज़ टूटने लगी और वह जल्दी से मुड़ गयी।

“आप शाम तक तो आ जायेंगी न?”

“नहीं मेंहदी तितलियाँ बहुत तेज़ उड़ती हैं, मैं उन्हें ढूँढ़ने निकलूँगी तो बहुत दूर चली जाऊँगी”

“आप कौन-सी तितली ढूँढ़ेंगी?”

नरजिस एक क्षण के लिए रुकी, “आज़ादी की तितली मेरी जान,” उसने बेटे के बाल चूम लिये।

“वह किस रंग की होती है?”

“उसमें इन्द्रधनुष के सातों रंग होते हैं।”

“इन्द्रधनुष कैसा होता है?”

“इस बार जब मेंह बरसे, मम्मा से कहना वह तुम्हें इन्द्रधनुष दिखा देंगे।”

“फिर मैं भी इन्द्रधनुषी तितलियाँ ढूँढूगा।”

“नहीं मेरी जान, इन्द्रधनुषी तितलियाँ आपसे आप तुम्हारे पास आ जायेंगी। हम इसीलिए इन्हें ढूँढ़ने निकले हैं कि तुम्हें हमारी तरह सफ़र न करना पड़े।”

नरजिस का बदन लरजने लगा। वह दीवानावार उसकी बेदाग गरदन चूमने लगी। इस एक हफ़्ते के दौरान पहली बार उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे।

मेंहदी सो गया तो उसे उठाकर उसने सीने से लगा लिया। मेंहदी के अस्तित्व में उम्मीद का पौधा अंकुरित हो रहा था और उम्मीद ने उसके सीने में हाथी का कलेजा रख दिया था। उसे आने वाले युग में ज़िन्दा रहने का स्वप्न दिया था। आस-पास की बैरकों से कलमा और क़ुरान पढ़ने की आवाज़ें आने लगीं। सबको

मालूम था कि आज बीबी रुख़सत होने वाली है और यह उसके रुख़सत की तैयारी थी। उसके सीने में किसी ने बर्छी मारी। भइया बड़े दरवाज़े पर ख़ाक पे बैठा होगा। उसने जब गणित में डिग्री हासिल की थी तो उसने एक पल को भी न सोचा होगा कि उसे एक दिन अपनी बड़ी बहन की ज़िन्दगी के क्षण गिनने होंगे और वह बिल्कुल अकेला होगा।

चेहरे उसकी आँखों के सामने चकफेरियाँ खाने लगे। मेहरबान और नामेहरबान चेहरे। अजनबी और जानी पहचानी आवाज़ें। नरजिस को इन अजनबी आवाज़ों पर अनायास प्यार आया जो उसका आख़िरी सफ़र आसान करने के लिए अपनी नींदें कु़र्बान कर दे रही थीं। एक हफ़्ता पहले तक वह इन आवाज़ों के साथ थी। ये आवाज़ें उसे कुछ भी तो नहीं समझती थीं। उसके बारे में कुछ भी तो नहीं जानती थी।

जिस दिन रहम की अपील का समय समाप्त हुआ और सूचना आयी कि जेल अधीक्षक और उप अधीक्षक उसे बैरक से फाँसी घाट ले जाने के लिए आ रहे हैं तो चारों तरफ़ सन्नाटा था। वह और मेंहदी बैरक से विदा हुए तो कई औरतों की आँखों में आँसू भर आये। वे गरदन झुकाकर आँसू पोंछने लगीं। ये वो औरतें थीं जो छोटी-छोटी बातों पर एक-दूसरे से लड़ती थीं। गालियाँ बकती थीं। जिन्हें अलग करने के लिए लेडी वार्डनों को जमकर बेंत का इस्तेमाल करना पड़ता था।

नरजिस को नींद का झोंका छूकर गुज़रा। उसका दिल ऐंठने लगा। मेंहदी का दिल उसके दिल के साथ धड़क रहा था। उस नन्हे-से दिल का धड़कते रहना ही मौत के सामने उसकी सबसे बड़ी जीत थी। वह अपने बाद भी रहेगी। लेकिन आत्मा क्या थी और अगर थी तो बदन से निकलकर कहाँ वास करती थी। हुसैन कहाँ था? कहीं भी नहीं, सबकुछ समाप्त हो गया था, ख़त्म होने का मतलब क्या होता है?

"बीबी" मरियम ने सलाखों के पास आकर धीरे से आवाज़ दी, "क्या बात है मरियम?" उसने गरदन उठाकर उसकी तरफ़ देखा।

"राजा को बिस्तर पर लिटा दो बीबी, वो लोग आ रहे हैं।" मरियम की आवाज़ लड़खड़ाने लगी। एक क्षण के लिए नरजिस को पृथ्वी हिलती हुई महसूस हुई फिर सँभलकर उसने करवट ली और सीने से लिपटे हुए मेंहदी को बिस्तर पर लिटा दिया।

इसे भला मेरी सूरत क्या याद रहेगी, इसके लिए मैं सिर्फ़ एक नाम एक साया रहूँगी।

"सारी खताएँ माफ़ कर देना बीबी, हम रोटी इसी की खाते हैं, पेट बड़ा पापी है बीबी।" मरियम सलाखों से सिर टकराकर बिलखने लगी।

नरजिस ने चारपाई से उतरकर दोनों हाथ सलाखों से बाहर निकाले और मरियम के हाथ थाम लिये। शब्द बेकार थे। भारी क़दमों की चाप क़रीब आयी तो उसने मरियम की बाँहें थपथपायीं। उसने सिर उठाकर आँसू भरी आँखों से नरजिस को

देखा। सफ़ेद मलमल के दुपट्टे से अपनी आँखें साफ़ की और सावधान की मुद्रा में खड़ी हो गयी।

मरियम ने ताले में चाभी घुमायी और जितना धीमा सम्भव हो सकता है दरवाज़ा खोल दिया। फ़ौलादी दरवाज़े को जेल के सुपरिण्टेडेण्ट ने धक्का दिया तो दीवार से उसके टकराने की आवाज़ आयी।

"साहब जी, बच्चा सो रहा है, जग न जाये।" वार्डन मरियम ने अपनी अधिकार सीमा को किसी हद तक तोड़ते हुए आने वालों से कहा।

"अच्छा बक-बक मत करो। बड़ी आयी बच्चे की सगी," सुपरिण्टेडेण्ट ने उसे तेज़ आवाज़ में झिड़का।

नौजवान मजिस्ट्रेट ने एक नज़र सोते हुए मेंहदी पर डाली और पसीना पोंछते हुए कहा, "ठीक ही तो कह रही है।"

सुपरिण्टेडेण्ट की त्यौरी पर बल पड़ गये। ये नये अफ़सर अपनेआप को न जाने क्या समझते हैं। उसका मुँह कड़वा हो गया। फिर उसने अपनेआप पर क़ाबू पाते हुए जाब्ते की कार्यवाही आरम्भ कर दी। पहले उसने नरजिस की शिनाख़्त को पक्का किया, फिर एक कागज़ खोलकर दफ़्तरी लहज़े में बुलन्द आवाज़ में पढ़ने लगा। यह कागज़ बिस्समिल्लाह से शुरू होकर इस सारांश पर ख़त्म हुआ कि अपराधी के गले में फाँसी का फन्दा उस वक़्त तक पड़ा रहे जब तक कि उसके प्राण न निकल जायें।

मेडिकल अफ़सर ने आगे बढ़कर नरजिस की नब्ज़ देखी, दिल की धड़कन सुनी और आहिस्ता से सिर हिला दिया। डिप्टी सुपरिण्टेडेण्ट ने उससे कुछ कागज़ों पर दस्तख़त करवाये। नौजवान मजिस्ट्रेट ने इस हस्ताक्षर को प्रमाणित किया और सुपरिण्टेडेण्ट कोठरी से बाहर निकल गया।

डिप्टी सुपरिण्टेडेण्ट ने वार्डन मरियम को इशारा किया, वह अन्दर आयी। उसका चेहरा जैसे काँसे का हो गया था। निगाहें झुकी हुई थीं। वह नरजिस के दोनों हाथ थामकर पीठ पर ले गयी और उन्हें चमड़े के तस्मे से बाँधने लगी। नरजिस ने उसकी उँगलियों में कम्पन की नरमी को महसूस किया।

वह अकेली नहीं थी। बाहर बहुत से लोग थे। अन्दर भी बहुत से लोग थे। तमाम बैरकों पर इस वक़्त रायफ़लधारियों का पहरा होगा। बड़े दरवाज़े के बाहर बारह वार्डनों की एक पलटन तैनात होगी। इन सबकी रायफ़लों में दस-दस गोलियाँ भरी होंगी। और उन्हीं के सामने भइया ज़मीन पर बैठा होगा।

मेंहदी का चेहरा उसकी आँखों के सामने था। वह एकटक उसे देखे जा रही थी। मैट्रन के इशारे पर मरियम ने उसका बाज़ू थामा "चलो बीबी"। वह एक क़दम बढ़ी फिर उसने पलटकर मेंहदी को देखा वह बुलबुला रहा था। सुबकियाँ ले रहा था। शायद कोई डरावना सपना देख रहा है। नरजिस का दिल किसी ने मुट्ठी में

जकड़ लिया। आँखों की देहलीज़ तक आने वाले आँसुओं को उसने जबरन ढकेला। वह उन लोगों के सामने थी जिन्होंने उसकी और उस जैसे दूसरों की आत्मा को पराजित करने की तमाम कोशिशें की थीं। लेकिन वह उनसे हारी नहीं थी तो अब अन्तिम क्षणों में उन्हें विजय के सुख की अनुभूति क्यों दे।

नौजवान मजिस्ट्रेट की आँखों ने उसकी आँखों का पीछा किया।

"बच्चा कहाँ रहेगा?" उसने मैट्रन से पूछा। "बच्चे का मामा बाहर इन्तज़ार कर रहा है।"

नरजिस के सीने पर घूँसा लगा। भइया को उसने किस परीक्षा में डाल दिया था।

मजिस्ट्रेट के माथे पर शिकन थी। उसने नरजिस पर एक गहरी दृष्टि डाली, फिर गैलरी में खड़ी एक वार्डेन को आवाज़ दी।

"जी साहब" वार्डेन अन्दर आ गयी।

"बच्चे को गोद में उठाओ ज़रा एहतियात से"

"साहब जी मैं उठा लूँ?" मरियम की आवाज़ में गहरा अनुनय था।

"चलो तुम ही सही, इसे बीबी के साथ लेकर चलो"

"लेकिन यह तो जेल मैनुअल के..." डिप्टी सुपरिण्टेडेण्ट ने हस्तक्षेप करना चाहा।

"चलो," नौजवान मजिस्ट्रेट ने कहा और तेज़ क़दमों से बाहर निकल गया। मरियम ने आगे बढ़कर मेंहदी को उठाया और सीने से लगा लिया। वह फ़ौरन ही चुप हो गया।

डिप्टी सुपरिण्टेडेण्ट की अगुवाई में काफ़िला रवाना हुआ। दो सिपाही आगे चल रहे थे और दो पीछे। दरम्यान में वह थी और उसके दायें बायें मरियम व दूसरी वार्डन चल रही थीं। चलते हुए भी नरजिस की निगाहें मेंहदी पर जमी हुई थीं।

बाहर मई के महीने की रात में पौ फटने से पहले की मन्द-मन्द ठण्डी हवा चल रही थी। डूबते हुए चाँद की रोशनी में उसने फाँसी के तख़्ते को देखा। सीढ़ियाँ उसे नज़र आ रही थीं। मौत तो पाताल में उतरने का नाम है। इस पाताल में उतरने के लिए सीढ़ियाँ क्यों चढ़नी पड़ती हैं।

उसे जल्लाद नज़र आया। आज उसके बच्चे कितने ख़ुश होंगे। बाप को आज फाँसी भत्ता मिलेगा। दस रुपये। दस रुपये तो बहुत होते हैं। इन रुपयों से कई चीज़ें ख़रीदी जा सकती हैं। नरजिस की सोच भटक रही थी। उसके पैरों में कम्पन नहीं था। हर तरफ़ सन्नाटा था। हर आदमी की आँखें उसके मज़बूत और न काँपने वाले पैरों पर जमी हुई थीं। अचानक वह रुक गयी।

"मरियम"... उसकी आवाज़ सन्नाटे में बिजली की तरह।

"हुक्म दो बीबी" वार्डन मरियम की आवाज़ आँसुओं में भीगी हुई थी। जाने कौन हाकिम था और कौन महकूम। उसने मरियम को क़रीब आने का इशारा किया।

मरियम उसके सामने झुक गयी। पुश्त पर बँधे उसके दोनों हाथ मेंहदी को छूने के लिए फड़के। फिर अपनी जगह ठहर गये। मेंहदी नींद में हँस रहा था, शायद परियों से खेल रहा था। नरजिस ने धुँधलायी हुई आँखों से ज़िन्दगी को देखा फिर आहिस्ता से उसका माथा चूमा, गाल चूमे, बालों का चुम्बन लिया... ज़िन्दगी, ज़िन्दगी से रुख़सत हो रही थी।

वह सीढ़ियाँ चढ़ने लगी। फाँसी के तख़्ते पर पहुँची तो सरकारी जल्लाद उसके क़दमों में झुका और तस्मे से पैर बाँधने लगा। नरजिस ने ओझल होते दृश्य पर एक नज़र डाली और फिर उसे भी अपने अन्दर रख लिया। उसकी आँखें बन्द थीं और मंज़र उसके अन्दर था। वह जानती थी कि चाँद डूब रहा है। सुबह का सितारा उभर आया है। मेंहदी परियों से खेल रहा है। सूरज निकलने वाला है। और अल्लाह के पाक बरकत वाले नाम से शुरू हुए हुक्मनामे पर अमल करने का वक़्त आ पहुँचा है।

तिरलोचन

असद मोहम्मद ख़ाँ

जो कुछ हुआ, उससे पहले यहाँ इन्सानी बस्तियाँ मौजूद थीं और जानवर, दरख़्त, दरिया, पहाड़ सभी थे। एक निरन्तरता के साथ मौसम आते रहते थे। चीज़ें उगती थीं, बढ़ती, फैलती और पुरानी होती थीं। कभी कोई क़हक़हा मारकर हँस भी दिया करता था। कुल मिलाकर सब ठीक ही था। ऐनुल हक़ यह सबकुछ ख़त्म नहीं करना चाहता था। अगर कोई कुत्ते का पूत उसकी पेटी खोलकर चीज़ों की फ़ेहरिस्त न चुराकर ले जाता, जो उसने इतने शौक़ से तैयार की थी, तो ऐनुल हक़ हरगिज़-हरगिज़ वह न करता, जो उसने किया।

उसने जो कुछ किया वह वक़्ती जोश और मायूसी के तहत किया था, मगर अब कुछ नहीं हो सकता था। इसलिए कि अब तो कुछ था ही नहीं, फिर से तरतीब दिया जाता। सब ख़त्म हो चुका था।

और जो कुछ हुआ, वह पलक झपकते हो गया। पेटी ख़ाली देखकर उसने इहलोक, परलोक और देवलोक – तीनों की डोरियाँ अपनी तर्जनी पर लपेटकर मुट्ठी बन्द की, एक ज़रा कन्धा झुकाकर झटके से उन्हें अपनी पीठ पर लिया, सीधे हाथ की मुट्ठी कसकर अलल्लाह कहा और हवा में जैसे कुदाल चलाते हुए तीनों लोक ज़मीन पर दे मारे।

यहाँ तक भी ठीक था, बात कुछ ज़्यादा बिगड़ी नहीं थी। लेकिन इसके बाद तो ऐनुल-हक़ ने गज़ब ही कर दिया। वह पूरे शरीर से तनकर खड़ा हो गया। उसने झटके से स्टंग प्लास्टर का वह टुकड़ा अपने माथे से नोच फेंका, जिसे वह पाबन्दी से नमाज़ के गट्ठेवाली जगह (नमाज़ के कारण माथे पर पड़ जाने वाला गड्ढ़ा) पर चिपका लिया था। फिर उसने सिर झुकाया, ज़मीन की तरफ़ देखा और सम्पूर्ण कोप से अपनी तीसरी आँख खोल दी और तीनों लोक जलाकर राख कर दिये।

सो, अब धुएँ और राख के सिवा कुछ नहीं था, जिसे फिर से तरतीब दिया जाता। सब ख़त्म हो चुका था। और ऐनुल हक़ जानता था कि धुएँ और राख को

तरतीब नहीं दिया जा सकता। यह ख़ात्मा है।

यह समय एक बिल्ली से शुरू हुआ था। एक दिन गली से गुज़रते हुए उसने अचानक उस बिल्ली को देखा और उसे फ़ेहरिस्त बनाने का ख़याल आ गया। वह बिल्ली इस क़दर ज़ख़्मी और जगह-जगह से इतनी नुची-खुची थी कि सारी बातें काग़ज़ पर लिखे बग़ैर याद नहीं रखी जा सकती थीं। उसने सोचा, फ़ेहरिस्त बनाना अच्छा रहेगा। वह अब तक चीज़ों को अपने ज़ेहन में महफ़ूज़ रखता आ रहा था। लेकिन चीज़ें इतनी बहुत-सी हो गयी थीं और बराबर बढ़ती जा रही थीं और उनका ब्योरा इतना लम्बा होता जा रहा था, कि अब ज़ेहन में महफ़ूज़ रखना मुमकिन नहीं रहा था । वह डरता था, कि कहीं भूलना शुरू न कर दे। इसलिए उसने एक बड़े काग़ज़ पर सात सौ छियासी लिखा और सीरियल नम्बर, चीज़ों के नाम, उनसे जुड़े मसाइल, किये गये फ़ैसले और कार्यवाही की तारीख़ के खाने बनाये। और उन खानों में उसने सब चीज़ें दर्ज करनी शुरू कर दीं। कार्यवाही वाली तारीख़ का खाना अभी ख़ाली रखा। इसलिए, कि पहले वह चीज़ों को और उनकी तफ़सील को याददाश्त से काग़ज़ पर उतार लेना चाहता था, यह बहुत ज़रूरी था। बाक़ी कार्यवाही में देर ही कितनी लगती! फ़ेहरिस्त मुकम्मल होने के बाद वह किसी भी दिन और किसी भी वक़्त फ़ैसलाकुन कामों के ख़ाने में लिखी हुई बातों पर कार्यवाही के मामले निपटा सकता था।

तो, उसने सबसे पहले सीरियल नम्बर एक पर बिल्ली को दर्ज किया और उसके मसाइल लिखे और किये जाने वाले काम में दर्ज किया कि नयी खाल वग़ैरह देनी है और कार्यवाही की तारीख़ का खाना छोड़ दिया। दूसरे नम्बर पर ऐनुल हक़ ने हेड कांस्टिबल लताफत मीर ख़ान की बेवा रुक़फ्या बेगम का मसला दर्ज किया। वह उसी ब्लॉक के एक बे-औलाद मकान में अकेली रहती थी। उसे साइटिका की शिकायत थी। दुख और अकेलेपन की वजह से उसका चेहरा लटक गया था। यहाँ किये गये फ़ैसले के खाने में उसने तय किया कि रुक़फ्या बेगम को साइटिका से छुटकारा देना है और एक गोद लिए पुत्र के बेटे-बेटियों से उस घर का सहन आबाद करना है। रुक़फ्या बेगम के बाद उसने भूरे ख़ान कोल्ड ड्रिंक सिगरेट कार्नर वाले को दर्ज किया, जो बहत्तर बरस का थका-माँदा लौंडेबाज़ था। उसका घर-बार नहीं था, दुकान के थड़े पर ही सो रहता था। ख़ूबसूरत लड़कों को दुकान पर बिठाने और इस्लामी तारीख़ी नावेल पढ़वाकर सुनने का शौक़ था। परेशानी की बात यह थी कि लड़के भाग-भाग जाते थे और वह उन्हें याद कर-करके रोता था और उस कमज़ोर नज़रवाले की जीत कितने ही दिन स्थगित रहती थी। ऐनुल हक़ ने भूरे ख़ाँ कोल्ड ड्रिंक एण्ड सिगरेट कार्नर को दर्ज किया और उसके मसाइल लिखे। और फ़ैसलाकुन कामों में लिखा कि एक ख़ूबसूरत और वफ़ादार लड़का हर वक़्त मौजूद रहे, ताकि भूरे ख़ाँ जुदाई और दुख में दोहरा न हो जाये। इसलिए कि बहत्तर बरस बहुत होते

हैं। फिर उसने हज़ारे से आये हुए शेर-ज़मान मोची और उसके पुण्यात्मा भाइयों को दर्ज किया, जो फ़जिर (सुबह की नमाज़) से पहले उठकर शेर ज़मान की चारपाई पर उकड़ूँ बैठ जाते थे और उससे अटक-अटककर क़ुरआन पढ़ा करते थे। उन सबकी बीवियाँ देस में थीं और वो दिनभर शेरज़मान की हिदायत के मुताबिक़ जूते गाँठते और टेपरिकार्ड पर सुल्तान मियाँ की कव्वालियाँ सुनते थे। ऐनुल हक़ ने उनके मसाइल लिखे और तयशुदा कामों में दर्ज किया, कि उन सबका उनकी बीवियों से मिलाप कराना है। और लिखा कि शेर ज़मान की ख़ूनी बवासीर को ठीक करना है, क्योंकि वह बच्चों और कम आमदनी वाले कमज़ोर लोगों से भी नरमी से बात करता था। फिर ऐनुल हक़ ने उक़ाब (गरूड़) की खोज में लगी माई नूरॉं मिस्सी को दर्ज किया, जिसके पंजे भी उकाब जैसे थे। और ऐनुल हक़ ने उसके मिसाइल लिखे और तयशुदा काम में लिखा कि माई नूर मिस्सी को रीढ़ की नयी हड्डी देनी है। और ब्लॉक नम्बर दो से ब्लॉक नम्बर आठ तक मकानों की पिछली गली में अत्यधिक मात्रा में प्लास्टिक के टुकड़े, हड्डियाँ और रद्दी काग़ज़ मुहय्या करना है, जो बारह साल के अरसे तक उपलब्ध रहे। किसलिए, कि नूराँका नासूर उसे इससे ज़्यादा मुहलत नहीं देगा। ऐनुल हक़ ने 'पिण्डली के नासूर को ठीक करना' लिखकर काट दिया। क्योंकि इस तरह कुछ घरों से मिलनेवाला ख़ास बोनस बन्द होने का शक था। और यह बात किसी भी हालत में नूराँ के लिए मुनासिब नहीं थीं। फिर ब्लॉक नम्बर दो से ब्लॉक नम्बर आठ तक आते हुए पार्क से सटे 'मद का मणि' के पेड़ के नीचे पहुँचकर ऐनुल हक़ ने देखा कि तन्दूरवाले मख़्मुद्दौला ने 'मद का मणि' के नयी उम्रवाले तने से अपना मेंढ़ा बाँध-बाँधकर उसकी नरम छाल को उधेड़ दिया है। तो, ऐनुल हक़ ने उधड़ी हुई छाल के नम दायरे से अपनी उँगलियों के पोर भिगोये और 'मद का मणि' के पेड़ से वादा किया और पेड़ के सारे मसले दर्ज किये। फिर तयशुदा काम में लिखा कि 'मद का मणि' का ज़ख़्म भरना है और तसल्ली के लिए नयी कोपलें भी देनी हैं। फिर उसने पॉलिटेक्निक वाले सुहैल का नाम दर्ज किया, जिसे विदेश भेजना था। और अब्दुल कदीर कादरी और इतरत हुसैन ज़ैदी को दर्ज किया, जिन्हें तरक्कियाँ देनी थीं। और ऐनुल हक़ की मस्रूफ़ियात बढ़ती चली गयी। उसने बरतन-कनातोंवाले नग्गे को दर्ज किया, जो घरवाली के अश्लील बेढंगेपन की वजह से ढह गया था। तो, ऐनुल हक़ ने यह लिखा कि उस बीवी के ढंग में मुनासिब तब्दीलियाँ कर उसे नग्गे की फर्माबरदारी में बहाल करना है और ऐनुल हक़ ने मोटर साइकिलवाले लड़के को दर्ज किया, जो सुबह-शाम चक्कर लगाता था और ब्लॉक नम्बर तीन में वह बच्ची उसे ख़ातिर में न लाती थी। तो, ऐनुल हक़ ने उसे उदासी से मोटरसाइकिल पर चक्कर लगाते देखा और नर्म फुसफुसाहटों में वादा किया कि सब इन्तज़ाम कर दिया जायेगा। और उसने कम्मू गूजर की बीमार मुर्गी को दर्ज किया। और इस तरह चीज़ों की फ़ेहरिस्त लम्बी होती चली गयी।

वह चिराग़–तले बैठता तो कहीं रात ढले दिनभर के इन्दिराज मुकम्मल कर पाता। और अब यह होने लगा कि दो नम्बर या तीन नम्बर ब्लॉक से आठ नम्बर तक आते–आते कभी एकाध चीज़ भूल जाता और उसे दुबारा मौक़े पर पहुँचकर इन्दिराज पूरे करने पड़ते। और इसी झंझट में चार नम्बर ब्लॉक की हमीदा का ल्यूकीमिया दर्ज होने से रह गया।

और जब इस इन्दिराज की ज़रूरत न रही, तो ब्लॉक नम्बर चार के खात्मे पर ऐनुल हक़ प्रकट हुआ।

वह सड़क की तरफ़ से गली में मुड़ा और उसने देखा कि 'नूर मस्जिद का छोटावाला हिंडोला फूलों में रखा हुआ है। ऐनुल हक़ पीला पड़ गया। उसने काँपते हुए दोपहर के सन्नाटे से पूछा कि क्या हुमैरा? वह हिण्डोले के साथ–साथ रेंगता हुआ छह नम्बर से आठ नम्बर ब्लॉक के सिरे तक दौड़ता हुआ गया और शर्म के आँसुओं में भीगते हुए उसने हिण्डोले का पाया थाम लिया और साथ–साथ चलने लगा और हौले–हौले अपनी सफ़ाई में कहता चला कि बीबी मैं भूल गया था। बिटिया मैं भूल गया था। अम्माँ मैं भूल गया था। और आठ नम्बर ब्लॉक की हद पर उसने हिंडोले का पाया छोड़ दिया । फिर ऐनुल हक़ ने एक चीख़ को दोहराते हुए ब्लॉक नम्बर दो की तरफ़ दौड़ लगायी और पुकारता चला कि मैं भूल गया था। फिर बाक़ी दिन और बाक़ी रात वह उसी चीख़ को दोहराने में लगा रहा । वह ब्लॉक दो से ब्लॉक आठ तक और ब्लॉक आठ से ब्लाक दो तक गूँज की तरह सनसनाता रहा। और जो कुछ दर्ज होने से रह गया था, पागलों की तरह अपनी याददाश्त में महफूज़ करता गया। एक–एक मकान पर गुज़रते हुए उसने अपनी याददाश्त में सब चीज़ों और सब लोगों की ज़रूरतें और तमाम छोटे–बड़े दुख महफूज़ किये और तय किया कि मुर्ग़े की बाँग से पहले उन्हें फ़ेहरिस्त में दर्ज करेगा और जब मुर्ग़े बाँग दे रहे होंगे, तो कार्यवाही करेगा।

एक पहर रात बाक़ी थी, कि वह अपने कमरे पर आया और यह देखा कि कमरे का ताला टूटा हुआ है और उसकी पेटी औंधी पड़ी है। कोई कुत्ते का पूत उसकी फ़ेहरिस्त चुरा ले गया था।

पेटी ख़ाली देखकर ऐनुल हक़ ने हैरानी में छहों दिशाओं पर नज़र डाली और मायूसी में सिर हिलाया और गुमान से ऊँचा उठ गया। और तभी ऐनुल हक़ ने इहलोक, परलोक और देवलोक – तीनों की डोरियाँ अपनी तर्जनी पर लपेटकर मुट्ठी बन्द की। एक ज़रा कन्धा झुकाकर झटके से उन्हें अपनी पीठ पर लिया और मुट्ठियाँ कसकर हवा में कुदाल चलाते हुए तीनों लोक ज़मीन पर दे मारे। फिर वह पूरे शरीर से तनकर खड़ा हो गया, झटके से अपने माथे का प्लास्टर नोच फेंका। फिर एनुल हक़ ने सिर झुकाकर ज़मीन की तरफ़ देखा और पूरे क़हर के साथ अपनी तीसरी आँख खोल दी... और तीनों लोक जलाकर राख कर दिये।

नज़र का धोखा

मोहम्मद मंशा याद

लड़की घर की थी, कठिनाई तो लोमड़ी ढूँढ़ने में हो रही थी। खै़रदीन कोशिश में था कि किराये पर मिल जाये। मगर अब तक उन्हें कामयाबी न हुई थी। ना उम्मीद होकर उसने यह कह दिया कि लोमड़ी न मिल सकी तो इस बार मेले नहीं जायेंगे।

"क्यों अब्बा?" फीके ने पूछा।

"बेटे, बकरी में अब लोग दिलचस्पी नहीं लेते। फिर कमबख़्त मिमियाने लगती है।"

"कोई साँप सँपनी, कोई नाग नागिनी अब्बा?" फीका मेले में जाने के लिए बैचेन हो रहा था।

"वह खेल पुराना हो चुका है।" खै़रदीन ने जवाब दिया।

लोमड़ी न मिलने की ख़बर सुनकर वह ख़ुश हो रही थी। दिल ही में दुआएँ माँगती – अल्लाह करे अब्बा को लोमड़ी न मिल सके। किन्तु उसकी दुआ क़ुबूल न हुई। जब मेला शुरू होने में तीन-चार दिन रह गये तो अब्बा मुँहमाँगी क़ीमत पर लोमड़ी ख़रीद लाया और इस तरह बोला मानो लाउडस्पीकर से ज़ोर से चिल्ला रहा हो।

"चलो, चलो तैयार हो जाओ, जल्दी करो।"

अब्बा की ऊँची आवाज़ सुनकर उसका सिर घूमने लगा। मेले का सारा शोर कानों में गूँजने लगा। वह मोटर साइकिल पर सवार मौत के कुएँ में नीचे ही नीचे गिरती चली जा रही है।

वह कई सालों से तमाशा बन रही थी। उसके चेहरे के साथ कई तरह के धड़ लगते रहे थे। कभी नागिन का, कभी बकरी का और कभी लोमड़ी का। एक ही पोज में पहरों बैठे उसकी कमर दुखने लगती। टाँगें शल पड़ जातीं। अक्सर उसे लगता कि जैसे उसका बदन बकरी या लोमड़ी में तो नहीं बल्कि पत्थर में ज़रूर तब्दील हो गया है। अपने चेहरे पर उसे बड़ा नाज़ था। पर अब उसी से उसे नफ़रत-सी होती

जा रही थी। इसी वजह से उसका बाक़ी धड़ बेकार हो गया था। उसका जी चाहता कि वह चेहरे समेत अपनी गरदन उतारकर रख जाये और ख़ुद कहीं दूर भाग जाये।

तमाशाइयों में हर तरह के और हर उम्र के लोग शामिल होते मगर बच्चे ही सिर्फ़ हैरत तजस्सुस और दिलचस्पी का इज़हार करते। बड़ी उम्र के लोग उसे भूखी और ललचाई नज़रों से देखते। लड़के फ़िकरे कसते, कोई आँख मारता, कोई सीटी बजाता, कोई फहश इशारे करता। सारा वक़्त नज़रों और फ़िकरों के कंकर उसे लहूलुहान करते रहते फिर भी जैसा उसे सिखाया गया था, मुस्कुराती रहती और ख़ुश दिखायी देने की कोशिश करती। उसे बुत बने बेकार बैठना बिल्कुल अच्छा न लगता। उसे थियेटरों और सरकसों की लड़कियों पर तरस आता जो हर वक़्त कुछ न कुछ करती रहती थीं – गाती, नाचती या करतब दिखाती। हर मेले में हर जगह पर लोग कुछ न कुछ करते रहते। केवल वही पत्थर बनी बैठी रहती थी। और उकताई होने पर भी उसे ख़ुश दिखायी देने का स्वांग रचना पड़ता। बेहूदा बातों को बड़ी ख़ुशी से सहना पड़ता। भद्दे चेहरों का एक हल्की मुस्कान के साथ इस्तकबाल करना पड़ता और यह सिलसिला रात देर तक चलता रहता और वह इतनी थक और उकता जाती कि कभी-कभी उसका जी चाहता कि ज़ोर-ज़ोर से रोने और चीख़ने लगे। जहनी तकलीफ़ से बचने के लिए वह कभी-कभी अपने आस-पास से नाता तोड़ लेती और कहीं दूर पहुँच जाती। फिर आस-पास बजते फ़िल्मी गीतों में खो जाती। जागते मीठे-मीठे सपने देखती। लोगों की भीड़ से अलग जाकर अपनी पसन्द का चेहरा खोजती। ऐसी हालत में उसे पता नहीं चलता कि कितना समय बीत गया। कितने और कैसे लोग आये और क्या कुछ कहकर चले गये। यदि समय बिताने का यह अवसर उसके हाथ न आता तो वह अब तक ज़रूर घबराकर कहीं भाग गयी होती या पागल हो चुकी होती।

"शैदा अब नहीं जायेगी।" उसकी माँ ने अपना फ़ैसला सुनाया।

"क्यों नहीं जायेगी?" ख़ैरदीन ने बिगड़कर पूछा।

"अब वह बड़ी हो गयी है।"

"एक साल में?"

"हाँ... पिछले साल वह छोटी ही थी। लड़कियाँ खम्बिया होती हैं। उन्हें बढ़ते कुछ देर नहीं लगती।"

"अच्छा ज़्यादा बातें न बना और उसकी तैयारी कर।"

"अब उसका जाना ठीक नहीं, कुछ तो ख़याल करो।"

"कुछ नहीं होता। तू अपनी बक-बक बन्द कर।"

"मैं उसे अकेली न जाने दूँगी। साथ चलूँगी।"

"तू वहाँ क्या करेगी?"

"उसका ख़याल रखूँगी।"

ख़ैरदीन को हँसी आ गयी।

"सुन रहे हो फीके, यह उसकी रखवाली करेगी। क्यों हम इसके कुछ नहीं लगते। बाप और भाई से ज़्यादा लड़की की देखभाल कौन कर सकता है बेवक़ूफ़।"

"जवान बेटी का ख़याल सिर्फ़ उसकी माँ रख सकती है ख़ैरदीन।"

"क्यों पहले हम देखभाल नहीं करते रहे," फीका बोला। "किसी ने उसका कुछ उतार लिया है क्या?"

"तू चुप रह फीके।" माँ गुर्रायी।

"ठीक ही तो कहता है फीके। पहले क्या तुम साथ जाती थीं?"

"तब और बात थी, अब वह जवान हो गयी है।"

"तो क्या हम उससे...?"

"बस बस।" माँ को ग़ुस्सा आ गया। "जो मुँह में आता है बक देते हो।"

"अच्छा तू भी अपनी बकवास बन्द कर।"

"बेटी की कमाई खाते हो। कुछ तो शरम करो।"

"शरम किस बात की? मेहनत करते हैं तमाशा दिखाते हैं।"

"इस धोखे में न रहना ख़ैरदीना कि लोग तमाशा देखने आते हैं। वह तुम्हारी बकरी या लोमड़ी को देखने नहीं, तुम्हारी बेटी का चाँद-सा मुखड़ा मैला करने आते हैं।"

"अगर देखने से मैला होता है तो होने दो।"

"हाँ अम्माँ," फीका बोला। "लोग आते हैं देखकर चले जाते हैं। क्या लेते हैं?"

"शर्म कर फीके।"

"तुम फ़िकर न करो माँ।" ख़ैरदीन बोला। "जैसी भेजोगी वैसे ही वापस लायेंगे।"

"हाँ अम्माँ बेशक तौल लेना।" फीके ने मसखरी की।

"शरम भी कोई चीज़ है बेशरम।"

"इसमें बेशरमी की क्या बात है अम्माँ लड़की का चेहरा लोमड़ी का बदन, नज़र का धोखा।"

फीके ने अपनी माँ को बताया कि "ग़रीब आदमी को पेट पालने के लिए सौ तरह के जतन करने पड़ते हैं।"

"हाँ अम्माँ बहुत पापड़ बेलने पड़ते हैं।"

"तुम लोग अब दूसरा धन्धा क्यों नहीं शुरू कर देते?"

"अच्छा अच्छा वह भी कर देंगे, चलो फीके तुम तैयारी करो।" और तैयारी शुरू हो गयी।

शैदा ने अपनी ज़रूरत की छोटी-मोटी चीज़ें कपड़े और बरतन सूटकेस में रखना शुरू कर दिया। गर्मी और उमस के दिन थे। उसे पहरों परदे के पीछे जहाँ

हवा नहीं पहुँच पाती बैठना पड़ेगा। इस ख़याल से माँ ने सारे काम छोड़कर उसे कपड़ों का नया जोड़ा सी दिया।

फीके ने कनात, शामियाना, मेज़, स्टूल, पर्दे और दूसरा सामान बाँध दिया। वह चारों – ख़ैरदीन, फीका, लड़की और लोमड़ी भोर में मेले के लिए चल पड़े।

मेले का पहला दिन औरतों और बच्चों के लिए ख़ास था। हालाँकि इसमें भी मर्दों की तादाद ज़्यादा थी। बातें करने वाली लोमड़ी में बच्चे ज़्यादा दिलचस्पी लेते थे। इसलिए ख़ूब बिक्री हुई। सारा दिन टिकट बिकते रहे। ख़ैरदीन बहुत ख़ुश था। उसने दोनों वक़्त बहुत अच्छा खाना मँगवाया। उसे आइसक्रीम भी खिलायी और चूड़ियाँ और सुरमे के लिए भी पैसे दिये। लेकिन अगले दिन बारिश होने लगी। दिन भर थोड़े-थोड़े वक़्त पर बूँदा-बाँदी का ही सिलसिला जारी रहा, धन्धा ठप रहा। किन्तु उसे कुछ आराम का मौक़ा मिल गया। मेले का आज तीसरा दिन था।

अगरचे गर्मी बहुत थी और हवा बिल्कुल बन्द थी। इसके बावजूद भोर ही से लोग छोटी-बड़ी टोलियों में मेले में उमड़ना शुरू हो गये थे, दोपहर तक मेला भर गया और काफ़ी चहल-पहल हो गयी। कन्धा से कन्धा छिलने लगा। दुकानों और खाने-पीने के ढाबों पर भीड़ हो गयी। मदारियों और सपेरों, जादू के खेल दिखाने वालों, रीछ से कुश्ती लड़ने वालों जिनकी ताक़त की दवाइयाँ बेचने और उँगली से छूकर बिना दर्द के दाँत निकालने वालों के आस-पास तमाशाइयों ने घेरे बना लिये थे। थियेटर खचाखच भरे हुए थे। गीतों और मकालमों का शोर बाहर भी सुनायी दे रहा था। एक तरफ़ हीर सय्याल भत्ता लेकर मेले की तरफ़ जा रही थी। रास्ते में किसी ने ट्विस्ट नाच की फ़रमाइश कर दी। दूसरी तरफ़ मियाँ मजनूं बन के लैला-लैला पुकारते हुए एकाएक जागती गाने लगा। सर्कस में तमाशाइयों के लिए करतबों के अलावा भी दिलचस्पी की चीज़ें थीं। गोरी टाँगें, कसे बदन और गुलाबी चेहरे। टिकट न ख़रीद सकने अथवा ख़रीदने का फ़ैसला न कर सकने वाले लोगों के लिए थियेटरों और सर्कसों के बाहर भी दिलचस्पी का सामान मौजूद था। ऊँचे मचानों पर जोकर और औरतों के लिबास में हिजड़े फ़िल्मी गीतों की धुनों पर नाचते और कूल्हे मटकाते। मौत के कुएँ में चलने वाली मोटर साइकिल का शोर दूर-दूर तक सुनने वालों में जोश पैदा करता। मरदों से भरे मेले में बंजारिनों और भिखारियों के अलावा औरतें सिर्फ़ सरकसों और थियेटरों के अन्दर थीं। इसलिए सभी लोगों का ध्यान उसी तरफ़ था। घरों और खेतों में काम करने वाली मामूली और मैली-कुचैली औरतों के मुक़ाबले में वह उन्हें किसी और ही दुनिया की वासी दिखायी देतीं। ख़ैरदीन ने सोचा आज ख़ूब टिकट बिकेंगे। लेकिन अब वह परेशान था। सिर्फ़ इक्का-दुक्का लोग ही इधर का रुख़ करते थे। लोमड़ी और औरत के बीच की थोड़ी-सी जगह छोड़कर भीड़ के सारे बादल मेले पर बरस रहे थे। लाउडस्पीकर पर बोल-बोलकर और लोगों को पुकार-पुकारकर उसका गला बैठ चुका था।

"लोग इधर क्यों नहीं आते?" फीके से सवाल किया।

"लगता है लोगों को लोमड़ी में कोई दिलचस्पी नहीं रही अब्बा।" फीके ने सिगरेट सुलगाते हुए कहा।

"क्यों फीके।"

"अब हर आदमी अन्दर से लोमड़ी बन गया है अब्बा।"

"वह कैसे फीके।"

"वह बकरी और लोमड़ी की कहानी तुम्हें याद है अब्बा। लोग बड़े चालाक और ख़ुदगर्ज हो गये हैं। दूसरों को गड्ढे में गिराकर और उनके कन्धों पर सवार होकर ख़ुद बाहर आ जाते हैं।"

"मगर परसों तो बड़ी चहल-पहल थी फीके।"

"परसों बच्चों और औरतों का दिन था अब्बा।"

"फिर क्या करें?"

"अब कोई और धन्धा सोच अब्बा।"

"हाँ तुम्हारी अम्माँ भी यही कहती रहती हैं।"

ख़ैरदीन को लोमड़ी पर ख़र्च होने वाली रक़म बरबाद होते हुए दिखायी देने लगी। वह कोई दूसरा धन्धा शुरू करने के लिए पहली बार सोच रहा था कि फिर एक अजीब बात हुई। दोपहर के बाद उमस बहुत बढ़ गयी थी और सूरज अपने पूरे आबोताब से चमक रहा था। टिकट तेज़ी से बिकने लगे और उसमें बराबर इजाफ़ा होता गया। पहले तो वह ख़ुश हुआ फिर यह देखकर चौंका कि अन्दर जाने वाले बाहर आने का नाम ही नहीं लेते और जिनको भीड़ की वजह से फीका बाहर निकालने के लिए मजबूर कर देता है वह नया टिकट ख़रीदकर दोबारा अन्दर आ जाते हैं। उसने फीके से लोगों की इस एकाएक ग़ैर मामूली दिलचस्पी की वजह जाननी चाही तो उसने हँसकर जवाब दिया – "बस भेड़ चाल है अब्बा। लोग जिस ओर ज़्यादा भीड़ देखते हैं। देखा-देखी उसी तरफ़ चल पड़ते हैं।"

ऐसा कभी-कभी पहले भी हो जाता था। अचानक तमाशाइयों का रेला आ जाता है। फिर मौत और ग्राहक का क्या पता। कब आ जाये। इस ख़याल से वह मुतमईन हुआ और ख़ुशी से टिकट बेचने में लग गया।

तमाशाइयों का जोश-ख़रोश हर लम्हा बढ़ता गया। टिकट ख़रीदने वालों की पहली बार लम्बी क़तार लग गयी। उसका माथा ठनका। फिर फीके को अपने पास बुलाया और धीमे से पूछा।

"ख़ैर तो है आख़िर आज क्या बात हो गयी है।"

"सब ठीक है अब्बा।"

"कोई बात तो है?"

"बस अब्बा गरमी बहुत है"... फीका हँसने लगा।

"यहाँ कौन-सी बर्फ़ पड़ रही है फीके।"

"तुम टिकट बेचो अब्बा।"

"मगर फीके यह अचानक।"

"कुछ नहीं अब्बा... बस नज़र का धोखा है।" फीका हँसता हुआ चला गया। उसकी समझ में कुछ नहीं आया लेकिन फिर उसे फीके की हँसी बड़ी अर्थपूर्ण लगी। उसने थोड़ी देर के लिए टिकट बेचना बन्द कर दिये। ख़ुद ऊँची मचान से उतरकर तमाशाइयों के क़रीब आया और यह देखकर ठिठक गया कि पर्दा खिसक जाने के कारण लोमड़ी के साथ लड़की का ऊपर का धड़ भी दिखायी दे रहा है। पहले तो उसे शक हुआ कि वह तमाशाइयों से ही नहीं कुरते से लापरवाह होकर बैठी है। लेकिन फिर अन्दाज़ा हो गया कि कुरता भीगकर उसके बदन से चिपक गया है। और खाल के रंग में तब्दील हो गया है। उसने सोचा शायद गर्मी की वजह से यह सोचकर कि उसका चेहरा ही दिखायी देता है, कुरते के नीचे कुछ पहनना ज़रूरी न समझा था। उसे फीके पर बड़ा ग़ुस्सा आया। वह जल्दी से वापस ख़ुद अपनी जगह पर लौट आया कि फीके को डाँटकर पर्दा ठीक करने को कहे और वह ख़ुद शो ख़त्म करने का ऐलान करे। लेकिन उसकी नज़र तमाशाइयों की लम्बी लाइन पर पड़ी और वह जल्दी-जल्दी टिकट बेचने लग गया।

अँधेरे के भागीदार

एजाज़ राही

इकतीसवीं मंज़िल की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए आशंकाओं की असंख्य चींटियाँ आहिस्ता–आहिस्ता उसके ज़ेहन में अपने नन्हे–मुन्ने पंजे गरोड़ती चली आ रही थीं।

अब क्या होगा?

यह सवाल भूत की तरह उसके स्नायुओं पर सवार होकर उसके तने हुए कन्धों को निरन्तर नीचे धकेल रहा था। क़दम–क़दम तय होती सीढ़ियों के साथ उसके अन्दर से कोई चीज़ टूट–टूटकर चारों तरफ़ बिखरती जा रही थी। पीला–मटियाला धुआँ उसकी गहरी नीली आँखों के गिर्द दायरा तंग करता जा रहा था। कभी–कभी ऊपर उठते हुए क़दम आने वाले अपरिचित, अचींहें लम्हों की आशंकाओं में उलझकर रुक जाते, मगर फिर अनदेखे लम्हे की ख़्वाहिश उसके अन्दर से फिसलती हुई उसके रुकते क़दमों को आगे बढ़ाने लगती। लेकिन फिर वही – अब क्या होगा? और अब क्या होगा की जद में आने वाली यक़ीन की सारी रस्सियाँ धीरे–धीरे टूटने लगती हैं।

उसने आख़िरी सीढ़ी पर पहुँचकर जब पीछे देखा तो दूर नीचे घोर अँधेरा भय की पालथी मारे उसे घूर रहा था। सामने दरवाज़ा बन्द था।

"पीछे गहरा घुप अँधेरा। सामने बन्द दरवाज़ा।"

वह बड़बड़ाया। सोच की चिड़िया दुख के कंकरों से उसके अहसास को ज़ख़्मी करने लगी। उसने ख़्वाहिश के पिंजरे में बन्द सारे कबूतर उड़ा दिये कि पीछे गहरा घुप अँधेरा और सामने बन्द दरवाज़े ने उसकी पोर–पोर में दौड़ती जिज्ञासा की रगें काट दी थीं और अब वह गहरे घुप अँधेरे की तरह ठहराव के उन लम्हों से गुज़र रहा था जहाँ सोच के सारे रंग सियाह हो चुके थे और रौशनी की सारी लहरें दम तोड़ रही थीं।

अज़रा की बेकफ़न लाश – मेरे घर के दरवाज़े पर पड़ी थी। उसके जिस्म के कुछ हिस्सों को गिद्धों ने नोच लिया था, जहाँ से ताज़ा–ताज़ा लहू बहकर ज़मीन के

सीने को सैराब कर रहा था। हर दरवाज़े के सामने अज़्रा की लाश पड़ी थी और उसके जिस्मों से बहने वाले लहू ने पद्‌मा को सुर्ख़ कर दिया था। और जब सुर्ख़ पद्‌मा में सैलाब आया, तो मेरा, हमारा सबकुछ बह गया। अन्ना से बहादुरी के इतिहास के पृष्ठ तक।

बूढ़े फ़ौजी की आँखों के अनुभव की कुठाली से एक-एक शब्द लोहार के हथौड़े की तरह एक नियमितता के साथ उसकी जड़ होती अनुभूतियों पर चोटें लगा रहा था।

"तो फिर क्या अज़्रा बे क़ब्रो-कफन और गिद्धों के नोचने का खेल बनी रहेगी?" उसकी टाँगों में लहू की सलाखें मोम की तरह पिघलने लगीं, उसने दीवार का सहारा लिया और वहीं बैठ गया।

उसने दरवाज़े में रुककर हाल का जायजा लिया। उसको सब चेहरे परिचित नज़र आये। किसी एक चेहरे में भी अपरिचय या घृणा के भाव दिखायी न दिये। आज तो सभी एक दूसरे का हिस्सा दिखायी दे रहे थे।

"वेलकम ऐल्यूस" बूढ़े फ़ौजी ने हॉल के मध्य से नारा लगाया।

"थ्री चीयर्स फार ऐल्यूस।"

"ऐल्यूस दी ग्रेट।"

"हीरो ऑफ़ दि डे।"

पूरे हॉल में एक शोर-सा मच गया। वह नाभि तक फ़िक्र की दलदलों में धँसा हुआ हौले-हौले चलता लोगों के बीच आ खड़ा हुआ।

"दी ग्रेट सुपर मैन"

हमेशा की तरह जफर ने हाँक लगायी और पहले के ख़िलाफ़ सारा हॉल "दि ब्लैक सुपर मैन" की ताल पर झूमने लगा। उसे यूँ लग रहा था जैसे एक अनजानी ख़ुशी हर एक के रंग व रेशे में दाख़िल हो गयी है। लेकिन वह क्यों अजनबियत महसूस कर रहा था? उसे ये सब अजीब-अजीब-सा क्यों लग रहा था? उसे ये सब श्मशान के गिर्द नृत्य करते प्रेत लग रहे थे। वह अधखुली आँखों के साथ क्षण-क्षण गुम होते दृश्यों की कड़ियाँ जोड़ने लगा। लेकिन बर्फ़ पर स्केटिंग करती सुन्दरियों की तरह हर दृश्य उसकी पकड़ से फिसलता रहा और गलीज गलियों से फूटने वाली सीलन आमेज़ अंधकार के सिवा उसके सामने कुछ न था।

"दि ग्रेट सुपर मैन", अनदेखा भय क्षणों के आहत बदन पर सवार उसके चारों तरफ़ जाल बुनता रहा। उसने उस जाल को तोड़ने की कोशिश की, लेकिन उसके जिस्म के साथ बँधा हुआ आशंकाओं का भारी पत्थर उसे नीचे, लगातार नीचे लिये जा रहा था।

"दि ग्रेट सुपर मैन"! अचानक उसे सारा जिस्म लरजता हुआ महसूस हुआ। त्रासदपूर्ण क्षणों की सरसराहट उसके चिन्तन के दरीचों पर ख़ौफ़नाक पलों का

इतिहास लिख रही थी।

"ज़लज़ला।" वह बड़बड़ाया, और उसने लोगों के जहन के बन्द दरवाज़ों पर आवाज़ देनी चाही। लेकिन उसकी आवाज़ अपने ही होंठों के घेरे तोड़ न सकी।

"ज़लज़ला।" उसने चीख़ने की कोशिश की, लेकिन ठाठें मारते हुए समुद्र के शोर में उसकी आवाज़ एक कंकरी की तरह जा सोई।

"ख़ामोश," वह पूरी ताक़त से चीख़ा।

और पूरा हॉल एकदम चुप के तालाब में उतर गया और तमाम विस्मित पथरीली आँखें उसके चेहरे पर जम गयीं।

"ज़लज़ला" लरजती आवाज़ में उसने एक-एक चेहरे को घूरते हुए कहा।

ज़लज़ला! एक साथ कई आवाज़ें एक दूसरे के चेहरे पर हैरत की लकीरें खींचने लगीं। "ज़लज़ला, लेकिन ज़लज़ला क्यों। हम सब तो उसकी रीढ़ की हड्डी हैं। हम सब – हम सब।"

कई आवाज़ों के बदन से ख़ौफ़ के बच्चे जन्म लेने लगे।

"ज़लज़ला", उसकी आवाज़ पहले की तरह लरजती रही।

"तुम महसूस नहीं कर रहे पूरी इमारत काँप रही है। ज़लज़ले ने इमारत की नींव तक को हिलाकर रख दिया है।"

"यह झूठ है। इसकी बुनियादें हम हैं और हम सब नफ़रतों की दहलीज़ें पार करके अब एक हो चुके हैं।" कई एक ने विरोध किया।

"ज़लज़ले की कुदालें लम्हा बुनियादों को खोखला कर रही हैं।" वह सुनी अनसुनी करके कहता रहा, "लेकिन तुम महसूस नहीं कर रहे। तुम महसूस नहीं करते। तुम हमेशा की तरह इस बार भी महसूस नहीं करोगे।" बूढ़ा फ़ौजी हँसा, फिर दूसरा, फिर तीसरा। और हौले-हौले उसके फ़िक्रजदा चेहरे पर क़हक़हों का टिड्डीदल टूट पड़ा।

"सुनो" उसने क़हक़हों के कच्चे घरौंदों पर अपनी सोच का पत्थर फेंका।

"अभी कुछ देर में यह इमारत जब रेत के घरौंदे की तरह पश्चिम से चलने वाली हवा के कन्धों पर ज़र्रा-ज़र्रा होकर बिखर जायेगी और हम सब जो हमेशा ख़ुशफहमियों की ज़मीन पर भविष्य की फ़सलें बोने के आदी हो चुके हैं, किसी जंगली सड़क की तरह उस तेज़ अक्कड़ की जद में आकर अपना वजूद खो देंगे। और फिर कौन जाने – कब किसे इसकी ज़रूरत महसूस हो।"

"लेकिन मैं तो सुलह का समझौता कर चुका हूँ।"

"मैं भी"

"मैं भी"

"हम सब भी"

"हम सब! वह विष भरी हँसी हँसा। हम सब, हम सब क्या हैं, हम सब कौन

हैं...पुतलियाँ...सिर्फ़ पुतलियाँ...लेकिन...रस्सी कौन हिला रहा है?" उसकी आवाज़ कमज़ोर हो गयी थी। "कौन जाने इस ठिठुरा देने वाली सर्दी से बचने के लिए आग चुराने के जुर्म में हम कब तक अन्धे कुएँ में लटके रहेंगे। रस्सी हिलाने वाला यही चाहता है। लेकिन कब तक...आख़िर कब तक...लेकिन वह बूढ़ा कहाँ है।" उसने लोगों में बूढ़े की तलाश करते हुए कहा।

"कौन-सा बूढ़ा। कौन-सा बूढ़ा। हम सब अपने-अपने अस्तित्व को बचाने के लिए सियाह चमकीले रेशों को खुरदुरी सफ़ेदी की नज़र कर चुके हैं। तुम किस एक की बात करते हो?"

"वह... जो हमारी तरह आग बोकर अनाज के पकने का इन्तज़ार नहीं करता। उसने कहा था। इंजन पर क़ब्ज़ा कर लो... देखो...देखो इमारत फिर काँपने लगी।"

पूरी इमारत लट्टू की तरह घूमने लगी। वह भी लड़खड़ा गया।

"कुदालों की आवाज़ें लोगों को क्यों नहीं सुनायी दे रही हैं। वे उन खुफ़िया हाथों को क्यों नहीं देख रहे हैं, जो उनकी ख़्वाहिशों के बाग़ में चहचहाती फाख़्ताओं को क़त्ल कर रहे हैं।"

उसने सोचा और उसी लम्हे उसके कानों में बूढ़े वक्ता की आवाज़ गूँजने लगी, "तुम किधर जा रहे हो।"

बूढ़े वक्ता ने मुरझायी हुई पलकों वाले जर्द चेहरों को घूरते हुए एक-एक आँख की दहलीज़ पार करनी चाहिए।

"तुम किस गाड़ी में सवार हो?"

बूढ़े वक्ता की गोल-गोल तेज़ आँखें मेज़ के इर्द-गिर्द बैठे हुए लोगों के लिए सवाल बनी, उनके दिलों तक उतरती चली जा रही थीं।

"गाड़ी किस दिशा को जा रही है?"

बूढ़ा वक्ता लफ़्ज़ों की झोली से एक-एक लफ़्ज़ हैरान लोगों की तरफ़ उछालता जा रहा था, "गाड़ी का इंजन कौन चला रहा है?"

लोगों ने एक दूसरे को देखा। फिर सबने नहीं में सिर हिलाया व तमाम नज़रों का बोझ एक दूसरे को लौटाते हुए वे बूढ़े वक्ता की तरफ़ उन्मुख हुए। और बूढ़े वक्ता ने सवालों की बर्छियाँ मेज़ के गिर्द बैठे हुए लोगों के जेहनों में चुभोते हुए गहरी साँस ली। उसने जेब से रूमाल निकाला।

ऐनक के मोटे-मोटे शीशों को साफ़ किया, एक-एक आँख की बरौनी में लिपटी हुई जिज्ञासा को टटोलते हुए बात शुरू की...

"तुम जहाँ भी जाना चाहते हो, उस वक़्त तक मुमकिन नहीं, जब तक इंजन तुम्हारे क़ब्ज़े में न हो।" बूढ़े की आवाज़ लरज गयी। "तुम उस वक़्त तक अपनी पसन्द की मंज़िल की तरफ़ सफ़र नहीं कर सकते, जब तक इंजन पर तुम्हारा क़ब्ज़ा न हो।" उसकी आवाज़ पल-पल सियाह होती शाम की तरह डूबी जा रही थी। और

जब वह माथे पर जमे पसीने के क़तरे साफ़ कर रहा था, प्रशंसा के लातादाद कंकड़ उसके बदन से टकरा-टकराकर चारों ओर बिखरते चले जा रहे थे। बूढ़े ने तकलीफ़ से कराहते हुए कहा, "तुम अपनी दुनिया को अपनी ख़्वाहिशों के मुताबिक़ बनाना चाहते हो तो इंजन पर..."

"इंजन पर क़ब्ज़ा कर लिया," एक कँपकँपाती आवाज़ आयी।

"किसने..." एक साथ कई आवाज़ें उभरी।

"उसने जो (उसका बनाया हुआ) रक्षक था।"

"मेरी आशंकाएँ सही निकलीं, अफ़सोस, सबकी कोशिशें बेकार गयीं।" रस्सी एक बार फिर हिल गयी।

"अफ़सोस", सबने ख़ौफ़ की क़लम से भविष्य के काग़ज़ पर सन्देहों के दायरे खींचे और स्तब्ध खड़े अपनी-अपनी जात के अँधेरे कुएँ में उतरने लगे। पुराने अहदनामे ने, जिसके लफ़्ज़-लफ़्ज़ में गुज़री घटनाओं की तस्वीर बीतते लम्हों का मज़ाक़ उड़ा रही थी, उन लोगों के पाँव फ़र्श से उखाड़ दिये थे जो नयी ज़िन्दगी के नये अहदनामे के नवीनीकरण के लिए जश्न मनाने जमा हुए थे।

अब उनकी लरजती टाँगों ने उनके जिस्मों के बोझे उठाने से इन्कार कर दिया। बूढ़े फ़ौजी ने अपने दोनों हाथों को सीने पर इस तरह जमा लिया था जैसे वह ख़ुद को टूटने-बिखरने से बचा रहा हो। उसने पल्टन मैदान में जनरल के उतरते हुए रैंक और झुके हुए झण्डे को टी.वी. की आँख से देखते हुए कहा...

"अफ़सोस... अब हमें तजुर्बों के ख़ौफ़नाक प्रेत भी नाकाम अमल दोहराने से नहीं रोक सकते कि हम जो अपनी ही ज़मीन को बार-बार फतह करने के आदी हो चुके हैं, उत्तरी ध्रुव के सफ़ेद भेड़ियों की तरह आँख झपकने के किसी मौक़े को ख़ाली नहीं जाने देना चाहते, कभी नहीं – कभी नहीं।"

कमज़ोर-सी आवाज़ कमरे में गूँजी और लोगों ने देखा, ऐल्यूस अपने बदन में ख़ुशहाली की आग रौशन करने के जुर्म में प्रोमेथियस की जगह उल्टा लटका अपने होने की श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा है।

सवाब का रिश्ता

हसन मन्ज़र

"कभी-कभी मैं सोचती हूँ अजीब नाम है तुम्हारा।" लड़की ने कहा।

"वह कैसे?"

"तलत तो लड़कियों का नाम होता है!"

दोनों हँस पड़े। फिर अचानक संजीदा होते हुए नौजवान ने कहा, "और तुम्हारा कौन-सा लड़कियों जैसा है?"

लड़की ने भी एकदम संजीदा होते हुए कहा, "वह कैसे?"

"वह ऐसे कि शाहजहाँ मर्दों का नाम होता है और यह बात मैं बहुत बार सोच चुका हूँ।"

"मेरा नाम मर्दों के नाम पर नहीं है। हमारे ख़ानदान में कम से कम दो शाहजहाँएँ हैं या थीं और हमारे कॉलेज में भी एक शाहजहाँ थी।"

नौजवान ने बेंच पर बैठे-बैठे पैर हवा में इस तरह उठाये जैसे थकन उतार रहा हो और बोला, "तो फिर उन तीनों के नाम शहंशाहे-हिन्दुस्तान के नाम पर थे और जहाँ तक मेरे इल्म में है, उनकी दाढ़ी-मूँछें थीं।"

एक थकी हुई हँसी के बाद दोनों ख़ामोश हो गये।

थोड़ी देर के बाद नौजवान ने कहा, "शाह साहब!"

लड़की चुप बैठी रही।

नौजवान ने उसे कुहनी मारते हुए कहा, "शाहजी।"

"अच्छा! मुझसे कुछ कहते हो?"

"दो बार तो मुख़ातिब कर चुका हूँ।"

लड़की ने कहा, "मैं समझी थी, तुम्हें शायद वो पीर-फ़कीर नज़र आ रहे हैं और उन्हें तुम आवाज़ दे रहे हो।"

"अब ऐसा भी नहीं है कि तुम्हारे साथ रहते-रहते मुझे नज़र का वहम होने लगे। बात यह है कि इस वक़्त यहाँ बैठे-बैठे मुझे एक पुराना वाक़या याद आने

लगा। सोचा, तुम्हें सुना डालूँ। फिर सोचा, सुनकर तुम दुखी हो जाओगी।"

शाहजहाँ ने दूर घास को पानी देने वाले आदमी को देखते हुए कहा, "अब इससे ज़्यादा दुखी क्या होऊँगी, सुना डालो।"

"सुना डालूँ?" तलत ने कहा।

"गो अहेड।"

"फिर मत कहना।"

दोनों घण्टे भर से फ्रेयर हॉल के सामने की बेंच पर बैठे हुए थे। लगता था, चल-चलकर दोनों थक गये हैं, क्योंकि दोनों ने अपने पैरों को नंगा करके ठण्डी घास पर रखा था, जो दूर तक फैली हुई थी। अभी फेरीवाले नहीं आये थे, न ही तेल-मालिशवाले और न तेल मालिश करवाने वाले। शाम होने में अभी देर थी और तब तक दोनों ने यहीं इन्तज़ार करने का फ़ैसला किया था।

ज्यों ही तलत वह वाक़या सुनाने को हुआ, शाहजहाँ को उबकाई-सी आयी। उसने मुँह खोलकर सिर नीचे झुकाते हुए कहा, "उधर देखो।"

"क्या हुआ शाह साहब।"

"कुछ नहीं, कहा न, तुम दूसरी तरफ़ देखो।"

थोड़ी देर बाद उसने पुरसुकून होते हुए पीठ टेकी और आँखों से निकल आनेवाले पानी को पोछती हुई बोली, "हाँ तो क्या वाक़या था?"

नौजवान ने भी आराम के वापस लौट आने की साँस ली।

"यह लाहौर का वाक़या है। तुम्हें मालूम है, उन दिनों मैं वहाँ पढ़ रहा था। इम्तिहान होने वाले थे, मैं दिन-दिन भर घर में बन्द होकर पढ़ता था। कहीं आना-जाना बन्द कर रखा था। पैसों का भी उन दिनों तोड़ा था, कि दो घड़ी को आदमी किसी रेस्टोरेण्ट में जा बैठे। पर न जाने कहाँ से एक ख़याल दिमाग़ में आन बैठा था, सिगरेट का। जब पढ़ते-पढ़ते दिमाग़ फैग करने लगे, थक जाये..."

"इतनी इंग्लिश मैं भी जानती हूँ।"

"ख़ूब, ख़ूब" तलत ने कहा, "तुम्हारे साथ, यह साथ जितना भी लिखा है, अच्छा निभेगा।"

फिर वह अपने ख़यालों में खो सा गया।

"क्या मेरे साथ जूतियाँ चटखाते हुए दिमाग़ फैग होने लगा है?"

"नहीं, यह बात नहीं है।" तलत ने एक झुरझुरी-सी लेते हुए कहा, "तुम्हारे साथ चलते-चलते तो इन चन्द दिनों में, जितनी थकान सालों से दिमाग़ पर छायी थी, वह उतरने लगी है।"

"बनावटी बातें मत करो। दिल में कह रहे होगे, हमदर्दी ही हमदर्दी में बला गले लगा ली।" लड़की ने संजीदगी से कहा।

तलत ने शरारत भरी नज़रों से उसे देखते हुए कहा, "तुम्हारी इस बात का बड़ा

अच्छा जवाब बनता है, लेकिन..."

"कौन-सी बात का?"

"यही बला गले लेने वाली बात का।"

शाहजहाँ की आँखों में नमी छलक आयी। कुछ देर को दोनों एक दूसरे की आँखों में देखते रहे, जैसे एक ने दूसरे की बात पा ली हो। फिर तलत ने कहा, "अभी सिर्फ़ साढ़े चार बजे हैं। पूरा डेढ़ घण्टा पड़ा है।"

शाहजहाँ ने कहा, "जल्दी क्या है! मुझे घर जाकर न दोपहर के बरतन धोने हैं, न रात का खाना पकाने की जल्दी है। और तुम तो मेरा ख़याल है शाम को कुछ भी नहीं करते हो? घर जाओगे तो नौकर खाना लाकर सामने रख देगा।"

"आठ बजे पहुँचा तो गरम, ग्यारह बजे पहुँचा तो ठण्डा।"

दोनों हँस पड़े।

"फिर क्या हुआ?"

"काहे का?"

"वह लाहौर में दिन-दिन भर पढ़ने का।"

"हाँ, तो बस दिन भर पढ़ता रहता था।" नौजवान ने खोये दिमाग़ से कहना शुरू किया, "सुबह मुँह अँधेरे उठकर जो पढ़ाई में जुटता था, तो जब अम्माँ नाश्ते के लिए तीन चार आवाज़ें न दे लें, अपनी जगह से टस से मस नहीं होता था। फिर नाश्ता करके बैठता था तो ग्यारह बजे एक प्याली कॉफ़ी के लिए उठता था, जो मैं ख़ुद बनाता था, फिर जो..."

"मुझे मालूम है," शाहजहाँ ने बेचैनी से कहा, "यह वह कहानी है, जो सुना है, मेरी बड़ी आपा को अब्बा मरहूम, जिन्हें मैंने देखा ही नहीं, सुनाया करते थे। चिड़िया आयी, एक दाना चावल का लिया और फुर्र से उड़ गयी। वक़्त गुज़ारने के लिए आपा मुझे यह कहानी सुनाती थी। तुम भी यूँ ही करते रहो – रोज़ाना नाश्ते से कॉफ़ी ब्रेक तक, कॉफ़ी ब्रेक से लंच तक। इसी में छह बज जायेंगे।

नौजवान ने खोखली हँसी हँसते हुए कहा, "नहीं, इस कहानी में सिर्फ़ एक चावल है और चिड़िया दो। और मैं..."

"दिन भर घर में बन्द रहकर पढ़ा करता था।" लड़की ने जुमला पूरा किया।

थोड़ी देर बाद जब लॉन में पानी देने वाला पाइप को अपने पीछे घसीटता हुआ पास आ चुका था और उसके पीछे घास पर बहते हुए पानी के तालाब पर कौए उतर आये थे, तो नौजवान की कहानी ख़ासी आगे बढ़ चुकी थी। घर में सिगरेट पीते हुए झिझकता था। और अँधेरा हो जाने के बाद खाना खाकर घर से टहलने के लिए निकल खड़ा होता था, ताकि सुकून से सिगरेट भी पी जा सके और उस दिन के लिए किताबों पर आख़िरी हमले की तैयारी भी हो जाये। और ज़्यादा पढ़ाई के लिए दिमाग़ को हुक्के की तरह ताज़ा करना ज़रूरी था।

"रास्ते से सिगरेट ख़रीदकर मैं उस सुनसान सड़क पर चल पड़ा, जो बड़े पुल को जाती है। उस रात उम्मीद के ख़िलाफ़, हवा चल रही थी, जो लाहौर के लिए बड़ी अजीब बात थी। मेरे दिमाग़ में अभी भी सारे दिन का पढ़ा हुआ घूम रहा था और मुझे नहीं मालूम कब मैं बड़े पुल की चढ़ाई चढ़ा और कब पैदल चलने वालों के लिए बने रास्ते पर हो लिया। अगर तुमने रेलवे का वह पुल नहीं देखा है तो उसकी तफ़सील मैं बताये देता हूँ वरना पूरी बात समझ में नहीं आयेगी। रेलवे की पूरी शटिंग वार्ड से होकर गुज़रता है। बीच में चौड़ी सड़क है, जिसकी चढ़ाई पर दिनभर ताँगे वाले तेज़ी से 'वे मर जा' कहते हुए घोड़े को चढ़ाये लिए जाते हैं। तेज़ रफ़्तारी शर्त है। वरना सुस्त रफ़्तार टाँगोंवाला भाई आख़िरी ज़ोर लगाकर ताँगे समेत पीछे चल पड़ता है और फिर ताँगेवाला कूदकर घोड़े के मुँह की लगाम को थाम लेता है और उसकी अगली टाँगों पर चाबुक मारने लगता है। ख़ैर, यह बात यूँ ही बीच में आ गयी। पुल की सड़क को, पैदल चलने वालों के दोतरफ़ा रास्तों से लोहे का पार्टीशन खड़ा करके अलहदा किया गया है। उस रात मैं सिगरेट सुलगाये हवा और कश का लुत्फ़ लेता उसी पैदल रास्ते पर अँधेरे में चला जा रहा था। ट्रैफ़िक न होने के बराबर था। दायें हाथ पर लोहे का पार्टीशन था। बायें हाथ को चाँद ख़ासा ऊपर उठ गया था। पूरा तो नहीं था, लेकिन तीसरी, चौथी का भी नहीं था। इर्द गिर्द की चीज़ें भी नज़र न आयें। यार्ड में मालगाड़ी के डिब्बों की क़तारें नज़र आ रही थी। लेकिन उनके एक दूसरे से टकराने की कोई आवाज़ नहीं उठ रही थी, जो मुझे पसन्द है। इधर उधर कोई इंजन भी नज़र नहीं आ रहा था।

फीकी चाँदनी में एक जगह मुझे लोहे के पार्टीशन से मिला हुआ गन्नों की खोई का एक ढेर नज़र आया, जिस पर कोई और चीज़ भी पड़ी हुई थी।

"मैं गन्नों की खोई के ढेर पर नहीं चौंका था, क्योंकि मुझे मालूम था यहाँ दिन में गन्ने का रस बेचने वाला खड़ा होता है। ताज्जुब मुझे उसी चीज़ पर हुआ, जो उस ढेर पर पड़ी थी। मुझे मेरी एक हिस (संवेदन शक्ति) ने बताया, इस चीज़ को यहाँ नहीं होना चाहिए था, दूसरी हिस ने मुझे पैर से उसे टटोलने पर उकसाया, उस जगह से पुल का दूसरा सिरा नज़दीक ही था।

"मैंने पैर बढ़ाया ही था कि पैदल के रास्ते के ख़ात्मे पर, बिजली के खम्भे के नीचे बैठे हुए दो आदमियों ने आवाज़ दी, "बाबूजी, पैर नहीं लगाना, बच्चा है।"

"मैं अपनी जगह ठिठककर रह गया। अब वाकई मुझे उस ढेर में दो ऐसी चीज़े नज़र आने लगी जो बच्चे के सफ़ेद पैर भी हो सकते थे और जो शायद हिल भी रहे थे।"

अचानक तलत ख़ामोश हो गया और बेज़रूरत सामने शून्य में देखने लगा।

"फिर?"

चन्द लम्हों बाद शाहजहाँ ने कहा।

तलत फिर भी ख़ामोश रहा।

"न सही, तुम्हारी मर्ज़ी नहीं, तो न सही।" फिर उसने घड़ी देखते हुए कहा, "अभी क्लीनिक के खुलने में एक घण्टा बाक़ी है और यहाँ से हिलने में पैंतालिस मिनट।"

तलत ने खड़े होकर जिस्म को इस तरह दो-चार बार अकड़ाया, जैसे बहुत थक गया हो। फिर बोला, "कहीं चलकर चाय पी जाये।"

"अभी नहीं क्लीनिक के बाद।" शाहजहाँ ने राज़दारी के लहजे़ में कहा।

"ओह!" तलत ने बात समझते हुए कहा, "मेरी अक्ल मोटी है और हर बात को बहुत जल्दी भूल जाता हूँ।"

"नहीं, ऐसा तो नहीं है।" शाहजहाँ ने कहा, "अभी तो तुमको अपने बायें हाथ पर चाँद और दायें हाथ पर पुल पर पड़ा हुआ बच्चा नज़र आ रहा था। लगता था, तुम फ़िल्म देख रहे हो।"

"बच्चा नहीं, बच्ची।" तलत ने संजीदा लहजे़ में कहा।

"फिर तुमने उसे उठा लिया।"

"नहीं, मुझे देखकर उन दोनों में जैसे हिम्मत आ गयी हो। मामूली कपड़ों में थे। उस इलाक़े में ज़्यादातर रेलवे मज़दूर बसते हैं। और मेरा ख़याल है वो दोनों भी मज़दूर थे। मैं उस ढेर के पास खड़ा रहा। वो अपनी जगह से उठकर मेरे पास आ गये। मैंने पूछा, "क्या है?" दोनों ने एक साथ कहा, "बच्ची!"

तलत ने जान-बूझकर दूर शून्य में देखते हुए एकदम कहा, "मैंने पूछा, ज़िन्दा है?"

जैसे उसने अपने अन्दर से जुम्ले को बड़ी जद्दोजहद के बाद निकाल फेंका हो। लड़की ने थूक निगला। उसकी नज़रें भी नौजवान की नज़रों से समानान्तर शून्य में देख रही थी।

"वे दोनों एक साथ बोले, 'जी!' फिर उन्हीं में से एक ने, जिसकी उम्र तीस के लगभग होगी, बच्ची के सीने पर से उस कपड़े के उन दोनों पटों को खोला, जिसमें वह लिपटी हुई थी। दूसरे ने माचिस सुलगाकर मुझे उसका चेहरा दिखाया। कोई चीज़ बच्ची के मुँह से बहकर कपड़ों में आसपास लग गयी थी। मैंने पूछा, क्या है? माचिसवाले ने दूसरी तीली रौशन की और बोला 'शायद दूध डबलरोटी खिलायी है।' 'इतनी छोटी बच्ची को?' मैंने कहा, 'कितने दिन की होगी।' 'चार-पाँच दिन की तो होगी' पहले आदमी ने कहा।

मुझे ख़याल आया बच्ची चाँद को देख रही है। लेकिन यह मेरा वहम रहा होगा। अँधेरे जैसी रोशनी में वहाँ क्या नज़र आता था? ज़्यादा से ज़्यादा कपड़ों के बाहर निकले हुए उसके पाँव और चेहरे की गोलाई। बाक़ी जिस्म कपड़ों में लिपटा हुआ था।

"बच्ची रो नहीं रही थी। मैंने दुबारा पूछा, "ज़िन्दा तो है न?"

"हाँ जी अभी थोड़ी देर रोयी थी।"

"मैंने कहा, 'इसे उठाकर रौशनी में ले चलते हैं' बच्ची के दोनों मुहाफ़िज़ एक साथ बोले, 'और जो पुलिसवालों ने पूछताछ की, तो आप नट तो नहीं जाओगे?'

"नहीं, यहाँ से तो उठाओ। पता नहीं खोई में चींटियाँ हों या कनखजूरा।'

"एक आदमी ने बच्ची को उठा लिया और जब हम उसके साथ सीधे खड़े हुए, तो हमें पता चला, कितने लोग वहाँ, ट्रैफ़िकवाले पुल पर जमा हो चुके थे। कोई साइकिल पर बैठा लोहे के पार्टीशन को पकड़े रुका खड़ा था, कोई दो सेकेण्ड को रुककर पूछता था, 'क्या है?' और किसी दूसरे के बताने पर 'इन्सान का बच्चा...' कहकर हँसता हुआ साइकिल की पैडल मारता चल खड़ा होता था। एक ऐंग्लो-इण्डियन लड़की साइकिल पर सवार वहाँ से गुज़री।"

"किसी ने उसे गाली दी होगी।" शाहजहाँ ने कहा।

"शायद" तलत ने कहा, "लेकिन उसके बाद जो लड़की वहाँ से गुज़री थी जिसका दुपट्टा उसके पीछे हवा में उड़ रहा था और बाल कटे हुए थे, उसके लिए मुझे याद है, भीड़ में से किसी ने गाली बककर कहा था, यह काम इन जैसियों के हैं।"

"कितना आसान फ़ैसला था।"

"वह लड़की मेरे घर की तरफ़ जा रही थी और चार-पाँच घर छोड़कर हमारी ही सड़क पर रहती थी। वह किसी दफ़्तर में काम करती है। इससे ज़्यादा मैंने उसके बारे में कुछ नहीं सुना था। एकदम किसी ने कहा, 'पुलिस आ रही है।' और लोग वहाँ से भाग खड़े हुए। हम बच्ची को बिजली की रोशनी में ले आये। वहाँ मैंने उसका चेहरा पहली बार देखा। बड़ी ख़ूबसूरत बच्ची थी। मुझे उस वक़्त औरतों की कही हुई बात याद आयी, कि बच्चे हमेशा ही ख़ूबसूरत होते हैं। लेकिन यह बात सोचकर मैंने अपने ज़ेहन से नहीं निकाली थी, यह तो बस वहाँ पड़ी हुई थी।

"उन दो में से एक ने कहा, हम बहुत देर से यहीं बैठे थे, कि कोई बच्ची पर पैर रखता हुआ न गुज़र जाये, या कोई कुत्ता न आ जाये। उसके साथी ने कहा, पता नहीं कब से यहाँ पड़ी थी। वे दोनों बेढंगेपन से बच्ची का मुँह साफ़ कर रहे थे। एक बोला 'इतनी छोटी बच्ची, भला दूध पीती है, या रोटी खाती है।' दूसरे ने कहा, "माँ को डर होगा, पता नहीं कितनी देर भूखी-प्यासी पड़ी रहे। रोटी पेट में होगी तो ज़्यादा देर चलेगी।"

"मेरी आँखों में वह अनदेखा मंज़र घूम गया : यहाँ लाने से पहले एक लड़की जिसकी आँखों में आँसू हैं, उसे आख़िरी बार दूध पिला रही है। फिर मुतमईन न होकर उसे दूध में भिगोई हुई डबलरोटी के टुकड़े खिलाने की नाकाम कोशिश करती है और आख़िरकार यहाँ के लिए लेकर चल पड़ती है। हो सकता है, सही जगह की

तलाश में इधर-उधर फिरती रही हो। हो सकता है, जगह का चुनाव उसने पहले से कर रखा हो। न इतनी रोशनी कि सबको रखती हुई नज़र आ जाये न इतना अँधेरा कि उस पर कोई पैर रखता हुआ गुज़र जाये। फिर मुझे ख़याल आया, ऐसी माएँ बच्चे के आसपास देर तक मँडराती रहती हैं। जब तक यह यक़ीन न हो जाये कि उसे किसी ने उठा लिया है।

"मैंने घूमकर सड़क पर दोनों तरफ़ नज़रे उठायीं। सड़क पर से सिर्फ़ अब एक ताँगा आहिस्ता-आहिस्ता गुज़र रहा था, जैसे अपने घर जा रहा हो। कहीं से मुझे कोई सवालिया चेहरा झाँकता हुआ नज़र नहीं आया।

"फिर एक ख़याल आया, ज़रूरी है वहाँ एक लड़की ही हो? हो सकता है कोई औरत हो जिसके दस-बारह बच्चे हों और जिसमें एक और पालने की सकत न रही हो।

"फिर इस ख़याल को दिमाग़ से रद्द कर दिया। यह ज़रूरी नहीं है कि कोई औरत या लड़की ही यहाँ आयी हो। यह काम..."

"उस लड़की का मिलने वाला कोई लड़का भी कर सकता था।" शाहजहाँ ने कहा।

"तुम यक़ीनन जासूसी नावेल पढ़ती हो।" तलत ने कहा।

"जासूसी नावेल में लाशें होती है, या सड़क के किनारे छोड़े हुए बच्चे। लगता है तुमने जासूसी नावेल कभी नहीं पढ़े।"

दोनों के दरमियान जो तनाव पैदा हो गया था ख़त्म हो गया।

"हाँ तो फिर क्या हुआ?" लड़की ने घड़ी देखते हुए कहा, "अभी हमारे यहाँ से उठने में तीस मिनट बाक़ी हैं।"

"वहाँ खड़े-खड़े मैं सोच रहा था, यह बच्ची मुझे मिल जाये तो कितना अच्छा हो। घर में मेरे अपने छोटे भाई-बहन थे, लेकिन इतना छोटा बच्चा कोई और न था। एक फ़िक्र अब्बा की तरफ़ से थी। पता नहीं, अब्बा बच्ची को रखने पर राज़ी हों भी या नहीं। हमारा घराना कोई रईस घराना नहीं था। दूसरा ख़याल आया, छोटी बच्ची का गू-मूत साफ़ करने को अम्माँ तैयार नहीं होगी। मुझे किसी और क़िस्म के एतराज का डर नहीं था।

"मेरे ख़याल का सिलसिला उस वक़्त टूटा जब एक सफ़ेद सिर से पैर तक बुरके में ढकी हुई भारी-सी औरत, वहाँ आकर बच्ची के पास बैठ गयी। जैसे उसे वहाँ बुलाया गया हो। उसकी उम्र पचास के लगभग होगी और बाल मेंहदी से रंगे हुए थे। यह मुझे बाद में पता चला कि वह उन दोनों में से एक की माँ थी और घर से बुलाने के लिए एक आदमी कब का वहाँ से जा चुका था।

"उसने बच्ची का पेट खोलकर देखा और सिर पर हाथ फेरा और यक़ीन के साथ बोली, सात दिन की होगी। वे तीनों आपस में बातें करने लगे। जिसकी माँ थी,

उसके घर में उन दोनों के सिवा कोई और नहीं था। घर सूना था। दूसरे के बीवी–बच्चे थे। और वह इसी बात के हक़ में थे कि बच्ची उन माँ बेटे को मिल जाये। लगता था, लाल बालोंवाली के बेटे की शादी किसी वजह से नहीं हुई थी और न जल्द होने की उम्मीद थी। मैंने पूछा, "यहाँ काहे का इन्तेज़ार कर रहे हो।

"रेलवे पुलिस का।"

"क्यों भला।"

"ऐसे ले जाने में तो केस बन जायेगा कि किसी की बच्ची उठा ले आये हैं।

"किसी को इत्तिला करने को भेजा है।"

"एक लड़के को भेजा है।" उस आदमी ने कहा, जो घर से औरत को बुलाने गया था।

"मैं वहाँ से चल खड़ा हुआ। दोनों मेरी मिन्नत–समाजत करने लगे कि पुलिस आती होगी आप होंगे तो आपकी सुन लेंगे। हमें तो उल्टा फाँस देंगे। यह नहीं देखेंगे, इतनी देर हिफ़ाजत हमने की है।"

"मैंने वादा किया, अभी आया जाता हूँ।"

एक बार अँधेरे में पहुँचकर मैंने घर की तरफ़ भागना शुरू कर दिया। पुलिस के वहाँ आने और मेरे घर से पूछकर आने में जैसे दौड़ लगी थी, जहाँ रौशनी में लोग खड़े नज़र आते थे, जिनमें कुछ जानने वाले भी होंगे। मैं भागना बन्द करके तेज़–तेज़ क़दम चलने लगता था। फिर बिजली की रौशनी से दूर होते ही दुबारा भागने लगता था।

"जब मैं घर पहुँचा तो अब्बा मरहूम इशा की नमाज़ पढ़ रहे थे। मैं पास की पलंग पर बैठकर उनके सलाम फेरने का इन्तेज़ार करने लगा। मेरी साँस फूल रही थी और कपड़े पसीना पसीना हो रहे थे।"

"उन्होंने अत्ताहियात पढ़ते हुए शहादत की उँगली उठायी और मेरे दिल में धड़का हुआ। पता नहीं फ़र्ज़ है या वित्र। और सलाम फेरने में अभी एक या दो रकअतें बाक़ी हो। लेकिन जब वो उठकर खड़े नहीं हुए तो मुझे इतमिनान हो गया कि बस चन्द लम्हों की बात है। उन्होंने दूसरी तरफ़ सलाम फेरा ही था कि मैंने फूली हुई साँस के साथ कहा, "पुल पे बच्ची पड़ी है।"

"ज़िन्दा है?"

मैंने कहा, "जी!"

"छोड़ क्यों आये?"

उन्होंने मेरे ही जैसे जोश के साथ कहा।

"आपसे पूछने आया था।" मैंने साइकिल उठाकर दरवाज़े का रुख़ करते हुए कहा।

इसमें पूछने की क्या बात है। उनकी आवाज़ पीछे सुनायी दी। अब तक तो कोई

ले जा चुका होगा।

तभी शाहजहाँ ने ज़ोर से झुरझुरी ली और उसके चेहरे की खाल तन गयी। फिर उसने अपने पेट को पकड़ लिया।

"क्या हुआ?" तलत ने पूछा।

लड़की खुद को सँभालने की कोशिश कर रही थी। फिर उसने सिर को झटकते हुए कहा, "कुछ नहीं।"

"उबकाई आयी थी बादशाह सलामत?"

"नहीं! तुम्हारे समझने की बात नहीं है तलत।" फिर वह हँस पड़ी "तुम्हारा नाम लड़कियों वाला है...मेरी एक सहेली थी, तलत जबीं और एक कज़िन है, माहतलत।"

"तो तुम्हारा कौन-सा लड़कियों वाला है शाहजहाँ साहिब महाराज?"

लड़की के चेहरे पर एक बार फिर वही भाव पैदा हुए। उसने घबराकर नौजवान का हाथ पकड़ लिया। फिर सिर को झटककर बोली, "कुछ नहीं...तो तुम्हारे दिल को धक्का-सा लगा? क्यों"

"इसलिए कि मुझे ऐसा लगा जैसे बच्ची मुझसे छिन गयी हो। हालाँकि उन लोगों ने मुझे बच्ची देने का वादा नहीं किया था, लेकिन मुझे कुछ ऐसा अहसास हो गया था कि पुलिसवाले शायद उन लोगों को पढ़ा-लिखा न समझकर बच्ची मुझे दे जायें। लेकिन मेरी नज़रें पुल के दूसरे किनारे पर गयी, जहाँ बिजली की रोशनी बेहतर थी और रेलवे पुलिस के दो सिपाही कुछ लिख रहे थे।

"मेरे पास पहुँचने पर उन दोनों मज़दूरों के चेहरों पर रौनक लौट आयी।"

एक सिपाही ने पूछा, "बच्ची इन्होंने पायी थी या आपने?"

मैंने खुश्क मुँह से कहा, "इन्होंने।"

"इसे कौन लेना चाहता है?"

"वो मज़दूर और मैं एक साथ बोले, मैं।"

"लाल बालोंवाली औरत मिन्नत करते हुए बोली, हमारे घर में तो बस हम दो माँ बेटे हैं। इसकी शादी ही का आसरा नहीं होता। आपके तो बाल-बच्चे होंगे।

"मैंने कहना चाहा, अभी तो मैं पढ़ता हूँ, लेकिन दिल पूरे तौर से बच्ची को छोड़ने पर आमादा नहीं था। ऐसी बात कह देने से तो बच्ची पर मेरा हक़ बिल्कुल ख़त्म हो जाता। मैं कहने वाला था, तुम्हीं ले लो, लेकिन ख़ामोश रहा। हम असमंजस में खड़े थे कि वर्दीवाले ने, जो शायद सिपाही से ऊपर के दर्जे का था, कहा, जो इसे लेना चाहता है, साथ ले के चले। वहीं लिखा-पढ़ी के बाद बच्ची उसे मिलेगी।

"मेरे लिए नयी कशमकश पैदा हो गयी। भला मैं एक हाथ से साइकिल सँभाले दूसरे से बच्ची को कन्धे से लगाये उसके साथ स्टेशन तक कैसे चल सकता था? फिर न जाने वहाँ की कार्यवाही में कितने घण्टे लगें। और अगर मैं इसी काम में

लग जाता तो रात की मेरी पढ़ाई तो गयी थी।"

"फिर तुम छोड़ आये उसे।" शाहजहाँ ने बेदिली से कहा।

"मैंने लाल बालोंवाली औरत से कहा, ख़ैर, तुम ले लो। मेरे छोटे भाई-बहन हैं। फिर मैंने एक नज़र बच्ची पर डाली, जिसे उस औरत के बेटे ने हाथों के पंगोड़े में प्यार से सँभालकर रखा था। बच्ची ग़ाफ़िल सो रही थी और उस वक़्त सनी हुई भी नहीं थी। पता नहीं, कब माँ-बेटे में से किसने बिल्ली की तरह चाटकर उसका मुँह धो दिया होगा।

"मुझे लगा, उस आदमी के दिल से बड़ा खटका निकल गया, जो उसे मेरी तरफ़ से रहा होगा। यक़ीनन वह और उसकी माँ और उसका साथी तीनों यही सोच रहे होंगे, अगर मैं स्टेशन तक बच्ची के साथ गया और वहाँ उस पर अपना हक़ जतलाया तो ड्यूटी पर जो अफ़सर होगा, वह बच्ची मेरे हवाले ही करेगा। ये लोग अपने शक्ल से, अपने कपड़ों से मज़दूर लग रहे थे। फिर भला बच्ची को वे कैसे सबकुछ दे सकते थे, वह बज़ाहिर मेरी शक्ल से लगता होगा, मेरे घर वाले दे सकेंगे। मैं शरीफ़ों में से था।

"पिछले आधे-पौने घण्टे में मैं जिस्मानी और ज़ेहनी तौर पर बुरी तरह थक गया था और अब वापसी पर बहुत आहिस्ता-आहिस्ता पैडल चला रहा था। आधा पुल पार करने के बाद मैंने पैर टेककर बाइसिकल को रोका और पलटकर बिजली के खम्भे की तरफ़ देखा। वे वहाँ से चल पड़े थे। दोनों पुलिसवाले आगे आगे थे, जैसे उस वाक़्ये से उनका कोई ताल्लुक़ न हो वे तीनों उनके पीछे चल रहे थे।

"तीनों?" शाहजहाँ ने तल्ख़ी से पूछा।

"माफ़ करना, भूल गया था। चारों कहना चाहिए था। है न? लेकिन वह तो न होने के बराबर थी।"

शाहजहाँ चुप रही।

तलत भी ख़ामोश रहा, जैसे उसके पास जो कुछ कहने को था, ख़त्म हो चुका हो।

अचानक काँय-काँय करते हुए तीन-चार कौओं ने एक दूसरे के पीछे उनके सामने हवा में गोता मारा। उनके आगे आगे एक चीख़ता हुआ कम उम्र भगोड़ा कौआ था जो शायद कुछ करके भागा था।

फिर हवा पर ख़ामोशी जम गयी।

"उठा जाये।" शाहजहाँ ने कहा।

"अभी नहीं, अभी वाक़्ये का सबसे दर्दनाक हिस्सा बाक़ी है।"

"छोड़ो भी। कोई औरत अपनी बच्ची को पुल पर रखकर चली गयी किसी ने पास से साइकिल पर गुज़रने वाली औरत को गाली दी, जिसे तुम मेरे सामने नहीं दोहरा पाये, इसलिए कि वह गाली मुझे लगेगी।"

"यह ग़लत है" तलत ने कहा, "मैं पहले तो गाली देता ही नहीं हूँ, फिर वह भी एक औरत के सामने।"

अपनी बात जारी रखते हुए शाहजहाँ ने कहा, "फिर तुम उस बच्ची को अपनाने की इजाज़त अपने बाप से लेकर भी वहीं छोड़ आये। अब इससे ज़्यादा दर्दनाक बात क्या होगी? यह कि उन लोगों ने उसका गला घोंट दिया?"

तलत ने कहा, "वह क्यों ऐसा करते?"

"वह इसलिए कि ऐसा काम सिर्फ़ सगी माँ ही कर सकती है।"

इसके आगे उसकी आवाज़ भर्रा गयी। तलत की समझ में नहीं आ रहा था कि उसे क्या कहना चाहिए। फिर उसने शाहजहाँ के हाथ पर अपना हाथ रख दिया। शाहजहाँ ने आँसू पोछते हुए कहा –

"चलो उठो। क्लीनिक चलते हैं। बुढ़िया बड़ी बददिमाग़ है। ज़रा देर हो गयी तो हज़ार ख़ुशामद पर भी आज के लिए राज़ी नहीं होगी और मुझे फिर छुट्टी महीने भर तक नहीं मिलेगी।

"तो ऐसा करो कि तुम नौकरी छोड़ दो।" तलत ने मज़ाक़ में कहा।

"और उसके बाद तुम रोटी खिलाओगे।"

"यही तो मैं कह रहा हूँ।"

"फिर तुम कहोगे अच्छी बला गले लगी।"

"गले लगाना ही तो चाह रहा हूँ।" तलत ने हिचकिचाते हुए कहा, फिर उसने अचानक कहा, "अपना फ़्लैट छोड़कर मेरे घर आ जाओ।"

"होय!" शाहजहाँ ने कमज़ोर-सी ताली बजाते हुए कहा, "तमाम बन्दिशें और रुकावटें तुमने एक छलाँग में पार कर ली। अरे मिस्टर यह पाकिस्तान है। यूनाइटेड स्टेट ऑफ़ अमेरीका नहीं। दोनों पकड़े जायेंगे और अख़बारवालों और पब्लिक और क़ानून सबको अचानक हममें दिलचस्पी हो जायेगी।"

"हेल विद देम" तलत ने भी उसी ख़ुशी के साथ कहा, जिसने अचानक शाहजहाँ को अपनी लपेट में ले लिया था। फिर उसने कहा, "अगर वाक़ई इस वक़्त यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ़ अमेरीका में होते, तो मैं यहीं तुम्हें गले लगा लेता।"

शाहजहाँ ने सिर घुमाकर उसकी आँखों में देखा और अचानक घड़ी को देखते हुए कहा, "बस दस मिनट बाक़ी है। उठो बुढ़िया नाराज़ हो जायेगी।"

"हेल विद हर..." तलत ने कहा, "पहले आगे का वाक़या सुन लो। फिर वहीं चलकर चाय पियेंगे, फिर..."

"फिर?" शाहजहाँ ने कहा।

"हाँ तो मैं कह रहा था कि अँधेरी रात में आहिस्ता-आहिस्ता पैडल चलाता हैण्डिल पर झुका, घर की तरफ़ जा रहा था जहाँ मुझे मालूम था अब्बा मेरा इन्तज़ार कर रहे होंगे। मुमकिन है इतनी देर घर ने एक और ज़िन्दगी को ख़ुशआमदीद कहने

की तैयारी कर ली हो। अवर्स वाज़ अ वेरी रेलिजस गॉड फियरिंग फैमिली। अम्माँ, ख़ुदा बख़्शे, वैसे चाहे मेरे बच्चे को घर ले आने पर कितना बड़बड़ाती, लेकिन अगर उन्हें पता चलता कि बच्ची को रात में भी वहीं, खोयी पर पड़ी छोड़ आया हूँ तो फिर सारी रात उन्हें ख़ुदा के कहर से डर लगता और अपना बिस्तर काटने को दौड़ता। मैं सोच रहा था, अब्बा मेरे इन्तज़ार में बैठे होंगे। छोटे भाई बहन ने कहीं तोशक-फलिया और छोटे-छोटे कपड़े जमा कर लिये होंगे, क्या ख़ानदान था!

यह किस क़िस्म की ख़ुशी थी, घर में एक बच्चे के होने की? नहीं। वो तो घर में थे ही। उनकी परवरिश के दौर से, अभी अम्माँ को पाँच-छह ही साल हुए मुहलत मिली थी। किसी पर तरस खाने की? नहीं। इसके लिए उस बच्ची का मिलना ज़रूरी नहीं था। जिन पर तरस आये, उनसे शहर भरा पड़ा था। और फिर हमारा घराना खाता-पीता सही, ऐसा भी नहीं था कि अलल्ले-तलल्ले हों। ख़ुद मैंने क्या उस बच्ची को अपनाना चाहा था? इस सवाल का जवाब मैं आज तक नहीं दे पाया हूँ। यह शायद एक नया रिश्ता था, जो मुझ पर खुल रहा था। ऐसा रिश्ता जो ख़ुद अपनी जगह एक हैसियत रखता है। जो इन्सान को ज़िन्दगी में कभी-कभार ही पैदा होता है।"

"पाँच मिनट..." शाहजहाँ ने आहिस्ता से कहा।

"गोली मारो बुढ़िया को।"

शाहजहाँ ने कहा, "कमबख़्त मैंने आज की सुबह भी नैनों में गँवायी। हम चलते-चलते ख़्वार हो गये। अच्छा वह नहीं कोई और सही।"

"और कोई क्यों सही। पहले मुझे आगे का हाल बताने दो। मैं जब हार खाये इन्सान की तरह घर पहुँचा तो मेरी शक्ल देखते ही अब्बा ने कहा, 'बच्ची कहाँ है?' और उतनी देर में जो साइकिल रखने में मुझे लगी, उन्होंने कई बातें कह डालीं, जिनमें से अब मुझे बस दो याद है –

"कोई ले गया। पता नहीं कैसे आदमी के हाथ आयी होगी?"

"मैंने उन्हें सारी बात बतायी और अगले दिन पूछने के लिए कहा, कि वहाँ रेलवे स्टेशन पर क्या हुआ... और यह वह दर्दनाक बात है। उन्होंने अगले दिन स्टेशन से लौटकर मुझे बताया। उन लोगों ने मामूली पूछताछ के बाद उस औरत और उन दोनों आदमियों को अगले दिन आने को कहा। वह दोनों माँ-बेटे कहते रहे कि बच्ची पुलिस स्टेशन पर रात को कैसे रहेगी। लेकिन एक सिपाही ने कहा कि जाते हो या तुम्हारा चालान करें? बच्ची कहीं से उठाकर लाये हो और अब इसे क़ानूनी तौर पर अपने घर रखना चाहते हो ताकि जब बड़ी हो जाये तो..."

शाहजहाँ ने आगे सुनाने के लिए 'हूँ' की।

तलत ने हिचकिचाते हुए कहा, "मैं वालिद साहब की बात बिना समझाये ही समझ गया। क्योंकि वो आगे बताने से क़तरा रहे थे।"

काफ़ी देर तक दोनों ख़ामोश बैठे रहे।

शाहजहाँ ने तलत के हाथ पर हाथ रख दिया जो अपने निचले होंठ को दाँतों से दबाये हुए था। फिर उसने दुखी लहज़े में कहा, "पुलिसवालों में से एक बच्ची को अपने घर ले गया था। यानी वह उसे मिली, जिसने उसके लिए कुछ भी नहीं किया था। अब भी कभी-कभी मुझे उसका ख़याल आता है। न जाने कितनी बड़ी हो गयी होगी। अगर वह मुझे मिल जाती तो मेरी ज़िन्दगी किस तरह गुज़री होती। उन माँ-बेटों को मिलती, तो उनकी ज़िन्दगी में कैसी-कैसी तब्दीलियाँ आतीं।"

"आओ, चलो क्लीनिक चलें," शाहजहाँ ने कहा, "अभी भी वक़्त है मैं बुढ़िया को राज़ी कर लूँगी फिर ये पैसे न जाने कहाँ उठ जायें।"

"हम वहाँ नहीं जायेंगे।" तलत ने कहा

"क्यों नहीं जायेंगे। अभी व्क़्त है।"

एकबारगी परेशान होकर उसने अपना पेट पकड़ लिया और साँस रोके रही। तलत ने पूछा "क्या हुआ? उबकाई आ रही है?"

"तुम सिर्फ़ उबकाई जानते हो। मुझे कुछ और महसूस हो रहा है। जैसे कोई चीज़ अन्दर हिली हो।"

"तब तो और भी नहीं जायेंगे।" तलत ने कहा।

"चन्द हफ़्ते और मेरी ज़िन्दगी ख़तरे में पड़ जायेगी। बुढ़िया इन्कार कर देगी। वह बहुत मीन-मेखवाली है। साइकोलॉजिकल ग्राउण्डस पर तो राज़ी हुई है। उसने न कर दिया तो फिर किसी अनाड़ी नर्स का सहारा लेना पड़ेगा।"

"मैं न बुढ़िया को कुछ करने दूँगा और न किसी नर्स या दाई को।" फिर उसने पूरे भरोसे के साथ कहा, "तुम अब मेरी ज़िम्मेदारी हो।"

"चौदह-पन्द्रह दिन की वाक़फियत भी कोई वाक़फियत होती है?" शाहजहाँ ने कहा, "तुम मेरे बारे में कुछ भी नहीं जानते मिस्टर तलत जबीं।"

"न जानना चाहता हूँ शहंशाहे-हिन्दुस्तान!" तलत ने बीच से उठते हुए कहा, "चलो, तुम्हार चार घण्टे का रोज़ा ख़त्म। चलकर कुछ खाया-पिया जाये।"

मुग़लसराय

मिर्ज़ा हामिद बेग

शाम के साये गहरे हो गये थे और वो दोनों मटमैले अँधेरे में धुँधलाये हुए हिलते-हिलते धब्बों की तरह चुपचाप बढ़े चले जाते थे। उनके साथ फ़ुटपाथ पर सफ़ेदे की क़तार में बहती हुई हवा की सरसराहट अब साफ़ सुनायी दे रही थी। और वो दोनों एक साथ क़दम उठाते यहाँ, इस जगह पहली बार ठिठककर रुके थे।

अभी कुछ देर पहले पीछे से आते हुए खिलन्दड़ नौजवानों की एक टोली बहुत देर तक उन्हें अपने घेरे में लिए चलती रही थी। और उनके बीच वो मुजरिमों की तरह सिर झुकाये बहुत आहिस्ता क़दम उठाते यहाँ तक पहुँचे थे। अब वह हँसती-गाती टोली बहुत आगे निकल गयी थी और दूर तक कोई न था। अलबत्ता उनके कन्धे अभी तक आपस में रगड़ खा रहे थे। लड़का थोड़ा झुककर चल रहा था। उसका बल खाया हुआ बायाँ बाज़ू लड़की को पूरी तरह अपनी लपेट में लिये हुए था।

वो दोनों इस इलाक़े में नवागन्तुक थे और सिर्फ़ सुनी-सुनायी बातों पर यहाँ तक निकल आये थे। अब वो सफ़ेदे की क़तार के इस सिरे के आख़िरी दरख़्त से टेक लिये खड़े थे। और दूर तक मटमैला अँधेरा हर तरफ़ लोटे ले रहा था।

दोनों अपने सफ़री थैलों के बोझ से ज़रा-ज़रा आगे को झुके हुए किसी हद तक डरे हुए भी थे। लड़के ने टॉर्च निकालकर लोटे लेते मटमैले अँधेरे में दूधिया रौशनी की कमन्दें हर तरफ़ फेंकी और मायूस होकर सिर झुका लिया। दोनों को अपनी टाँगें ज़मीन में धँसती हुई महसूस हुईं और वो देर तक यहीं, इसी जगह भारी सफ़री थैलों के बोझ तले दबे, बेबसी से आगे-पीछे झूलते रहे।

उनको इस हालत में कुछ ज़्यादा वक़्त नहीं गुज़रा होगा कि एक बड़े शोर के साथ दो सरपट आते हुए घोड़ों के पीछे दायें-बायें झूलती हुई बग्घी एक झटके के साथ उनसे चन्द क़दम आगे निकलकर रुक गयी। देखते ही देखते दोनों तरफ़ के दरवाज़े खुले और चमकते हुए भालों को सँभाले, दो बुझे हुए चेहरोंवाले लोगों ने

उन्हें पूरी शिष्टता के साथ बग्घी में, नर्म झूलानुमा सीट पर ला बिठाया और चले।

लड़की को लपेट में लिए हुए बाज़ू की गरमाहट अब ढीली पड़ गयी थी और दोनों, जिस ख़ौफ़ के अभी कुछ देर पहले बन्दी हुए थे, वह ख़्वाबो-ख़याल होता जा रहा था। वो अजब आत्म-समर्पण के आलम में हवा के कन्धे पर थे और तेज़ हवा में उनके ऊपर को उठे हुए नर्म कालरों में आधे छुपे हुए, उनींदी आँखोंवाले, मुतमइन चेहरे दायें-बायें झूल रहे थे।

एक जगह बग्घी धीरे-धीरे रुक गयी उन्होंने जाना कि जैसे एक ठहरे ग़ुस्से से भरे पानी के धारे को राह दी गयी हो। वो जब बाअदब ख़ादियों का सहारा लिए बग्घी से बाहर आते हैं, तो सफ़री थैलों के बोझ से उनके कन्धे आज़ाद थे और उनके सामने आबनूस का पीतल-जड़ा विशालकाय दरवाज़ा धीरे-धीरे खुलता चला जा रहा था। और उसके अन्दर की ओर खिंचते और धनुष बनाते हुए ज़ंजीर, ग़ुस्से से भरे पानी के धारे का शोर बाहर उगल रहे थे।

दरवाज़े की दोनों चौकियों पर ठहरे हुए लैम्प पोस्ट अपनी पीली काँपती हुई रौशनी उगलते बेहद साफ़ और एक हद तक बुझे-बुझे से नज़र आये।

वो दोनों एक बार फिर कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने लगे। लड़के के बल खाये हुए बाज़ू ने लड़की को एक बार फिर अपनी लपेट में ले लिया। सुर्ख़ बानात की दरियों में, कमरे के चारों ओर धारीदार पटके लपेटे हुए, धीमे क़दमों से, ख़ादिम उनके सफ़री थैलों को एहतियात से सँभाले 'रप-रप' करते उनके पीछे चले आते थे।

स्वागत कक्ष की नीम-रौशनी में मेहराब तले, लटकी हुई मूँछों और कलियों से कानों की तरफ़ मुड़ी हुई नोकदार क़लमोंवाले मेज़बान ने झुककर उन्हें ख़ुशआमदीद कहा और साथ हो लिया। वह रास्ते में बिछता चला जा रहा था और उस बातूनी ने, मजाल है कि उन्हें बात करने का मौक़ा दिया हो। वह कह रहा था, "हुज़ूर, यह हमारी ख़ुशनसीबी है कि आपकी ख़िदमत का मौक़ा हाथ आया। पुर्तगाली, वलन्देजी, फ़्रांसीसी और अंग्रेज़-सभी हमारे सिर आँखों पर और अरब रियासतों के शेख़ तो हमारे भाई-बन्द हैं। हुज़ूर ख़ातिर जमा रखिये।"

उस वक़्त वो धुली हुई लाल ईंटोंवाले रास्तों पर चल रहे थे और उनके दोनों तरफ़ खुले तालाबों के साफ़ पानी में दरख़्तों का गहरा अक्स काँप रहा था। वो कन्धे से कन्धा मिलाये चले जा रहे थे और सामने बिछता हुआ मेज़बान, "बन्दापरवर, हमें यक़ीन है कि मुग़लसराय की शोहरत सुनकर ही आप चले होंगे। यक़ीनन आपने जो कुछ सुना, वह अलिफ़ से ये तक दुरुस्त है। यहाँ सराय के मेहमानों को रिवायती मुग़ल रखरखाव के साथ ठहराया जाता है। और अब क्या अर्ज़ करूँ, जल्दी ही आप ख़ुद मेहरबान होंगे और हमारी सर्विसेज़ के तारीफ़ करने वाले भी।"

गेंदे के फूलों और बनफ़्शे के दूर तक फैले दरख़्तों को पार करके वो चीड़ के

छोटे दरवाज़ों वाली क़तार के साथ हो लिए। फिर तंग बरामदों को मरहला आया। यहाँ हर दस क़दम पर दरवाज़ों के साथ सीधी ऊपर को उठी हुई मशालों का धुआँ नीचे छत पर सियाही का लेप कर रहा था। वो एहतियात से झुके-झुके मेज़बान के पीछे चलते रहे। फिर वह एक जगह रुका और एक ज़ंग-लगे ताले को खोलते हुए सामने से हटकर अदब से झुका। तब उसके सामने एक दरवाज़ा डरावनी चरचराहट के साथ खुलता चला गया। फिर वह लपक-झपक अन्दर गया और आतिशदान को रौशन कर आया। वो दोनों दरवाज़ों में खड़े थे और मुलाज़िम उनके सफ़री थैले कमरे में एक तरफ़ रखकर जा चुके थे। फिर मेज़बान ने झुककर इजाज़त चाही और धीरे-धीरे अतिशदान में चटख़ती हुई लकड़ियाँ और उड़ती हुई चिनगारियों की मद्धम रौशनी में अन्दर का माहौल साफ़ होता गया।

उनके सामने, नीची छत के नीम रौशन कमरे में, भारी पलंग के सिरहाने आतिशदान के ठीक ऊपर, दो चन्द्राकार तलवारें मटमैले रंग के ढाल के आर-पार ठहरी हुई थीं। कमरें में दीवारों से सहमें हुए हिरन और बारहसिंगे बस निकला ही चाहते थे। फिर जाने कहाँ से झुककर आदाब बजा लाती, लचकती हुई दो कनीज़ें हाज़िर हुई। दरवाज़े में सहमा हुआ जोड़ा जुड़कर खड़ा था। वो आयी और लड़की को सहारा देती हुई बग़ली दरवाज़े में ग़ायब हो गयी। लड़का हिम्मत करके उनके पीछे चला, लेकिन उनके पाँव नीचे बिछे हुए क़ालीन में धँसतें चले जा रहे थे। वह बड़ी मुश्किल में था। जाने क्यों उस पर बेहोशी-सी छाने लगी और वह लड़खड़ा-सा गया। जब उसे होश आया, तो उसने देखा कि उसकी साथी लड़की कोई मुग़ल शहज़ादी है, जो बड़े पलंग पर अतलस-व-किमख़ाब में माहताब की तरह खिली हुई है। उस लम्हे वह नीम बेहोशी में बग़ली कमरे से होता हुआ दो नाज़ुक कनीज़ों के बाजुओं में लिपटा-लिपटाया आगे बढ़ रहा था।

और वह ख़ुद जैसे कोई मुग़ल शहज़ादा, ढाके की मलमल पर सुनहरी सदरी और कमर को चारों तरफ़ पटके में अंड़सा हुआ, जड़ाऊ थीक का मुड़ा हुआ खंजर सँभाले हुए था, जिसकी मूठ पर रेशमी फुँदना उसके लड़खड़ाते क़दमों के साथ झूल रहा था।

वह नीम-बेहोशी में लड़खड़ाता हुआ आगे बढ़ रहा था और उसने एकान्त चाहा था। कमरे में अब सिर्फ़ मोरछल हिलाती हुई दो कनीज़ें रह गयी थीं। और शायद पलंग पर अधलेटी मुग़ल शहज़ादी ने कोई फ़रमाइश कर दी थी। ऐसे में बग़ली कमरे से कोई एक वजूद बहुत गहरा घूँघट निकाले हुए ज़ाहिर हुआ था और झुकी-झुकी नज़रों के साथ चाँदी की ऊँची समावर, जिसके नीचे आग दहक रही थी और बड़े थाल में सूखे मेवे और नक़्क़ाशीदार सुराहियाँ और भारी प्याले क़रीने से सजाकर पलट गया था।

वह लड़का जैसे कोई मुग़ल शहज़ादा बग़ैर कुछ खाये-पिये पलंग पर चित लेट

गया और उसकी आँखें मुँदती चली गयीं। शायद कुछ देर वह सोया भी होगा उस दौरान बराबर से उठकर उसकी साथी लड़की मुग़ल शहज़ादी ने कमरे का चक्कर लिया और पाईं बाग़ की तरफ़ खुलनेवाली खिड़की में खड़ी रही।

फिर जैसे-जैसे रात बीत रही थी, नीचे दूर तक निकल गयी। घने दरख़्तों में अजब तरह की गुर्राहटों का शोर उभरता चला गया। दरख़्तों से भर्रा मारकर चिड़िया और कौवे शोर करते हुए आसमान की तरफ़ उड़ने लगे।

शोर बढ़ रहा था। बाहर चाँदनी में रास्तों के साथ-साथ थूहर की ऊँची-नीची दीवारें घास के तख़्तों पर ठहरी हुई संगमरमर की कुर्सियाँ और कासनी फूलों से गुँथी बनफ़्शे की मोटी तहें – सब धीरे-धीरे माँद पड़ गयी और हर तरफ़ से बढ़ता, करवटें लेता हुआ, पागल कर देने वाला शोर हर तरफ़ भर गया।

लड़की घबराहट में धीरे-धीरे पीछे हटती गयी थी। यहाँ तक कि कमरे में मेज़बान की आवाज़ गूँजी, "हुज़ूर, बेफ़िक्र रहिये। यह शोर नक़ली है और सिर्फ़ आपका दिल बहलाने के लिए इस वक़्त हमारे तनख़्वाह पानेवाले मुलाज़िमों की टोलियाँ पाईं बाग़ के कोने-खुदरों मे हरकत कर रही थीं। यह भेड़ियों और गीदड़ों की मिली-जुली आवाज़ें बहार के मंज़र में क़ुदरती रंग भरने की ख़ातिर हैं हुज़ूर! निश्चिन्त रहिये।" मेज़बान ने लपककर बाहर की ओर खुलने वाली खिड़की के सामने रेशमी पर्दों को बराबर कर दिया।

आवाज़ें लगातार आ रही थीं, जैसे भेड़ियों के झुण्ड निकल आये हों और उन्होंने सराय को अपने घेरे में ले रखा हो। अलबत्ता मेज़बान की सफ़ाई सुनकर लड़की ने इत्मीनान की साँस ली। फिर वह पाईं बाग़ को चलने के लिए ज़िद करने लगी, लेकिन लड़का थका हुआ था और उसे नींद भी आ रही थी।

एकाएक लड़की उठ खड़ी हुई थी और खोजी निगाहों के साथ कुलाँचे भरती हुई खिड़की से दूसरी तरफ़ कूद गयी। ऐसे में मेज़बान उसे पुकारता रह गया और वह घास के नर्म तख़्तों और कासनी फूलों पर बेख़ौफ़ो-ख़तर चलती आगे ही आगे बढ़ती चली गयी। वह दरख़्तों और झाड़ियों के पीछे छुपे हुए, तनख़्वाह पाने वाले मुलाज़िमों को, दरिन्दों की बनावटी आवाज़ें पैदा करते हुए ढूँढ़ निकालना चाहती थी। ऊपर दरख़्तों की शाखों से उलझते हुए दरिन्दे उसके सिर पर चक्कर खाते उसके साथ-साथ अँधेरे में आगे बढ़ते रहे और वह अपनेआप में मगन मुग़लसराय के पाईं बाग़ से लगे हुए घने जंगल में उतरती चली गयी।

अन्दर सराय के उस नीम-अँधेरे कोने में लड़का हड़बड़ाकर उठ बैठा था और उसे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। नींद में उसे यूँ महसूस हुआ, जैसे कोई उसका नाम लेकर पुकार रहा हो। वह कुछ देर यूँ ही गुमसुम बैठा रहा, फिर उसने लड़की के बारे में पूछा। उस मौक़े पर मेज़बान को उसने पहली बार परेशान देखा। वह अपने सारे तजुर्बों को सामने लाते हुए अपने बातूनीपन का बेमिसाल

प्रदर्शन कर रहा था, लेकिन उसकी काँपती टाँगें और उसके चेहरे पर कोरे लट्ठे के खुलते हुए थान और उसकी आँखें और ज़ुबान की लड़खड़ाहट – सब उसका साथ नहीं दे पा रहे थे।

लड़का अपनी सुनहरी सदरी पर लिपटे हुए पटके में अंड़ासा हुआ जड़ाऊ थीक का मुड़ा हुआ खंजर सँभालता उठ खड़ा हुआ। उसने कानों में पहने हुए सफ़ेद मुँदरे, गले की मालाएँ और जड़ाऊ बाज़ूबन्द वहीं नोचकर फेंक दिये। फिर वह कोने में रखी, माँद पड़ती हुई मशाल को एक हाथ में थामे पाईं बाग़ में उतर गया। सराय का मेज़बान उसके पीछे गिरता–पड़ता चला आता था। नीचे शोर में कान–पड़ती आवाज़ सुनायी न देती थी और लड़का सबसे बेख़बर उसका नाम पुकारता हुआ आगे बढ़ रहा था। आख़िर सुबह की धुँधलाहट में वह वहाँ तक पहुँच ही गया, जहाँ चक्कर खाते और ऊपर से झुकी हुई शाखों में उलझते हुए परिन्दे बावेला कर रहे थे। अचानक क़रीब की झाड़ियों से तीर की तरह दो साये निकले और जंगल की तराई में गुम हो गये।

लड़का उसका नाम लेकर वहीं झुक गया था, बुझी हुई मशाल वहीं पर रह गयी थी और उसके दूसरे हाथ की पकड़ कमर में मुड़े हुए खंजर पर ढीली पड़ रही थी।

सूरज अब धीरे–धीरे ख़ासा ऊपर उठ आया था और मेज़बान कह रहा था, "हुज़ूर, मुग़ल सराय की इन्तिज़ामिया इस तकलीफ़देह वाकिये पर सख़्त शर्मिन्दा हैं। हम ख़ुद हैरान हैं कि पाईं बाग़ और उससे सटे इलाक़े में जाने कैसे–कैसे सचमुच के भेड़िये और गीदड़ों की टोलियाँ घुस आयी हैं। हुज़ूर आप दुखी न हों, मरहूमा की मिट्टी अज़ीज़ (क्रियाकर्म) करने के लिए हमारे अमले को आप बहुत जल्द सरगर्म होते देखेंगे। हमारी हर मुमकिन कोशिश होगी कि आपके नुकसान की भरपाई हो।"

उधर सराय के उस नीम–अँधेरे कोने में, मोटी लाल कालीन पर, दो सफ़री थैले रह गये थे और उनके क़रीब ही चाँदी की ऊँची समावार के नीचे राख उड़ रही थी और बड़े थाल में सूखे मेवे और नक़्क़ाशीदार सुराहियाँ और भारी प्याले ज्यों के त्यों करीने से सजे रखे थे।

गोधरा कैम्प

नईम आरवी

उसके बाल हवा से उड़ रहे थे। चेहरे पर वहशत बरस रही थीं और उसने दोनों हाथों में मज़बूती से कँटीले तारों को पकड़ रखा था। बन्द मुट्ठियों से ख़ून की बूँदें इधर-उधर से रास्ता पाकर कलाइयों पर फिसल रही थीं। वह अपने चारों तरफ़ से बेपरवाह चीख़ रही थी, चिल्ला रही थी :

"शम्स...उद्दीन...शम्सु...द्दीन"

कँटीले तारों के बाहर रेत के एक टीले के क़रीब काफ़ी लोग जमा थे। अन्दर हाते में, चार-पाँच बंगाली औरतें उसे वहाँ से ले जाने की कोशिश करतीं मगर वह तो जैसे पत्थर का बुत बनकर रह गयी थी। किसी चीज़ का असर उस पर नहीं हो रहा था। वह जब चिल्लाने के लिए अपना मुँह खोलती तो उसकी बड़ी-बड़ी सियाह आँखों में भय व पीड़ा की चिनगारियाँ-सी उड़ने लगतीं और उसकी आवाज़ सियाह रात के सन्नाटे में किसी भटकती हुई बैचेन आत्मा की आवाज़-सी प्रतीत होती, "शम्सु...शम्सु...उद्दीन..."

टीले के क़रीब उधर से गुज़रने वाले इक्का-दुक्का राहगीर वस्तुस्थिति जानने के लिए कुछ देर के लिए रुक जाते। इस तरह वहाँ अच्छी-ख़ासी भीड़ लग जाती। आपस में कानाफूसी और टीका-टिप्पणी होने लगती।

एक नौजवान लड़का जो सूरत-शक्ल से मोटर मेकेनिक मालूम होता था, बड़ी देर से लोगों की हवाइयाँ सुन-सुनकर उकता गया था, ने ख़ास शरणार्थियों वाले लहजे में बताया कि मैं यहाँ से क़रीब रहता हूँ, यह औरत पागल है। हर रोज़ तमाशा करती है। पहले दिन हमें भी बड़ी जिज्ञासा रही। दरअसल बात यह है कि उसका शौहर भी फ़ौज में था, एटाबाद में पोस्टिंग थी। एक दिन मौक़ा पाकर बंगालियों के साथ, जो उसके साथ फ़ौज में थे, फरार होकर ढाका पहुँच गया और वहाँ मुक्तिवाहनी के साथ लड़ता हुआ किसी मोर्चे पर मारा गया। उसकी मौत की ख़बर

जब उसकी बीबी को मिली तो वह अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठी। अक्सर जब उस पर दौरे पड़ते हैं तो वह काँटेदार तारों को पकड़कर इसी तरह चीख़ती–चिल्लाती है। शमसुद्दीन उसके शौहर का नाम है। नौजवान लड़के ने कहानी ख़त्म करके विजयी अन्दाज़ में उन लोगों की तरफ़ देखा जो एक दायरे में खड़े हुए बड़ी दिलचस्पी के साथ कहानी सुन रहे थे।

"अच्छा तो यह पागल है और ग़द्दार बंगाली की बीवी है।"

"जी हाँ।"

"पागल है?"

"जी हाँ।"

"ठीक...ठीक"

तमाशाइयों की भीड़ छँट गयी। थोड़ी देर में वहाँ सन्नाटा छा गया और रेत का टीला तेज़ धूप की गर्मी में सनसनाने लगा। वहाँ से पागल औरत भी जा चुकी थी। काँटेदार तारों में उसकी साड़ी का फटा हुआ पल्लू मुर्दा जिस्म की तरह झूल रहा था। मगर उसकी दिल छील देने वाली चीख़ों की प्रतिध्वनि लम्बे–चौड़े मैदान में अब भी मँडरा रही थी।

"शम्सु...शम्सुद्दीन..."

गोधरा कैम्प के क़रीब काफ़ी अरसे से फ़्लैट बन रहे थे। रेंग–रेंगकर, आहिस्ता–आहिस्ता। शुरू में थोड़ी–सी दिलचस्पी रही फिर निगाहें उकता गयीं। गाड़ी उधर से गुज़र जाती मगर ख़याल तक न आता कि इस लम्बे–चौड़े रेत के मैदान में बन रहे फ़्लैटों में थोड़े दिनों के बाद ज़िन्दगी की गर्मी दौड़ जायेगी और सुनसान क्षेत्र जहाँ आदम न आदमजाद, आबादी में तब्दील होकर कुछ मुद्दत के लिए इन्सानी निगाहों का मरकज बन जायेगा और जब हम उसे देख–देखकर थक जायेंगे तो फिर उसकी तरफ़ से मुँह मोड़कर शान से गुज़र जायेंगे। कभी कहीं ज़िक्र आ जायेगा तो बड़ी उकताहट से कह देंगे, "हाँ गोधरा कैम्प हमारे रास्ते में पड़ता है।"

मगर यह बात भी तय है कि हर काम हमारी सोच के मुताबिक़ नहीं होता, अक्सर हम जो सोचते हैं, जो मंसूबे बनाते हैं, उसके बिल्कुल उल्टी बातें सामने आती हैं और हमारी कल्पना के ख़ाके पुरजे–पुरजे होकर बिखर जाते हैं। गोधरा कैम्प के सामने से गुज़रना मेरा रोज़ का मामूल था और अब उसकी तामीर में मेरी कोई दिलचस्पी न थी। लेकिन उस दिन मेरी हैरत की सीमा न रही जब मैंने देखा, दो बुलडोज़र बड़ी तेज़ी से अहाते की ज़मीन को बराबर कर रहे थे और उसके चारों तरफ़ काँटेदार तारों की बाड़ लगायी जा रही थी। दूसरे महायुद्ध की फ़िल्मों की तरह हूबहू ज़ंगी क़ैदियों का कैम्प दिखायी दे रहा था। अहाते के दरवाज़े पर चौकी क़ायम

हो चुकी थीं और रात के वक़्त भारी-भारी सर्चलाइटों की रौशनी से पूरा इलाक़ा जो हर वक़्त गहरी तारीकी में डूबा रहता था इस वक़्त दिन का समाँ पेश कर रहा था – बेशुमार मज़दूर ज़ोर-शोर से काम में मसरूफ़ थे।

मैंने अपना चश्मा साफ़ करके उस तब्दीली को एक बार फिर बड़ी हैरत से देखा तो मेरी सीट के क़रीब बैठे एक अधेड़ उम्र के देशभक्त शहरी ने खशखशी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा, "अलहम्दो लिल्लाह कि ग़द्दार बंगालियों को ग्राउण्ड कर दिया गया।" मैं समझा नहीं। मेरे लहजे़ की हैरत व मासूमियत का लुत्फ़ लेते हुए वह बोला "मैं डिफेंस सोसाइटी के लिए बँगले में काम करता हूँ उसका मालिक एक रिटायर्ड कर्नल है, उसने मुझे बताया कि गोधरा कैम्प में जो फ़्लैट्स तामीर हो रहे हैं उनको फिलहाल कैम्प में तब्दील कर दिया गया है। उसमें ग्राउण्ड किये जाने वाले एयरफोर्स के बंगाली अफ़सरों की फैमिली रहेगी। उन्हें एक तरह से ज़ेरे हिरासत रखा जायेगा।" बड़े मियाँ ने निहायत सावधानी से दाढ़ी में उँगलियों से कंघी करते हुए कहा, "अजी ये लोग तो सँपौलिए निकले, मुसलमान होते हुए कमबख़्त हिन्दुओं से मिल गये। पाकिस्तान को तबाह कर दिया। चार साढ़े-चार फुट के इन काले-कलूटों ने हमें बड़ा तंग किया। अच्छा हुआ जो इनसे छुटकारा मिल गया। आख़िर पाकिस्तान इनका बोझ कब तक बरदाश्त करता।"

गोधरा कैम्प या नज़रबन्दी कैम्प बंगाली ख़ानदानों से आबाद हो चुका था। उधर गुज़रते हुए निगाहें ज़रूर उठ जाती। छह मंज़िला फ़्लैटों की पाँच इमारतें एक दूसरे के पहलू में स्वप्निल-स्वप्निल-सी नज़र आतीं। सीढ़ियों के क़रीब ही दीवार के साथ सुबह व शाम के वक़्त चन्द बैंचे डाल दी जाती। उन पर अक्सर अधेड़ उम्र के बंगाली जिनकी ठोड़ियों पर चुनगी दाढ़ी उगी होती और जिनकी छोटी-छोटी आँखों के नीचे मकड़ी की जालियाँ तनी होतीं, बड़े ध्यान से डान और पाकिस्तान टाइम्स पढ़ते नज़र आते। लुंगी और बनियान में वे दूर से पहचान में आ जाते। उनके क़रीब ही साँवले-सलौने बच्चे दौड़ते-भागते, चीख़ते-चिल्लाते, गेंद-बल्ला खेलते रहते, कभी कोई बड़े मियाँ, बच्चों के शोर से तंग आ जाते तो रुककर दाढ़ी खुजाते और नाक की फुन्गी पर अटके हुए चश्मे के ऊपरी हिस्से से घूरते हुए बड़ी ज़ोर से घुड़कते, "ए छेले, गुण्डो गोल करो ना"। कभी-कभी किसी फ़्लैट की खिड़की खुलती और कोई औरत अपना सारा बोझ खिड़की पर डालकर चिल्लाती, "ताड़ा-ताड़ी एश्शू।"

यह रोज़ का मामूल था। काँटेदार तारों पर भीगे हुए कपड़े, साड़ी, लुँगी, लिहाफ़, बनियान, बच्चों के निकर हवा और चमकदार धूप में गोली खाये जिस्मों की तरह झूलते रहते। गोधरा कैम्प में पहरे का बड़ा सख़्त इन्तज़ाम था। मेनगेट पर

एक चौकी बनी हुई थी, जिस पर बैठा हुआ सशस्त्र पहरेदार इजाज़तनामे के बग़ैर किसी बाहरी आदमी को अन्दर व अन्दर से बाहर न जाने देता। चौकी के साथ ही कैम्प था जिसमें ड्यूटी देने वाले सन्तरी अपनी बारी से आराम व छुट्टी के वक़्त गुज़ारते। पागल औरत चीख़ती-चिल्लाती जब कभी काँटेदार तारों को झिंझोरती हुई अपने हाथों को लहुलूहान कर लेती तो कोई पहरेदार आख़िर इन्सानी जज़्बात से मजबूर होकर पहुँच जाता और उसे वहाँ से ले जाने में मदद देता।

काफ़ी दिन गुज़र गये उस मंज़र में कोई तब्दीली न हुई। इलाक़े वाले भी मायूस हो गये। अलबत्ता जब कभी सफ़र के दौरान बसों व मिनी बसों में सियासत की बात छिड़ जाती तो उसमें बैठे लोग बंगालियों की "ग़द्दारी" पर दुख से हाथ ज़रूर मलते। "बंगाली न किसी के होते हैं और न होंगे, एक दिन देखना भारत की भी ऐसी-तैसी कर देंगे।" "...मुजीब ग़द्दार है, शुरू से अलग होने की साज़िश कर रहा था।" "...यह सब कहने की बातें हैं, बंगालियों से ज़्यादा वतन से प्यार करने वाला और कौन है। पूर्वी बंगाल ने सबसे पहले पाकिस्तान के हक़ में राय दी थी। शेरे बंगाल फ़ज़्लुलहक़ ने करारदाद पाकिस्तान पेश की थी।"

"बकवास है, क़ायदे आजम की किसने मुख़ालिफ़त की थी, जब उन्होंने ढाका में कहा था कि पाकिस्तान की सिर्फ़ एक क़ौमी ज़बान उर्दू है। किन लोगों ने उनके ख़िलाफ़ नारे लगाये, कौन कहता है मशरिकी पाकिस्तान को मगरिबी पाकिस्तान ने लूटा। यह नफ़रत तास्सुब और इलाक़ापरस्ती के बीज कौन बोता है, सबको मालूम है।"

"न मुजीब ग़द्दार है और न बंगाली साज़िशी। न मशरिकी पाकिस्तान को मगरिबी पाकिस्तान के अवाम ने लूटा। दोनों जगहों के अवाम ग़रीब और एक ही जैसे हालात के शिकार हैं, लूटने वाले वहाँ भी चैन से हैं और यहाँ भी आराम से। पाकिस्तान सियासतदानों की काली करतूतों से टूटा, नाइन्साफ़ी और ग़रीबी की वजह से अलग हुआ।" यह पढ़े-लिखे एक तीसरे साहब का तबसिरा था। कुछ लोग सहमति में ज़ोर-ज़ोर से गरदन हिलाने लगे और जो लोग सहमत न थे वे बदमजगी से मुँह चलाते हुए खिड़की से बाहर देखने लगते।

"कम्युनिस्ट हैं स्साले... कम्युनिस्ट।"

"भाई मियाँ, मैं तो कहूँ कि सारी ज़िम्मेदारी याहिया पर आती है, साले रंगीले ताजदार ने मुल्क़ का बेड़ा गर्क कर दिया।"

"याहिया क्यों, भुट्टो को क्यों नहीं इल्जाम देते। उसी ने तो कहा था कि ख़ुदा ने पाकिस्तान को बचा लिया। कहाँ बचा पाकिस्तान? टण्टा हो गया, मरवा दिया स्साले ने।"

"भुट्टो ने क्या किया?"

"याहिया को ग़लत मशविरा दिया। हुकूमत को अँधेरे में रखा। फ़ौज को ज़लीलोख़्वार किया। क्या महज इक्तदार हासिल करने के लिए?"

"अगर भुट्टो ने ग़लत मशविरा दिया तो याहिया ख़ाँ और उसके सलाहकारों की अक्ल पर क्या पत्थर पड़ गया था। भई यह क्यों नहीं कहते कि यह सब मार्शल ला का किया धरा है। जहाँ मार्शल ला, वहाँ सबकुछ मुमकिन। कुसूर तो उन लोगों का है जो इक्तदार की कुर्सी पर बैठे हुए थे। भुट्टो को नहीं याहिया को पकड़ो जो सियाह सफ़ेद के मालिक हैं।"

"और वो लोग क्या तुम्हारे बाबा लगते हैं जो धानमण्डी जाते हुए अपनी कारों पर बांग्लादेश का परचम लगाते थे।"

कभी-कभी जब बातचीत इस बिन्दु पर आ जाती तो झगड़े की नौबत आ जाती। तू-तकार के बाद गाली-गलौज और हाथापाई शुरू हो जाती। लेकिन ज़्यादातर तो होता यह कि बहस-मुबाहिसा और कठहुज्जती किसी बड़े हंगामे में तब्दील न होती। चन्द लम्हों के बाद जज़्बात में उबाल कम होता तो सब ठण्डे पड़ जाते। लड़ने-भिड़ने की ताक़त कहाँ रह जाती है। इस क़िस्म के बहस-मुबाहिसे और झगड़े के दौरान एक दिलचस्प बात अमूमन नज़र आती। कोई ऊँघता हुआ मुसाफ़िर शोर सुनकर हड़बड़ाकर आँखें खोलता, कुछ देर हालात का जायजा लेता और फिर किसी न किसी लहजे में समझदारी के फूल बिखेरता, "भाइयो, आपस में क्यों लड़ते हो, लड़ाने वालों को क्यों नहीं पकड़ते। क्या हमारे नसीब में ऊपरवालों के इशारों पर नाचना और लड़ना ही रह गया है च्च...च्च...।"

गोधरा कैम्प के क़रीब मिनी बस एक धक्के के साथ रुक गयी। काफ़ी देर से मुसाफ़िर खड़े थे। मेरी निगाह ग़ैरइरादी तौर पर कैम्प की जानिब उठ गयी। एक बार फिर मुझ पर हैरतों के पहाड़ टूट पड़े। पूरा कैम्प ख़ाली पड़ा भाँय-भाँय कर रहा था। मुख्य द्वार पर म्यानवाली और झेलम के लम्बे-तड़गे, बड़ी मूँछों और सुर्ख़ आँखों वाले पहरेदार भी मौजूद नहीं थे। मेनगेट का एक बड़ा दरवाज़ा तिरछा, होकर खुला हुआ था। मैदान में अखवरात के फटे हुए पन्ने, चिपके फटे-पुराने तकियों की रूई हवा के तेज़ झक्कड़ से उड़ती फिर रही थीं। बेंचें ग़ायब थीं। चुग्गी दाढ़ीवाले अधेड़ उम्र के बंगाली जो बड़े ध्यान से डान और पाकिस्तान टाइम्स पढ़ा करते थे और बच्चों को उनकी शरारतों पर डाँटते थे और वह बंगाली औरतें जो सारा-सारा दिन बावर्चीख़ाने में काम करतीं और कभी-कभी खिड़की से सिर निकालकर अपने बच्चों को पुकारती थीं और वे सारे साँवले-सलोने छोटे-छोटे बच्चे और बच्चियाँ जो मैदान में खेलती और लड़ती-झगड़ती थीं, कहीं चली गयी थीं। पाँचों फ़्लैटों की

इमारतों के कमरे और खिड़कियाँ मुर्दे की आँख की तरह तारीक, गहरी और भयानक दिखायी दे रही थीं। ज़िन्दगी के सारे आसार ग़ायब थे।

मैंने न चाहते हुए भी क़रीबी सीट पर बैठे हुए जुकामशुदा शख़्स से सवाल किया तो उसने सबसे पहले मेरा जायजा लिया। सुड़-सुड़ करती नाक को उसने कई बार अपनी मोटी-भद्दी और निशानजदा उँगलियों को पोंछा। इसके बाद उसने भर्रायी हुई आवाज़ में जवाब दिया, "बंगाली थे, बांग्लादेश चले गये। भुट्टो ने मुजीब और बंगालियों को छोड़कर बहुत बुरा किया। पहले बिहारियों का मसला तय करना चाहिए था जिन पर वहाँ क़यामतें टूट रही हैं। बेचारे बिहारी...।"

काफ़ी दिनों तक कैम्प वीरान पड़ा रहा। मैं सोचता, अब यह फ़्लैट दूसरों को एलॉट किये जायेंगे। मेरी ख़्वाहिश थी कि मैं इन फ़्लैटों को अन्दर से देखता। बंगाली जिस मानसिक दबाव से गुज़र गये थे, यक़ीनन मुख़्तलिफ़ शक्लों में उसकी निशानियाँ छोड़ गये होंगे। उनका अध्ययन एक दिलचस्प तजुर्बा होता। नये आने वाले तो दीवारों, फ़र्श और छतों पर रंग-रोगन करके उन तमाम निशानियों को हर्फ़ग़लत की तरह मिटा देंगे। भला उन्हें इस बात से क्या दिलचस्पी हो सकती हैं।

मामूल की आम्दोरफ्त में मजीद एक हफ़्ता गुज़र गया। गोधरा कैम्प में कोई ख़ास तब्दीली नज़र न आयी। मेरी दिलचस्पी धीरे-धीरे कम हो रही थीं कि एक दिन फिर हैरतअंगेज मंज़र फ़िल्मों की तरह निगाहों के सामने घूम गया। बिल्कुल बंगालियों से मिलते-जुलते लोग मैदान में घूम रहे थे। उसी तरह साँवले-सलोने बच्चे मैदान में खेल रहे थे। गन्दे, नंगे-धड़ंगे। मर्दों के चेहरों पर ख़ाक उड़ रही थी और औरतें थकी-थकी, निढाल बेजान क़दमों के सारे सहारे कामकाज में मसरूफ़ थीं। उनकी आँखों में मायूसी और चेहरे पर दहशत की परछाईयाँ डरावने ख़्वाब का क़िस्सा सुना रही थीं। मैं मिनी बस से उतरकर बड़े क़रीब से मुहब्बे वतन बिहारियों के पहले लुटे-पिटे काफ़िले का जायजा ले रहा था। पुलिस और फ़ौज का पहरा न था बस इतना ही यहाँ से जाने वाले बंगालियों और वहाँ से आने वाले बिहारियों में फ़र्क़ था। बाक़ी सबकुछ एक जैसा था। इन्सान के हाथों के क़त्ल होने का हौलनाक मंज़र।

काँटेदार तारों के क़रीब एक अधेड़ उम्र की औरत बैठी हुई ज़मीन पर लकीरें खींच रही थी। बिहारी औरत चाहे कुछ हो जाये सिर पर आँचल ज़रूर डालती है। मगर उसका सिर नंगा था, साड़ी मैली और उस पर जगह-जगह पैबन्द लगे थे। मुझे क़रीब देखकर सिर उठाया। क्या बताऊँ उसकी सादी आँखों में क्या था। वह कई लम्हें मुझे ख़ाली-ख़ाली निगाहों से घूरती रही। फिर अचानक उठ खड़ी हुई और मेरे क़रीब आकर सवाल किया।

“निहाल मिला था – निहाल, बबुआ निहाल मिल जाये तो कहियो तुम्हारी माँ इन्तज़ार करत हैं।”

शाम को जब वापिस हुआ तो मिनी बस मुसाफ़िरों से खचाखच भरी हुई थी। गोधरे पर गाड़ी पहुँची तो एक नौजवान ने जो सूरत-शक्ल और लिबास से सब्ज़ी फरोश मालूम हो रहा था, खिड़की के शीशे जल्दी से खोलकर कैम्प की जानिब देखा। उसके होंठों पर बड़ी मानीखेज मुस्कुराहट थी। उसने अपने दूसरे साथियों से जो पूरी सीट पर क़ब्ज़ा जमाये बैठे थे, कहा, “रशीदे, कल चलेंगे, सुना है बहुत-सी बे आसरा लौंडियाँ आयी हुई हैं।”

कोल्हू का बैल

अहमद जावेद

मैं आग से गुज़रता हूँ।

मुझे ख़बर है, यह आग आगे-इब्राहीमी नहीं जो गुल-ओ-गुलजार होगी कि मुझे पण्डितों का सामना है कि जिन्होंने मन्त्र फूँक-फूँककर मुझे राख किया है।

तुम अपने जिस्मों की सेज पर ख़ुद से उलझते हो और मैं आग से गुज़रता हूँ। मैं ऐसे कब तक ज़िन्दा रहूँगा कि आग मेरे जिस्म की नस-नस में सुलगती है।

मैं अब माँगता हूँ उन आँखों को जो निकाल दी गयीं। उन हाथों को जो काट दिये गये।

आर्यों – मैं आर्य नहीं था – न सही – ब्रहमनज़ादों, तुमने मेरे शूद्र होने का ऐलान किया – मुझसे मेरी आवाज़ें – सुनने की शक्ति छीन ली – चलो भुला दिया – मगर अब मुझे वह शक्ति चाहिए।

"हे महाराज – यह म्लेच्छ है, इसके कानों में पिघला हुआ सीसा डालो"

"– क्यों?"

मुझे मेरी क्यों वापस करो – ब्रहमन ज़ादो – मुझसे मेरी क्यों वापस करो कि उसने अब आके मेरे अन्दर बहुत फितूर पैदा किया है।

और ऐ हमलावरो मेरे सीने से तलवार की नोंक हटाओ – मुझे इन्साफ़ चाहिए – मुझे मेरी कटी हुई ज़बान चाहिए।

मुझे मेरा सिर चाहिए कि जो तन सके या उसे तन से जुदा करो – यह मेरा नहीं – इसमें कुछ भी मेरा नहीं – ये हाथ, ये आँखें, ये कान, यह सिर – यह मेरे नहीं – मैं तुम्हें तुम्हारे दिये हुए सम्मान लौटाता हूँ – मुझे मेरा वजूद वापस करो।

हे दाता – कुछ तू ही बोल – कि मैं बड़े अजाब में हूँ।

ऐ ऊँची शान वाले, तेरे परचम सदा बुलन्द रहें, मुझे कोई भी परचम दे कि मेरा जिस्म उजड़े हुए वतन की मानिन्द हो गया कि जिसका कोई परचम नहीं, मुझे भी कोई परचम दे – हे दाता, मेरे जिस्म की नस-नस में हमला करने वालों के घोड़ों

की टापें आकर रुक गयी हैं – मैं मुसलसल अजाब में हूँ – तुझे तो ख़बर है कि मुझे किस-किस ने बरबाद किया – ऊँचे कलशों वाले तेरा परचम सदा बुलन्द रहे, मुझे भी कोई परचम दे कि मैं ज़ंग की हालत में हूँ।

मुझे तौफ़ीक़ हो कि अली-अली करके अपने वजूद से बाहर आऊँ – या अली।

या अली तू इल्म का दरवाज़ा है। मैं तुझे सलाम करता हूँ – तू, तू है – ये कौन हैं, जो तेरा नाम लेकर मुझपे चढ़ दौड़ते हैं...

तुम देखो कि मैं सदियों से उनके अजाब झेलता हूँ – पहले मुझे अपनी भेड़-बकरियों के साथ हाँका, फिर हल में जोत दिया। अब हण्टर मार-मार नाश करते हैं कि मैं कोल्हू का बैल हो गया हूँ। कुछ दिन जाने दो फिर कोई मुझे चढ़ावा भी नहीं चढ़ायेगा – कुरबानी भी नहीं देगा कि मेरे घर धँस चुके हैं। मरूँगा तो शहर से फिंकवाया जाऊँगा कि बदबू न फैले। फिर गिद्ध नोच खायेंगे, जो मेरे इधर-उधर इकट्ठे हो गये हैं – कव्वे तो अभी से मेरी पीठ पर सवार हैं और ज़ख़्मों में चोंचे मार-मार हलक़ान करते हैं। दुम पर मक्खियाँ भुनभुनाती हैं। न सिर में ताव कि उठ सकूँ। न दुम में ताव कि हिला सकूँ – पाँव उठते नहीं मगर चला जाता हूँ – एक ही दायरे में, एक ही चक्कर में – हज़ारों लाखों करोड़ों मील चल चुका हूँ, मगर एक दायरे में – मुझे हाँकने वाले कहाँ से कहाँ पहुँच गये, मैं एक ही चक्कर में एक दायरे में –

"वेल – अब हम जाता है – आज से यह बैल तुम्हारा – उदास नहीं हो हम उधर से तुम्हारा वास्ते गर्म कपड़ा भेजेगा – दूध और घी – और बारूद – ख़ूब ठस-ठस चलाओ – आज से यह बैल तुम्हारा – उदास नहीं होना। हम जिधर भी रहा, तुम्हारा बीच होगा। टो – वेल – बाय"

"बाय, ख़ुदा हुज़ूर का इकबाल बुलन्द रखे..."

यह कौन था? और तुम कौन हो? मैं बैल नहीं हूँ – मेरी आँख से पट्टी खोलो।

मेरी माँ ने मुझे चढ़ावे देकर पाया है – मैं बैल नहीं हूँ – मुझे मेरा वजूद वापस करो।

मुझे कोई दाता नहीं। मैं सय्यदज़ादा नहीं – न सही। मैं ब्रहमनज़ादा न सही। मेरे आबाओ अजदाद (पूर्वज) नजफ़ बुख़ारा से नहीं आये – चलो न आये – विक्रमाजीत और बैताल विक्रम मेरी कहानी नहीं, न सही – यह मेरा इतिहास नहीं, न सही। मुझे कोई दावा नहीं। मैं वह सही जिसे तुम धकेलते हुए, हाँकते हुए अपने गल्ले के बाड़े में ले आये।

मैं शूद्र हूँ – चलो हूँ।

मैं सिकन्दरे-आज़म की फ़ौज के किसी सिपाही की नाजायज़ औलाद हूँ – हाँ हूँ। तुम कौन हो?

तुम कौन हो? जो मेरे घर की बुनियादों में धूनी रमाकर बैठ गये, तुम्हारे जिस्मों के जन्म से अब तो मेरा घर सुलगने लगा है – मुझे मेरा घर वापस दो।

मुझे मेरा घर दो कि मेरी माँ चौखट पे खड़ी मेरी राह देखती है।

कण्ठ बजाकर श्लोक न पढ़ो – शोर न मचाओ – मैं अपने अन्दर की सारी चीखें सुनता हूँ। इधर। मेरे वजूद में आग, इधर भी घर में आग। और एक तुम कि मुझे आसेब से डराते हो, आसमान के नीचे से हाथ निकालो – अगर वह है तो उसे तुम्हारे सहारे की ज़रूरत नहीं – और अगर वह नहीं तो फिर नहीं। छत है कि चटखती है – उसके नीचे हाथ दो उसके अजाब से डरो। मेरी रस्सियाँ खोलो कि कहीं उसकी आँखें धुँधला ही न जायें।

माँ ठहर अभी – यह दुआ माँग – न माँग।

मैं माँगती हूँ – मुझे ऐबदार जवान नहीं चाहिए – नहीं चाहिए – मुझे बेटे नहीं चाहिए हैं – ऐसे लगँड़े, लूले, अपाहिज, आसेब ज़दा बेटे (प्रेत) नहीं चाहिए। मुझे आग से गुज़रने वाली बेटियाँ दे दे, दाता बेटियाँ दे दे।

ये मैं क्या सुनता हूँ – वह दीवारों से लिपटकर रोती है और आसेब उसे डराते हैं – धुआँ है और उसकी आँखें धुँधलाती है। छत की कड़ियाँ भी चिटखती हैं तो वह खम्भों को थामकर थर-थर काँपती है। आग उसके पाँव पर पहुँचेगी तो क्या होगा – उसके जिस्म को जायेगी तो क्या होगा – दीवारें गिरेंगी तो क्या होगा – छत चिटखेगी तो क्या होगा।

क्या तुम्हारी कोई माँ नहीं –

यहाँ आग है। वहाँ आग है – मैं सुलगता हूँ – तुम नहीं सुलगते – ज़ालिमों क्यों हण्टर मार-मारकर मेरा नाश करते हो – मैं कोल्हू का बैल नहीं, अपनी आँखों से पट्टी खोलो – तुम कौन हो?

इक्कीसवीं सदी की पहली कहानी

मसऊद अशअर

"अमेरिका ऑन लाइन और टाइम वार्नर एक हो गये हैं और उन्होंने ई.एम.आई. भी ख़रीद लिया है। बेचम वेलकम और ग्लैक्सो भी आपस में मिल गये हैं, बिल गेट्स ने एम.डी. के ओहदे से इस्तीफ़ा दे दिया है। टेड टर्नर और जेन फोण्डा में अलहदगी हो गयी है और चार्ली ब्राउन मर गया।"

अहमद ने एक ही साँस में ये सारी ख़बरे ऐमन को सुनायी और कहा, "अब तुम हमें अच्छी-सी चाय पिला दो कि हमने एक मिनट में तुम्हारी मालूमात में इतना इज़ाफ़ा कर दिया है कि दिनभर अख़बार पढ़ती रहती तब भी तुम्हें इतनी बातें मालूम न होतीं। और अगर तुम्हें ये बातें मालूम न होतीं तो तुम नयी सदी के इतने अहम वाक़यात के इल्म से महरूम रह जाती। और अगर इन मालूमात से महरूम रह जाती तो फिर तुम अपनी शादी के इमकान से महरूम रह जाती कि इन्फॉर्मेशन टेक्नालॉजी का ज़माना है और इस ज़माने में...शादियाँ इण्टरनेट पर हो रही हैं यक़ीन न हो तो फ़ोन करो वाशिंगटन और मालूम करो अपने कजिन से कि उसने अमरीका में बैठकर आस्ट्रेलिया की लड़की से शादी कैसे की है।"

अब ऐमन की बारी थी उसने जवाब दिया – "इस ज़हमत का बहुत-बहुत शुक्रिया। मगर ये सारी बातें हमें पहले ही मालूम हैं कि हमें भी इण्टरनेट देखना आता है। ये और बात है कि तुम्हारी तरह हमें इण्टरनेट का नशा नहीं है कि सुबह से रात गये तक कम्प्यूटर के सामने बैठे अपनी आँखें फोड़ती रहें। दूसरे... ठहर जाओ... हमें बात पूरी करने दो... दूसरे, वाक़यात से या उन वाक़यात का इल्म होने न होने से हमारी सेहत पर कोई असर नहीं पड़ेगा। हत्ता कि हमारी क़ौम का एक बाल भी बाँका नहीं होगा कि हम जहाँ हैं वहीं रहेंगे। और शादी करो तुम और तुम्हारे होते-सोते। हमारे इरादे नहीं हैं शादी-वादी करने के। अब रही चाय तो अव्वल तो हम आपके लिए चाय बनाने से रहे। दूसरे इस घर में हर काम का वक़्त मुक़र्रर है। चाय तीसरे पहर पाँच बजे मिलती है, रात के दस बजे नहीं। इस वक़्त सिर्फ़ दूध

मिलता है और वो भी सिर्फ़ तुम्हें कि तुम अपनी दादी जान के लाडले हो। तुम्हारे लिए दूध ज़रूरी है कि तुम लड़के हो। हमारे लिए ज़रूरी नहीं हम लड़की हैं। जाओ देखो वो तुम्हारे लिए गर्म दूध लिए बैठी होंगी जल्दी जाओ वरना दादी ख़ुद ही यहाँ आ जायेंगी।"

ये उन दोनों को खेल था जो वो ज़बान के साथ खेला करते थे क्यूँकि दादी उनसे पुरानी कहानियाँ और दास्तानें पढ़वाकर सुनती थीं। दादी ने सारी उम्र यही ज़बान पढ़ी और पढ़ाई थी। वो कहती थीं कि तुम स्कूलों-कालिजों में तो ये ज़बान पढ़ते नहीं, इन कहानियों में ही पढ़ लो। इस बहाने तुम्हारे अख़्लाक़-ओ-आदाब भी दुरुस्त होंगे। तुम्हें अपने रस्म-ओ-रिवाज़ का भी पता चलेगा और तुम्हारी ज़बान भी ठीक हो जायेगी। दादी के सामने तो वो इस ज़बान का मज़ाक़ उड़ा नहीं सकते थे इसीलिए अकेले में वो इसी ज़बान में बात करते और ख़ुश होते थे। ये ज़बान उन्हें मज़ाक़ ही नहीं लगती थी ना।

"मगर ये चार्ली ब्राउन कौन था?" ऐमन ने झुँझलाकर कहा।

"देखा ना, अभी कह रही थीं कि मुझे सब मालूम है और अब पूछ रही है चार्ली ब्राउन कौन था। फिर पूछेंगी कि ये टेड टर्नर कौन है और जेन फोण्डा क्या बेचती है।"

"ख़ैर टेड को तो मैं जानती हूँ। वही बदशक्ल सफ़ेद बालोंवाला बुड्ढा जिसने इतनी ख़ूबसूरत जेन फोण्डा से शादी की है..."

"और जेन फोण्डा को इसीलिए जानती हो कि अम्मी ने तुम्हें उसकी वीडियो ला दी है उसे देख-देखकर दुबली-पतली होने के लिए एक्सरसाइज़ करती रहो..."

"सच्ची बात बताऊँ?" अब अहमद भी शर्मिन्दा हो रहा था – "इतना तो मुझे मालूम है कि चार्ली ब्राउन एक कार्टून कैरेक्टर है मगर ये समझ नहीं आ रहा है कि उसके बन्द हो जाने पर इतना रोना-पीटना क्यूँ मच रहा है। मैं इस बारे में इण्टरनेट पर देख ही रहा था कि तुम टपक पड़ीं और अब तो हमारा वक़्त ख़त्म हो चुका है।"

"अच्छा अम्मी से पूछेंगे।"

"अम्मी से नहीं अब्बू से। अम्मी ये पख़ नहीं पालतीं। वो सिर्फ़ अपना सब्जेक्ट ही पढ़ना जानती हैं। बाक़ी बातों में वक़्त ज़ाया नहीं करतीं। हाँ अब्बू को मालूम होगा। ये उनके ज़माने का ही कार्टून है।"

रात के दस बज चुके थे और इण्टरनेट पर उन दोनों का वक़्त ख़त्म हो चुका है। उन दोनों को रात नौ बजे से दस बजे तक इण्टरनेट खोलने की इजाज़त थी। आधा घण्टा ऐमन का। वैसे उन्हें इजाज़त थी कि वो जिस वक़्त चाहें कम्प्यूटर पर अपने स्कूल और कॉलिज के प्रोजेक्ट तैयार करें या सी.डी. लगाकर गाने देखें और सुने या फिर हरकुलीज़ जैसे गेम्स पर दिमाग़ लड़ाएँ कि रिफ़्लेक्सेज़ तेज़ करने के

लिए ये गेम्स इन्तिहाई ज़रूरी हैं। टोफेल और सेट के इम्तिहानों में यही हाज़िर दिमाग़ी और रिफ्लेक्सेज की यही तेज़ी तो काम आती है। और उन्हें ये दोनों इम्तिहान देने थे कि अमेरिका जाना था। लेकिन इण्टरनेट रात के दो बजे से पहले नहीं खुल सकता था। घर में टेलीफ़ोन एक ही था और अम्मी अब्बू और दादी के फ़ोन आते रहते थे। मोबाइल अब्बू के पास रहता था जो अक्सर घर से बाहरी भाग–दौड़ में लगे रहते थे। दस बजे के बाद कोई और इण्टरनेट इसीलिए नहीं खोल सकता था कि दस से बारह साढ़े बारह बजे तक अब्बू का वक़्त होता था। अम्मी को सिरे से ही दिलचस्पी नहीं थी बल्कि उन्हें तो किताबों से ही फ़ुरसत नहीं मिलती थी कि वो कम्प्यूटर खोलकर बैठती। इसीलिए उन्होंने कम्प्यूटर को हाथ लगाना ही नहीं सीखा था। उन्हें तो किसी को ई–मेल भी करना होता तो उन दोनों में से किसी से कहतीं – ज़रा ई–मेल कर दो – फिर वो बोलती जातीं। और उनमें से कोई कम्पोज़ करता जाता। वैसे अम्मी को इसकी ज़रूरत भी सिर्फ़ उस वक़्त पड़ती थी जब अब्बू शहर से बाहर होते वरना अपने और अम्मी के ई–मेल अब्बू ही करते थे। दादी को शौक़ हुआ था कम्प्यूटर सीखने का मगर वो जल्दी ही बोर हो गयी थीं। अब्बू रात को ठीक दस बजे इण्टरनेट पर ऐसे बैठते जैसे बहुत ज़रूरी काम कर रहे हों। आम तौर पर वो अकेले ही होते लेकिन कभी–कभी वो अम्मी को भी बुला लेते थे और फिर उन दोनों के हँसने की आवाज़ दूसरे कमरों तक सुनायी देती थी।

"अब्बू चार्ली ब्राउन मर गया।" अहमद ने किसी भूमिका के बग़ैर एकदम ऐलान कर दिया। उसका ख़याल था कि ये ख़बर सुनकर अब्बू को भी ऐसा ही सदमा होगा जैसा दुनिया भर में महसूस किया जा रहा था। ये दूसरी शाम की बात है। अब्बू उसी वक़्त बाहर से आये थे और बेवक़्त चाय पी रहे थे कि अम्मी के हिसाब से छह बजे चाय नहीं पी जा सकती। दादी और अम्मी भी साथ ही बैठी थीं। सामने टी.वी. खुला था जिसे कोई भी नहीं देख रहा था।

"कौन मर गया?" अब्बू के बजाय दादी ने सवाल किया। किसी के मरने–जीने की सबसे ज़्यादा फ़िक्र उन्हीं को होती थी।

"चार्ली ब्राउन। आप जानती हैं उसको?" अहमद ने अपनी दादी से मज़ाक़ किया। दादी अख़बार पढ़ती थीं। अंग्रेज़ी अख़बार सरसरी ही देख लिया करती थीं।

"तेरा कोई दोस्त था?" अब्बू को जवाब देने का अभी तक कोई मौक़ा ही नहीं मिला था। अभी दादी की जिरह ही जारी थी।

"हाँ मेरा दोस्त था..." उसने फिर दादी को छेड़ा।

"तुमने फिर वही कहा।" दादी ने हस्बेमामूल उसकी ज़बान पकड़ी, "कितनी मर्तबा समझाया है कि हाँ नहीं कहते जी कहते हैं। मगर तुम्हारी समझ में नहीं आता।"

"दादी ये बाहर के टी.वी. चैनल और फ़िल्में देखता है न इसीलिए इसकी ज़बान

ख़राब हो गयी है" ऐमन ने भी अब लुक़मा देना ज़रूरी समझा। अब्बू और अम्मी ख़ामोश बैठे हँस रहे थे। ऐसे मौक़े पर दोनों हमेशा हँसते रहते थे।

तुम्हारी ज़बान कौन-सी अच्छी है। तुम भी कहती हो, भाई आप क्या खाओगे। आप कहाँ जाओगे।" दादी ने ऐमन को भी डाँटा।

"आपकी ज़बान में शायद इसे सुतर गुरवा कहते हैं।" अब्बू ने अपनी माँ से मज़ाक़ किया। उन्होंने भी उर्दू अपनी माँ से ही पढ़ी थी।

"तुम भी अपनी जाने दो। ये सब तुम दोनों का ही कुसूर है। तुम ख़ुद भी तो ऐसी ही ज़बान बोलते हो।" दादी झुँझला गयी थीं, "किसी को ज़बान की सेहत का ख़याल नहीं रहा।"

"अम्माँ आप भी कैसी बातें कर रही हैं।" अब अम्मी के बोलने की बारी थी। "आजकल लोग अपनी सेहत का ख़याल नहीं रखते ज़बान की सेहत का क्या ख़याल रखेंगे।" अम्मी ने ये बात मज़ाक़ में कही थी लेकिन दादी इस वक़्त मज़ाक़ के मूड में नहीं थी।

"लो ख़ुद ही देख लो। जब बड़े बच्चों के सामने ऐसी बातें करेंगे तो बच्चे तो ख़ुद ही शेर हो जायेंगे।"

"शेर हो नहीं जायेंगे दादी, बच्चे शेर हो गये हैं।" अहमद ने दादी को और छेड़ा और दादी ने सचमुच नाराज़ होकर अपना मुँह फेर लिया।

"बुरी बात अहमद" बाप ने उसे डाँटा लेकिन ऐसे कि उनके होंठों पर मुस्कुराहट थी। दादी का मुँह फूला हुआ था।

"हम ये नहीं कहते की नयी बातें न सीखो मगर छोटे-बड़े की तमीज़ तो रखो" दादी जैसे अपनेआप से ही कहे जा रही थीं-"अब 'बाज़ी' 'आपा' भी ख़त्म हो गया। छोटा भाई बड़ी बहन का नाम लेता है..."

"अम्माँ, अब तो यही होगा।" अम्मी ने डरते-डरते होंठों ही होंठों में कहा, "ज़माना ही ऐसा है।"

"कल को माँ-बाप का नाम भी लिया जाने लगेगा।" दादी बोले जा रही थीं। "अम्माँ... आप अमरीकी फ़िल्में नहीं देखती न और टी.वी. के प्रोग्राम भी नहीं देखतीं। ये काम तो वहाँ एक ज़माने से शुरू हो चुका है।" अब्बू अपनी बीवी का साथ दे रहे थे।

"मेरी समझ में तो आजकल के माँ-बाप नहीं आते" दादी ने जैसे उनकी बात नहीं सुनी थी वो अपनी ही कहे जा रही थीं – "बच्चों से कुछ न कहो। बच्चों को कुछ न सिखाओ। बच्चे जो करते हैं, करने दो। उनके लिए सबकुछ बच्चे ही हैं। उठते बच्चे, बैठते बच्चे। न दिल का चैन न रात का आराम। हर वक़्त बच्चों की फ़िक्र। बच्चों के लिए ये लाना है बच्चों के लिए वो लाना है। बच्चे ये माँग रहे हैं, बच्चे वो माँग रहे हैं। बच्चे इस स्कूल में पढ़ रहे हैं, बच्चे उस स्कूल में पढ़ रहे

हैं। ये स्कूल अच्छा है। वो स्कूल अच्छा नहीं है। बच्चे क्या पढ़ रहे हैं माँ-बाप पढ़ रहे हैं। बच्चे पास-फेल रहे हैं माँ-बाप पास-फेल हो रहे हैं। हमने भी बच्चे पाले। हमनें भी तुम्हें खिलाया-पढ़ाया। तुमने सी.ए. किया, छोटा भाई डॉक्टर बना। उसने इंग्लैण्ड से एफ.आर.सी.एस. किया। तुम्हारी बड़ी बहन को डॉक्टर बनाया और दूसरी ने इंग्लिश में एम.ए. किया। और हमने ख़ुद भी पढ़ा। और उस वक़्त पढ़ा जब तुम चारों बड़े हो गये थे। मगर ऐसा नहीं हुआ की बच्चों को सिर पर सवार कर लिया हो। दोनों मियाँ-बीवी दिन रात कमाई करने लगे हैं। न दिन का चैन है न रात का आराम। और सारी कमाई कहाँ जा रही है? बच्चों पर। सारा वक़्त कहाँ ख़र्च हो रहा है? बच्चों पर..." दादी का ग़ुस्सा बढ़ता ही जा रहा था।

वो दोनों मियाँ-बीवी जानते थे की उनका ये ग़ुस्सा क्यों है। उन्हें इस बात की तकलीफ़ थी कि उनके बेटे को आराम करने का ज़रा-सा भी वक़्त नहीं मिलता। सुबह से जो निकलता है तो रात को ही घर में घुसता है। बहू है वो बच्चों को स्कूल लाने ले जाने में मसरूफ़ रहती है या स्कूल जाने और बच्चों को पढ़ाने में। हाँ ओ लेविल और ए लेविल के बच्चों को पढ़ाने में। घर में भी हर वक़्त बच्चों की पढ़ाई के सिवा और कोई बात ही नहीं होती।

"अम्मी यही बच्चे तुम्हारा मुस्तक़बिल हैं," अब्बू ने डरते-डरते कहा।

"बच्चे हमारा भी मुस्तक़बिल थे।" दादी ने भी उसी लहज़े में जवाब दिया।

"इसीलिए आप देख रही हैं अपना मुस्तकबिल" अब्बू मज़ाक़ करते नहीं चूकते थे। कहने को तो यह कह दिया लेकिन फ़ौरन ही अपनी ग़लती का अहसास हो गया और पलटकर उन्होंने अहमद को डाँटा, "माफ़ी माँगो दादी से। बत्तमीजी करने लगे हो। देखो दादी नाराज़ हो गयीं।"

"सॉरी दादी, आइन्दा हम बत्तमीजी नहीं करेंगे, अल्लाह का वादा।" यह कहकर अहमद ने अपनी गरदन की खाल पकड़ी और दादी से लिपटकर घूमने लगा। माँ ने इशारा किया तो ऐमन भी उनसे लिपट गयी। "मेरी दादी, प्यारी दादी, आप तो नाराज़ हो गयीं।"

"अच्छा-अच्छा, मुझे तो छोड़ो," दादी ने गुत्थम-गुत्था होते अपने पोते और पोती को हटाया और हँसकर प्यार से उनके थप्पड़ लगाये। "मगर ये बताओ, ये अल्लाह का वादा क्या होता है और ये तुमने अपने नरखरे पर हाथ क्यों लगाया?" ये सवाल उन्होंने बच्चों से किया था लेकिन वो देख रही थीं बच्चों के माँ-बाप की तरफ़। उन्होंने बच्चों को ऐसा करके कई बार देखा था लेकिन वो हर बार ख़ामोश हो गयी थी कि आजकल सारे बच्चे ऐसा ही करते हैं। और फिर उन्होंने हिन्दुस्तानी फ़िल्मों में और उनके टी.वी. पर भी ऐसा ही देखा था। लेकिन इस वक़्त बच्चों के साथ उनके माँ-बाप मौजूद थे इसीलिए वो उनके सामने ये बात करना चाहती थीं। उन्हें अहसास दिलाना चाहती थी कि आख़िर हमारे बच्चे दूसरों की नक़्ल में कहाँ

तक जायेंगे।

“माँ आप जानती हैं अल्लाह का वादा अंग्रेज़ी का तर्जुमा है और गरदन को हाथ लगाना भी,” अब्बू ने जवाब देने की कोशिश की लेकिन ये उन्हें भी मालूम नहीं था कि गरदन को हाथ क्यों लगाते हैं। और ये बात ख़ुद बच्चों को भी मालूम नहीं थी। उन्होंने भी स्कूल में दूसरों को ऐसा करते देखा था या हिन्दुस्तानी टी.वी. पर।

“हम गरदन को हाथ लगाते थे तो बाद में अपनी उँगलियों पर फूँकते थे,” दादी ने उन्हें याद दिलाया। लेकिन अब दादी ग़ुस्से में नहीं थीं। ये बातें मज़ाक़ में हो रही थीं। उनका ग़ुस्सा ख़त्म हो चुका था। आख़िर वो भी कब तक ग़ुस्सा करती।

“अच्छा? फूँकते थे? मगर फूँकते क्यूँ थे दादी?” ऐमन को ये बात अजीब-सी लगी कि गरदन पर हाथ लगाने के बाद हाथ पर फूँका जाये।

“गरदन को हाथ लगाना बदशगुनी समझा जाता था कि ख़ुदा न करे हमारी गरदन को कुछ जो जाये। हमारे बुज़ुर्ग तो अगर किसी को ये बताते थे कि फलाँ आदमी के जिस्म के फलाँ हिस्से पर ज़ख़्म लगा और उसके साथ अपने बदन पर हाथ लगाते थे तो कहते थे ‘दस्तम बख़ैर’। दादी ने प्यार से समझाने की कोशिश की लेकिन अब्बू ने उनकी बात काट दी।

“हाँ... उस ज़माने में तलवार से गरदन काटी जाती थी ना। बन्दूक़ क्लाशनीकोफ़ ईजाद ही नहीं हुई थी।” अब्बू ने शरारत से अपनी माँ का देखा। “तो अम्माँ आजकल जिस्म के किस हिस्से पर हाथ लग जाये तो फूँकना चाहिए? गोली तो कहीं भी लग सकती है?”

दादी ने इस मज़ाक़ को नज़रअन्दाज़ कर दिया। वो इसका जवाब भी क्यों देतीं। वो ख़ामोश हो गयी। दरअसल पुरानी बातें करके वो तो सिर्फ़ अपनेआप को ख़ुश करना चाहती थीं। वो ख़ूब जानती थीं कि उनकी इन कहानियों का बच्चों पर कोई असर नहीं होगा। हाँ, बच्चों के लिए ये कहानियाँ ही थीं। ऐसी बातें सुनकर बच्चे उनका मज़ाक़ नहीं उड़ाते थे बल्कि बहुत शौक़ से सुनते थे ये बातें। लेकिन जानते थे कि ये बातें सिर्फ़ सुनने के लिए हैं। अमल करने के लिए नहीं। वो ये भी जानते थे कि दादी भी ये बातें क़िस्से कहानियों की तरह ही सुना रही हैं उन्हें ख़ुद भी यक़ीन है कि आजकल कोई भी उन पर अमल नहीं करेगा। अगर मज़ाक़ उड़ाते थे तो उनके अपने बच्चे। लेकिन वो भी महज बात करने के लिए ही बात करते थे। नियत उनकी भी मज़ाक़ उड़ाना नहीं होती थी। दादी ये पुरानी बातें करके अपनेआप को बच्चों से अलहदा करना नहीं चाहती थीं। वो तो ख़ुद उनके साथ चलना चाहती थीं। वो हर नयी बात सीखना चाहती थीं। ताकि घर में जो बात हो रही हो उसमें वो भी बराबर की शरीक़ हों। वो घर में फालतू चीज़ न बन जायें। लेकिन उनके दिल के किसी कोने खुदरे में कहीं एक कसक-सी ज़रूर रहती थी कि ये सबका सब इतना नया क्यूँ है? ये सारा का सारा अनजाना क्यूँ है? कुछ तो जान-पहचान

वाली चीज़ें होनी चाहिए।

"ओहो मैं तो भूल ही गयी" अम्मी एकदम उछल पड़ी। "अभी तक पम्पकीन का तो इन्तज़ाम हुआ ही नहीं है। ऐमन तुम ज़रा समन को तो फ़ोन करो उससे कहो बाज़ार से पम्पकीन ख़रीद लाये। और सुनो," ऐमन उठकर जाने लगी थी, "उससे कहना अब मेरे पास वक़्त नहीं है वो ख़ुद ही उसकी लैण्टर्न बना लें। परसों स्कूल में हेलो विन है और पम्पकीन का इन्तज़ाम अभी तक नहीं हुआ।"

पम्पकीन पर दादी का जी चाहा था कि वो अपनी बहू को याद दिलायें कि हम उसे हलवाये-कदू कहते हैं। लेकिन वो ख़ामोश रहीं। अब तो उनके घरों में हलवाये-कदू पकने का रिवाज़ ही ख़त्म हो गया है।

"मिसेज शेर भी सारे काम मेरे ऊपर ही डाल देती हैं।" अम्मी की बात अभी पूरी नहीं हुई थी। अब वो अपनी प्रिंसिपल पर नाराज़ हो रही थीं। "और तुम जल्दी जाओ, बहन से कहो वो कपड़े उठाती लाये जो कास्ट्यूम बनाने के लिए रखे हैं।" ये बात उन्होंने बेटे से कही जो अभी तक अब्बू से अपने सवाल का जवाब लेने के इन्तज़ार में बैठा था। वो बुरा-सा मुँह बनाकर उठा और चला गया।

"ये 'हेलो विन' और 'मदर्स डे' और 'फ़ादर्स डे' मनाने का रिवाज़ बढ़ता जा रहा है।" ये बात अब्बू ने कही जो अपनेआप को नया आदमी कहते थे।

"जब स्कूलों के कोर्स इंग्लैण्ड और अमेरिका से बनकर आयेंगे तो यही होगा।" दादी ने अपनी समझ के मुताबिक़ बात की।

"नहीं अम्माँ। ये भी हमारा ही कारनामा है। मार्केट इकॉनामी ज़िन्दाबाद। हम टी. वी. पर इन त्यौहारों के तमाशे दिखायेंगे और रंग-बिरंगे क़ीमती कार्ड छापकर बाज़ार भर देंगे तो फिर यही होगा।" अब्बू संजीदा होने लगे थे।

"दुनिया में रहना है तो दुनिया के साथ ही चलना पड़ेगा।" अम्मी ने टी.वी. का चैनल तब्दील करते हुए जवाब दिया। दादी ने टी.वी. पर एक नज़र डाली और उसमें खो गयी। स्टींग का नया गाना आ रहा था 'डिजर्ट रोज़' अरबी धुन और मग़रिबी मोसिक़ी का मिलाप उन्हें बहुत अच्छा लगा। इसमें अपनाइयत भी थी और नयापन भी।

"अब तो वेलेण्टाइन डे भी मनाया जाने लगा है।" अब्बू बहुत ज़्यादा संजीदा हो रहे थे।

"हाँ, अब तो स्कूलों के बच्चे भी ये दिन मनाते हैं। बड़े हंगामे होते हैं। दिल की तस्वीर बने कार्ड, सुर्ख़ गुलाब और केक मिठाइयाँ भेजी जाती हैं एक-दूसरे को" अम्मी ने वो काले-पीले कपड़े उठाते हुए कहा जो अहमद ने लाकर उनके सामने रख दिये थे।

"मगर इसमें बुरी बात क्या है?"

"बड़ा मुश्किल हो गया है साथ देना वक़्त का।" अब्बू ने खिसियानी-सी हँसी

हँसकर गहरा साँस लिया जैसे वो ख़ुश न हों इस बात से।

"तुम भी ये कह रहे हो?" दादी ने हैरत से अपने बेटे को देखा उन्हें सदमा हुआ था ये सुनकर या ख़ुशी? वो यक़ीन के साथ कुछ नहीं कह सकती थीं।

"जी अम्माँ, हम भी बुड्ढे हो गये हैं।" बेटे ने ये बात उस लहजे़ में कही थी कि दादी का दिल कट गया।

दादी ने ठण्डी चाय का लम्बा-सा घूँट लिया। पहले अपनी बहू को और फिर बेटे को देखा और फिर महज़ ख़ामोशी तोड़ने के लिए यूँ ही कहने को कह दिया, "हाँ, हमारे अपने त्यौहार तो जैसे ख़त्म ही हो गये हैं।"

"अम्माँ हमारे ऐसे कौन-से त्यौहार होते हैं जिनमें बच्चे पागल होकर शिरकत करें। अब तो ईद-बक़रीद पर भी मेले नहीं लगते।" ये जवाब उनके बेटे ने दिया जो शायद अभी तक अपनेआप से लड़ रहा था। बहू भूतों और चुड़ैलों के कास्टयूम बनाने में मसरूफ़ थी।

"हमारे त्यौहारों का ताल्लुक़ मज़हब के साथ है," दादी ने समझाया।

"इन त्यौहारों का ताल्लुक़ भी मज़हब से ही है," बेटे ने अपनी माँ के लहजे़ ही कहा।

"मगर कहीं और के मज़हब से" दादी ने गहरा साँस लिया और टी.वी. देखना शुरू कर दिया। वो ये बात आगे बढ़ाना चाहती थीं कि फिर बहस लम्बी हो जाती और उन्होंने बहस करना छोड़ दी थी। अब वो सिर्फ़ अपनेआप से बहस करती थीं।

"अब्बू, आपने बताया नहीं कि चार्ली ब्राउन पर लोग इतना अफ़सोस क्यों कर रहे हैं?" अब ऐमन ने संजीदगी की उस संगीन दीवार को तोड़ा।

"इसीलिए अफ़सोस कर रहे हैं कि चार्ली ब्राउन ऐसा कैरेक्टर था जिसे लूसी बेवक़ूफ़ बनाती रहती थी। चार्ली मर्द था और लूसी औरत और कार्टून बनाने वाला भी मर्द था।" अम्मी ने माहौल की उदासी दूर करने के लिए अपने मियाँ को छेड़ा।

"माशा अल्लाह... माशा अल्लाह... ये हुआ ना फेमनिस्ट इण्टरप्रेटेशन... वाह वाह" अब्बू ने ताली बजायी। अब माहौल फिर ख़ुशगवार हो गया था। "शुल्ज़ भी अपने कार्टून का ये मतलब सुनता तो बहुत ख़ुश होता। मर गया बेचारा। लेकिन आप फ़िक्र क्यूँ करती हैं। औरतों को ख़ुश करने के लिए उन्होंने जॉनी ब्रावो भी तो बना दिया है। वो हाथी और गेंडे के तन-ओ-तोश वाला मर्द, जो हर बार औरत से पिट जाता है और कार्टून बनाने वाला भी मर्द है।" अब अब्बू के साथ अम्मी भी हँस रही थीं और दादी भी कि वो भी ये कार्टून देखती थीं।

लेकिन अहमद और ऐमन को अपने सवाल का जवाब नहीं मिला था। "आप तो मज़ाक़ कर रहे हैं।" दोनों ने एहतिजाज़ किया।

"बेटे, बात ये है कि हम अपने सामने की चीज़ों को देख-देखकर उनके आदी हो जाते हैं। अच्छी हों तो उन्हें पसन्द करने लगते हैं। अगर वो हमारे सामने से हट

जायें या ख़त्म हो जायें तो हमें सदमा होता है।" अब्बू फिर संजीदा हो गये थे।

"ऐसा भी क्या सदमा करना।" ऐमन को ये बात भी पसन्द नहीं आयी थी।

हमारी पसन्द की चीज़ें, हमारी अपनी चीज़ें हमारे सामने से हट जायें या ख़त्म हो जायें या ख़त्म होने लगें तो हमें सदमा होता है? दादी ने सोचा। उनका पोता और पोती जब उनसे कहते कि दादी आपने तीस-चालीस साल पहले एम.ए. किया था। अब ज़माना बदल गया है। तो उन्हें सुनकर सदमा नहीं होता था। वो बच्चे उनसे कहते आपकी दास्तानों के हातिम अब ग़ैब से सदा नहीं देते वो अब कम्प्यूटर इण्टरनेट से आवाज़ लगाते हैं। अब आप अपनी कुर्सी पर बैठे-बैठे दुनिया जहान से बातें कर लेती हैं। आप फ़ोल्डर की तरफ़ का लैपटॉप उठायेंगी और किताब की तरह खोलकर पढ़ना शुरू कर देंगी। एक सीडी में कम से कम बीस किताबें आ जाती हैं। तो वो सिर्फ़ इतना कहतीं बेटे हम भी पुराने नहीं हैं। हमने अपने सामने चीज़ों को बदलते देखा है। हम भी गवाह हैं उस वक़्त के जो तब्दील हुआ है और तब्दील हो रहा है। हमारी भी आँखें खुली हैं। लेकिन इसके साथ ही उनके दिल की कोई एक धड़कन कम भी हो जाती थी।

पुराना क्या है और क्या नया? नया कब पुराना बनता है और पुराना कब नया? वक़्त को किस तरह तक़सीम किया जाता है? वो कौन था जिसने रेत वाली घड़ी देखकर शोर मचाया था कि तुम मेरे वक़्त को लम्हों में क्यों तक़सीम कर रहे हो। दादी उस ज़माने को भी नहीं भूली थीं जब वो वक़्त के तसलसुल की आदी थीं। उनके लिए वक़्त एक सीधी लकीर था। वो लकीर जो दायें-बायें कहीं नहीं मुड़ती। फिर शादी ने उस लकीर को तोड़ दिया। शादी हुई तो उन्होंने नया घर और नया वक़्त देखा। अब वक़्त वो नहीं था जिसकी वो आदी थीं। वो जिस घर से आयी थीं वहाँ अख़लाक़, आदाब और रस्म-ओ-रिवाज़ सब मज़हब के ताबेअ थे। लेकिन मज़हब आम ज़िन्दगी से अलग कोई चीज़ नहीं थी। वो रोज़मर्रा ज़िन्दगी का ऐसा हिस्सा था जो नज़र भी आता था और नज़र नहीं भी आता था। रस्म-ओ-रिवाज़ के साथ मज़हबी फरायेज़ (दायित्व) भी ऐसे ही अदा किये जाते थे जैसे खाना-पीना, सोना-जागना, उठना-बैठना जैसी चीज़ें होती हैं कि मौजूद होती हैं लेकिन नज़र नहीं आतीं। वो हमारे जिस्म और हमारी रूह का हिस्सा होतीं। जिस घर में वो ब्याहकर आयीं वहाँ उन्हें थोड़ी-सी दूरी नज़र आयी। वहाँ चीज़ें कुछ अलग-अलग होती दिखायी दीं। मगर इतनी भी अलग नहीं कि पहचानी ही न जा सके। हाँ, जिस आदमी से उनका ब्याह हुआ वो बिल्कुल ही नया आदमी था। वो वक़्त का सिलसिला तोड़कर एक नया ही सिलसिला बनाना चाहता था। वो सीधी लकीर पसन्द नहीं करता था। वो ज़माने को बदलना चाहता था इसीलिए उस आदमी ने उन्हें ख़ुश भी बहुत किया और परेशान भी बहुत।

वो आदमी उससे टूटकर प्यार करता था। वो भी उससे प्यार करती थीं कि

उन्होंने ऐसा प्यार पहली बार देखा था। वो प्यार जो माँ–बाप और बहन–भाइयों के प्यार से मुख़्तलिफ़ होता है। ये प्यार उनके लिए नयी दुनिया थी और वक़्त का नया सिलसिला। उनके लिए तो यही प्यार सबकुछ था लेकिन उस नये आदमी को अपने प्यार के लिए नयी दुनिया भी चाहिए थी। वो नयी दुनिया बसाना चाहता था। नया ज़माना लाना चाहता था। बस थोड़े ही दिनों की बात है। फिर ये सबकुछ बदल जायेगा और हम सबके साथ मिलकर हँसी–ख़ुशी ज़िन्दगी गुज़ारेंगे। ये कहकर वो घर से ग़ायब हो जाता। कभी–कभी तो महीनों ग़ायब रहता। दूर किसी शहर से उसका ख़त आता कि मैं ख़ैरियत से हूँ फ़िक्र ना करना जल्दी आ जाऊँगा। फिर पता चला कि वो तो जेल में है। क़ैद काट रहा है। कभी छुपता छिपाता घर आता और कहता मैं आजकल अण्डरग्राउण्ड हूँ। किसी को मेरे आने की ख़बर न हो। और फिर ऐसे ही चला जाता जैसे आया था।

एक ऐसे घर में जहाँ माँ–बाप और चचा–भतीजे साथ–साथ या दीवार बीच रहते हों किसी एक आदमी के कम हो जाने की ज़्यादा फ़िक्र नहीं होती। कम ही महसूस किया जाता है कि कोई मर्द घर से ग़ायब है। सिवाय इसके कि सब उससे बुरा–भला कहते कि अच्छी सियासत है, अच्छा नजरिया है कि बीवी बच्चों की भी परवाह नहीं है। भागा फिरता है एक शहर से दूसरे शहर और एक जेल से दूसरी जेल। हाँ उन्हें पहले पहल बहुत महसूस हुआ था। छुप–छुपकर बहुत रोयी थी। मगर फिर समझौता कर लिया था हालात से कि उन्हें उस आदमी के अटूट प्यार पर पूरा भरोसा था।

फिर वक़्त की एक और कड़ी टूटी। अचानक वो पुरानी जगह से उखड़े और नयी जगह आ गये। नयी जगह नया घर और नया मुल्क़। उन्होंने कभी सोचा भी नहीं था कि जहाँ पुश्त से उनके क़दम जमे हुए हैं और जहाँ उनके बाप–दादा और परदादा की क़ब्रें हैं वहाँ से वो उखड़ भी सकते हैं। लेकिन उखड़े और ऐसे उखड़े कि मकान बदला तो ज़माना भी बदल गया। या यूँ कह लें कि ज़माना बदला तो मकान भी बदल गया। बहरहाल कुछ ऐसा हुआ कि सबकुछ ही बदल गया। यहाँ तक कि वो आदमी भी बदल गया। वो आदमी जो अपनेआप को नया आदमी कहता था उसे भी नये घर में आकर अपने पुराने होने का अहसास हुआ। उसे अहसास हुआ कि अब तक वो ज़माने को देता ही रहा है। ज़माने ने उसे कुछ दिया या नहीं दिया मगर वो ख़ुद ज़माने के साथ नत्थी हो गया। लेकिन ये सब यकलख़्त नहीं हुआ। ये तब्दीली एकदम नहीं आयी। इसमें कुछ वक़्त लगा लेकिन दादी ने उससे पहले ही अपनेआप को बदलना शुरू कर दिया था।

शादी हुई तो वो मैट्रिक थीं। जिस भरे पूरे घर में वो ब्याहकर आयी थीं वहाँ उन्हें किसी ने ये अहसास ही नहीं होने दिया था कि ज़िन्दा रहने के लिए रुपये पैसे की ज़रूरत भी होती है। नये घर, नयी जगह और नये वक़्त ने उन्हें याद दिलाया

कि ज़िन्दा रहने के लिए कुछ करना भी पड़ता है। अभी वो आदमी नये वक़्त के साथ नया नहीं हुआ था। उसी तरह शहर-शहर गाँव-गाँव भागा फिरता था। अब दादी ने इण्टर किया, बी.ए. किया और फिर एम.ए. भी कर लिया और मुलाज़िमत शुरू कर दी। अब वो पढ़ा रही थी। दूसरों के बच्चों को भी और अपने बच्चों को भी। सास-ससुर ज़िन्दा थे। उन्होंने हर काम में उनकी मदद की। फिर इधर ससुर की आँखें बन्द हुईं और उधर वो आदमी वापस आ गया। वो भी वक़्त के साथ नया हो चुका था और दोनों हाथों से वक़्त को निचोड़ रहा था।

अब दादी को अपना दूसरा बेटा याद आ गया। डॉक्टर बेटा। वक़्त उसके यहाँ भी बदला था। मगर कैसा? वो नया हुआ था या पुराना उनकी समझ में कुछ नहीं आता था।

"मैंने तुमसे कहा था लौटते हुए भाई के घर होते आना... गये थे वहाँ?" दादी ने बेटे से शिकायत की। वो जानती थीं कि वो अपनी मसरूफ़ियत में भूल गया होगा छोटे भाई के घर जाना।

"अम्माँ मैं क्या करता वहाँ जाकर। कल ही तो गया था। और आपने फ़ोन भी किया था। आप जानती हैं जब वो तबलीग़ (धर्म प्रचार) के लिए जाता है तो कई कई महीने ग़ायब रहता है।" बेटे के लहजे़ में तलखी थी।

"मैंने कहा था मुझे छोड़ आओ वहाँ। मगर तुम दोनों को फ़ुरसत हो तो सुनो ना मेरी बात। उसका बच्चा बीमार है और वो घर से ग़ायब है।" दादी को फिर ग़ुस्सा आ गया।

"अम्माँ, मैं आपको बताना भूल गयी" बहू ने जल्दी से कहा, "दोपहर स्कूल से वापसी में गयी थी मैं वहाँ। अब बच्चा ठीक है।"

"अच्छा तुम न ले जाओ मैं ख़ुद ही चली जाऊँगी," दादी ने जैसे बहू की बात नहीं सुनी। वो अपनेआप को बेबस महसूस कर रही थी। बेबस और बेकार। उन्हें अपनेआप पर और अपनी बेबसी पर ग़ुस्सा आ रहा था। "एक तो उसने घर बनाया है अल्लाह मियाँ के पिछवाड़े रिक्शा टैक्सी में वहाँ जाते हौल आता है।"

"अम्माँ, मुझे तो उसकी मुलाज़िमत की फ़िक्र है। अस्पताल से इतने इतने दिन ग़ायब रहता था। कब तक ये बरदाश्त किया जायेगा। निकाल देंगे उसे। और फिर उसकी प्राइवेट प्रैक्टिस भी ख़राब हो रही है। डॉक्टर ही मौजूद नहीं होगा तो मरीज़ क्यूँ आयेंगे।"

उनका बड़ा बेटा बोल रहा था। वो उसकी बात नहीं सुन रही थीं। उनमें अब ज़्यादा सुनने की सकत नहीं थी। अब वो कहीं और पहुँच गयी थीं।

ये किसने वक़्त को लम्हों में तक़सीम कर दिया? वो तो समझ रही थीं कि उनके और उनके बच्चों के लिए वक़्त की लकीर फिर सीधी हो गयी है। ये जो नया वक़्त है और नया तसलसुल। उन्होंने आँखें बन्द कर लीं। मग़रिब की नमाज़ का

वक़्त हो रहा था। वो उठीं और अपने कमरे की तरफ़ चली गयीं।

अम्मी ने अहमद और ऐमन की तरफ़ देखा, "तुम क्या कह रहे हो... जाओ अपना काम करो।"

उन्होंने दोनों के जाने का इन्तज़ार किया। फिर अब्बू की तरफ़ झुककर आहिस्ता से कहा, "मैं अम्माँ के सामने नहीं बताना चाह रही थी। बाजी का फ़ोन आया था पेशावर से,"

"ऐसे क्यूँ बात कर रही हो। उनका फ़ोन तो आता ही रहता है। ख़ैरियत तो है?" अब्बू ने घबराकर पूछा।

"अर्शद जिहाद पर चला गया है" अम्मी उसके कमरे की तरफ़ देख रही थी जहाँ अभी अभी दादी गयी थीं।

अर्शद दादी का नवासा था। उनकी सबसे बड़ी बेटी का सबसे बड़ा लड़का।

• • •
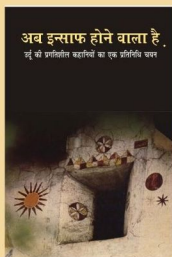
हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की पाँच कथा पीढ़ियों की चुनिन्दा कहानियों को एक साथ प्रस्तुत करने वाला यह संकलन हिन्दी में उर्दू कहानियों का पहला प्रतिनिधि संकलन कहा जा सकता है।

ISBN 978-81-89760-20-5 (पेपरबैक)
978-81-89760-21-2 (सजिल्द)
मूल्य : रु. 125.00
रु. 250.00

बेहतर ज़िन्दगी का रास्ता
बेहतर किताबों से होकर जाता है!

जनचेतना
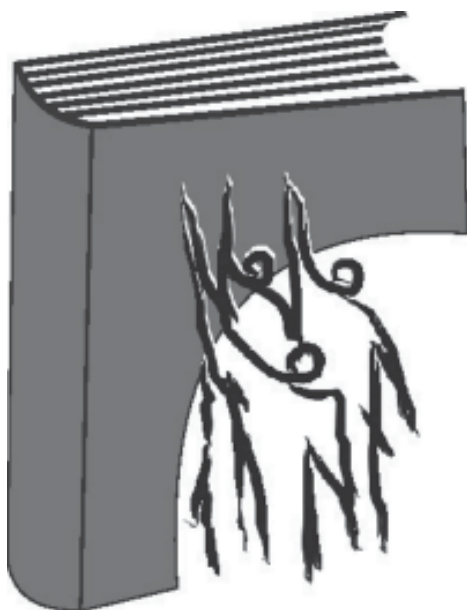
सम्पूर्ण सूचीपत्र
2018

हम हैं सपनों के हरकारे
हम हैं विचारों के डाकिये

आम लोगों के लिए
ज़रूरी हैं वे किताबें
जो उनकी ज़िन्दगी की घुटन
और मुक्ति के स्वप्नों तक
पहुँचाती हैं विचार
जैसे कि बारूद की ढेरी तक
आग की चिनगारी।
घर–घर तक चिनगारी छिटकाने वाला
तेज़ हवा का झोंका बन जाना होगा
ज़िन्दगी और आने वाले दिनों का सच
बतलाने वाली किताबों को
जन–जन तक पहुँचाना होगा।

दो दशक पहले प्रगतिशील, जनपक्षधर साहित्य को जन–जन तक पहुँचाने की मुहिम की एक छोटी–सी शुरुआत हुई, बड़े मंसूबे के साथ। एक छोटी–सी दुकान और फ़ुटपाथों पर, मुहल्लों में और दफ़्तरों के सामने छोटी–छोटी प्रदर्शनियाँ लगाने वाले तथा साइकिलों पर, ठेलों पर, झोलों में भरकर घर–घर किताबें पहुँचाने वाले समर्पित अवैतनिक वालण्टियरों की टीम – शुरुआत बस यहीं से हुई। आज यह वैचारिक अभियान उत्तर भारत के दर्जनों शहरों और गाँवों तक फैल चुका है। एक बड़े और एक छोटे प्रदर्शनी वाहन के माध्यम से जनचेतना हिन्दी और पंजाबी क्षेत्र के सुदूर कोनों तक हिन्दी, पंजाबी और अंग्रेज़ी साहित्य एवं कला–सामग्री के साथ सपने और विचार लेकर जा रही है, जीवन–संघर्ष–सृजन–प्रगति का नारा लेकर जा रही है।

हिन्दी क्षेत्र में यह अपने ढंग का एक अनूठा प्रयास है। एक भी वैतनिक स्टाफ़ के बिना, समर्पित वालण्टियरों और विभिन्न सहयोगी जनसंगठनों के कार्यकर्ताओं के बूते पर यह प्रोजेक्ट आगे बढ़ रहा है।

आइये, आप सभी इस मुहिम में हमारे सहयात्री बनिये।

सम्पूर्ण सूचीपत्र

परिकल्पना प्रकाशन

उपन्यास

1.	**तरुणाई का तराना**/याङ मो		...
2.	**तीन टके का उपन्यास**/बेर्टोल्ट ब्रेष्ट		...
3.	**माँ**/मक्सिम गोर्की		...
4.	**वे तीन**/मक्सिम गोर्की		75.00
5.	**मेरा बचपन**/मक्सिम गोर्की		...
6.	**जीवन की राहों पर**/मक्सिम गोर्की		...
7.	**मेरे विश्वविद्यालय**/मक्सिम गोर्की		...
8.	**फ़ोमा गोर्देयेव**/मक्सिम गोर्की		55.00
9.	**अभागा**/मक्सिम गोर्की		40.00
10.	**बेकरी का मालिक**/मक्सिम गोर्की		25.00
11.	**असली इन्सान**/बोरिस पोलेवोई		...
12.	**तरुण गार्ड**/अलेक्सान्द्र फ़देयेव	(दो खण्डों में)	160.00
13.	**गोदान**/प्रेमचन्द		...
14.	**निर्मला**/प्रेमचन्द		...
15.	**पथ के दावेदार**/शरत्चन्द्र		...
16.	**चरित्रहीन**/शरत्चन्द्र		...
17.	**गृहदाह**/शरत्चन्द्र		70.00
18.	**शेषप्रश्न**/शरत्चन्द्र		...
19.	**इन्द्रधनुष**/वान्दा वैसील्युस्का		65.00
20.	**इकतालीसवाँ**/बोरीस लव्रेन्योव		20.00
21.	**दास्तान चलती है** (एक नौजवान की डायरी से)/अनातोली कुज़्नेत्सोव		70.00

22. **वे सदा युवा रहेंगे**/ग्रीगोरी बकलानोव 60.00
23. **मुर्दों को क्या लाज-शर्म**/ग्रीगोरी बकलानोव 40.00
24. **बख़्तरबन्द रेल 14-69**/व्सेवोलोद इवानोव 30.00
25. **अश्वसेना**/इसाक बाबेल 40.00
26. **लाल झण्डे के नीचे**/लाओ श 50.00
27. **रिक्शावाला**/लाओ श 65.00
28. **चिरस्मरणीय** (प्रसिद्ध कन्नड़ उपन्यास)/निरंजन 55.00
29. **एक तयशुदा मौत** (एनजीओ की पृष्ठभूमि पर)/मोहित राय 30.00
30. **Mother/***Maxim Gorky* 250.00
31. **The Song of Youth**/*Yang Mo* ...

कहानियाँ

1. **श्रेष्ठ सोवियत कहानियाँ** (3 खण्डों का सेट) 450.00
2. **वह शख़्स जिसने हैडलेबर्ग को भ्रष्ट कर दिया**
(मार्क ट्वेन की दो कहानियाँ) 60.00

मक्सिम गोर्की

3. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 1) ...
4. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 2) ...
5. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 3) ...
6. **हिम्मत न हारना मेरे बच्चो** 10.00
7. **कामो : एक जाँबाज़ इन्क़लाबी मज़दूर की कहानी** ...

अन्तोन चेखव

8. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 1) ...
9. **चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 2) ...
10. **दो अमर कहानियाँ**/लू शुन ...
11. **श्रेष्ठ कहानियाँ**/प्रेमचन्द 80.00
12. **पाँच कहानियाँ**/पुश्किन ...
13. **तीन कहानियाँ**/गोगोल 30.00
14. **तूफ़ान**/अलेक्सान्द्र सेराफ़ीमोविच 60.00
15. **वसन्त**/सेर्गेई अन्तोनोव 60.00
16. **वसन्तागम**/रआो शि 50.00

17. **सूरज का ख़ज़ाना**/मिख़ाईल प्रीश्विन 40.00
18. **स्नेगोवेत्स का होटल**/मत्वेई तेवेल्योव 35.00
19. **वसन्त के रेशम के कीड़े**/माओ तुन 50.00
20. **क्रान्ति झंझा की अनुगूँजें** (अक्टूबर क्रान्ति की कहानियाँ) 75.00
21. **चुनी हुई कहानियाँ**/श्याओ हुङ 50.00
22. **समय के पंख**/कोन्स्तान्तीन पाउस्तोव्सकी ...
23. **श्रेष्ठ रूसी कहानियाँ** (संकलन) ...
24. **अनजान फूल**/आन्द्रेई प्लातोनोव 40.00
25. **कुत्ते का दिल**/मिख़ाईल बुल्गाकोव 70.00
26. **दोन की कहानियाँ**/मिख़ाईल शोलोख़ोव 35.00
27. **अब इन्साफ़ होने वाला है** ...
(भारत और पाकिस्तान की प्रगतिशील उर्दू कहानियों का प्रतिनिधि संकलन)
(ग्यारह नयी कहानियों सहित परिवर्द्धित संस्करण)/स. **शकील सिद्दीक़ी**
28. **लाल कुरता**/हरिशंकर श्रीवास्तव ...
29. **चम्पा और अन्य कहानियाँ**/मदन मोहन 35.00

कविताएँ

1. **जब मैं जड़ों के बीच रहता हूँ**/पाब्लो नेरूदा 60.00
2. **आँखें दुनिया की तरफ़ देखती हैं**/लैंग्स्टन ह्यूज 60.00
3. **उम्मीद-ए-सहर की बात सुनो** (फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ के संस्मरण और चुनिन्दा शायरी, सम्पादक: शकील सिद्दीक़ी) 160.00
4. **माओ त्से-तुङ की कविताएँ** (राजनीतिक पृष्ठभूमि सहित विस्तृत टिप्पणियाँ एवं अनुवाद : सत्यव्रत) 20.00
5. **इकहत्तर कविताएँ और तीस छोटी कहानियाँ – बेर्टोल्ट ब्रेष्ट**
(मूल जर्मन से अनुवाद : मोहन थपलियाल)
(ब्रेष्ट के दुर्लभ चित्रों और स्केचों से सज्जित) 150.00
6. **समर तो शेष है...** (इप्टा के दौर से आज तक के प्रतिनिधि क्रान्तिकारी समूहगीतों का संकलन) 65.00
7. **मध्यवर्ग का शोकगीत**/हान्स माग्नुस एन्त्सेन्सबर्गर 30.00
8. **जेल डायरी**/हो ची मिन्ह 40.00
9. **ओस की बूँदें और लाल ग़ुलाब**/होसे मारिया सिसों 25.00

10.	**इन्तिफ़ादा :** फ़लस्तीनी कविताएँ/स. रामकृष्ण पाण्डेय		...
11.	**लहू है कि तब भी गाता है**/पाश		...
12.	**लोहू और इस्पात से फूटता गुलाब :** फ़लस्तीनी कविताएँ (द्विभाषी संकलन)		
	A Rose Breaking Out of Steel and Blood (Palestinian Poems)		60.00
13.	**पाठान्तर**/विष्णु खरे		50.00
14.	**लालटेन जलाना** (चुनी हुई कविताएँ)/विष्णु खरे		60.00
15.	**ईश्वर को मोक्ष**/नीलाभ		60.00
16.	**बहनें और अन्य कविताएँ**/असद ज़ैदी		50.00
17.	**सामान की तलाश**/असद ज़ैदी		50.00
18.	**कोहेकाफ़ पर संगीत-साधना**/शशिप्रकाश		50.00
19.	**पतझड़ का स्थापत्य**/शशिप्रकाश		75.00
20.	**सात भाइयों के बीच चम्पा**/कात्यायनी (पेपरबैक)		...
		(हार्डबाउंड)	125.00
21.	**इस पौरुषपूर्ण समय में**/कात्यायनी		60.00
22.	**जादू नहीं कविता**/कात्यायनी	(पेपरबैक)	...
		(हार्डबाउंड)	200.00
23.	**फ़ुटपाथ पर कुर्सी**/कात्यायनी		80.00
24.	**राख-अँधेरे की बारिश में**/कात्यायनी		15.00
25.	**यह मुखौटा किसका है**/विमल कुमार		50.00
26.	**यह जो वक्त है**/कपिलेश भोज		60.00
27.	**देश एक राग है**/भगवत रावत		...
28.	**बहुत नर्म चादर थी जल से बुनी**/नरेश चन्द्रकर		60.00
29.	**दिन भौंहें चढ़ाता है**/मलय		120.00
30.	**देखते न देखते**/मलय		65.00
31.	**असम्भव की आँच**/मलय		100.00
32.	**इच्छा की दूब**/मलय		90.00
33.	**इस ढलान पर**/प्रमोद कुमार		90.00
34.	**तो**/शैलेय		75.00

नाटक

1.	**करवट**/मक्सिम गोर्की	40.00
2.	**दुश्मन**/मक्सिम गोर्की	35.00

3. **तलछट**/मक्सिम गोर्की ...
4. **तीन बहनें** (दो नाटक)/अन्तोन चेख़व 45.00
5. **चेरी की बग़िया** (दो नाटक)/अ. चेख़व 45.00
6. **बलिदान जो व्यर्थ न गया**/व्सेवोलोद विश्नेव्स्की 30.00
7. **क्रेमलिन की घण्टियाँ**/निकोलाई पोगोदिन 30.00

संस्मरण

1. **लेव तोल्स्तोय : शब्द-चित्र**/मक्सिम गोर्की 20.00

स्त्री-विमर्श

1. **दुर्ग द्वार पर दस्तक** (स्त्री प्रश्न पर लेख)/कात्यायनी (पेपरबैक) 130.00

ज्वलन्त प्रश्न

1. **कुछ जीवन्त कुछ ज्वलन्त**/कात्यायनी 90.00
2. **षड्यन्त्ररत मृतात्माओं के बीच**
   (साम्प्रदायिकता पर लेख)/कात्यायनी 25.00
3. **इस रात्रि श्यामला बेला में** (लेख और टिप्पणियाँ)/सत्यव्रत 30.00

व्यंग्य

1. **कहें मनबहकी खरी-खरी**/मनबहकी लाल 25.00

नौजवानों के लिए विशेष

1. **जय जीवन!** (लेख, भाषण और पत्र)/निकोलाई ओस्त्रोव्स्की 50.00

वैचारिकी

1. **माओवादी अर्थशास्त्र और समाजवाद का भविष्य**/रेमण्ड लोट्टा 25.00

साहित्य-विमर्श

1. **उपन्यास और जनसमुदाय**/रैल्फ़ फ़ॉक्स 75.00
2. **लेखनकला और रचनाकौशल**/
   गोर्की, फ़ेदिन, मयाकोव्स्की, अ. तोल्सतोय ...
3. **दर्शन, साहित्य और आलोचना**/
   बेलिंस्की, हर्ज़ेन, चेर्नीशेव्स्की, दोब्रोल्युबोव 65.00
4. **सृजन-प्रक्रिया और शिल्प के बारे में**/मक्सिम गोर्की 40.00

5.	**मार्क्सवाद और भाषाविज्ञान की समस्याएँ**/स्तालिन	20.00

नयी पीढ़ी के निर्माण के लिए

1.	**एक पुस्तक माता-पिता के लिए**/अन्तोन मकारेंको	...
2.	**मेरा हृदय बच्चों के लिए**/वसीली सुखोम्लीन्स्की	...

आह्वान पुस्तिका शृंखला

1.	**प्रेम, परम्परा और विद्रोह**/कात्यायनी	50.00

सृजन परिप्रेक्ष्य पुस्तिका शृंखला

1.	**एक नये सर्वहारा पुनर्जागरण और प्रबोधन के वैचारिक-सांस्कृतिक कार्यभार**/कात्यायनी, सत्यम	25.00

राहुल फाउण्डेशन

नौजवानों के लिए विशेष

1.	**नौजवानों से दो बातें**/पीटर क्रोपोटकिन	15.00
2.	**क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा**/भगतसिंह	15.00
3.	**मैं नास्तिक क्यों हूँ और 'ड्रीमलैण्ड' की भूमिका**/भगतसिंह	15.00
4.	**बम का दर्शन और अदालत में बयान**/भगतसिंह	15.00
5.	**जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो**/भगतसिंह	15.00
6.	**भगतसिंह ने कहा...**(चुने हुए उद्धरण)/भगतसिंह	15.00

क्रान्तिकारियों के दस्तावेज़

1.	**भगतसिंह और उनके साथियों के सम्पूर्ण उपलब्ध दस्तावेज़**/स. सत्यम	350.00
2.	**शहीदेआज़म की जेल नोटबुक**/भगतसिंह	100.00
3.	**विचारों की सान पर**/भगतसिंह	50.00

क्रान्तिकारियों के विचारों और जीवन पर

1.	**बहरों को सुनाने के लिए**/एस. इरफ़ान हबीब (भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और कार्यक्रम)	...
2.	**क्रान्तिकारी आन्दोलन का वैचारिक विकास**/शिव वर्मा	15.00
3.	**भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और राजनीति**/बिपन चन्द्र	20.00
4.	**यश की धरोहर**/ भगवानदास माहौर, शिव वर्मा, सदाशिवराव मलकापुरकर	50.00
5.	**संस्मृतियाँ**/शिव वर्मा	80.00
6.	**शहीद सुखदेव : नौघरा से फाँसी तक**/स. डॉ. हरदीप सिंह	40.00

महत्त्वपूर्ण और विचारोत्तेजक संकलन

1.	**उम्मीद एक ज़िन्दा शब्द है** ('दायित्वबोध' के महत्त्वपूर्ण सम्पादकीय लेखों का संकलन)	75.00
2.	**एनजीओ : एक ख़तरनाक साम्राज्यवादी कुचक्र**	60.00
3.	**डब्ल्यूएसएफ़ : साम्राज्यवाद का नया ट्रोजन हॉर्स**	50.00

ज्वलन्त प्रश्न

1.	**'जाति' प्रश्न के समाधान के लिए बुद्ध काफ़ी नहीं, अम्बेडकर भी काफ़ी नहीं, मार्क्स ज़रूरी हैं** / रंगनायकम्मा	...
2.	**जाति और वर्ग : एक मार्क्सवादी दृष्टिकोण** / रंगनायकम्मा	60.00

दायित्वबोध पुस्तिका शृंखला

1.	**अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएँ**/दीपायन बोस	10.00
2.	**समाजवाद की समस्याएँ, पूँजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति**/शशिप्रकाश	30.00
3.	**क्यों माओवाद?**/शशिप्रकाश	20.00
4.	**बुर्जुआ वर्ग के ऊपर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में**/चाङ चुन-चियाओ	5.00
5.	**भारतीय कृषि में पूँजीवादी विकास**/सुखविन्दर	35.00

आह्वान पुस्तिका शृंखला

1.	**छात्र-नौजवान नयी शुरुआत कहाँ से करें?**	15.00
2.	**आरक्षण : पक्ष, विपक्ष और तीसरा पक्ष**	15.00
3.	**आतंकवाद के बारे में : विभ्रम और यथार्थ**	15.00
4.	**क्रान्तिकारी छात्र-युवा आन्दोलन**	15.00
5.	**भ्रष्टाचार और उसके समाधान का सवाल सोचने के लिए कुछ मुद्दे**	50.00

बिगुल पुस्तिका शृंखला

1.	**कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढाँचा**/लेनिन	10.00
2.	**मकड़ा और मक्खी**/विल्हेल्म लीब्नेख़्त	5.00

3. **ट्रेडयूनियन काम के जनवादी तरीक़े**/सेर्गेई रोस्तोवस्की 5.00
4. **मई दिवस का इतिहास**/अलेक्ज़ैण्डर ट्रैक्टनबर्ग 10.00
5. **पेरिस कम्यून की अमर कहानी** 20.00
6. **अक्टूबर क्रान्ति की मशाल** 15.00
7. **जंगलनामा : एक राजनीतिक समीक्षा**/डॉ. दर्शन खेड़ी 5.00
8. **लाभकारी मूल्य, लागत मूल्य, मध्यम किसान और छोटे पैमाने के माल उत्पादन के बारे में मार्क्सवादी दृष्टिकोण : एक बहस** 30.00
9. **संशोधनवाद के बारे में** 10.00
10. **शिकागो के शहीद मज़दूर नेताओं की कहानी**/हावर्ड फ़ास्ट 10.00
11. **मज़दूर आन्दोलन में नयी शुरुआत के लिए** 20.00
12. **मज़दूर नायक, क्रान्तिकारी योद्धा** 15.00
13. **चोर, भ्रष्ट और विलासी नेताशाही** ...
14. **बोलते आँकड़े, चीख़ती सच्चाइयाँ** ...
15. **राजधानी के मेहनतकश : एक अध्ययन**/अभिनव 30.00
16. **फ़ासीवाद क्या है और इससे कैसे लड़ें?**/अभिनव 75.00
17. **नेपाली क्रान्ति : इतिहास, वर्तमान परिस्थिति और आगे के रास्ते से जुड़ी कुछ बातें, कुछ विचार**/आलोक रंजन 55.00
18. **कैसा है यह लोकतंत्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है** आलोक रंजन/आनन्द सिंह 100.00

मार्क्सवाद

1. **धर्म के बारे में**/मार्क्स, एंगेल्स 100.00
2. **कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र**/मार्क्स-एंगेल्स 25.00
3. **साहित्य और कला**/मार्क्स-एंगेल्स 150.00
4. **फ़्रांस में वर्ग-संघर्ष**/कार्ल मार्क्स 40.00
5. **फ़्रांस में गृहयुद्ध**/कार्ल मार्क्स 20.00
6. **लूई बोनापार्त की अठारहवीं ब्रूमेर**/कार्ल मार्क्स 35.00
7. **उजरती श्रम और पूँजी**/कार्ल मार्क्स 15.00
8. **मज़दूरी, दाम और मुनाफ़ा**/कार्ल मार्क्स 20.00
9. **गोथा कार्यक्रम की आलोचना**/कार्ल मार्क्स 40.00
10. **लुडविग फ़ायरबाख़ और क्लासिकीय जर्मन दर्शन का अन्त**/ फ़्रेडरिक एंगेल्स 20.00

11.	**जर्मनी में क्रान्ति तथा प्रतिक्रान्ति**/फ़्रेडरिक एंगेल्स	30.00
12.	**समाजवाद : काल्पनिक तथा वैज्ञानिक**/फ़्रेडरिक एंगेल्स	...
13.	**पार्टी कार्य के बारे में**/लेनिन	15.00
14.	**एक क़दम आगे, दो क़दम पीछे**/लेनिन	60.00
15.	**जनवादी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद के दो रणकौशल**/लेनिन	25.00
16.	**समाजवाद और युद्ध**/लेनिन	20.00
17.	**साम्राज्यवाद : पूँजीवाद की चरम अवस्था**/लेनिन	30.00
18.	**राज्य और क्रान्ति**/लेनिन	40.00
19.	**सर्वहारा क्रान्ति और ग़द्दार काउत्स्की**/लेनिन	15.00
20.	**दूसरे इण्टरनेशनल का पतन**/लेनिन	15.00
21.	**गाँव के ग़रीबों से**/लेनिन	...
22.	**मार्क्सवाद का विकृत रूप तथा साम्राज्यवादी अर्थवाद**/लेनिन	20.00
23.	**कार्ल मार्क्स और उनकी शिक्षा**/लेनिन	20.00
24.	**क्या करें?**/लेनिन	...
25.	**"वामपन्थी" कम्युनिज़्म - एक बचकाना मर्ज़**/लेनिन	...
26.	**पार्टी साहित्य और पार्टी संगठन**/लेनिन	15.00
27.	**जनता के बीच पार्टी का काम**/लेनिन	70.00
28.	**धर्म के बारे में**/लेनिन	20.00
29.	**तोल्स्तोय के बारे में**/लेनिन	10.00
30.	**मार्क्सवाद की मूल समस्याएँ**/जी. प्लेख़ानोव	30.00
31.	**जुझारू भौतिकवाद**/प्लेख़ानोव	35.00
32.	**लेनिनवाद के मूल सिद्धान्त**/स्तालिन	50.00
33.	**सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास**	90.00
34.	**माओ त्से-तुङ की रचनाएँ : प्रतिनिधि चयन** (एक खण्ड में)	...
35.	**कम्युनिस्ट जीवनशैली और कार्यशैली के बारे में**/माओ त्से-तुङ	...
36.	**सोवियत अर्थशास्त्र की आलोचना**/माओ त्से-तुङ	35.00
37.	**दर्शन विषयक पाँच निबन्ध**/माओ त्से-तुङ	70.00
38.	**कला-साहित्य विषयक एक भाषण और पाँच दस्तावेज़** / माओ त्से-तुङ	15.00
39.	**माओ त्से-तुङ की रचनाओं के उद्धरण**	50.00

अन्य मार्क्सवादी साहित्य

1. **राजनीतिक अर्थशास्त्र, मार्क्सवादी अध्ययन पाठ्यक्रम** नयी 300.00
2. **ख्रुश्चेव झूठा था**/ग्रोवर फ़र 300.00
3. **राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त** (दो खण्डों में)
   (दि शंघाई टेक्स्टबुक ऑफ़ पोलिटिकल इकोनॉमी) 160.00
4. **पेरिस कम्यून की शिक्षाएँ** (सचित्र) एलेक्ज़ेण्डर ट्रैक्टनबर्ग 10.00
5. **कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र**/डी. रियाज़ानोव 100.00
   (विस्तृत व्याख्यात्मक टिप्पणियों सहित)
6. **द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद**/डेविड गेस्ट ...
7. **महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति : चुने हुए दस्तावेज़ और लेख** (खण्ड 1) 35.00
8. **इतिहास ने जब करवट बदली**/विलियम हिण्टन 25.00
9. **द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद**/वी. अदोरात्स्की 50.00
10. **अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन**/अल्बर्ट रीस विलियम्स 90.00
    (महत्त्वपूर्ण नयी सामग्री और अनेक नये दुर्लभ चित्रों से सज्जित परिवर्द्धित संस्करण)
11. **सोवियत संघ में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना**/मार्टिन निकोलस 50.00

राहुल साहित्य

1. **तुम्हारी क्षय**/राहुल सांकृत्यायन 40.00
2. **दिमाग़ी ग़ुलामी**/राहुल सांकृत्यायन ...
3. **वैज्ञानिक भौतिकवाद**/राहुल सांकृत्यायन 65.00
4. **राहुल निबन्धावली**/राहुल सांकृत्यायन 50.00
5. **स्तालिन : एक जीवनी**/राहुल सांकृत्यायन 150.00

परम्परा का स्मरण

1. **चुनी हुई रचनाएँ**/गणेशशंकर विद्यार्थी 100.00
2. **सलाखों के पीछे से**/गणेशशंकर विद्यार्थी 30.00
3. **ईश्वर का बहिष्कार**/राधामोहन गोकुलजी 30.00
4. **लौकिक मार्ग**/राधामोहन गोकुलजी 20.00
5. **धर्म का ढकोसला**/राधामोहन गोकुलजी 30.00
6. **स्त्रियों की स्वाधीनता**/राधामोहन गोकुलजी 30.00

जीवनी और संस्मरण

1. **कार्ल मार्क्स जीवन और शिक्षाएँ**/ज़ेल्डा कोट्स 25.00
2. **फ्रेडरिक एंगेल्स : जीवन और शिक्षाएँ**/ज़ेल्डा कोट्स ...
3. **कार्ल मार्क्स : संस्मरण और लेख** ...
4. **अदम्य बोल्शेविक नताशा**
   (एक स्त्री मज़दूर संगठनकर्ता की संक्षिप्त जीवनी)/एल. काताशेवा 30.00
5. **लेनिन कथा**/मरीया प्रिलेज़ायेवा 70.00
6. **लेनिन विषयक कहानियाँ** 75.00
7. **लेनिन के जीवन के चन्द पन्ने**/लीदिया फ़ोतियेवा ...
8. **स्तालिन : एक जीवनी**/राहुल सांकृत्यायन 150.00

विविध

1. **फाँसी के तख़्ते से**/जूलियस फ्यूचिक 30.00
2. **पाप और विज्ञान**/डायसन कार्टर 100.00
3. **सापेक्षिकता सिद्धान्त क्या है?**/लेव लन्दाऊ, यूरी रूमेर ....

Rahul Foundation

MARXIST CLASSICS

KARL MARX

1.	**A Contribution to the Critique of Political Economy**	100.00
2.	**The Civil War in France**	80.00
3.	**The Eighteenth Brumaire of Louis Bonaparte**	40.00
4.	**Critique of the Gotha Programme**	25.00
5.	**Preface and Introduction to A Contribution to the Critique of Political Economy**	25.00
6.	**The Poverty of Philosophy**	80.00
7.	**Wages, Price and Profit**	35.00
8.	**Class Struggles in France**	50.00

FREDERICK ENGELS

9.	**The Peasant War in Germany**	70.00
10.	**Ludwig Feuerbach and the End of Classical German Philosophy**	65.00
11.	**On Capital**	55.00
12.	**The Origin of the Family, Private Property and the State**	100.00
13.	**Socialism: Utopian and Scientific**	60.00
14.	**On Marx**	20.00
15.	**Principles of Communism**	5.00

MARX and ENGELS

16.	**Historical Writings** (Set of 2 Vols.)	700.00
17.	**Manifesto of the Communist Party**	50.00
18.	**Selected Letters**	40.00

V. I. LENIN

19.	**Theory of Agrarian Question**	160.00
20.	**The Collapse of the Second International**	25.00
21.	**Imperialism, the Highest Stage of Capitalism**	80.00
22.	**Materialism and Empirio-Criticism**	150.00

23. **Two Tactics of Social-Democracy in the Democratic Revolution** 55.00

24. **Capitalism and Agriculture** 30.00

25. **A Characterisation of Economic Romanticism** 50.00

26. **On Marx and Engels** 35.00

27. **“Left-Wing” Communism, An Infantile Disorder** 40.00

28. **Party Work in the Masses** 55.00

29. **The Proletarian Revolution and the Renegade Kautsky** 40.00

30. **One Step Forward, Two Steps Back** …

31. **The State and Revolution** …

MARX, ENGELS and LENIN

32. **On the Dictatorship of Proletariat, *Questions and Answers*** 50.00

33. **On the Dictatorship of the Proletariat: *Selected Expositions*** 10.00

PLEKHANOV

34. **Fundamental Problems of Marxism** 35.00

J. STALIN

35. **Marxism and Problems of Linguistics** 25.00

36. **Anarchism or Socialism?** 25.00

37. **Economic Problems of Socialism in the USSR** 30.00

38. **On Organisation** 15.00

39. **The Foundations of Leninism** 40.00

40. **The Essential Stalin** *Major Theoretical Writings 1905–52* 175.00
(Edited and with an Introduction by Bruce Franklin)

LENIN and STALIN

41. **On the Party** …

MAO TSE-TUNG

42. **Five Essays on Philosophy** 50.00

43. **A Critique of Soviet Economics** 70.00

44. **On Literature and Art** 80.00

45. **Selected Readings from the Works of Mao Tse-tung** ...
46. **Quotations from the Writings of Mao Tse-tung** ...

OTHER MARXISM

1. **Political Economy, *Marxist Study Courses*** (Prepared by the British Communist Party in the 1930s) 275.00
2. **Fundamentals of Political Economy** (The Shanghai Textbook) 160.00
3. **Reader in Marxist Philosophy**/ *Howard Selsam & Harry Martel* ...
4. **Socialism and Ethics**/*Howard Selsam* ...
5. **What Is Philosophy?** (A Marxist Introduction)**/** *Howard Selsam* 75.00
6. **Reader's Guide to Marxist Classics/***Maurice Cornforth* 70.00
7. **From Marx to Mao Tse-tung /**George Thomson ...
8. **Capitalism and After/**George Thomson ...
9. **The Human Essence/**George Thomson 65.00
10. **Mao Tse-tung's Immortal Contributions/***Bob Avakian* 125.00
11. **A Basic Understanding of the Communist Party** (Written during the GPCR in China) 150.00
12. **The Lessons of the Paris Commune/** *Alexander Trachtenberg (Illustrated)* 15.00

BIOGRAPHIES & REMINISCENCES

1. **Reminiscences of Marx and Engels** (Collection) ...
2. **Karl Marx And Frederick Engels:** An Introduction to their Lives and Work/David Riazanov ...
3. **Joseph Stalin: A Political Biography** *by The Marx-Engels-Lenin Institute* ...

PROBLEMS OF SOCIALISM

1. **How Capitalism was Restored in the Soviet Union, And What This Means for the World Struggle (Red Papers 7)** 175.00

2. **Preface of Class Struggles in the USSR** / *Charles Bettelheim* 30.00
3. **Nepalese Revolution: History, Present Situation and Some Points, Some Thoughts on the Road Ahead** / Alok Ranjan 75.00
4. **Problems of Socialism, Capitalist Restoration and the Great Proletarian Cultural Revolution** / *Shashi Prakash* 40.00

ON THE CULTURAL REVOLUTION

1. **Hundred Day War:** The Cultural Revolution At Tsinghua University / *William Hinton* ...
2. **The Cultural Revolution at Peking University** / *Victor Nee* with *Don Layman* 30.00
3. **Mao Tse-tung's Last Great Battle** / *Raymond Lotta* 25.00
4. **Turning Point in China** / *William Hinton* ...
5. **Cultural Revolution and Industrial Organization in China** / *Charles Bettelheim* 55.00
6. **They Made Revolution Within the Revolution /** *Iris Hunter* ...

ON SOCIALIST CONSTRUCTION

1. **Away With All Pests:** An English Surgeon in People's China: 1954–1969 */ Joshua S. Horn* ...
2. **Serve The People:** Observations on Medicine in the People's Republic of China /*Victor W. Sidel* and *Ruth Sidel* ...
3. **Philosophy is No Mystery** (Peasants Put Their Study to Work) 35.00

CONTEMPORARY ISSUES

1. **Caste and Class: A Marxist Viewpoint /** Ranganayakamma 60.00

DAYITVABODH REPRINT SERIES

1. **Immortal are the Flames of Proletarian Struggles /** *Deepayan Bose* 15.00

2. **Problems of Socialism, Capitalist Restoration and the Great Proletarian Cultural Revolution** / *Shashi Prakash* 40.00
3. **Why Maoism?** / *Shashi Prakash* 25.00

AHWAN REPRINT SERIES

1. **Where Should Students and Youth Make a New Beginning?**
2. **Reservation: Support, Opposition and Our Position** 20.00
3. **On Terrorism : Illusion and Reality** / *Alok Ranjan* 15.00

BIGUL REPRINT SERIES

1. **Still Ablaze is the Torch of October Revolution** 20.00
2. **Nepalese Revolution History, Present Situation and Some Points, Some Thoughts on the Road Ahead** / Alok Ranjan 75.00

WOMEN QUESTION

1. **The Emancipation of Women** / *V. I. Lenin* ...
2. **Breaking All Tradition's Chains: Revolutionary Communism and Women's Liberation** /*Mary Lou Greenberg*...

MISCELLANEOUS

1. **Probabilities of the Quantum World** / *Daniel Danin* ...
2. **An Appeal to the Young** / *Peter Kropotkin* 15.00

अरविन्द स्मृति न्यास के प्रकाशन

1. **इक्कीसवीं सदी में भारत का मज़दूर आन्दोलन: निरन्तरता और परिवर्तन, दिशा और सम्भावनाएँ, समस्याएँ और चुनौतियाँ**
(द्वितीय अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 40.00
2. **भारत में जनवादी अधिकार आन्दोलन: दिशा, समस्याएँ और चुनौतियाँ**
(तृतीय अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 80.00
3. **जाति प्रश्न और मार्क्सवाद**
(चतुर्थ अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 150.00

PUBLICATIONS FROM ARVIND MEMORIAL TRUST

1. **Working Class Movement in the Twenty-First Century: Continuity and Change, Orientation and Possibilities, Problems and Challenges** (Papers presented in the Second Arvind Memorial Seminar) 40.00
2. **Democratic Rights Movement in India: Orientation, Problems and Challenges** (Papers presented in the Third Arvind Memorial Seminar) 80.00
3. **Caste Question and Marxism** (Papers presented in the Fourth Arvind Memorial Seminar) 200.00

जनचेतना

एक वैचारिक मुहिम है
भविष्य-निर्माण का एक प्रोजेक्ट है
वैकल्पिक मीडिया की एक सशक्त धारा है।

परिकल्पना प्रकाशन, राहुल फ़ाउण्डेशन, अनुराग ट्रस्ट, अरविन्द स्मृति न्यास, शहीद भगतसिंह यादगारी प्रकाशन, दस्तक प्रकाशन और प्रांजल आर्ट पब्लिशर्स की पुस्तकों की 'जनचेतना' मुख्य वितरक है। ये प्रकाशन पाँच स्त्रोतों – सरकार, राजनीतिक पार्टियों, कॉरपोरेट घरानों, बहुराष्ट्रीय निगमों और विदेशी फ़ण्डिंग एजेंसियों से किसी भी प्रकार का अनुदान या वित्तीय सहायता लिये बिना जनता से जुटाये गये संसाधनों के आधार पर आज के दौर के लिए ज़रूरी व महत्त्वपूर्ण साहित्य बेहद सस्ती दरों पर उपलब्ध कराने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

अनुराग ट्रस्ट

1.	**बच्चों के लेनिन**	35.00
2	**Stories About Lenin**	35.00
3.	**सच से बड़ा सच**/रवीन्द्रनाथ ठाकुर	25.00
4.	**औज़ारों की कहानियाँ**	20.00
5.	**गुड़ की डली**/कात्यायनी	20.00
6.	**फूल कुंडलाकार क्यों होते हैं**/सनी	20.00
7.	**धरती और आकाश**/अ. वोल्कोव	120.00
8.	**कजाकी**/प्रेमचन्द	35.00
9.	**नीला प्याला**/अरकादी गैदार	40.00
10.	**गड़रिये की कहानियाँ**/क़यूम तंगरीकुलीयेव	35.00
11.	**चींटी और अन्तरिक्ष यात्री**/अ. मित्यायेव	35.00
12.	**अन्धविश्वासी शेकी टेल**/सेर्गेई मिखाल्कोव	20.00
13.	**चलता-फिरता हैट**/एन. नोसोव, होल्कर पुक्क	20.00
14.	**चालाक लोमड़ी** (लोककथा)	20.00
15.	**दियांका-टॉमचिक**	20.00
16.	**गधा और ऊदबिलाव**/मक्सिम गोर्की, सेर्गेई मिखाल्कोव	20.00
17.	**गुफा मानवों की कहानियाँ**/मैरी मार्स	...
18.	**हम सूरज को देख सकते हैं**/मिकोला गिल, दायर स्लावकोविच	20.00
19.	**मुसीबत का साथी**/सेर्गेई मिखाल्कोव	20.00
20.	**नन्हे आर्थर का सूरज**/हद्याक ग्युलनज़रयान, गेलीना लेबेदेवा	20.00
22.	**आकाश में मौज-मस्ती**/चिनुआ अचेबे	20.00
23.	**ज़िन्दगी से प्यार** (दो रोमांचक कहानियाँ)/जैक लण्डन	40.00
24.	**एक छोटे लड़के और एक छोटी लड़की की कहानी**/मक्सिम गोर्की	20.00
25.	**बहादुर**/अमरकान्त	15.00
26.	**बुन्नू की परीक्षा** (सचित्र रंगीन)/शस्या हर्ष	...

27. **दान्को का जलता हुआ हृदय**/मक्सिम गोर्की 15.00
28. **नन्हा राजकुमार**/आतुआन द सैंतेक्ज़ूपेरी 40.00
29. **दादा आर्खिप और ल्योंका**/मक्सिम गोर्की 30.00
30. **सेमागा कैसे पकड़ा गया**/मक्सिम गोर्की 15.00
31. **बाज़ का गीत**/मक्सिम गोर्की 15.00
32. **वांका**/अन्तोन चेख़व 15.00
33. **तोता**/रवीन्द्रनाथ टैगोर 15.00
34. **पोस्टमास्टर**/रवीन्द्रनाथ टैगोर ...
35. **काबुलीवाला**/रवीन्द्रनाथ टैगोर 20.00
36. **अपना-अपना भाग्य**/जैनेन्द्र 15.00
37. **दिमाग़ कैसे काम करता है**/किशोर 25.00
38. **रामलीला**/प्रेमचन्द 15.00
39. **दो बैलों की कथा**/प्रेमचन्द 25.00
40. **ईदगाह**/प्रेमचन्द ...
41. **लॉटरी**/प्रेमचन्द 20.00
42. **गुल्ली-डण्डा**/प्रेमचन्द ...
43. **बड़े भाई साहब**/प्रेमचन्द 20.00
44. **मोटेराम शास्त्री**/प्रेमचन्द ...
45. **हार की जीत**/सुदर्शन ...
46. **इवान**/व्लादीमिर बोगोमोलोव 40.00
47. **चमकता लाल सितारा**/ली शिन-थ्येन 55.00
48. **उल्टा दरख़्त**/कृश्नचन्दर 35.00
49. **हरामी**/मिखाईल शोलोख़ोव 25.00
50. **दोन किहोते** /सर्वान्तेस (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी) ...
51. **आश्चर्यलोक में एलिस** /लुइस कैरोल
(नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी) 30.00
52. **झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई**/वृन्दावनलाल वर्मा
(नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी) 35.00
53. **नन्हे गुदड़ीलाल के साहसिक कारनामे**/सुन यओच्युन ...
54. **लाखी**/अन्तोन चेख़व 25.00
55. **बेझिन चरागाह**/इवान तुर्गनेव 12.00

56.	**हिरनौटा**/द्मीत्री मामिन सिबिर्याक	25.00
57.	**घर की ललक**/निकोलाई तेलेशोव	10.00
58.	**बस एक याद**/लेओनीद अन्द्रेयेव	20.00
59.	**मदारी**/अलेक्सान्द्र कुप्रिन	35.00
60.	**पराये घोंसले में**/फ़्योदोर दोस्तोयेव्स्की	20.00
61.	**कोहकाफ़ का बन्दी**/तोल्सतोय	30.00
62.	**मनमानी के मज़े**/सेर्गेई मिखाल्कोव	30.00
63.	**सदानन्द की छोटी दुनिया**/सत्यजीत राय	15.00
64.	**छत पर फँस गया बिल्ला**/विताउते जिलिन्सकाइते	35.00
65.	**गोलू के कारनामे**/रामबाबू	25.00
66.	**दो साहसिक कहानियाँ**/होल्गर पुक्क	15.00
67.	**आम ज़िन्दगी की मज़ेदार कहानियाँ**/होल्गर पुक्क	20.00
68.	**कंगूरे वाले मकान का रहस्यमय मामला**/होल्गर पुक्क	20.00
69.	**रोज़मर्रे की कहानियाँ**/होल्गर पुक्क	20.00
70.	**अजीबोग़रीब क़िस्से**/होल्गर पुक्क	...
71.	**नये ज़माने की परीकथाएँ**/होल्गर पुक्क	25.00
72.	**किस्सा यह कि एक देहाती ने दो अफ़सरों का कैसे पेट भरा**/मिखाइल सल्तिकोव-श्चेद्रिन	15.00
73.	**पश्चदृष्टि-भविष्यदृष्टि** (लेख संकलन)/ कमला पाण्डेय	30.00
74.	**यादों के घेरे में अतीत** (संस्मरण)/ कमला पाण्डेय	100.00
75.	**हमारे आसपास का अँधेरा** (कहानियाँ)/ कमला पाण्डेय	60.00
76.	**कालमन्थन** (उपन्यास)/ कमला पाण्डेय	60.00

ਪੰਜਾਬੀ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ

ਦਸਤਕ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ

ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ ਦਾ ਸਵੈ-ਜੀਵਨੀ ਨਾਵਲ (ਤਿੰਨ ਭਾਗਾਂ ਵਿੱਚ)

1. ਮੇਰਾ ਬਚਪਨ	130.00
2. ਮੇਰੇ ਵਿਸ਼ਵ-ਵਿਦਿਆਲੇ	100.00
3. ਮੇਰੇ ਸ਼ਗਿਰਦੀ ਦੇ ਦਿਨ	200.00

4. ਪ੍ਰੇਮ, ਪ੍ਰੰਪਰਾ ਅਤੇ ਵਿਦਰੋਹ / ਕਾਤਿਆਈਨੀ	20.00
5. ਥੀਏਟਰ ਦਾ ਸੰਖੇਪ ਤਰਕਸ਼ਾਸਤਰ / ਬ੍ਰੈਖ਼ਤ	15.00
6. ਆਈਜੇਂਸਤਾਈਨ ਦਾ ਫਿਲਮ ਸਿਧਾਂਤ	15.00
7. ਮਜ਼ਦੂਰ ਜਮਾਤੀ ਸੰਗੀਤ ਰਚਨਾਵਾਂ ਦੀਆਂ ਸਮੱਸਿਆਵਾਂ	10.00
8. ਪਹਿਲਾ ਅਧਿਆਪਕ / ਚੰਗੇਜ਼ ਆਇਤਮਾਤੋਵ (ਨਾਵਲ)	25.00
9. ਸ਼ਾਂਤ ਸਰਘੀ ਵੇਲਾ / ਬੋਰਿਸ ਵਾਸੀਲਿਯੇਵ (ਨਾਵਲ)	30.00
10. ਭਾਂਜ / ਅਲੈਗਜ਼ਾਂਦਰ ਫ਼ਦੇਯੇਵ (ਨਾਵਲ)	100.00
11. ਫੌਲਾਦੀ ਹੜ / ਅਲੈਗਜ਼ਾਂਦਰ ਸਰਾਫ਼ੀਮੋਵਿਚ (ਨਾਵਲ)	100.00
12. ਇਕਤਾਲ਼ੀਵਾਂ / ਬੋਰਿਸ ਲਵਰੇਨਿਓਵ (ਨਾਵਲ)	30.00
13. ਮਾਂ / ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ (ਨਾਵਲ)	180.00
14. ਪੀਲ਼ੇ ਦੈਂਤ ਦਾ ਸ਼ਹਿਰ / ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ	80.00
15. ਸਾਹਿਤ ਬਾਰੇ / ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ	200.00
16. ਅਸਲੀ ਇਨਸਾਨ ਦੀ ਕਹਾਣੀ / ਬੋਰਿਸ ਪੋਲੇਵਾਈ (ਨਾਵਲ)	200.00
17. ਅੱਠੇ ਪਹਿਰ (ਕਹਾਣੀਆਂ)	125.00
18. ਬਘਿਆੜਾਂ ਦੇ ਵੱਸ / ਬਰੂਨੋ ਅਪਿਤਜ (ਨਾਵਲ)	100.00
19. ਮੀਤ੍ਰਿਆ ਕੋਕੋਰ / ਮੀਹਾਇਲ ਸਾਦੋਵਿਆਨੋ (ਨਾਵਲ)	100.00
20. ਇਨਕਲਾਬ ਲਈ ਜੂਝੀ ਜਵਾਨੀ	150.00
21. ਬੱਚਿਆਂ ਨੂੰ ਦਿਆਂ ਦਿਲ ਆਪਣਾ ਮੈਂ / ਵ. ਸੁਖੋਮਲਿੰਸਕੀ	150.00
22. ਫਾਸੀ ਦੇ ਤਖ਼ਤੇ ਤੋਂ / ਜੂਲੀਅਸ ਫੂਚਿਕ (ਨਾਵਲ)	50.00
23. ਭੁੱਬਲ / ਫ਼ਰੰਜ਼ਦ ਅਲੀ (ਪਾਕਿਸਤਾਨੀ ਪੰਜਾਬ ਦਾ ਨਾਵਲ)	200.00
24. ਸਭ ਤੋਂ ਖਤਰਨਾਕ... (ਪਾਸ਼ ਦੀ ਸਮੁੱਚੀ ਉਪਲੱਬਧ ਸ਼ਾਇਰੀ)	200.00
25. ਧਰਤੀ ਧਨ ਨਾ ਆਪਣਾ / ਜਗਦੀਸ਼ ਚੰਦਰ	250.00

ਸ਼ਹੀਦ ਭਗਤ ਸਿੰਘ ਯਾਦਗਾਰੀ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ

1. ਉਜਰਤ, ਕੀਮਤ ਅਤੇ ਮੁਨਾਫਾ / ਮਾਰਕਸ	30.00
2. ਉਜਰਤੀ ਕਿਰਤ ਅਤੇ ਸਰਮਾਇਆ / ਮਾਰਕਸ	20.00
3. ਸਿਆਸੀ ਆਰਥਿਕਤਾ ਦੀ ਅਲੋਚਨਾ ਵਿੱਚ ਯੋਗਦਾਨ / ਮਾਰਕਸ	125.00
4. ਲੂਈ ਬੋਨਾਪਾਰਟ ਦੀ ਅਠਾਰਵੀਂ ਬਰੂਮੇਰ / ਮਾਰਕਸ	50.00
5. ਪੂੰਜੀ ਦੀ ਉਤਪਤੀ / ਮਾਰਕਸ	45.00
6. ਰਿਹਾਇਸ਼ੀ ਘਰਾਂ ਦਾ ਸਵਾਲ / ਏਂਗਲਜ਼	35.00
7. ਫਿਊਰਬਾਖ : ਪਾਦਰਥਵਾਦੀ ਅਤੇ ਆਦਰਸ਼ਵਾਦੀ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣਾਂ ਦਾ ਵਿਰੋਧ / ਮਾਰਕਸ-ਏਂਗਲਜ਼	60.00
8. ਜਰਮਨੀ ਵਿੱਚ ਇਨਕਲਾਬ ਅਤੇ ਉਲਟ ਇਨਕਲਾਬ / ਏਂਗਲਜ਼	50.00
9. ਮਾਰਕਸ ਦੇ "ਸਰਮਾਇਆ" ਬਾਰੇ / ਏਂਗਲਜ਼	60.00
10. ਫਰਾਂਸ ਅਤੇ ਜਰਮਨੀ 'ਚ ਕਿਸਾਨੀ ਦਾ ਸਵਾਲ / ਏਂਗਲਜ਼	20.00
11. ਸੋਸ਼ਲਿਜ਼ਮ : ਵਿਗਿਆਨਕ ਅਤੇ ਯੂਟੋਪੀਆਈ / ਏਂਗਲਜ਼	35.00
12. ਕਾਰਲ ਮਾਰਕਸ ਬਾਰੇ / ਏਂਗਲਜ਼	10.00
13. ਲੁਡਵਿਗ ਫਿਉਰਬਾਖ ਅਤੇ ਕਲਾਸੀਕੀ ਜਰਮਨ ਦਰਸ਼ਨ ਦਾ ਅੰਤ / ਏਂਗਲਜ਼	30.00
14. ਟੱਬਰ, ਨਿੱਜੀ ਜਾਇਦਾਦ ਅਤੇ ਰਾਜ ਦੀ ਉੱਤਪਤੀ / ਏਂਗਲਜ਼	65.00
15. ਕਾਰਲ ਮਾਰਕਸ ਅਤੇ ਉਨਾਂ ਦੀ ਸਿੱਖਿਆ / ਲੈਨਿਨ	35.00
16. ਰਾਜ ਅਤੇ ਇਨਕਲਾਬ / ਲੈਨਿਨ	50.00
17. ਦੂਜੀ ਇੰਟਰਨੈਸ਼ਨਲ ਦਾ ਪਤਣ / ਲੈਨਿਨ	45.00
18. ਖੇਤੀ ਵਿੱਚ ਪੂੰਜੀਵਾਦ / ਲੈਨਿਨ	15.00
19. ਰਾਜ / ਲੈਨਿਨ	10.00
20. ਸਾਮਰਾਜਵਾਦ, ਸਰਮਾਏਦਾਰੀ ਦਾ ਸਰਵਉੱਚ ਪੜਾਅ / ਲੈਨਿਨ	70.00
21. ਇੱਕ ਕਦਮ ਅੱਗੇ ਦੋ ਕਦਮ ਪਿੱਛੇ / ਲੈਨਿਨ	125.00
22. ਲੋਕਾਂ ਵਿੱਚ ਕੰਮ ਕਿਵੇਂ ਕਰੀਏ / ਲੈਨਿਨ	65.00
23. ਸਾਹਿਤ ਅਤੇ ਕਲਾ ਬਾਰੇ / ਲੈਨਿਨ	150.00
24. ਸਮਾਜਵਾਦ ਅਤੇ ਜੰਗ / ਲੈਨਿਨ	45.00
25. ਖੱਬੇ ਪੱਖੀ ਕਮਿਊਨਿਜ਼ਮ ਇੱਕ ਬਚਗਾਨਾ ਰੋਗ / ਲੈਨਿਨ	65.00
26. ਅਸੀਂ ਜਿਹੜਾ ਵਿਰਸਾ ਤਿਆਗਦੇ ਹਾਂ / ਲੈਨਿਨ	25.00
27. ਪ੍ਰੋਲੇਤਾਰੀ ਇਨਕਲਾਬ ਅਤੇ ਭਗੌੜਾ ਕਾਊਤਸਕੀ / ਲੈਨਿਨ	70.00
28. ਆਰਥਕ ਰੋਮਾਂਚਵਾਦ ਦਾ ਚਰਿੱਤਰ ਚਿੱਤਰਣ / ਲੈਨਿਨ	50.00

29.	ਸੁਤੰਤਰ ਵਪਾਰ ਦਾ ਸਵਾਲ / ਮਾਰਕਸ, ਏਂਗਲਜ਼, ਲੈਨਿਨ	10.00
30.	ਲੈਨਿਨਵਾਦ ਦੀਆਂ ਨੀਹਾਂ / ਸਟਾਲਿਨ	20.00
31.	ਫ਼ਲਸਫਾਨਾ ਲਿਖਤਾਂ / ਮਾਓ-ਜ਼ੇ-ਤੁੰਗ	25.00
32.	ਸੋਵੀਅਤ ਅਰਥਸ਼ਾਸਤਰ ਦੀ ਅਲੋਚਨਾ / ਮਾਓ-ਜ਼ੇ-ਤੁੰਗ	60.00
33.	ਮਾਰਕਸਵਾਦ ਦੇ ਬੁਨਿਆਦੀ ਮਸਲੇ / ਪਲੈਖਾਨੋਵ	40.00
34.	ਰਾਜਨੀਤਕ ਅਰਥਸ਼ਾਸਤਰ ਦੇ ਮੂਲ ਸਿਧਾਂਤ	60.00
35.	ਫਿਲਾਸਫੀ ਕੋਈ ਗੋਰਖਧੰਦਾ ਨਹੀਂ	10.00
36.	ਦਵੰਦਵਾਦ ਜ਼ਰੀਏ ਲੋਕਾਂ ਦੀ ਸੇਵਾ	10.00
37.	ਇਤਿਹਾਸ ਨੇ ਜਦ ਕਰਵਟ ਬਦਲੀ	40.00
38.	ਇਨਕਲਾਬ ਅੰਦਰ ਇਨਕਲਾਬ	20.00
39.	ਮਾਓ-ਜ਼ੇ-ਤੁੰਗ ਦੀ ਅਮਿੱਟ ਦੇਣ	125.00
40.	ਚੀਨ ਵਿੱਚ ਉਲਟ ਇਨਕਲਾਬ ਅਤੇ ਮਾਓ ਦਾ ਇਨਕਲਾਬੀ ਵਿਰਸਾ	60.00
41.	ਮਾਓਵਾਦੀ ਅਰਥਸ਼ਾਸਤਰ ਅਤੇ ਸਮਾਜਵਾਦ ਦਾ ਭਵਿੱਖ	60.00
42.	ਲੈਨਿਨ ਦੀ ਜੀਵਨ ਕਹਾਣੀ	100.00
43.	ਅਡੋਲ ਬਾਲਸ਼ਵਿਕ ਨਤਾਸ਼ਾ	30.00
44.	ਮਾਰਕਸ ਅਤੇ ਏਂਗਲਜ਼ ਆਪਣੇ ਸਮਕਾਲੀਆਂ ਦੀਆਂ ਨਜ਼ਰਾਂ ਵਿੱਚ	75.00
45.	ਪੈਰਿਸ ਕਮਿਊਨ ਦੀ ਅਮਰ ਕਹਾਣੀ	10.00
46.	ਬੁਝ ਨਹੀਂ ਸਕਦੀ ਅਕਤੂਬਰ ਇਨਕਲਾਬ ਦੀ ਮਸ਼ਾਲ	10.00
47.	ਦਹਿਸ਼ਤਗਰਦੀ ਬਾਰੇ ਭਰਮ ਅਤੇ ਯਥਾਰਥ	10.00
48.	ਪੰਜਾਬ ਦਾ ਕਿਸਾਨ ਅੰਦੋਲਨ ਅਤੇ ਕਮਿਊਨਿਸਟ ਲਹਿਰ	10.00
49.	ਜੰਗਲਨਾਮਾ : ਇੱਕ ਰਾਜਨੀਤਕ ਪੜਚੋਲ	10.00
50.	ਭਾਰਤੀ ਖੇਤੀ ਵਿੱਚ ਪੂੰਜੀਵਾਦੀ ਵਿਕਾਸ	20.00
51.	ਅਮਿੱਟ ਹਨ ਮਜ਼ਦੂਰ ਸੰਗਰਾਮਾਂ ਦੀਆਂ ਚਿਣਗਾਂ	10.00
52.	ਸਮਾਜਵਾਦ ਦੀਆਂ ਸਮੱਸਿਆਵਾਂ, ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਦੀ ਮੁੜ ਬਹਾਲੀ ਅਤੇ ਮਹਾਨ ਪ੍ਰੋਲੇਤਾਰੀ ਸੱਭਿਆਚਾਰ ਇਨਕਲਾਬ	20.00
53.	ਕਿਉਂ ਮਾਓਵਾਦ ?	10.00
54.	ਸੋਵੀਅਤ ਯੂਨੀਅਨ ਦੇ ਇਤਿਹਾਸ ਬਾਰੇ ਪ੍ਰਚਾਰੇ ਜਾਂਦੇ ਝੂਠ	10.00
55.	ਰਿਜ਼ਰਵੇਸ਼ਨ : ਪੱਖ, ਵਿਪੱਖ ਅਤੇ ਤੀਸਰਾ ਪੱਖ	5.00
56.	ਮਾਰਕਸਵਾਦ ਅਤੇ ਜਾਤ ਦਾ ਸਵਾਲ / ਸੁਖਵਿੰਦਰ	20.00

57. ਮਾਰਕਸਵਾਦ ਬਾਰੇ ਅੰਬੇਡਕਰ ਦੇ ਵਿਚਾਰ / ਰੰਗਾਨਾਇਕੰਮਾ 15.00
58. ਡਾ. ਅੰਬੇਡਕਰ ਅਤੇ ਭਾਰਤ ਦਾ ਸੰਵਿਧਾਨ / ਰੰਗਾਨਾਇਕੰਮਾ 15.00
59. ਡਾ. ਅੰਬੇਡਕਰ : ਜੀਵਨ ਅਤੇ ਵਿਚਾਰ / ਰੰਗਾਨਾਇਕੰਮਾ 10.00
60. ਭਾਰਤ ਦੇ ਇਤਿਹਾਸ ਵਿੱਚ ਜਾਤ-ਪਾਤ / ਪ੍ਰੋ. ਇਰਫ਼ਾਨ ਹਬੀਬ 10.00
61. ਉਦਾਰਵਾਦੀ ਨੀਤੀਆਂ ਦੇ 18 ਸਾਲ 5.00
62. ਚੋਰ, ਭ੍ਰਿਸ਼ਟ ਅਤੇ ਅਯਾਸ਼ ਨੇਤਾਸ਼ਾਹੀ 5.00
63. ਪਾਪ ਅਤੇ ਵਿਗਿਆਨ / ਡਾਈਸਨ ਕਾਰਟਰ 60.00
64. ਫਾਸੀਵਾਦ ਕੀ ਹੈ ਅਤੇ ਇਸ ਨਾਲ਼ ਕਿਵੇਂ ਲੜੀਏ ? 15.00
65. ਆਈਨਸਟੀਨ ਦੇ ਸਮਾਜਿਕ ਸਰੋਕਾਰ 10.00
66. ਨੌਜਵਾਨਾਂ ਨਾਲ਼ ਦੋ ਗੱਲਾਂ / ਪੀਟਰ ਕ੍ਰੋਪੋਟਕਿਨ 10.00
67. ਇਨਕਲਾਬ ਦਾ ਸੁਨੇਹਾ
(ਭਗਤ ਸਿੰਘ ਅਤੇ ਸਾਥੀਆਂ ਦੀਆਂ ਲਿਖਤਾਂ) 30.00
68. ਅਜਿਹਾ ਸੀ ਸਾਡਾ ਭਗਤ ਸਿੰਘ / ਸ਼ਿਵ ਵਰਮਾ 10.00
69. ਮੈਂ ਨਾਸਤਿਕ ਕਿਉਂ ਹਾਂ ? / ਭਗਤ ਸਿੰਘ 10.00
70. ਭਗਤ ਸਿੰਘ ਨੇ ਕਿਹਾ... / ਭਗਤ ਸਿੰਘ 5.00
71. ਭਗਤ ਸਿੰਘ ਤੇ ਉਸਦੇ ਸਾਥੀਆਂ
ਦਾ ਵਿਚਾਰਧਾਰਕ ਵਿਕਾਸ / ਪ੍ਰੋ. ਬਿਪਨ ਚੰਦਰਾ 10.00
72. ਇਨਕਲਾਬੀ ਲਹਿਰ ਦਾ ਸਿਧਾਂਤਕ ਵਿਕਾਸ / ਸ਼ਿਵ ਵਰਮਾ 10.00
73. ਸ਼ਹੀਦ ਚੰਦਰ ਸ਼ੇਖਰ ਆਜ਼ਾਦ / ਭਗਵਾਨ ਦਾਸ ਮਹੌਰ 10.00
74. ਗਦਰੀ ਸੂਰਬੀਰ / ਪ੍ਰੋ. ਰਣਧੀਰ ਸਿੰਘ 10.00
75. ਸ਼ਹੀਦ ਸੁਖਦੇਵ 20.00
76. ਸ਼ਹੀਦ ਕਰਤਾਰ ਸਿੰਘ ਸਰਾਭਾ 5.00
77. ਵਿਦਿਆਰਥੀ ਨੌਜਵਾਨ ਨਵੀਂ ਸ਼ੁਰੂਆਤ ਕਿੱਥੋਂ ਕਰਨ ? 10.00
78. ਸੋਧਵਾਦ ਬਾਰੇ 5.00
79. ਭਾਰਤ ਵਿੱਚ ਗਿਆਨ ਪ੍ਰਸਾਰ ਦੀ ਲੋੜ ਕਿਉਂ ? / ਸੁਖਵਿੰਦਰ 15.00
80. ਵਧਦੀ ਅਬਾਦੀ 15.00
81. ਯੁੱਗ ਕਿਵੇਂ ਬਦਲਦੇ ਹਨ ? / ਡਾ. ਅੰਮ੍ਰਿਤ 10.00
82. ਧਰਮ ਬਾਰੇ / ਲੈਨਿਨ 30.00
83. ਮਨੁੱਖੀ ਜੀਵਨ ਵਿੱਚ ਮਾਤ-ਭਾਸ਼ਾ ਦਾ ਮਹੱਤਵ 20.00
84. ਇੱਕ ਪ੍ਰਤਿਭਾ ਦਾ ਜਨਮ / ਗੈਨਰਿਖ ਵੋਲਕੋਵ 100.00
85. ਭਾਰਤ ਵਿੱਚ ਨਵਉਦਾਰਵਾਦ ਦੇ ਦੋ ਦਹਾਕੇ / ਸੁਖਵਿੰਦਰ 20.00

86. ਕਾਰਲ ਮਾਰਕਸ ਦਾ ਕਲਾ ਦਰਸ਼ਨ	200.00
87. ਸਤਾਲਿਨ - ਇੱਕ ਜੀਵਨੀ / ਰਾਹੁਲ ਸਾਂਕਰਤਾਇਨ	150.00
88. ਪੋਰਨੋਗ੍ਰਾਫੀ : ਇਕ ਸਰਮਾਏਦਾਰਾ ਕੋਹੜ / ਅਜੇ ਪਾਲ	10.00
89. ਔਰਤਾਂ ਦੀ ਗੁਲਾਮੀ ਦਾ ਆਰਥਿਕ ਅਧਾਰ / ਸੀਤਾ	10.00

ਅਨੁਰਾਗ ਟਰੱਸਟ (ਬੱਚਿਆਂ ਲਈ)

1. ਇਵਾਨ / ਵਲਾਦੀਮੀ ਬਗਾਮਲੋਵ	35.00
2. ਵਾਂਕਾ / ਅਨਤੋਨ ਚੈਖੋਵ	10.00
3. ਕਿਸਮਤ ਆਪੋ-ਆਪਣੀ / ਜੈਨੇਂਦਰ	20.00
4. ਕੋਹੇਕਾਫ਼ ਦਾ ਕੈਦੀ / ਤਾਲਸਤਾਏ	30.00
5. ਛੱਤ ’ਤੇ ਫਸ ਗਿਆ ਬਿੱਲਾ ਅਤੇ ਹੋਰ ਕਹਾਣੀਆਂ	20.00
6. ਅਜੀਬੋ-ਗਰੀਬ ਕਿੱਸੇ / ਹੋਲਗਰ ਪੁੱਕ	20.00
7. ਦੋ ਹਿੰਮਤੀ ਕਹਾਣੀਆਂ / ਹੋਲਗਰ ਪੁੱਕ	15.00
8. ਨਵੇਂ ਜ਼ਮਾਨੇ ਦੀਆਂ ਪਰੀ-ਕਥਾਵਾਂ / ਹੋਲਗਰ ਪੁੱਕ	20.00
9. ਅਸੀਂ ਸੂਰਜ ਨੂੰ ਵੇਖ ਸਕਦੇ ਹਾਂ / ਮਿਕੋਲ ਗਿੱਲ	10.00
10. ਗੁਫਾ ਮਾਨਵਾਂ ਦੀਆਂ ਕਹਾਣੀਆਂ / ਮੈਰੀ ਮਾਰਸ	20.00
11. ਕਿੱਸਾ ਇਹ ਕਿ ਇੱਕ ਪੇਂਡੂ ਨੇ ਦੋ ਅਫ਼ਸਰ ਸ਼ਹਿਰੀ ਅਫਸਰਾਂ ਦਾ ਢਿੱਡ ਕਿਵੇਂ ਭਰਿਆ / ਮਿਖਾਈਲ ਸ਼ਚੇਦ੍ਰਿਨ	15.00
12. ਸਦਾਨੰਦ ਦੀ ਛੋਟੀ ਦੁਨੀਆਂ / ਸੱਤਿਆਜੀਤ ਰਾਏ	10.00
13. ਬਾਜ਼ ਦਾ ਗੀਤ / ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ	10.00
14. ਬੱਸ ਇੱਕ ਯਾਦ / ਲਿਓਨਿਦ ਆਂਦਰੇਯੇਵ	10.00
15. ਦਾਦਾ ਅਰਖ਼ੀਪ ਅਤੇ ਲਿਓਨਕਾ / ਗੋਰਕੀ	20.00
16. ਦਾਨਕੋ ਦਾ ਬਲ਼ਦਾ ਹੋਇਆ ਦਿਲ / ਗੋਰਕੀ	10.00
17. ਘਰ ਦੀ ਲਲਕ / ਨਿਕੋਲਾਈ ਤੇਲੇਸ਼ੋਵ	20.00
18. ਗੁੱਲੀ-ਡੰਡਾ / ਪ੍ਰੇਮਚੰਦ	10.00
19. ਹਾਰ ਦੀ ਜਿੱਤ / ਸ਼ੁਦਰਸ਼ਨ	10.00
20. ਹਰਾਮੀ / ਮਿਖ਼ਾਇਲ ਸ਼ੋਲੋਖ਼ੋਵ	20.00
21. ਕਾਬੁਲੀਵਾਲ਼ਾ / ਰਵਿੰਦਰਨਾਥ ਟੈਗੋਰ	10.00
22. ਮੁਸੀਬਤ ਦਾ ਸਾਥੀ / ਸੇਰੇਗਈ ਮਿਖਾਲਕੋਵ	10.00
23. ਪੋਸਟਮਾਸਟਰ / ਰਵਿੰਦਰਨਾਥ ਟੈਗੋਰ	10.00

24. ਰਾਮਲੀਲਾ / ਪ੍ਰੇਮਚੰਦ 10.00
25. ਸੇਮਾਗਾ ਕਿਵੇਂ ਫੜਿਆ ਗਿਆ / ਗੋਰਕੀ 10.00
26. ਤੁਰਦਾ-ਫਿਰਦਾ ਟੋਪ / ਐੱਨ. ਨੋਸੋਵ 10.00
27. ਬੇਜਿਨ ਚਰਾਗਾਹ / ਇਵਾਨ ਤੁਰਗੇਨੇਵ 20.00
28. ਉਲਟਾ ਰੁੱਖ / ਕ੍ਰਿਸ਼ਨਚੰਦਰ 35.00
29. ਵੱਡੇ ਭਾਈ ਸਾਹਬ / ਪ੍ਰੇਮਚੰਦ 10.00
30. ਇੱਕ ਛੋਟੇ ਮੁੰਡੇ ਅਤੇ ਕੁੜੀ ਦੀ ਕਹਾਣੀ ਜਿਹੜੇ ਬਰਫ਼ੀਲੀ ਠੰਡ 'ਚ ਕਾਂਬੇ ਨਾਲ਼ ਮਰੇ ਨਹੀਂ / ਮੈਕਸਿਮ ਗੋਰਕੀ 10.00
31. ਬਹਾਦਰ / ਅਮਰਕਾਂਤ 10.00
32. ਹਿਰਨੋਟਾ / ਦਮਿਤਰੀ ਮਾਮਿਨ ਸਿਬਿਰੇਆਕ 10.00

——::——

हमारे पास आपको मिलेंगे

- विश्व क्लासिक्स
- स्तरीय प्रगतिशील साहित्य
- भगतसिंह और उनके साथियों का सम्पूर्ण उपलब्ध साहित्य
- मक्सिम गोर्की की पुस्तकों का सबसे बड़ा संग्रह
- भारतीय इतिहास के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्रान्तिकारी दस्तावेज़
- मार्क्सवादी साहित्य
- जीवन और समाज की समझ तथा विचारोत्तेजना देने वाला साहित्य
- प्रगतिशील क्रान्तिकारी पत्र-पत्रिकाएँ
- दिमाग़ की खिड़कियाँ खोलने और कल्पना की उड़ानों को पंख देने वाला बाल-साहित्य
- सुन्दर, सुरुचिपूर्ण, प्रेरक पोस्टर और कार्ड
- क्रान्तिकारी गीतों के कैसेट
- साहित्यिक व क्रान्तिकारी उद्धरणों-चित्रों वाली टीशर्ट, कैलेण्डर, बुकमार्क, डायरी आदि ...

ऐसा साहित्य जो सपने देखने और भविष्य-निर्माण के लिए प्रेरित करता है!

(हिन्दी, अंग्रेज़ी, पंजाबी और मराठी में)

जनचेतना

मुख्य केन्द्र : डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
फ़ोन : 0522-4108495

अन्य केन्द्र :

- 114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड, गोरखपुर-273001, फ़ोन : 7398783835
- दिल्ली : 9999750940
- नियमित स्टॉल : कॉफ़ी हाउस के पास, हज़रतगंज, लखनऊ शाम 5 से 8 बजे तक

सहयोगी केन्द्र

- जनचेतना पुस्तक विक्रय केन्द्र, दुकान नं. 8, पंजाबी भवन, लुधियाना (पंजाब) फ़ोन : 09815587807

ईमेल : **info@janchetnabooks.org**
वेबसाइट : **www.janchetnabooks.org**

हमारी बुकशॉप और प्रदर्शनियों से पुस्तकें लेने के अलावा आप हमसे डाक से भी किताबें मँगा सकते हैं। हमारी वेबसाइट पर जाकर पुस्तक सूची से पुस्तकें चुनें और ईमेल या फोन से हमें ऑर्डर भेज दें। आप मनीऑर्डर या चेक से या सीधे हमारे बैंक खाते में भुगतान कर सकते हैं। आप वेबसाइट पर दिये **Instamojo** के लिंक से भी भुगतान कर सकते हैं। हमारी किताबें आप **Amazon** और **Flipkart** से भी ऑनलाइन मँगा सकते हैं।

बैंक खाते का विवरणः
Acc. Name: Janchetna Pustak Pratishthan Samiti
Acc. No. 0762002109003796
Bank: Punjab National Bank

यदि आपको महज़ मनोरंजन चाहिए,
महज़ नशे की एक ख़ुराक,
दिल को बहलाने के लिए एक ख़याल
तो नहीं हैं ऐसी किताबें हमारे पास।
हम ऐसी किताबें लेकर आये हैं
जो आपकी मोहनिद्रा झकझोरकर तोड़ दें,
जो आज के हालात पर
आपको सोचने के लिए मजबूर कर दें।
हम किताबें नहीं
लड़ने की ज़िद
और हालात की बेहतरी की उम्मीदें
लेकर आये हैं,
हम आने वाले कल के सपने लेकर आये हैं।
हम लेकर आये हैं
एक सार्थक, स्वाभिमानी, मुक्त जीवन की तड़प।
किताबें नहीं
हम असली इंसान की तरह
जीने का संकल्प लेकर आये हैं।

जनचेतना

एक सांस्कृतिक मुहिम
एक वैचारिक प्रोजेक्ट
वैकल्पिक मीडिया का एक मॉडल